मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास साहित्य में नारी-संवेदना

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
की

पी-एच.डी. उपाधि हेतु
हिन्दी विषय में
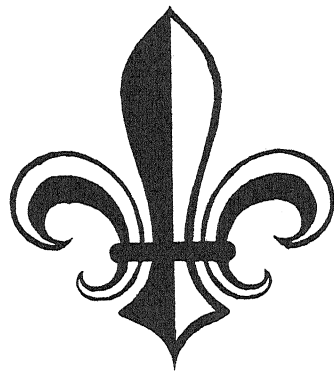
प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2005

शोध निर्देशिका :
डॉ० ऊषा अग्रवाल
उपाचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
आर्य कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
झाँसी (उ.प्र.)

शोध छात्रा :
श्रीमती प्रीति यादव
एम.ए. (स्वर्ण पदक प्राप्त)
31, गणेशपुरा, नगरा,
झाँसी (उ.प्र.)

- शोध केन्द्र -

आर्य कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाँसी

डॉ० ऊषा अग्रवाल
उपाचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
आर्य कन्या महाविद्यालय,
झाँसी

निवास–'कंचन कुटीर',
27/2 पचकुइयाँ, झाँसी
दूरभाष–2442675 आवास
2361229 ऑफिस
मोबा. 9415187371

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि शोध छात्रा श्रीमती प्रीति यादव ने दो सौ दिनों से अधिक अवधि तक उपस्थित रहकर पी–एच.डी. (उपाधि) के लिए "मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास साहित्य में नारी–संवेदना" विषय पर मेरे निर्देशन में शोध प्रबन्ध पूर्ण किया है। इन्होंने विश्वविद्यालय, झाँसी की शोध परिनियमावली के समस्त उपबन्धों की पूर्ति की है, साथ ही यह इनका सर्वथा मौलिक कार्य है।

मैं मूल्यांकन हेतु इस शोध–प्रबन्ध को विश्वविद्यालय के शोध विशेषज्ञों के समक्ष परीक्षार्थ प्रस्तुत करने की अनुशंसा करती हूँ तथा शोध छात्रा के ज्योतिर्मय भविष्य की कामना करती हूँ।

शोध–निर्देशिका

दिनांक 14.03.05

डॉ0 ऊषा अग्रवाल

घोषणा–पत्र

मैं घोषणा करती हूँ कि "मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास साहित्य में नारी संवेदना" शीर्षक पर पी–एच. डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत यह शोध प्रबन्ध मेरे स्वयं का मौलिक प्रयास है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है कि इस विषय पर देश में अभी तक कोई शोध प्रबन्ध प्रस्तुत नहीं हुआ है।

दिनांक 14/3/05

श्रीमती प्रीति यादव
प्रीति यादव
शोधार्थिनी

प्राक्कथन

बचपन से ही मेरी रूचि कहानियाँ और उपन्यास पढने में थी और अब भी है। अक्सर इन्हें पढ़ते–पढ़ते मेरा मन विशेष तौर पर "नारी जीवन" पर केन्द्रित हो जाता है। वैसे भी मेरे जीवन को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला पक्ष नारी जीवन ही है। चहुँ ओर नारी के बदलते स्वरूप को देखकर मेरा ह्रदय बार–बार मुझे नारी अस्तित्व व उसकी संवेदना पर कुछ लिखने को प्रेरित करता। यद्यपि मैंने बी.ए. प्रथम वर्ष में ही नारी विषय पर कुछ लेख लिखे थे, जो उस समय की पत्र–पत्रिकाओं में छपे भी थे, परन्तु मेरी इच्छा नारी–संवेदना पर विस्तृत रूप से लिखने की थी। एक दिन खाली समय में बैठे–बैठे मैं 'मैत्रेयी–पुष्पा' जी का "इदन्नमम" उपन्यास पढ़ गयी। मेरे ऊपर "मंदा" के चरित्र का इतना असर हुआ कि बार–बार मेरा मन उसके मनोभावों व उसकी संवेदना पर केन्द्रित हो जाता। फिर तो मैंने मैत्रेयी जी के समस्त उपयन्सों को एक–एक कर पढ़ डाला। मैत्रेयी जी के समस्त उपन्यासों में नारी पात्रों को विकटतम् परिस्थितियों से लड़ते देख मुझे मैत्रेयी जी से बरबस प्रेम हो गया और उसी क्षण मैंने निश्चय किया कि मैं अपने शोध प्रबन्ध का विषय, ऐसी ही सशक्त महिला के उपन्यासों की नायिकाओं को बनाऊँगी।

मैत्रेयी जी के उपन्यासों का आधार मिलते ही मैंने उनके उपन्यास साहित्य का अध्ययन कर शोध प्रारम्भ कर दिया। मुझे नहीं मालूम था कि यह सिलसिला इतना बढ़ जायेगा कि जीवन और जगत के मध्य परिवार की एक नई धुरी प्रारम्भ हो जायेगी। मैत्रेयी जी ने जिन नारी पात्रों को अपने उपयान्सा में स्थान दिया है वे इसी जगत के है तथा ऐसा महसूस होता है कि वे हमारे चारों ओर घूम रहे हैं। बार–बार मंदा, उर्वशी, सारंग शीलो आदि की छवि मेरे सामने अनायास ही आ जाती है। तब मैं ऐसा महसूस करती हूँ कि मैत्रेयी जी ने नारी मन की गहराइयों को केवल छुआ ही नहीं बल्कि पास से उन्हें देखा भी है।

और जब नारी–संवेदना से जुड़े अनेकानेक पहलुओं पर विस्तृत रूप से कुछ लिखने की इच्छा जब मैंने अपने पति "श्री रंजीत सिंह" से कही, तो उन्होंने सहज ही मेरी रूचि के प्रति अपनी सहर्ष अनुमति व्यक्त कर दी। इस कार्य को पूरा करने का सौभाग्य मुझे जल्द ही पी.एच.डी. शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत प्राप्त हो गया और जब मैंने अपनी शोध निर्देशिका 'डा0 ऊषा अग्रवाल' से अपने शोध का विषय–'मैत्रेयी पुष्पा के

उपन्यास साहित्य में नारी–संवेदना' बताया तो उन्होंने कुछ संशोधन के पश्चात् अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी, तो मेरा मन खुशी से उछल पड़ा और मैं उन्हें सधन्यवाद देते हुये अपने इच्छान्वित कार्य को अंजाम देने में जुट गयी।

समकालीन हिन्दी साहित्य नारी के विविध रूपों का चित्रण करता आया है। समस्त परिस्थितियों से घिरी नारी के संवेदनात्मक रूप का उद्घाटन इस शोध प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य है। नारी महत्ता का प्रतिपादन प्राचीन काल से ही होता आया है। मानव जीवन में नारी अपनी विशिष्ट भूमिका का निर्वाहन करते हुए मनुष्य के जीवन को श्रेष्ठता प्रदान करती है। नारी केवल संतान संपादिका नहीं, पालिका तथा संचालिका भी है। स्त्री साक्षात त्याग की मूर्ति है। वह अबला नहीं सबला है। परिवार में ही नहीं समाज में भी नारी का महत्व महान है।

जीवन की सार्थकता की दृष्टि से विचार किया जाये तो भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन का संतुलन बनाए रखना ही मानव शरीर को सार्थक बनाता है। भौतिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में अब तक जितनी भी महान उपलब्धियां प्रगति के रूप में दिखायी देती है उन सभी के मूल में नारी का महान और सहज प्रेम छिपा हुआ है। छोटे से भ्रूण को महा मानव बनाने में नारी का उदात्त प्रेम ही एक मात्र प्रेरक आधार रहा है। स्त्री शांति स्वरूपा है और पूज्यनीय है। वह परिवार की शोभा है, देवी है, ज्योति है, उसकी ज्योति से सम्पूर्ण प्रकाश प्रकाशित होता रहता है। नारी को विशेष आदर सम्मान का दर्जा दिया जाना चाहिए।

नारी की व्यथा–कथा लम्बी है, फिर भी इस कथा से नारी को अलग नहीं किया जा सकता, पुरूष इस नारी से अलग नहीं हैं। स्त्री पुरूष इस गाड़ी के दो ऐसे पहिए हैं, जिनका साथ–साथ रहना जीवन में एक नये जीव के निर्माण की कहानी तो बताता ही है, साथ ही जीवन को स्थिर भी रखता है। "जिस साहित्य में हमारी सुरूचि न जगे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममे शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौन्दर्य प्रेम न जागृत हो, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने के लिए सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे वह आज हमारे लिये बेकार है। वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं है।"

हिन्दी साहित्य के उपन्यासकार–कथा सम्राट प्रेमचन्द्र का यह विचार उतना ही सत्य है जितना कि आज जीवन के उतार–चढ़ाव की कहानी। मौन–साधना के साधक की तरह कभी–कभी सोचती हूँ कि पति, पिता, माँ, सास, ससुर और भाई–बहन सभी परिवार के सदस्य मुझ नारी से कहीं न कहीं समझौता चाहते है और हमें झुकना पड़ता है, कभी–कभी तो इतना कि मेरा अह्म उसे स्वीकार न करने को मजबूर हो जाता है। लेकिन कभी–कभी मेरा मन विद्रोह कर उठता है। मेरी यह बात इसलिए भी सही है कि मैं शिक्षित होते हुए भी समझौता इसलिए करती रहती हूँ कि मेरे पति और मेरे घर वाले मेरे लिए सबकुछ हैं। कम से कम सुख–दु:ख की सीमा में मुझे एहसास दिलाते है तथा मेरा साथ भी देते हैं। आज तो जो कुछ बन रही हूँ या बन जाऊँगी उसका श्रेय मुझे इनको ही देना पड़ेगा। मैत्रेयी जी ने स्वयं अपने जीवन में न चाहते हुये भी कुछ समझौते किये, जिनसे वे अपनी नायिकाओं के माध्यम से छुटकारा पाती आयी हैं।

आधुनिक युग में प्रबलतम बनी मानव मात्र की समानता और स्वतंत्रता की भावना ने समाज को नारी की समानता और स्वतंत्रता के लिए उद्वेलित किया और उसके लिये आवश्यकता समझी गयी नारी को शिक्षित करने एवं स्वावलम्बी बनाने की। इस भावना ने समाज की अवधारणा को बदला और पुरूष प्रधान समाज में जो साहित्य कल्पना और आदर्श को लेकर चल रहा था उसका स्थान यथार्थ और वास्तविकता ने ले लिया, आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिकता की प्रधानता हो गयी। साहित्य भी केवल पुरूष को प्रधानता एवं प्रमुखता देने वाला नहीं रह गया। उसके लिए आवश्यक एवं अपरिहार्य हो गया कि वह नारी भावनाओं को भी समुचित महत्व दे।

समकालीन हिन्दी साहित्य में नारी जीवन की समस्याओं का निवारण, समाज में नारी की वर्तमान यथार्थ स्थिति का चित्रण हुआ है। समकालीन हिन्दी साहित्य में साम्प्रतिक परिवेश में नारी जीवन के विविध संदर्भ अनुस्यूत हैं। जीवन के विस्तृत धरातल पर नारी जीवन की विभिन्न समस्याये, उसकी सोच तथा संवेदना उसके हर्ष, विषाद तथा उसके आंसू तथा मुस्कान का भोगे हुये यथार्थ के रूप में जितना चित्रांकन नारी साहित्यकारों के माध्यम से वर्तमान समय में हुआ है वैसा पहले कभी नहीं हुआ था।

समय परिवर्तनशील है। नारी की स्थिति भी एक सी नहीं रही। उसमें परिवर्तन के चिन्ह स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। इससे पहले हिन्दी उपन्यासों में नारी को घर की

चारदीवारी में सीमित रखकर समाज में उसकी स्थिति पुरूष मुखापेक्षी के रूप में चित्रित की गयी। तत्पश्चात् अनेकानेक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व धार्मिक परिवर्तन हुये, जिसके फलस्वरूप अनेक सामाजिक रूढ़ियां, परम्परायें और मान्यताएँ विखण्डित हुयीं, जिनका स्थान नई मान्यताओं ने ले लिया। नारी कथाकारों ने समकालीन पारिवारिक तथा सामाजिक यथार्थ को नारी की विभिन्न मनोदशाओं, समस्याओं आशाओं, निराशाओं, विवशताओं, तनावों, अनाचारो, विसंगतियों, न्यूनताओं तथा स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छन्दता की ओर उड़ानों को भी अपना कथ्य बनाया है, जिसे पुरूष उपन्यासकारों की तुलना में अधिक मार्मिक, स्वानुभूतिमय तथा तन्मय रूप में चित्रांकित किया गया है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास साहित्य में नारी की इस बिडम्बनाजन्य स्थिति का जितना सटीक चित्रण हुआ है उतना पूर्ववर्ती साहित्य में नहीं। अन्य उपन्यासकार नारी मनोजगत के अंतरंग मानसिकता को सहजता से न प्रस्तुत कर सके। दाम्पत्य जीवन का बदलता स्वरूप, विवाह संस्था का महत्व, उसके औचित्य, अनौचित्य के बंधनों को तोड़ने के लिए व्याकुल नारी हृदय के संदर्भो को लेकर इस युग के उपन्यासकारों व कथाकारों को जूझना पड़ा है। किन्तु संवेदना के धरातल पर नारी के आस–पास के परिवेश, संस्कृति खासकर बुन्देलखण्डीय संस्कृति, सभ्यता, रहन–सहन, आचार–व्यवहार, नियम–कानून, रूढ़ियाँ, परम्परायें, मान्यतायें, विद्रूपतायें, समस्याये व नारी के विविध रूपों की पहचान मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यासों व कथा संग्रहों में दृष्टिगोचर हैं।

इस उपक्रम में मैत्रेयी पुष्पा द्वारा सहज ही ऐसे बहुत सारे कथ्य तलाशे गये हैं, जिनके विमर्श की प्रक्रिया में नारी चेतना की समस्तता तथा परिवेशगत यथार्थ की अभिव्यक्ति को अपने उपन्यासों में जीवन्त किया है। कई बार मैत्रेयी जी मर्यादा तथा नैतिकता व चरित्रता की लक्ष्मण रेखायें लांघती दिखती हैं, किन्तु यही तो वह कारगर उपाय है, जिसके माध्यम से युगीन यथार्थ व नारी जीवन के अदृश्य परिपार्श्व प्रकाश में आ सके हैं। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास साहित्य में नारी संवेदना को खोजना है।

इस शोध का प्रथम अध्याय आठ बिन्दुओं में विभक्त है। जिनके अन्तर्गत मैत्रेयी जी का व्यक्तित्व व साहित्यिक एवं शैक्षणिक परिवेश को रखा है। जिसमें प्रथम बिन्दु के अन्तर्गत उनका जीवन परिचय, द्वितीय बिन्दु के अन्तर्गत पारिवारिक व शैक्षणिक दीक्षा, तृतीय बिन्दु के अन्तर्गत उनकी साहित्य के प्रति रूचि एवं उनका साहित्यिक परिवेश, चतुर्थ बिन्दु के अन्तर्गत उनका आरम्भिक लेखन एवं उनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण, पंचम बिन्दु के अन्तर्गत उपन्यास साहित्य की परम्परा एवं परवर्ती साहित्य, षष्ठम् बिन्दु के अन्तर्गत उपन्यास साहित्य की बदलती रचना धर्मिता एवं मैत्रेयी जी का उपन्यास साहित्य संसार, सप्तम् बिन्दु के अन्तर्गत मैत्रेयी पुष्पा जी उपन्यास साहित्य का पूवार्द्ध तथा अष्टम् बिन्दु के अन्तर्गत मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यास साहित्य के उत्तरार्द्ध भाग को रखा गया है, जिसमें उनके जीवन की विविध घटनाओं और क्रियाकलापों की चर्चा विस्तृत रूप से की गयी है, साथ ही व्यक्तित्व परिचय के अन्तर्गत उनका साक्षात्कार रखा गया है, क्योंकि साक्षात्कार व्यक्ति के पहचान की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत मैत्रेयी जी के सम्पूर्ण साहित्य का परिचय तथा विकास क्रम दिया गया है। जिन्हें दो भागों में बांटा गया है। प्रथम भाग में मैत्रेयी जी के उपन्यास साहित्य को क्रमशः एक के बाद एक रखकर उनका विश्लेषण व मूल्यांकन किया गया है वहीं दूसरे भाग में उनके कहानी साहित्य को लिया गया है– जिनमें उनके तीनों कहानी संग्रह ''चिन्हार'', ''ललमनियाँ'' व ''गोमा हंसती है'' को विस्तार से लिया गया है। साथ ही उनकी नारी विमर्श सम्बन्धी पुस्तक 'खुली खिड़कियाँ' का मूल्यांकन भी किया गया है।

तृतीय अध्याय में अब तक के उपन्यास साहित्य का सम्पूर्ण पक्ष रखा गया है। द्वितीय बिन्दु में नारी उपन्यास साहित्य में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका व परिस्थितियों का विश्लेषण किया गया है साथ ही आखिरी में मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास साहित्य में नारी की भूमिका का, परिस्थतियों का मूल्यांकन भी किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में अ और ब दो बिन्दु लिये गये हैं। जिनमें अ के अन्तर्गत मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों के प्रमुख नारी पात्र एवं उनका चरित्र–चित्रण रखा गया है तथा ब के अन्तर्गत मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास साहित्य में नारी के पारिवारिक, सामाजिक,

राजनैतिक, धार्मिक, लोक कल्याणकारी, मानवीय गुणों से परिपूर्ण आदर्शमय रूप, यथार्थ रूप व आर्थिक विपन्नता से परिपूर्ण रूपों को दर्शाया गया है।

पंचम अध्याय एक महत्वपूर्ण अध्याय है। जिसमें तीन बिन्दुओं के अन्तर्गत प्रथम में मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की मूल तत्वों के आधार पर समीक्षा, द्वितीय में मैत्रेयी पुष्पा की नारी चिंतन में भागीदारी व तृतीय में मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास साहित्य में नारी–संवेदना को चित्रांकित किया गया है। जो कि उनके सम्पूर्ण साहित्य का सार प्रकट करता है।

षष्ठम् व आखरी अध्याय के अन्तर्गत दो बिन्दु रखे गये हैं, जिनमें प्रथम बिन्दु के 'अ' के अन्तर्गत मैत्रेयी पुष्पा का अन्य महिला उपन्यासकारों से तुलनात्मक अध्ययन तथा 'ब' के अन्तर्गत मैत्रेयी पुष्पा का पुरूष उपन्यासकारों से तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। जिसमें मैत्रेयी जी के साहित्य की विशेषताओं को उजागर किया गया है। द्वितीय बिन्दु के 'अ' के अन्तर्गत वर्तमान समय में मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास साहित्य में क्या योगदान है? इसकी विस्तृत चर्चा की गयी है, साथ ही 'ब' के अन्तर्गत मैत्रेयी पुष्पा जी के साहित्य की उपादेयता को सिद्ध किया गया है। अस्तु !

आभार

सर्वप्रथम मैं समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों एवं कथाकारों के प्रति अपने अन्तरमन की समस्त श्रद्धा अर्पित करती हूँ। इस प्रयास के लिए मैं विदुषी, माँ सरस्वती की आराध्य विशाल एवंम् सरल हृदय, पूज्य मेरी गुरू माता श्रीमती (डा0) ऊषा अग्रवाल, पी–एच.डी. अध्यक्ष हिन्दी विभाग, आर्य कन्या महाविद्यालय, झाँसी की विशेष रूप से आभारी हूँ। जिन्होंने अपने अमूल्य व्यस्त समय में से अपना कुछ समय मुझे देकर मेरा मार्गदर्शन किया व मुझे एक दिशा दी। इस शोध के दौरान मेरे समक्ष अनेक कठिनाइयां आई, उन कतिपय शंकाओं और समस्याओं के समाधान में मेरे उदारमना गुरू डॉ0 डी.सी. अग्रवाल की अविरल कृपा एवं उनका सुलझा–प्रखर मस्तिष्क भी मेरा सम्बल रहा है। मेरे गुरू व गुरूमाता कोशीय ज्ञान विगृह, विद्याव्यसनी, बहुश्रमी, प्रतिभा प्रखर तथा प्रसन्नचित्त व्यक्तित्व के धनी हैं। जिनके मधुर स्नेह की छत्रछाया में मैंने यह दुर्गम पथ विविध कठिनाइयों के मध्य निडर व निशंक भाव से पार किया है। उनकी विचारोत्तेजक टिप्पणियों एवं उनके स्नेहिल प्रोत्साहन के अविस्मरणीय योग से ही यह अपना रूपाकार गृहण कर सका है। यह शोध प्रबन्ध जिस रूप में भी सामने है उसका सम्पूर्ण श्रेय मेरी गुरूमाता व गुरूवर को है। उनके लिये आभार के शब्द लिख सकना मेरी कलम की सामर्थ्य से बाहर है।

आदरणीय एवं महान विभूति श्रीमती डा0 नीलम मित्तल (प्राचार्य, आर्य कन्या महाविद्यायल, झाँसी) के प्रति आभार व्यक्त करना मेरा परम कर्त्तव्य है, जिन्होंने मुझे कॉलेजसे प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग प्रदान किया।

प्रथमतः बुन्देलखण्ड की महान सम्राज्ञी, विदुषी एवं ग्रामीण जीवन को अपने लेखन का आधार बना हिन्दी साहित्य में हलचल मचाने वाली मैत्रेयी पुष्पा जी के प्रति आभार व्यक्त करना मेरा परम कर्त्तव्य है, जिन्होंने उचित समय पर अपने बहुमूल्य विचार एवं अपना समुपलब्ध साहित्य उपलब्ध करा मुझे इस शोध में भरपूर सहयोग प्रदान किया जिस कारण से मैं उनके साहित्य को अपने विषय का आधार बना यह शोध निर्विघ्न रूप से पूर्ण कर सकी। उनकी महती कृपा समस्त शोध में विद्यमान है।

मेरे पितामह श्री काशीराम जी यादव, का मेरे सम्पूर्ण जीवन में विशेष प्रभाव रहा है। उनका सम्पूर्ण जीवन कठिन परिश्रम, शान्त एवं सरल व्यवहार से भरा पड़ा है। चेतना और कठिन परिश्रम का आत्मविश्वास मुझे इन्हीं से प्राप्त हुआ। आदरणीय मेरे पिता श्री डी.आर. यादव (सेवा निवृत्त अधिशासी अभियन्ता, जल संस्थान, बांदा) का दिया गया समय–समय पर उचित मार्ग दर्शन व आशीर्वाद व कृपालु व्यक्तित्व की प्रभाव तरंगो ने ही मेरे व्यक्तित्व को सृजन धर्मी संस्कार प्रदान किये। उन्होंने व्यस्त होते हुये भी पुस्तक सामग्री जुटाने से लेकर पुस्तक संकलन तक आवश्यक, दौड़–धूप करके मुझे अनेक दुरूहताओं से बचाया। सर्वाधिक सक्रिय योगदान उन्हीं का रहा है। माँ श्रीमती रामश्री यादव के सहयोग का मैं सश्रद्धा स्मरण करती हूँ। इस कृति के संस्कार, परिष्कार के कार्य करने हेतु उन्होंने गृह का समस्त कार्य भार अपने कंधों पर लेकर मुझे जो अतिरिक्त तथा अमूल्य समय प्रदान किया उसके लिए मैं उनकी ऋणी हूँ।

इस अवसर पर मैं अपने पति श्री रंजीत सिंह यादव (व्यवसायी) को कैसे भूल सकती हूँ, जिन्होंने शादी के कुछ समय पश्चात ही जीवन के मधुर क्षणों का परित्याग कर मुझे मायके में रहकर शोध प्रबन्ध पूरा करने की अनुमति प्रदान की तथा अपना अमूल्य समय व सहयोग देकर मुझे एक स्वच्छन्द व प्रसन्नता से भरपूर मानसिक वातावरण प्रदान किया, जिसमें मैं अनेक दुश्चिताओं से मुक्त रहकर अपना कार्य निश्चिंत भाव से कर सकी। एक व्यस्त 'व्यवसायी' होने के पश्चात भी उन्होंने समय–समय पर इस शोध प्रबन्ध को अंजाम देने में अपना भरपूर योगदान दिया, जिसके लिए मैं उन्हें अपने अन्तस का प्रेम भाव ही दे सकती हूँ। मैं अपने पिता समान ऋषिकल्प श्वसुर श्री हरी सिंह जी यादव एवं स्नेहशील सासू मां श्रीमती विद्या देवी यादव से कभी ऋणमुक्त हो ही नहीं सकती, जिन्होंने ससुराल की आवश्यकताओं को दर–किनार कर मुझे यह अमूल्य अवसर प्रदान किया तथा समय–समय पर दिया उनका आर्थिक व मानसिक सहयोग मेरा महत्वपूर्ण संबल रहा है। मैं उनके प्रति श्रद्धान्वत हूँ। मैं अपने जेठ श्री जितेन्द्र सिंह यादव (बबलू भइया) एवं जेठानी श्रीमती ऊषा यादव (उपाध्यक्ष स.पा. म.प्र.) के चरणों में विनम्र प्रणाम करती हूँ। उनके पुनीत आशीष के बिना मेरा यह सारस्वत–यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न नहीं हो सकता था।

मेरे जीजा जी स्वर्गीय श्री देवेन्द्र सिंह यादव जी "पप्पू" (पूर्व पार्षद, नगर पालिका, झाँसी) का सहयोग अविस्मरणीय है। उनकी स्नेहछाया सदैव मेरे ऊपर रहती है, मेरे प्रति उनकी जो शुभाशा थी, वह अन्दर से मुझे जितना समृद्ध, आलोकमय एवं संकल्पवान बनाती है, उसे शब्दबद्ध करना मेरे लिए बहुत कठिन है। ऐसे बड़े भाई समान जीजा जी को मैं हृदय से श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ। यद्यपि आज वे हमारे बीच नहीं हैं। फिर भी उनका वरद् हस्त आज भी मुझे मेरे सिर पर प्रतीत होता है।

अपनी दीदी श्रीमती ज्योति यादव के कर्मठ जीवन से मैं सदैव प्रेरित रही। मुझे कुछ करने की इच्छा निरन्तर उनके कुछ करते रहने व संघर्षशील जीवन से ही जागी। निरन्तर मेरी हित चिंतन में निरत रहने वाले, समय–समय पर उचित सहायता मार्गदर्शन व प्रेरणा प्रदान करने वाले, कतिपय समस्याओं का समाधान करने वाले, धैर्य और अपार स्नेह प्रदान करने वाले मेरे बड़े भाई डा0 महेन्द्र प्रताप सिंह "राजू" का सहयोग स्तुत्य है।

वैसे तो किसी भी उत्तम कार्य में अपने आत्मीय जनों का सहयोग प्राप्त होता ही है फिर भी जिन विशेष आत्मीयों का प्रेमिल सहायोग मिला वे हैं– मेरी बड़ी ननद "किरन यादव" बड़ी बहन "शक्ति यादव" और बड़ी भाभी "रानी यादव"। कुछ समस्याओं का प्रतिकर समाधान इन तीनों ने खोजा, उसके लिए तो मैं अपने अन्तर मन का 'सुभाव' ही उन्हें अर्पित कर सकती हूँ।

मैं भाई धीरेन्द्र सिंह यादव के विशेष सहयोग के लिये हृदय से आभारी हूँ।

छोटे भाई–बहन क्रमशः वरूण प्रताप सिंह (बल्लू) और आरती यादव (बब्बू) तथा छोटी ननद पूजा यादव (सिद्धू) का सहयोग भी सराहनीय है पर मैं उन्हें धन्यवाद न देकर बड़ी होने के अधिकार के साथ उनकी सफलता और समृद्धि हेतु मंगल कामना करती हूँ।

इस लघु शोध कार्य के दौरान कभी–कभी निरन्तर कार्यान्वित रहने से उत्पन्न नीरस एवं बोझिल क्षणों को अपने मधुर क्रियाकलापों द्वारा मनोरंजक बनाने वाले मेरे

प्रिय एवं प्यारे–प्यारे भान्जों की त्रयी हर्ष–गौतम–कपिल को मैं उनके सुन्दर, समृद्ध एवं आलोकमय भविष्य के लिए शुभाषीश प्रदान करती हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को मनोयोग एवं सफलता पूर्वक टंकित करने के लिए मैं श्री. अरूण कुमार विजय की भी अत्यन्त आभारी हूँ।

अन्त में मैं आभारी हूँ, उन सभी साहित्यकारों और मनीषियों की, जिनकी रचनाओं का उपयोग मैंने अपने प्रबन्ध में किया। मै उन पुस्तकालयों की भी आभारी हूँ जिन्होंने प्रायः सभी प्रकार के साहित्य को मेरे लिए सुलभ बनाया।

इस विनम्र प्रयास की विद्वतजन ही समीक्षा करेंगे।

विन्यावनत
श्रीमती प्रीति यादव
प्रीति यादव

अनुक्रमणिका

शीर्षक – मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास साहित्य में नारी–संवेदना

शोध निर्देशिका डॉ० ऊषा अग्रवाल, अनुसंधित्सु प्रीति यादव,
साथ में हैं बुन्देलखण्ड की महान कथाकार मैत्रेयी पुष्पा जी

प्रथम अध्याय

मैत्रेयी पुष्पा जी का व्यक्तित्व - शैक्षणिक एवं साहित्यिक परिवेश

1. मैत्रेयी पुष्पा जी का जीवन परिचय।
2. मैत्रेयी पुष्पा जी की पारिवारिक एवं शैक्षणिक दीक्षा।
3. मैत्रेयी पुष्पा जी की साहित्य के प्रति रूचि एवं उनका साहित्यिक परिवेश।
4. मैत्रेयी पुष्पा जी का आरम्भिक लेखन एवं जीवन के प्रति दृष्टिकोण।
5. उपन्यास साहित्य की परम्परा एवं परवर्ती साहित्य।
6. उपन्यास साहित्य की बदलती रचनाधर्मिता एवं मैत्रेयी का उपन्यास साहित्य संसार।
7. मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यास साहित्य का पूर्वार्द्ध।
8. मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यास साहित्य का उत्तरार्द्ध।

विषय प्रवेश
मैत्रेयी पुष्पा जी का व्यक्तित्व
शैक्षणिक एवं साहित्यिक परिवेश

जीवन की परिधि में परिवार का रिश्ता भौतिक आधार है। नारी परिवार की अभिन्न अंग ही नहीं, उसकी धुरी है। परिवार में नारी के लिए कोई कार्य असम्भव नहीं। एक चेतना प्रभाव, नारी अस्तित्व को जन्म देता है। प्राचीन भारतीय चिन्तन की दो दिशायें, जो महाभारत, रामायण कथा के साथ पौराणिक कथाओं से जुड़ी हैं, नारी की महानता को स्वीकार ही नहीं करती बल्कि अंगीकार भी करती हैं। नारी का रूप भले ही आकर्षक का केन्द्र बिन्दु रहा हो, पर नारी जीवन नारी मन की अनन्त चेष्टाओं के निर्माण को जन्म देता है। मेरा तो अपना मन यही कहता है कि नारी सृष्टि है, जन्म से मरण तक यात्रा में भले कंधा न दे, पर अपने मन से यात्रा की पूर्ण आहूति तो अवश्य करती हैं।[1] यह सच्चाई पूर्ण रूप से हिन्दी साहित्य क्षेत्र में देखी जा सकती है। नारी जीवन की इसी सच्चाई का प्रतिनिधित्व करते उपन्यास हैं– मैत्रेयी पुष्पा के।

सरल, सहज, शालीन सामान्य कद–काठी और उतने ही साधारण भारतीय वस्त्रों को धारण करने वाली मैत्रेयी पुष्पा जी को देखकर ऐसा लगता है कि यथार्थ को पा लेना, उनकी अपनी व्यवस्था तो है ही, पर उनका अपना चिन्तन स्वच्छ लेखन व भाषा के रूप में परिभाषित करता है। नारी जीवन से जुड़ी स्थितियों, परिस्थितियों सच्चाईयों, जो कुछ देखती है, उसे चिन्तन पक्ष पर अपनी स्वतन्त्र कलम से कागज पर उतार देती हैं, तब जाकर उनके हृदय में लगी टीस कुछ कम होती है।

लेखन प्रतिभा की धनी मैत्रेयी पुष्पा जी का जीवन एक खुली किताब की तरह है। वैसे तो उनके कथा और उपन्यास रचना का वैचारिक परिप्रेक्ष्य जन–जन की समस्याओं से ओतप्रोत है, लेकिन नारी जीवन की समस्याओं पर उन्होंने विशेष रूप से लेखनी चलायी है। उन्होंने नारी समस्याओं को उसके मन से युद्ध द्वन्द्व के परिप्रेक्ष्य में देखा और समझा है। जहाँ समानता का स्तर प्रदान करने की बात संघर्ष रूप में आयी है, वहीं उनका नारी मन ज्वालामुखी की भाँति विस्फोटक हो उठा है।

---
[1] क्रान्तिघोष (साप्ताहिक), 10 नवम्बर 1988

उनका मुस्कराता चेहरा, उनके लिबास की सादगी, सुहाग चिन्हों को धारण करने की अनिवार्यता से परे बेहद सादे व्यक्तित्व की धनी मैत्रेयी पुष्पा जी को देखकर सहज अंदाजा नहीं लगाया जा सकता है कि ये वह मैत्रेयी हैं, जिन्होंने अपने सशक्त लेखन से हिन्दी साहित्य संसार में हलचल मचा रखी है।

उनकी माता स्वयं एक कुशल व सशक्त ग्राम सेविका थीं। मैत्रेयी जी के व्यक्तित्व निर्माण का श्रेय उनकी माता जी को ही है। हिन्दू समाज में प्रचलित धारणा के विपरीत लड़कियों को शिक्षा देना, नौकरी के लिए प्रोत्साहित करना, पढ़ाई के लिये बाहर भेजना, स्त्री को कमजोर बनाने वाले समस्त पहलुओं से दूर रखना आदि ऐसे कारण है कि उनकी माता जी की ही वजह से मैत्रेयी आज शिक्षा जगत में इस सोपान पर पहुँच पायी हैं।

१. मैत्रेयी पुष्पा जी का जीवन परिचय

मैत्रेयी पुष्पा का जन्म 30 नवम्बर 1944 को अलीगढ़ जिले के 'सिकुर्रा' नामक गाँव में एक 'ब्राह्मण परिवार' के 'उपाध्याय' गोत्र में हुआ था। इनके पिता 'हीरालाल' एक गरीब किसान थे। मोतीझला रोग के कारण इनके पिता की असमय मृत्यु हो गयी, उस समय मैत्रेयी मात्र 18 माह की बच्ची थी। अपनी बेटी को 'मैत्रेयी' नाम उनके पिता ने ही दिया था। गाँव वाले उन्हे प्यार से 'पुष्पा' कहते थे, मैत्रेयी की माँ एक साधारण किसान की साधारण पत्नी थी, जिनका नाम 'कस्तूरी' था। किन्तु पति की असमय मृत्यु के कारण कटु यथार्थ व समाज का सामना करते हुये उन्होंने पढ़ाई का मार्ग तय कर एक धीर–गम्भीर ग्राम संयोजिका के रूप में अपनी साख बनायी। आगे चलकर उन्हें महिला मंगल योजना के सर्वोच्च पुरस्कार से नवाजा गया।

मैत्रेयी पुष्पा बचपन मे बेहद शरारती व जिद्दी किस्म की लड़की थीं। वे माँ के बनाये नीरस मार्ग पर कतई चलने को तैयार नहीं थी। जहाँ उनकी माँ उन्हें एक आदर्श स्त्रीत्व से भरपूर और अनुशासनप्रिय जीवन देना चाहती थीं, वहीं मैत्रेयी स्वच्छन्द और खुली हवा में जीवन जीना चाहती थीं।

पढ़ाई के चलते मैत्रेयी पुष्पा का आरम्भिक जीवन यापन 'खिल्ली' नामक गाँव में हुआ। वहाँ ये 'चिमन सिंह' के यहाँ रहती थी। उन्हें वे प्यार से 'दादा' और वे उन्हें बेटी कहते थे।

वहाँ उन्हें भरभूर अपनत्व और प्यार मिला। 'युवराज' और 'रतनसिंह' जैसे भाई मिले। वहीं रहकर उन्होनें डी.वी. इण्टर कॉलेज, मोंठ से हाईस्कूल की परीक्षा पास की। पढ़ाई में विशेष रूचि न होने पर भी माँ की इच्छा की खातिर उन्होंने इण्टर व बी.ए. 'गुरूकुल' से तथा एम.ए. बुन्देलखण्ड महाविद्यालय झाँसी से उत्तीर्ण किया।

स्कूली जीवन में इन्होंने अनेक शरारते की। स्वच्छन्द एवं भावुक लड़की होने के कारण अनेक नवयुवक सहपाठियों (राघव बाजबहादुर (जानकी रमण), शिव दयाल, नन्दकिशोर, चित्रसिंह) से प्रेम प्रसंग भी चला। मैत्रेयी ने अपने कॉलेज जीवन में अनेकानेक क्रियाकलापों व साहित्यिक रूचि के चलते समाज को अपनी विशेष प्रतिभा से परिचित कराया और बताया कि वे साधारण होते हुये भी विशेष है, विशेष विचार रखने वाली है। इसी के चलते उसे अनेकानेक सामाजिक विरोधों का सामना करना पड़ा। कभी कॉलेज से निकालने की धमकी तो कभी मकान–मालिकों के ताने सुनने पड़े।

अब तक मैत्रेयी अनेक कटु सच्चाईयों का सामना कर चुकीं थी। बदहाल माँ हर हाल में जीवन में हार न मानने का बेटी मैत्रेयी को पाठ पढ़ाती है। लेकिन मैत्रेयी जीवन पर्यन्त माँ के बनाये रास्ते और आदर्शे पर चलते–चलते तंग आ गयी और वह बंधन मुक्त होना चाहती है। अपनी इच्छानुसार जीवन यापन करना चाहती है। मैत्रेयी के अपने सपने है – राजकुंवर सा पति हो, अपना घर हो, बच्चे हो और वह सोलह श्रृंगार किये इठलाती फिरे। यहाँ पर दोनों एक दूसरे के विचारों से पूर्णतया असहमत दिखलायी देती हैं। एक विधवा के जीवन की सच्चाइयों को झेलते–झेलते माँ कस्तूरी बेटी मैत्रेयी के प्रति कुछ ज्यादा ही सख्त हो गयी थीं। बेटी मैत्रेयी माँ के इस नीरस जीवन यापन से बाहर निकलना चाहती है, इसी कारण से बी.ए. में पढ़ते हुये वे माँ से अपने विवाह की बात कहती हैं। माँ बेटी को नौकरी करते देखना चाहती हैं किन्तु मैत्रेयी की नौकरी में कोई रूचि नहीं है। हार कर माँ बेटी के लिये वर तलाशना प्रारम्भ करती है, किन्तु अपनी शर्तों पर। माँ दहेज के सख्त खिलाफ थीं। इसके चलते उन्हे अनेक सामाजिक विद्रूपताओं जैसे–विधवा होने का, दहेज विरोधी होने का, लड़की की माँ होने का, पति की मृत्यु के कारण निन्दा का भाजन होने आदि का सामना करना पड़ता है, पर वे हिम्मत नहीं हारतीं। आखिरकार उन्हे अलीगढ़ जिले का सभ्रान्त और कुलीन डाक्टर लड़का मिल ही जाता है, वह भी बिना दान–दहेज वाला।

सोलह जून को डाक्टर का टीका चढ़ा और आखिर मैत्रेयी की शादी हो ही गयी। मैत्रेयी सुसराल आ गयी। पति डा0 शर्मा सभ्यता के पुतले और आधुनिकता से ओतप्रोत। लेकिन समाज के चलते मैत्रेयी पर वही वदिंशे (जो मां लगाती चली आयी हैं) और मैत्रेयी शुरू से उन पर कैंची चलाती आयी है, कैसे सहे, कैसे रहे? बंधन स्वीकार नहीं, काट डाले। डा. तिलमिलाये, मगर सभ्यता और संस्कार में बंधे कुछ न कर सकें। आखिर मैत्रेयी की जीत हुयी।

मैत्रेयी पुष्पा की तीन बेटियाँ हैं डा. नम्रता, डा. मोहिता और डा. सुजाता, जिनमें से एक बेटी इनके समबन्धियों से गोद ली हुयी है। इनके पति डा. शर्मा वर्तमान समय में 'आई–सेन्टर' नोएडा में अपनी बेटी मोहिता के साथ फार्मास्यूटिकल्स में कार्यरत हैं। खट्टे मीठे अनुभवों से जूझती मैत्रेयी पुष्पा आज स्वंय एक उच्च कोटि की साहित्यकार है।

चाक, इदन्नमम्, अगनपाखी, झूलानट, अलमा कबूतरी, विज़न आदि उपन्यासों की बहुचर्चित लेखिका मैत्रेयी पुष्पा किसी परिचय की मोहताज नहीं। पुष्पा जी अनेकानेक पुरस्कारों से नवाजी जा चुकी हैं। 'इदन्नमम्' जैसे उत्कृष्ट व प्रसिद्ध उपन्यास पर ही अकेले इन्हें पांच पुरस्कार प्रदान किये जा चुके हैं। 1994 को शाश्वती संस्थान बैंग्लौर द्वारा नंजना गुड्डु – तिरूमालम्बा पुरस्कार, उ.प्र. साहित्य संस्थान द्वारा प्रेमचन्द सम्मान, म.प्र. साहित्य परिषद द्वारा वीरदेव सिंह देव पुरस्कार तथा वर्ष 1998 में साहित्कार – सम्मान व सन् 2000 में कथा – क्रम सम्मान। इनके अलावा प्रसिद्ध कहानी 'चिन्हार' पर हिन्दी अकादमी द्वारा साहित्य कृति सम्मान, 1995 को उ.प्र. साहित्य संस्थान की ओर से उपन्यास 'बेतवा बहती रही' को 'प्रेमचन्द सम्मान' तथा बहुचर्चित कथा पुरस्कार से सम्मानित ''फैसला'' कहानी पर 'वसुमती की चिट्ठी' नाम से टेलीफिल्म का प्रसारण भी हो चुका है। हाल ही में 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास पर इन्हें सार्क लिट्रेरी का पुरस्कार भी प्रदान किया गया है। साथ ही 'द हंगर प्रोजेक्ट' (पंचायती राज) का सराजनी नायडू पुरस्कार भी इन्हें प्रदान किया गया हैं। कई अन्य पुरस्कारों से नवाज़ी जा चुकीं मैत्रेयी पुष्पा अपने लेखन से हिन्दी साहित्य में सनसनी पैदा किये हैं।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के दौरान हिन्दी कथा – जगत में मैत्रेयी पुष्पा का आगमन एक 'घटना' की तरह हुआ। मध्यमवर्गीय शहरी ड्राइंगरूमों तक सीमित स्त्री लेखन से हटकर मैत्रेयी ने गाँव–गंवार की कहानियाँ लिख कर सबको चौंका दिया

और जैसा कि हर नई असुविधाजनक प्रवृत्ति के साथ होता है, उन्हे भी उपेक्षा, चुप्पी और कलाहीनता के आरोपों और मज़ाक उड़ाने की अनिवार्यताओं से गुजरना पड़ा, उन्हें 'ग्राम्य जीवन' की नहीं गंवार कथाकार की 'प्रतिष्ठा' दी गई और शायद यह वहीं 'गंवारू' जिद और ग्रामीण जिजीविषा ही थी कि मैत्रेयी एक के बाद एक इदन्नमम्, चाक, अल्मा कबूतरी, झूलानट, अगनपाखी, जैसे उपन्यास लिखती चली गयीं। कहानियाँ हों या उपन्यास न मैत्रेयी ने गांव का दामन छोड़ा, न गाँव ने मैत्रेयी का।

मैं स्वयं मैत्रेयी पुष्पा जी से व्यक्तिगत तौर पर दो–तीन बार मिल चुकी हूँ। बेहद सादे वस्त्र धारण करने वाली, मिलनसार, शालीन और सौम्य़ मुस्कान की मल्लिका मैत्रेयी पुष्पा हमें बेहद अपनी–अपनी सी लगीं। उनका इतना सहज व सरल व्यक्तित्व देखकर यह अंदाजा नहीं लगाया जा सकता कि यह वही 'बोल्ड लेखिका' हैं, जो अपने 'सशक्त–लेखन' के माध्यम से समाज को आईना दिखा रही हैं। इतने पुरस्कार और सम्मान प्राप्त करने के पश्चात् भी मैत्रेयी जी को घमण्ड छू भी न सका है। वे बेहद साधारण भारतीय महिला हैं, पर एक जागरूक और शक्ति सम्पन्न महिला।

२. मैत्रेयी पुष्पा की पारिवारिक एवं शैक्षणिक दीक्षा

पढ़ाई को जीवन का महत्वपूर्ण अंग मानने वाली मैत्रेयी की माता जी ने सदैव मैत्रेयी की पढ़ाई पर विशेष ध्यान दिया। उन्होनें स्वयं समाज की परवाह न करते हुये पति की मृत्यु के पश्चात् अपनी पढ़ाई पूरी कर 'सहायक विकास अधिकारी' का पद प्राप्त किया। उनके अनुसार – "पढ़ लिखकर आदमी ज्ञान की उस दुनिया में पहुँच जाता है, जहाँ वह अपने आपको देख सके कि माहौल में उसकी तस्वीर क्या है? बिना पढ़े मनुष्य का गधे जैसा जीवन।"[2]

मैत्रेयी बचपन से ही 'पढन चोर' लड़की थी। पढ़ाई में उनकी कोई रूचि न थी। वे स्कूल में मुकम्मल तौर पर गैर हाजिर रहती। वे अक्सर अपने सखी–सहेलियों के साथ आम तोड़ने पहुँच जाती। मैत्रेयी में बचपन से ही अपने–पराये, छोटे–बड़े का भेद न था। वे सबके संग घुलमिलकर रहती। पढ़ाई से बेजार लड़की मैत्रेयी। माताजी ने भरसक प्रयत्न किया कि वे मैत्रेयी को आदर्श शिक्षा दीक्षा दे सकें। अपनी नौकरी के चलते उन्होंने सबसे पहले मैत्रेयी को पढ़ने हेतु अलीगढ़ में समाज कल्याण बोर्ड की

---

[2] आत्मकथात्मक उपन्यास – (कस्तूरी कुंडल बसै) – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 30

संयोजिका के घर, फिर सम्बन्धियों के घर, तत्पश्चात परिचितों के घर भेजा, किन्तु दुर्भाग्यवश और जालिम पुरूष समाज के चलते उन्हें हर जगह कटु अनुभव मिले, जो उनके किशोरवय जीवन के अध्याय बन गये।

आखिरकार मैत्रेयी 'खिल्ली' गाँव के 'चिमन सिंह' के यहाँ पहुँची, जहाँ इन्हें भरपूर अपनत्व व प्यार के साथ स्वच्छन्द माहौल मिला। यहाँ पर इनका मानसिक विकास हुआ। यहीं रहकर उन्होनें डी.वी. कॉलेज, मोंठ से हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। इण्टर और बी.ए. 'गुरूकुल' से करने के पश्चात् एम.ए. करने के लिये मैत्रेयी झाँसी आ गयी। यहाँ पर वे शहर के 'बाडे' में किराये के कमरे में रही। मैत्रेयी जी का कमरा जादूनाथ के बाड़े में मन्दिर की ओर मुंह करता हुआ छत पर बना था। वहाँ से मैत्रेयी पढ़ाई के लिये 'बुन्देलखण्ड महाविद्यालय झाँसी' पैदल या कभी–कभार तांगे से आया जाया करती थीं। अब मैत्रेयी की गिनती 'होशियार' लोगों में होने लगी थी। उन्होंने अपने प्रश्नों के माध्यम से हलकान कर अंग्रेजी के प्रो. दरबारी साहब को पुनः नये सिरे पढ़ाने के लिये मजबूर कर दिया था।

मैत्रेयी की माँ 'कस्तूरी' एक अनुशासनप्रिय स्त्री थी, जिन्होंने कटु जीवन के यथार्थ को भोगा था। वे हर पल मैत्रेयी को सचेत रहने का पाठ पढ़ाया करती थीं तथा जीवन में कभी हार न मानने की दीक्षा भी मैत्रेयी ने अपनी माँ से ही हासिल की थी। जालिम समाज के चलते माँ ने मैत्रेयी को पग–पग पर आगाह कर उन्हें व्यवहारिक ज्ञान दिया क्योंकि मैत्रेयी की सबसे बड़ी समस्या कि वह 'लड़की' थी और लड़की होने की सजा वह जगह–जगह खाती आयी थी। इसी के चलते माँ ने हमेशा मैत्रेयी को सतर्क रहने की दीक्षा दी, साथ ही कहा कि अपने सिद्धान्त स्वयं बनाओ और उन्हें ऊँचे रखो। बनी बनायी परिपाटी पर सब चल लेते है, तुम अलग रास्ता बनाओ।

श्रृंगारप्रिय औरतों और मैत्रेयी का श्रृंगार के प्रति लगाव देखकर माताजी ने कहा कि – श्रृंगार औरत को गर्त में ढकेलता है। स्त्री के लिये वाल श्रृंगार बताये गये हैं मगर श्रृंगार परक संगत से हमेशा बचना चाहिए। क्योंकि ये मनुष्य की वुद्धि कुन्द कर देते है और वे श्रृंगार में ही उलझी रह जाती है। ये बाते आज बुरी लग सकती है लेकिन वहीं से तेरा भला होने वाला है। जेवर भी आदमी की बुरी निगाह को न्योता देते हैं। सामना करना सीखो, समाज से, जैसे हम विधवा औरतें करती हैं। यह बात गांठ बांध लो कि मर्द की जात से होशियार रहकर चलना होता है, भले वह साठ साल

का बूढ़ा हो। इस प्रकार वे समाज के प्रति मैत्रेयी को समय–समय पर सचेत करती रहीं।

असमय और पढ़ाई छोड़कर स्वयं के विवाह की जिद पर भी माता जी ने मैत्रेयी को समझाने का भरसक प्रयास किया कि "बेटी विवाह, वह खड्ड है जिसमें गिरकर औरत जीवन भर निकलने को छट–पटाती है और एक दिन खत्म हो जाती है। विवाह बुरी चीज नहीं। पर यह औरत के लिये ऐसे बंधन पैदा करता है, जो जीवन भर कसे रहते है।"[3] अपने को पहचानो। स्त्रीत्व माने स्त्री–शक्ति।

मैत्रेयी पुष्पा अपनी माँ के दिये सिद्धान्तों और उनकी पारिवारिक दीक्षा और अपनी शैक्षणिक शिक्षा के बल पर ही एक के बाद एक जीवन में कड़े मुकाबले करती चली आयी है।

३. मैत्रेयी पुष्पा की साहित्य के प्रति रूचि एवं उनका साहित्यिक परिवेश

आरम्भ से मैत्रेयी की रूचि साहित्य पढ़ने में थी। वे जहाँ कहीं हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित सामग्री पाती, अपने मस्तिष्क में जमा कर लेती हैं। बकौल मैत्रेयी – "जब मैं इण्टर में पढ़ती थी तो साहित्यिक लेख कॉलेज की मैगजीन के लिये लिखा करती थी। फिर मैने बी.ए. के दौरान अखबारो में भी छिटपुट लिखा। मुझे साहित्य पढ़ने का बेहद शौक था और इत्तफाक से मेरे बीहड़ गाँव में एक सरकारी लाइब्रेरी थी। जहाँ नियमित आने वाली पत्रिकाएं–नवनीत, धर्मयुग आदि मैं देख, पढ़ पाती थी। साथ ही वहाँ 'नीरज' और 'भवानी प्रसाद मिश्र' को भी पढ़ने का अवसर मिला। 'मैथिली शरण गुप्त' और 'वृन्दावनलाल वर्मा' तो झाँसी ही के थे, इसलिए उन्हें सुनने का मौका कई बार मिला। उस समय बुन्देलखण्ड कॉलेज झाँसी का एक मात्र महाविद्यालय था और जब कभी झाँसी में 'कवि सम्मेलन' होता, तो उसका आयोजन इसी कॉलेज में होता (मैत्रेयी जी ने स्वयं इसी कॉलेज में एम.ए. उत्तीर्ण किया है) इन कवि सम्मेलनों में 'नीरज', 'बच्चन' जैसे बड़े कवि आते, उनको देखती सुनती, तो अक्सर ऐसा लगता कि मैं भी कविताएँ लिखू, पर लिख नहीं पायी।

[3] कस्तूरी कुंडल बसै – (आत्मकथात्मक उपन्यास) – मैत्रेयी पुष्पा

मैत्रेयी जी को शायद याद नहीं कि एम.ए. पढ़ते हुये उन्होने अपने पास–पड़ोसियों के स्वार्थी क्रियाकलापों पर जन–जाग्रति लाने वाली एक कविता लिखी थी, जिसका शीर्षक 'बाड़े की औरतों के लिये' था। जो उनकी साहित्यिक रूचि और सौन्दर्य को दर्शाती है। साहित्य में रूचि के चलते उन्होंने एम.ए. में हिन्दी और अंग्रेजी दोनों साहित्यों को अपना विषय चुना। विषयों में विशेष रूचि के चलते वे हिन्दी के 'प्रो0 मित्तल' तथा अंग्रेजी के 'प्रो0 दरबारी साहब' को अनेकानेक प्रश्न कर अनुत्तरित कर दिया करती थी।

जहाँ तक मैत्रेयी के साहित्यिक परिवेश की बात है तो सदैव से ही उनकी माँ ने उन्हें पढ़ाई हेतु अग्रसर और प्रोत्साहित किया तथा पढ़ाई से सम्बन्धित किसी भी क्रियाकलाप में टोका नहीं, फिर वह चाहे मैत्रेयी का गाँव की सरकारी लाइब्रेरी में जाना हो या गोष्ठियों या सम्मेलनों में जाने का मामला। जिसके चलते ही मैत्रेयी साहित्य के इतने करीब आ सकीं और एक परिपक्व सोच की स्वामिनी बन सकीं। विवाह के पश्चात् हांलाकि इनके पति डा. शर्मा को इनके लेखन से कुछ भी लेना देना न था, फिर भी साहित्य के प्रति मैत्रेयी की रूचि, लेखन, या बाहर आने जाने को लेकर उन्होंने कभी अटकलें नहीं लगायी। जिस कारण मैत्रेयी एक स्वतन्त्र वातावरण पा अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान कर सकीं, तथा उच्चकोटि की साहित्कारों के रूप में अपनी पहचान बना सकीं।

४. मैत्रेयी पुष्पा जी का आरम्भिक लेखन एवं जीवन के प्रति दृष्टिकोण

मैत्रेयी जी ने इण्टर और बी.ए. में पढ़ते हुये अनके पत्र पत्रिकाओं में छुट–पुट लेख लिखे, लेकिन सर्वप्रथम लेखन की प्रेरणा उन्हें 11वीं. में पढ़ते समय मिली। बकौल मैत्रेयी – "जब में 11वीं में पढ़ती थी। तेरह–चौदह साल की रही होऊँगी। मेरे साथ मेरा एक सहपाठी 'राघव' भी पढ़ता था। जिससे एक दिन मेरी निबन्ध की कॉपी बदल गयी और जब घर आकर मैंने वह कॉपी खोलकर देखी तो बस देखती रह गयी। 'वर्षा ऋतु पर उसके द्वारा लिखा निबन्ध इतना अधिक प्रभावशाली और उत्कृष्ट था कि मैंने उसे बार–बार पढ़ा, और उसी क्षण लगा कि मुझे भी कुछ अच्छा लिखना चाहिए, लिख सकती हूँ।"[4]

---

[4] मैत्रेयी से साक्षात्कार – प्रीति यादव – 24 नवम्बर 2002, झाँसी

राघव के निबन्ध का इतना आकर्षण की मैत्रेयी राघव के प्रति कुछ ज्यादा ही आकर्षित हो गयी और जब राघव ने उन्हें एक कविता लिखकर दी, तो मैत्रेयी ने भी उसके प्रति मन ही मन एक सुन्दर कविता गढ़ी, लेकिन लिख न सकी। यहाँ से उनका मानसिक लेखन प्रारम्भ हो चुका था। आगे चलकर जब भी वे 'नीरज' 'बच्चन' या किसी बड़े साहित्कार को सुनती देखती तो उनका मन बार–बार लेखन की ओर उन्मुख होता है, लेकिन मैत्रेयी रह–रह जाती। लेकिन एक दिन एम.ए. में पढ़ते हुये मैत्रेयी की कलम पर उनके विचारों ने कब्जा कर लिया और स्वतः कविता फूट निकली।

'बाड़े की औरतों के लिये'

बाड़े के लोगों को पानी पिलाने वाली मातौन,
अपने कन्धें और बाँहों को
देख/जो पुष्ट हैं, मजबूती भी नाजुक भोली भेड़े मगर समझ रही हैं,
तू भूखी है उनके चौके में बने पराँठों पर गवाँ देगी अपनी जात
और जानती है यह भी कि तेरी जात के बिना
सूख जायेंगे उनके हलक
काछिन काकी!
तू इसलिए काकी है कि गोड़े क्यारियाँ, उगाए पौधे, खिलाए फूल
और ले नहीं अपने श्रम का दाम हक छोड़ने की एवज
पीले बारीक बोन चायना के कप में चाय मगर पौधे नहीं छोड़ने देगें अधिकार उगकर
बढ़कर और खिलकर करेंगे तेरे श्रम और हुनर की मुनादि
कौन रोक सकता है उन्हे?
वे पराँठे खाते नहीं, चाय पीते नहीं, बस गृहण करते हैं
तेरे हाथ का खाद–पानी।
ओ मेहतर बहू!
नगर एक दिन जानने वाला है, कि कितना जोर बांध रखा है
अपनी बाजुओं में तूने संडास के रास्ते ही सही, आ तो गई आंगन तक,
और चढ़ती जाती है छत पर कैसे छिपा पाएगा अब यह कि कोई और बाड़ा तुझे?

कविता 'शहर' स्थित 'बाडे' के लोगों के स्वार्थी क्रिया कलापों पर लिखी गयी थी। जिसका उद्देश्य निम्न जाति की औरतों को उनके श्रम व सम्मान से परिचित कराना था। 'कविता' समसामयिक पत्र, 'दैनिक जागृति' के 'रविवासरीय' अंक में छपी। जिसने बाड़े के लोगों में हलचल मचा दी। सभी मैत्रेयी के दुस्साहस से खफा थे। मैत्रेयी ने माफी के स्थान पर किराये का मकान खाली करना उचित समझा।

उसके पश्चात् विवाह होते ही पारिवारिक जिम्मेदारियाँ और तुंरत–फुरत हुये बच्चों के लालन पालन के बीच मैत्रेयी जी को कभी वक्त ही नहीं मिला कि वे लेखन के विषय में सोचें। बकौल मैत्रेयी – "विवाह बाद कभी–कभार कोई कविता–कहानी पढ़ती तो उसके समानान्तर मेरे भीतर भी एक कहानी बनती चलती, आधार न पाकर, झुंझलाकर मैंने पढ़ना छोड़ दिया और पूरी तरह गृहस्थी में रम गयी। फिर तो ऐसी स्थिति आयी कि जब कभी चिट्ठी लिखने बैठती तो हाथ कांपते।

जब बच्चे कुछ बड़े हुये, तो उनके लिये वाद–विवाद प्रतियोगिताओं के लिये कभी लेख तो कभी कहानी लिखती रही। मसलन, अपनी बड़ी बेटी नम्रता के लिये मैने अपने गांव के फकीर 'हवेली' के ऊपर कहानी लिखी। जिसे पढ़ वह 'फर्स्ट' आयी। ऐसे ही 'एज केयर इण्डिया' की तरफ से आयोजित प्रतियोगिता में नम्रता के लिये मैंने लेख लिखा था और वह अखिल भारतीय स्तर पर प्रथम आयी। बस इसी प्रकार बच्चों को ही लिखाती पढ़ाती रही, लेकिन एक दिन मेरी बड़ी बेटी नम्रता, जो एम.बी.बी.एस. कर चुकी थी, उसने मुझसे कहा – कि क्या आपको याद है, जब हम स्कूल में पढ़ते थे, उस समय आप हमारे लिये लिखती थी। आपके लिखे हुये पर हम तीनो फर्स्ट आती थी। आप अपने लिये क्यों नहीं लिखती और मुझे प्रेरित करने के लिये उसने स्मिता पाटिल की फिल्म का एक वीडियो कैसेट लगा दिया, जिसमें स्मिता पाटिल एक लेखिका होती है और कहा जब यह लिख सकती है तो आप क्यों नहीं लिख सकती हैं? संयोग से उसी वक्त (1989) 'साप्ताहिक हिन्तुस्तान' में 'प्रेम–कथा विशेषांक' में कहानियाँ आमन्त्रित की गयी थी। बच्चों की जिद पर मैने चौबीस पेज की एक प्रेम–कथा लिखी। अब समस्या थी उसे 'पेपर' तक पहुँचाने की। दिल्ली में पच्चीस साल रहने के बाद भी मैंने उस समय हिन्दुस्तान टाइम्स का ऑफिस नहीं देखा था। बच्चों के कहने पर मैं स्कूटर करके 'हिन्तुस्तान टाइम्स' पहुँची। वहाँ लोगों से पूंछती, कांपते–हाथ पैरों से 'हिमांशु जोशी' के कमरे में पहुँची और किसी तरह उन्हें अपनी कहानी पकड़ा दी। वह कहानी नहीं छपी। दो महीने बाद, जब मैं अपनी कहानी वापस

लेने पहुँची तो हिमांशु जोशी ने कहा – हमारे लिये छोटी कहाँनियाँ लिखो, साथ में उन्होंने यह भी जोड़ा कि इतनी लम्बी कहानी लिखती हो, तो उपन्यास लिखने की क्यों नहीं सोचती। फिर 8 अप्रैल 1990 को 'साप्ताहिक हिन्तुस्तान' में पहली बार मेरी कहानी छपी। गाँव की स्त्री पर केन्द्रित यह कहानी 'आक्षेप' नाम से प्रकाशित हुयी थी। बाद में मैने और कहानियाँ लिखीं, जो 'चिन्हार' शीर्षक कहानी संग्रह के अन्तर्गत प्रकाशित हुई। इसकी कई समीक्षाएँ आयीं, पाठकों की खूब चिट्ठियाँ मिलीं। यानि इस कथा संग्रह से मेरा भी 'चिन्हार' हो गया। इस तरह बच्चों ने मुझे लेखिका बना दिया। 'चिन्हार' के बाद मेरा उपन्यास 'बेतबा बहती रही' आया। फिर 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' से लौटी उसी चौबीस पेज की कथा पर मैंने 'इदन्नमम' उपन्यास लिखा, और फिर लिखती चली गयी।

इस प्रकार मैत्रेयी जी का आरम्भिक लेखन प्रारम्भ हुआ और उसके बाद उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। एक के बाद एक बुन्देलखण्डी भाषा और परिवेश को लेकर वे कहानियाँ और उपन्यास लिखती आयी हैं। उपन्यासों का प्रमुख आधार 'ग्रामीण नारियाँ' ही हैं। उनका नारी और नारी जीवन के प्रति क्या दृष्टिकोण है? यह उनके उपन्यासों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

५. उपन्यास साहित्य की परम्परा एवं परवर्ती साहित्य

साहित्य के विकास की कहानी उतनी प्राचीन है जितनी मानव सभ्यता। जब मानव सभ्यता अपने शिशुकाल में होगी, तब संभव है कि मनुष्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति कविता, कहानी, उपन्यास में व्यक्त करने में सक्षम नहीं रहा हो, परन्तु जैसे–जैसे मनुष्य अपने भावों को भाषागत रूप में व्यक्त करने में सक्षम होता गया, वैसे–वैसे साहित्य का विकास हुआ। प्रारम्भ में मानव प्राकृतिक शक्तियों से प्रभावित रहा है। अनायास ही उसने, अग्नि, वरूण, जल आदि के यशोगान के रूप में के रूप में उन्हें अपनी काव्यमाला से सुशोभित किया है। विभिन्न वेदों आदि का आविर्भाव उसी प्रकार हुआ है और यही साहित्य के आदि प्रमाण है।

वेदों के पश्चात् साहित्य की जो अखण्ड धारा प्रवाहित हुयी वह आज तक बिना किसी बाधा के गतिमान है। साहित्य रूपी इस पयस्विनी में भिन्न–भिन्न साहित्यकार उत्पन्न हुये। जिनके साहित्य अध्ययन के पश्चात् आज का पाठक धन्य हुआ है।

५. उपन्यास साहित्य परम्परा एवं परवर्ती साहित्य

उद्‌भव :-

हिन्दी में उपन्यास नामक गद्य की विधा का वर्तमान रूप में प्रादुर्भाव आधुनिक काल से ही माना जा सकता है। 'उपन्यास' नामक गद्य–विधा की विद्वानों ने अनेक परिभाषायें प्रस्तुत की हैं। हमें प्रेचमन्द की परिभाषा सर्वाधिक उपयुक्त लगी। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेचमन्द ने उपन्यास के सम्बन्ध में अपनी सम्मति इन शब्दों में प्रकट की है– "मै उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना ही उपन्यास का तत्व है।" जवाहर लाल नेहरू ने ठीक ही लिखा है– "महान उपन्यास हमेशा आदमी को सोचने की प्रेरणा देते है, क्योंकि वे जिन्दगी की ऐसी तस्वीरें है, जो बड़े दिमागों ने खींची हैं।

प्राचीन उपन्यास साहित्य

हिन्दी में जब उपन्यास साहित्य का प्रारम्भ हुआ तब तक पाश्चात्य साहित्य में इसका पूर्ण रूपेण विकास हो चुका था और अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से बंगला में भी धड़ाधड़ उपन्यास निकल रहे थे। हिन्दी में यह प्रवृत्ति वहीं से आयी। 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण सन् 1873 ई0 में सबसे पहले गदाधर सिंह ने बंगला के दो उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया। भारतेन्दु युग में बंगला के बहुत से उपन्यास का हिन्दी में अनुवाद हुआ। गदाधर सिंह ने बंग विजेता और दुर्गेश नन्दिनी, राधाकृष्णदास ने स्वर्णलता, मरता क्या न करता, कार्तिक प्रसाद खत्री ने इला, प्रमीला, जया, मधु मालती इत्यादि, राधाचरण गोस्वामी ने जावित्री मृण्मयी, बिरजा इत्यादि बंग भाषा के उपन्यासों के अनुवाद किये। यह अनुवादों की परम्परा 20 वीं शताब्दी के प्रथम चरण तक अबाध रूप से चलती रहीं।

प्रथम उत्थान (सन् १८५० से १९०० तक)

हिन्दी के मौलिक उपन्यासों का उद्‌भव भी भारतेन्दु युग में ही हो गया था। श्रद्धा राम फुल्लौरी का "भाग्यवती" उपन्यास हिन्दी का प्रथम उपन्यास है, जिसका महत्व शुक्ल जी नहीं आँक सके। आचार्य शुक्ल ने लाला श्री निवास दास के "परीक्षा गुरू" को हिन्दी में अंग्रेजी ढ़ग का पहला उपन्यास कहा है। इसमें बड़ी साधारण सी कथा है – एक अमीर के बिगड़ने और अपने एक सच्चे मित्र की सहायता से सुधरने

की घटना है। इसमें नैतिक उपदेश की बहुलता है। आचार्य डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के "पूर्ण प्रकाश और चन्द्र प्रभा" को हिन्दी का सर्वप्रथम उपन्यास मानते है। इसमें भी लेखक का उद्देश्य वृद्ध विवाह के दोष दिखाकर कन्याओं की शिक्षा का समर्थन है। भारतेन्दु काल के अन्य बहुत से लेखकों ने भी उपन्यास साहित्य की अभिवृद्धि की। इनमें बाबू राधाकृष्ण दास के 'निःसहाय हिन्दू' और पं0 बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान' दो उपन्यास विशेष प्रसिद्ध हुए। इस युग के उपन्यासों की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति नीति एवं उपदेश की अधिकता है।

द्वितीय उत्थान (सन् १९०० से १९१८ तक)

19वीं शताब्दी के तीन कथाकारों में प्रथम देवकी नन्दन खत्री (1861–1913) हैं। इनके उपन्यास ये है – चन्द्रकान्ता, नरेन्द्र माहिनी, वीरेन्द्र वीर, कुसुम कुमारी, काजर की कोठरी, चन्द्रकान्ता सन्तति गुप्त गोदना और भूतनाथ (छःभाग)। पं0 किशोरी लाल गोस्वामी (1865–1932) के प्रणयिनी परिणय, लवंगलता, जिन्दे की लाश, लीलावती, राजकुमार, लखनऊ की कब्र, अंगूठी का नगीना, रंगमहल के हलाहल, तारा आदि हैं। तीसरे कथाकार गोपालराम गहमरी (1866–1946) के चतुर चंचला, गुप्तचर, डबल जासूसी, जमुना का खून, चक्करदार चोर, बेकसूर फाँसी, घड़े में थाली, जासूस की बुद्धि, मेरी और मेरीना, खूनी की खोज आदि उपन्यास हैं। गहमरी ने मनुष्य की अपराध वृत्ति को अपने उपन्यास का मूल आधार बनाया है। उनके उपन्यासों के मूल विषय हैं– चोरी, डकैती, हत्या – विशेष रूप से हत्याएं। लेखक ने ग्राम, नगर और महानगर सभी स्थानों से सनसनीपूर्ण घटनाएं जुटाई हैं।

द्विवेदी युग में हिन्दी उपन्यास में ऐय्यारी और तिलस्मी उपन्यासों का प्राधान्य हो गया। आचार्य डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में इन उपन्यासों की प्रवृत्तियां इस प्रकार है–"इनमें अद्भुत और असाधारण घटनाओं की ऐसी रेल–पेल है कि पाठक का चित्त धक्का खा–खाकर आगे बढ़ता जाता है। उसे कथानक के गठन और चरित्र के विकास की बात याद ही नहीं रहती है। अति प्राकृत, अद्भुत और असाधारण घटनाओं से आश्चर्यजनक परिस्थितियों का निर्माण, तिलस्माती कथानकों का प्रधान आकर्षण था।[5]

---

[5] हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ–डॉ0 जय किशन प्रसाद

देवकी नन्दन खत्री इसी परम्परा के उद्घाटक थे। इनके चन्द्रकान्ता और चन्द्रकान्ता सन्तति उनके दिनों बहुत लोकप्रिय थे। इनके उपन्यास राजपूती आदर्श के साथ पतनशील राजपूती जीवन के विराट चित्र को प्रस्तुत करते है, जो 12वीं शती से लेकर 19वीं शती तक कभी मलिन नहीं हुआ। उनके उपन्यासों में अश्लीलता कहीं नहीं पायी जाती। उनके राजकुमार राजकुमरियां विलास की पुतली नहीं, सुन्दर गुण सम्पन्न, आचारवान और चरित्रवान प्राणी हैं। शुक्ल जी ने इस घटना वैचिन्र्यपूर्ण किस्सों में जीवन के विविध पक्षों के चित्रण का प्रयत्न न देखकर इन्हें साहित्य कोटि में नहीं माना है। दूसरे मौलिक उपन्यासकार किशोरी लाल गोस्वामी हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में विभिन्न वर्गो के विभिन्न स्वभाव के व्यक्तियों का चित्रण सफलतापूर्वक किया है। इन्हें अपने चारों ओर से जीवन का अनुभव अच्छा था। इन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक विषय का वासना के रंग में रंगा चित्र प्रस्तुत किया जो विशेष उच्चकोटि का नहीं हैं। दूसरे इनकी शैली पूर्णतया उर्दू शैली हो गई, इस दृष्टि से इनका महत्व कम हो जाता है। इसी काल के प्रसिद्ध कवि अयोध्या सिंह उपाध्याय और बाबू ब्रज नन्दन सहाय ने भी उपन्यास रचना की। उपाध्याय जी की रचनाओं में "ठेठ हिन्दी का ठाठ" है और ब्रज नन्दन सहाय के उपन्यासों में भाव–प्रधानता। इस काल के, मौलिक उपन्यासों का लक्ष्य केवल मनोरंजन ही है। उस समय का पाठक उपन्यास से यह आशा नहीं करता था कि वह कोई जीवन दर्शन देकर उसका पथ–प्रदर्शन करे। उपन्यासों को तो वह केवल इसलिए पढ़ता था कि कुछ समय के लिए यथार्थ जीवन की कटुताओं को भूल सकें और अपने आपको मुक्त पंछी सा विचरता हुआ पाए। हिन्दी उपन्यासों के प्रारम्भिक काल में जो अनुवाद की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है, उसका विकास इस युग में भी पर्याप्त हुआ। इस युग में उर्दू, अंग्रेजी और बंगला के श्रेष्ठ सामाजिक उपन्यासों का अनुवाद हुआ। इस प्रकार इस उत्थान में अनुवादित उपन्यासों के अतिरिक्त जो मौलिक उपन्यासों की रचना हुई, वे चार प्रकार के है – तिलस्मी, साहसिक, जासूसी एवं रोमानी।

प्रेमचन्द पूर्व युग (१८७५-१९१८)

प्रेचमन्द पूर्व युग के उपन्यासकारों में अग्रांकित उपन्यासकार प्रमुख है– श्रद्धाराम फिल्लौरी, बालकृष्ण, भट्ट, लाला श्री निवासदास ठाकुर, जगमोहन सिंह, राधा चरण

गोस्वामी, पं0 अम्बिका दत्त व्यास, देवकी नन्दन खत्री, मेहता लज्जाराम शर्मा, राधाकृष्ण दास, किशोरी लाल गोस्वामी, अयोध्या सिंह उपाध्याय तथा गोपाल राम गहमरी।

प्रेचमन्द पूर्व युग में उपन्यास लिखे गए, उनके सम्बन्ध में विचार–विनिमय हुआ और बहुत सी पत्रिकाएं भी उनके प्रचार में निकलने लगीं। उस युग में उपन्यास लोकप्रिय विधा थी और उसमें समय यापन और चेतना का परिष्कार लक्ष्य था। उस युग की प्रसिद्ध पत्र–पत्रिकाएं ये है – देवकी नन्दन खत्री द्वारा सम्पादित उपन्यास लहरी, किशोरी लाल गोस्वामी की उपन्यास, गोपाल राम गहमरी की जासूस, जयराम दास गुप्ता का उपन्यास 'बहार' तथा राम लाल वर्मा की 'दरोगा दफ्तर'। इस युग में तिलस्म की प्रवृत्ति फारसी से आई। फारसी से तिलस्म उर्दू में आया और देवकी नन्दन खत्री ने उर्दू से लेकर उसे हिन्दी में प्रयुक्त किया।

तृतीय उत्थान प्रेमचन्द्र युग'(सन् १९१८ से १९३६ तक)

तृतीय उत्थान में उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द का प्रादुर्भाव हुआ और उपन्यास साहित्य का सर्वांगीण विकास हुआ। अब तक उपन्यास निर्माण का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन था, प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम यथार्थ की भूमिका पर चरित्र–चित्रण की ओर पूर्ण रूपेण ध्यान दिया और मानव जीवन और मुख्यतया कृषक वर्ग एवं राष्ट्रीय आन्दोलन को अपने उपन्यासों में बड़ी संवेदनशील शैली में प्रदर्शित किया। इसलिए उन्हें कुछ परिस्थित–चित्रण भी करने पड़े, जो बड़े सजीव एवं यथार्थ हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता सरलता एवं अकृत्रिमता ही है। वस्तुतः हिन्दी उपन्यासों में यथार्थवादी विचारधारा का उचित प्रकाश प्रेमचन्द से ही प्रारम्भ होता है, वैसे तो भारतेन्दु युग में भी यर्थाथ की प्रवृत्ति थी, किन्तु इस समय इसका मूल राष्ट्रीय, चेतना थी और जीवन की विविध परिस्थितियाँ। इसीलिए इस युग की यथार्थनुभूति में वेदना की विवृत्ति है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रेमचन्द का महत्व बड़े ही मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया –"प्रेमचन्द शताब्दियों से पददलित, अपमानित और निष्पेषित कृषकों की आवाज थे, पर्दे में कैद, पद–पद पर लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे, गरीब और बेकसी के महत्व के प्रचारक थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–विचार, भाषा, भाव, रहन–सहन, आशा–आकांक्षा, दुःख–सुख और सूझ–बूझ जानना चाहते हैं तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।

झोपड़ियों से लेकर महलों तक, खोमचे वालो से लेकर बैकों तक, गांव से धारा–सभाओं तक आपको इतने कौशलपूर्ण प्रमाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता।''

इसलिए प्रेमचन्द उपन्यास सम्राट के गौरवपूर्ण आसन पर बैठ सकते हैं।

जय शंकर प्रसाद के उपन्यास

इस उत्थान के दूसरे बड़े लेखक जयशंकर प्रसाद हैं, जो अपने 'कंकाल' मे समाज के वर्तमान नर–कंकाल का चित्र उतारने में सफल हुए हैं। इस उपन्यास में प्रसाद जी ने भाव प्रधान एवं कल्पनाप्रवण शैली का प्रयोग करके नई सम्भावनाओं को जन्म दिया। इस उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक समस्याओं को हल करने की चेष्टा की गयी है। प्रसाद जी की तितली में लेखक की नारी भावना का प्रकाशन है। 'तितली' मे प्रसाद जी ने मुंशी प्रेमचन्द की भांति ग्रामीण जीवन और समस्याओं की ओर ध्यान दिया है।

'इरावती' जयशंकर प्रसाद का ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें भारतीय संस्कृति के उज्जवल रूप का चित्रण है। 'इरावती' सांस्कृतिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती है। प्रसाद जी के उपन्यासों में भारत के नव निर्माण का प्रयत्न है। उसमें मानव के लिए कर्मठता और साहस का संदेश है। देश के उज्जवल भविष्य के प्रति लेखक की पूर्ण आस्था है। इस युग में प्रेचमन्द की भांति ही कुछ अन्य सामाजिक उपन्यासकार भी हुए जिनमें पं0 विश्वम्भरनाथ कौशिक (माँ और भिखारिणी के लेखक) श्री जैनेन्द्र कुमार (तपोभूमि, सुनीता, परख, कल्याणी आदि के लेखक) प्रभृति प्रमुख हैं। इनके उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक स्थिति के चित्र मिलते हैं।

इस युग में वृन्दावन लाल वर्मा अपनी ऐतिहासिकता के साथ उपन्यास क्षेत्र में नई सम्भावनाओं को लेकर प्रकट हुए। वर्मा जी ने अपने उपन्यास में नई उद्‌भावनाओं के साथ प्राचीन खण्डहर का मेल करके नये ढ़ंग से इतिहास और साहित्य का समन्वय प्रस्तुत किया हैं। इनसे बहुत से उपन्यास है जिनमें 'झाँसी की रानी', गढ़ कुण्ढार, विराटा की पद्‌मिनी और मृगनयनी प्रमुख हैं। इन सभी उपन्यासों में लेखक का दृष्टिकोण पूर्णतया समाज मुख्यापेक्षी रहता है।

चतुर्थ उत्थान (विविध रूपी विकास)(१९३६ से आज तक)

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास – हिन्दी उपन्यास साहित्य में जैनेन्द्र को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति में बड़ी सफलता मिली है। इनके उपरान्त तो इस प्रकार के वैयक्तिक अध्ययन की परम्परा ही चल पड़ी। बाबू गुलाबराय जी ने इस श्रेणी में उपन्यासों की विशेषताएँ निरूपित करते हुये लिखा है– "आधुनिक उपन्यासों में मनुष्य के वैयक्तिक इतिहास के आधार पर उसके अवचेतन मन की कुंजी से उसके चारित्रिक रहस्यों का उद्घाटन किया जाता है। व्यक्ति की दुर्बलताएं, सामाजिक और मानसिक कारणों के आलोक में मनोवैज्ञानिक अध्ययन का विषय बन गई हैं।[6] मनोविश्लेषण प्रधान उपन्यासकारों में जैनेन्द्र जी के अतिरिक्त भगवती प्रसाद बाजपेयी, इलाचन्द्र जोशी, और नरोत्तम नागर प्रमुख है। इन सब में इलाचन्द्र जोशी अपनी गहरी मनोवैज्ञानिक दृष्टि एवं फ्रायडीयन प्रभाव के लिए प्रसिद्ध है। इन्होनें मनोवैज्ञानिक की भांति मन के चेतन और अवचेतन स्तरों को स्वीकार करके, अपने उपन्यासों में प्रदर्शित किया है।

प्रेमचन्द के उपरान्त हिन्दी उपन्यास किसी एक निश्चित दिशा की ओर अग्रसर नहीं हुआ अपितु विविध धाराएं अनेक दिशाओं की ओर प्रवाहित हुई। विषय की दृष्टि से यदि हम प्रेचमन्दोत्तर उपन्यास का वर्गीकरण करें तो निम्न वर्ग बनाए जा सकते है।

1. मनोविश्लेषणवादी उपन्यास
2. साम्यवादी (प्रगतिवादी) उपन्यास
3. ऐतिहासिक उपन्यास
4. आंचलिक उपन्यास
5. प्रयोगवादी उपन्यास

1. मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारों में पहले उपरोक्त इलाचन्द्र जोशी है दूसरे जैनेन्द्र, तीसरे अज्ञेय हैं, जिनका उल्लेखनीय योगदान है। जैनेन्द्र ने परख (1929), सुनीता (1935), त्यागपत्र (1937) आदि के द्वारा हिन्दी उपन्यास को एक नयी दिशा प्रदान की। इन उपन्यासों में विभन्न पात्रों के मन की उलझनों, गुत्थियों एवं शंकाओं का निरूपण कथा के माध्यम से किया गया है।

[6] हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ–डा0 जय किशन प्रसाद

अज्ञेय कृत शेखर एक जीवनी (1941), नदी के द्वीप (1951) और अपने–अपने अजनबी का महत्वपूर्ण स्थान है। अज्ञेय में मनोविश्लेषण की गहन क्षमता के साथ–साथ सूक्ष्म सौन्दर्य बोध, कला के प्रति ईमानदार चेतना विद्यमान है। 'शेखर एक जीवनी' वैयक्तिक मनो विज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र में एक महत्ती उपलब्धि मानी जा सकती है।

2. साम्यवादी उपन्यास वे हैं, जिनके मार्क्सवादी विचारधारा का आधार ग्रहण करके कथानंक का ताना–बाना बुना गया है। यशपाल, राहुल सांस्कृत्यायन, रांगेयराघव, भैरव प्रसाद गुप्त और अमृतराय इसी कोटि के उपन्यासकार है। यशपाल ने पार्टी कामरेड (1945), देशद्रोही (1943), अमिता (1946), दिव्या (1945), झूठा सच (1957) आदि उपन्यासों में अपने मार्क्सवादी विचारों को अभिव्यक्ति दी है।

इस युग के दो अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास लेखक हैं, भगवती चरण वर्मा और अमृत लाल नागर। वर्मा जी के कई उपन्यास लिखे– चित्रलेखा (1934), भूले बिसरे चित्र, टेढ़े–मेढ़े रास्ते, सामर्थ्य और सीता तथा सबहिं नचावत राम गोंसाई। वर्मा जी के इन उपन्यासों में समकालीन राजनीति एवं समाज से कथानक लिये गए है। उपन्यासकार ने अपनी पैनी दृष्टि से संयुक्त परिवार की समस्या, शोषण, सत्याग्रह, मिल–मालिकों की दुरंगी नीति, पुलिस की धांधली आदि का सटीक चित्रण किया है।

अमृतलाल नागर ने सेठ बांकेमल, अमृत और विष, बूंद और समुद्र, शतरंज के मोहरे, महाकाल, मानस का हंस आदि अनेक उपन्यासों की रचना की है। बूंद और समुद्र उनका श्रेष्ठतम् उपन्यास है। जिसमें भारतीय समाज की रीति–नीति, आचार–विचार, जीवन दृष्टि, मर्यादाओं एवं मान्यताओं का चित्रण कथानक के द्वारा किया गया है। 'मानस का हंस, उनका एक जीवनीपरक उपन्यास है। जिसमें गोस्वामी तुलसीदास का जीवन वृतान्त प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार 'खंजन नयन' में सूरदास के जीवन को कथानक के रूप में बांधकर जीवनी देने का प्रयास किया गया है।

3. ऐतिहासिक उपन्यासकारों में बाबू वृन्दावन लाल वर्मा मुख्य हैं। उनके अतिरिक्त चतुरसेन शास्त्री और हजारी प्रसाद द्विवेदी के नाम इस वर्ग में रखे जा सकते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'बाण भट्ट की आत्मकथा', चारू चन्द्रलेखा,

पुनर्नवा, और अथरैक्व आख्यान, में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय करते हुये रोचक उपन्यास की रचना की। राहुल सांस्कृत्यायन 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे तथा रांगेय राधव ने 'मुर्दों का टीला' नामक ऐतिहासिक उपन्यास में मोहन जोदड़ो के गणतन्त्र का चित्रण किया है।

4. आंचलिक उपन्यास स्वतन्त्रयोत्तर उपन्यासों में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। वे उपन्यास जिनमें किसी विशेष अंचल का चित्रण कथानक के द्वारा किया जाता है, इस वर्ग में आते है। हिन्दी के आंचलिक उपन्याकारों में सर्वप्रथम व सर्व प्रमुख है फणीश्वर नाथ रेणु। जिन्होंने परिकथा (1954) और 'परती परिकथा' (1957) नामक उपन्यासों में बिहार के ग्रामीण अंचल के रहन–सहन, रीति–रिवाज, राजनीतिक आस्थाओं आदि का विशुद्ध चित्रण किया है। इनके अतिरिक्त नार्गाजुन (बलचनमा, बाबा बटेसरनाथ, दुख मोचन, वरूण के बेटे, उदय शंकर भट्ट, (सागर की लहरे और मनुष्य), रांगेय राघव (कब तक पुकारूँ) आदि हैं। ग्रामीण परिवेश को आधार बनाकर भी कुछ उपन्यास लिखे गये हैं। इनमें आधुनिकीकरण के कारण बदलते ग्रामीण समाज का चित्रण किया गया है। इसी संदर्भ में उन उपन्यासों को भी ले सकते है जिनमें व्यंगात्मक लहजे में भारतीय समाज के समग्र रूप को चित्रित करने का प्रयास किया गया है।

5. प्रयोगवादी उपन्यास या आधुनिक बोध के उपन्यासों को नवीनतम् धारा के उपन्यास कहा जा सकता है। औद्योगीकरण, बदलते हुए परिवेश, भ्रष्ट व्यवस्था, महानगरीय जीवन और यान्त्रिक सभ्यता के परिणाम का आज जीवन में वथव, विश्रृखलत, अकेलापन, निराशा आदि घर कर गयी है। उपन्यासकारों की दृष्टि भी इस ओर गयी और उन्होंने अनेक उपन्यासों में इन्हें अभिव्यक्ति प्रदान की। मोहन राकेश के 'न आने वाला कल (1968) तथा अंधेरे बन्द कमरे (1916) ऐसे ही उपन्यास हैं। राजेन्द्र यादव का 'उखड़े हुए लोग' में टूटते हुए मानव का चित्रण है। मन्नू भण्डारी ने 'आपका बंटी' में तलाकशुदा दम्पत्ति के बच्चों पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव का निरूपण किया है– तो नरेश मेहता के 'यह पथ बन्धु था' में अकेलेपन एवं अजनबीपन का बोध कराया गया।

उषा प्रियबंदा के उपन्यास "रूकोगी नहीं राधिका' एवं 'पचपन खम्भे लाल दीवारे' में भी आधुनिकता बोध का गहरा रूप उभरा है। भीष्म साहनी कृत 'तमस'

मनोहर–श्याम जोशी कृत 'कुरू कुरू स्वाहा' धरमवीर भारती कृत 'सूरज का सातवां घोड़ा', गिरधर गोपाल कृत 'चांदनी के खण्डहर' भी नवीन शिल्प को दृष्टि से उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

उक्त उपन्यासों के अतिरिक्त भी सैकड़ो उपन्यासकार नए–नए कथानकों की कल्पना का सुन्दर उपन्यास लिख रहें है।

आधुनिकता बोध से उत्पन्न अकेलेपन अजनबीयत, यौन विसंगतियां, विद्रोह, कुण्ठा एवं मूल्यों का ह्रास आज के उपन्यास के विषय है। आधुनिक उपन्यासों में विषय वैविध्य के साथ–साथ शैलियों के विभिन्न रूप दिखाई पड़ते हैं। आत्मकथात्मक शैली, डायरी शैली, पत्र शैली, वर्णनात्मक शैली, संवाद शैली, आदि विविध शैलियों में उपन्यास लिखे जा रहे हैं। आज उपन्यास का कथ्य जीवन के अधिक निकट है– उसमें यथार्थ का पुट अधिक है। मानवीय सम्बन्धों के बदलते रूप को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

आज नए मूल्य तलाशने का प्रयास और नैतिकता के प्राचीन मानदण्डों की अवहेलना हो रही है। सैक्स एवं रोमानियत इन उपन्यासों में अधिक से अधिक स्थान पर रहा है। आज के उपन्यास ने चरित्र तो दिये है किन्तु जीवन्त पात्र अर्थात होरी जैसा पात्र, देने में वह सफल नहीं रहा हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि मानव को उपन्यासों में सम्पूर्ण रूप में प्रस्तुत किया जाए और उसे जीवन के यथार्थ से जोड़ा जाए, नहीं तो वह मात्र 'गल्प' बनकर रह जाएगा। हालांकि हिन्दी उपन्यास साहित्य ने बहुत कम समय में काफी प्रगति की है, तथापि यह आशा की जा सकती है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य का भविष्य सुनहरा है।

६. उपन्यास साहित्य की बदलती रचनाधर्मिता एवं मैत्रेयी उपन्यास साहित्य संसार

समय गतिमान है। आज युग बदला, तन्त्र बदला, समाज बदला, चहुँ ओर परिवर्तन विद्यमान है। ऐसे में साहित्य में परिवर्तन भी आवश्यक है। स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी उपन्यासों में नारी को घर की चाहार दीवारी में सीमित रखकर समाज में उसकी स्थिति

पुरूषमुखापेक्षी के रूप में चित्रित की गयी है। चूंकि समय परिवर्तनशील है अतः नारी की स्थितियाँ भी एक सी नहीं रहीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। सम्प्रति अनेक सामाजिक रूढ़ियाँ, परम्परायें और मान्यतायें विखण्डित हो रही हैं। उनका स्थान नई मान्यतायें ले रही है। नारी उपन्यासकारों ने विशेषकर समकालीन पारिवारिक तथा सामाजिक यथार्थ को नारी की विभिन्न मनोदशाओं, समस्याओं, आशाओं निराशाओं, विवशताओं, तनावों, विसंगतियों, न्यूनताओं, अनाचारो तथा स्वतन्त्रता के नाम पर स्वच्छन्दता की ओर उड़ानों को भी अपना कथ्य बनाया है, जिसे पुरूष उपन्यासकारों की तुलना में अधिक मार्मिक स्वानुभूतिमय तथा तन्मय रूप में विमर्शित किया गया है यदि हम लेखकीय मनीषा को लें तो समस्त उपन्यासकारों की रचना धर्मिता में परिवर्तन दर्शनीय है।

परिवर्तन प्यस्विनी की लोल लहरों ने अतीत को वर्तमान में बदल दिया और वर्तमान को अतीत में बदल देंगी। काल प्रवाह नित नूतनता के अभिनन्दन की परिस्थितियाँ सृजित करता है। यह परिवर्तन सार्वभौमिक है। भारत की विविध परिस्थतियों में भी परिवर्तन आया प्राचीन रीति–रिवाजों, विश्वासों तथा परम्पराओं को हटाकर समाज में उत्तरोत्तर वैज्ञानिक और तर्कपूर्ण स्थापनायें स्वीकृत हो रही है। प्रतिगामी और पुनरूत्थानवादी तथा प्रगतिशील सोच के बीच संघर्ष भी समकालीन यथार्थ है। यह संघर्ष विषमताओं से ओत–प्रोत होकर विभिन्न भागों में प्रवाहमान सामाजिक धाराओं के रूप में स्पष्ट दिखाई देता है। समकालीन नारी पर इन बदलती और संकृमित परिस्थितियों का प्रभाव अवश्यम्भावी था। आधुनिक नारी उपन्यासकारों में नवीनता और प्राचीनता के इस संधिकाल को चित्रित करने की चेष्टा की है। विशेषरूप से सामाजिक और पारिवारिक रूप से नारी मनोदशा को साकल्य रूप से अंकित करने का प्रयास समकालीन नारी उपन्यासों में परिलक्षित होता है। जिससे स्पष्ट है कि परिवर्तन समाज में ही नहीं परिवर्तन साहित्य में भी है और साहित्य समाज का दर्पण है।

परिवार और समाज से संदर्भित नारी की मानसिकता इन लेखक, लेखिकाओं के उपन्यासों में अनेक स्तरों पर रूपायित हुई है जैसे–नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी की समस्या, पारिवारिक महत्व का आधार आर्थिक दाम्पत्य जीवन में असंतोष होने पर परिवार के प्रति विरक्ति तथा सम्मिलित परिवार की उपेक्षा व्यक्तिगत परिवार में सुख

की कल्पना। बदलती सामाजिक परम्पराओं एवं मान्यताओं की श्रृंखला में संयुक्त परिवार का विघटन भी एक कड़ी रही है। शिक्षा, राजनीति, स्वतन्त्र अर्जन तथा सामाजिक स्वतन्त्रता के क्षेत्र में जबसे नारी व्यक्तित्व की स्वतन्त्र सत्ता को लेकर प्रश्न उठने लगे हैं, तभी से पारिवारिक संगठनों के प्रति नारी के दृष्टिकोण में परिवर्तन दिखाई देने लगा है। अब वह संयुक्त परिवार में रहना अपने समुन्नत विकास में बाधा ग्रस्त मानती है। इसका कारण नई और पुरानी पीढ़ी का टकराव कहा जा सकता है। अनुसन्ध्य उपन्यासों में, यदा–कदा पारिवारिक समस्याओं के परिणाम स्वरूप निर्मित नारी मानसिकता का प्रभावशाली चित्रण मिलता है।

आधुनिक युग में दाम्पत्य जीवन की विषमताओं को लेकर परिवार के प्रति नारी की मानसिकता में अन्तर आया है। पति–उपेक्षा, अधिकार भावना, अविश्वास, कलह, नये और पुराने विचारों का संघर्ष, प्रति वृत का एकांगी आदर्श आदि इस दिशा में महत्वपूर्ण कारण कहे जा सकते हैं। जो परिवार के प्रति नारी असहिष्णुता की भावना भरते हैं।

नव चेतना की स्फूर्ति में नारी ने यह अनुभव किया कि आर्थिक आधार पर पुरूष उसे पांव की जूती, अनुचरी कहता है। पुरूष कमाता है और वह बैठकर खाती है। इसी आधार पर उसे पुरूष की अनेक रूपों में गुलामी करनी पड़ती है। अतः वह अपनी अर्जित शिक्षा व स्वतन्त्रता के बल पर आर्थिक क्षेत्र में भी स्वयं को स्वतन्त्र इकाई घोषित करने में पीछे रहने को तैयार नहीं। एक ओर तो पुरूष की दासता से मुक्ति की भावना ने नारी को आर्थिक स्वतन्त्रता की ओर उन्मुख किया। दूसरे सामाजिक विषमताओं के विरोध में उसने इस क्षेत्र में स्वयं को सक्षम बनाने की दिशा में कदम बढ़ाया।

यदि महिला उपन्यासकारों को हम लें, तो उनकी बदलती रचना धर्मिता को हम एक क्रमबद्धता में बांट सकते हैं।

सर्वप्रथम उषा देवी मित्रा ने प्रेम के उदात्त स्वरूप को अपना कथ्य बनाया है। सम्मोहित, नष्ट नीड़, जीवन की मुस्कान आदि अनेक कृतियाँ उषा देवी मित्रा की एक के बाद एक प्रकीर्ण होती प्रकाश किरणें हैं।

उषा प्रिंयम्बदा ने आज के नारी जीवन की विसंगतियों को सोचा समझा और औपन्यासिक कृतियों में उन्हें आत्मसात किया है। उन्होंने 1967 में 'रूकोगी नहीं

राधिका' 1979 में पचपन खम्भे लाल दिवारें', जैसे चर्चित उपन्यासों का प्रणयन किया है।

श्रीमती शशि प्रभा शास्त्री के पांच उपन्यास उनकी रचना धर्मिता की पांच निरश्रेणियाँ हैं। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से स्वयं की पहचान का प्रयास किया है। 'वीरान रास्ते और झरना' 'अमलतास', 'नावें', सीढ़ियाँ, तथा 'कर्क रेखा' उनके ऐसे चर्चित उपन्यास है, जिनमें कहीं दाम्पत्य जीवन के दोहरे चेहरे हैं, कहीं पीढ़ियों के बीच टकराव की समस्यायें है, तो कहीं प्रेम की मौलिक मौजूदगी तो कहीं प्रेम का त्रिकोणात्मक अस्तित्व है। इनके अतिरिक्त शशि शास्त्री ने 1979 में 'परछाइयों के पीछे', 1980 में 'क्योंकि' जैसे नारी मनोदशा का हृदय ग्राही तथा भाव संकुल चित्रण करने वाले उपन्यास लिखे।

इसी प्रकार श्रीमती मेहरून्निशा परवेज जीवन की समग्रता का प्रस्तुतीकरण लेकर हिन्दी उपन्यास मंच पर अवतरित होती है। इनका 1969 में 'आँखो की दहलीज' 1972 में 'उसका घर', 1977 में 'कोरजा' तथा 1981 में 'अकेला पलाश' प्रकाशित हुआ।

बदलती रचना धर्मिता के अन्तर्गत स्थायित्व तथा स्तरीय तारतम्य को लेखन में सम्वेष्टित करते हुए मन्नू भण्डारी ने हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में प्रवेश किया। उनके सृजन संसार से स्पष्ट है कि उन्होंने उसका स्वयं साक्षात्कार किया है और लेखिका के रूप में अपना आविष्कार भी किया है। उनके उपन्यास 'आपका बंटी', 'एक इंच मुस्कान', 'महाभोज' आदि में नारी मनोदशा के बदलते परिवेश का चित्रण देखने को मिलता है।

ममता कालिया उपन्यास साहित्य संसार में बदलते परिवेश परिस्थितियों व शैली के अन्तर्गत नारी की मानसिकता से घुटते हुए कुछ प्रश्नों को उठाती हुई तथा तथ्यों का पोस्टमार्टम सा करती हुई उनकी यथार्थता को बीन–बीन कर रखती जाती है। 'नरक–दर–नरक' तथा 'बेघर' दोनों उपन्यास पति–पत्नी के प्रेमहीन सम्बन्धों पर आधारित है।

कृष्णा सोबती एक ऐसी उपन्यासकारा हैं, जिन्होंने अपने उपन्यासों में मानव के बदलते मूल्यों को तहरीज दी है। कृष्णा सोवती ने अपने उपन्यास लेखन में जिस तन्मयता का परिचय दिया है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि उनका एक–एक शब्द, वाक्य हफ्तों के परिश्रम से बना है। डार से बिछुड़ी से उनकी

औपन्यासिक यात्रा प्रारम्भ हुई थी और अब अनेक सोपानों को छूती हुई जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करती है।

समकालीन नारी और उसके परिवेश के विविध आयाम प्रस्तुत करने में मृदुला गर्ग का कोई सानी नहीं। उनके नारी पात्र न सहानुभूति चाहते है और न ही अवांछित रूप से बंटते है, उनमें स्वाभिमान कूट–कूट कर भरा है। वे सत्य के एक अंश को लेकर उसे 'ग्लोरीफाई' नहीं करती, प्रत्युत उसे सम्पूर्णता में लेती हैं। जीवन में दुराव व छिपाव वे जानती नहीं और अपने लेखन को भी उन्होंने उसी के अनुरूप ढाला है। एक सूक्ष्म पारदर्शी वेदना धारा उनके लेखन और व्यक्तित्व में बहती हुई दिखाई पड़ती है।

चरित्रों की अंतरंग प्रस्तुति और टैगोर के लेखन का प्रभाव शिवानी की रचनाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार अनेक लेखकों उपन्यासकारों ने बदलते समय, परिस्थितियों व रचना धर्मिता के कारण अपने–अपने लेखन में बदलते मानव मूल्यों को स्थापित किया।

साम्प्रतिक संक्रान्ति काल तक पहुंचते पहुंचते भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन हुए। सबसे बड़ा परिवर्तन तो यह हुआ कि भारतीय समाज परिवर्तन को सहने लगा है, स्वीकार करने लगा है। जीवन पद्धतियों और जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन यदि एक सदी पूर्व के भारत में लागू करने की चेष्टा की जाती तो इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है कि अस्वीकृति और विद्रोह के भयानक विस्फोट होते। सामाजिक विसंगतियों, वर्जनाओं, कुण्ठाओं, उत्पीड़नाओं, दासताओं तथा विविध शोषणों की शिकार नारी चेतना ने भारतीय सामाजिक इतिहास में सम्भवतः पहली बार अपनी अस्मिता को पहचानकर अपनी स्वतन्त्रता सत्ता की स्थापना की इतने बड़े पैमाने पर प्रयास किया।

आधुनिकता से जुड़ी नारी ने रूढ़ियों, आवांछित परम्पराओं प्रतिगामी रीति–रिवाजों को त्याग सकने योग्य मनोबल प्राप्त कर लिया है। सतीत्व के पाषाण कारागारों को नकार कर स्वस्थ दाम्पत्य की मनोभूमि सृजित की गयी है, अनुचित के प्रति विद्रोह को आधुनिक नारी ने स्वीकार कर लिया है। साम्प्रदायिकता के ताने–बाने में उलझाव की सम्भावना के प्रति आज की नारी में जागरूकता पैदा हुई। अपने प्रति समाज के दोहरे मापदण्डों के प्रति भी आधुनिक नारी सावधान है।

ज्ञानोदय पत्रिका के किसी विशेषांक में एक बार कुछ चित्रों में एक आकृति सिर से पैर तक आवरण डाले खड़ी थी। दूसरे में वह आकृति नारी के रूप में स्पष्ट की

गयी थी, जिसका मुँह व हाथ–पैर खुले थे। तीसरे चित्र में ब्लाउज की बांह कुहनियों से ऊपर उठ गयी थीं, पल्ला सिर से हट गया था। चौथे में सिलीवलेस ब्लाउज के साथ मिडी शोभायमान थी। पांचवे में ब्रा और बिकनी थी और छठे में नारी आकृति तो नहीं थी, बस एक प्रश्न वाचक चिन्ह लगा था। निःसंदेह उस चित्र में नारी के परिधान के माध्यम से उसकी मुक्ति–यात्रा पर अश्लील कटाक्ष किया गया था। किसी युग में नारी इस कटाक्ष को चुपचाप सहनकर लेती थी, किन्तु वर्तमान समय में महिला लेखिकाओं के माध्यम से, पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से, प्रदर्शनों के माध्यम से मानो नारी ने इसके विरूद्ध एक मोर्चा खोल दिया हो। ज्ञानोदय कार्यालय में प्रतिक्रिया स्वरूप अनेकानेक पत्र पहुँचे होंगे, किन्तु उनमें से एक ही पत्र प्रकाशित हुआ था, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है–

"नारी की जिन्दगी की जांच करने के अलावा क्या पुरूषों के पास कोई काम नहीं रह गया है, नारी सड़क पर कैसी है, नारी किचिन में कैसी है, नारी बैडरूप में कैसी है, यहाँ तक कि नारी अपने कपड़ो के भीतर कैसी है? इसकी जासूसी करने के स्थान पर ऐसी विकृति करने वाले लोग यह जानने की कोशिश क्यों नहीं करते है कि वह माँ के रूप में कैसी है, (अपनी माँ को तो उसने नजदीकी से देखा होगा) तो कोई बात बनती है।[7]

सामाजिक जीवन की भी यही स्थिति है। धर्म अपना आडम्बर खो चुका है, बौद्धिकता बढ़ गयी है। भावनायें ढ़कती जा रहीं है। जीवन के खण्ड सत्य, अनुभूति की तीव्रता और विविधता के विपुल आयाम, अगणित स्तरों में बिखरे पड़े हैं। आज के जीवन के असंख्य परस्पर विरोधी तत्व, असंगतियाँ और उलझाव चतुर्दिक बिखरे पड़े हैं। अतः यह स्वभाविक ही है कि आज के उपन्यासों में जीवन का क्षितिज स्पर्शी विस्तार है। इसमें मनुष्य के टूटने और बनने की बहुमुखी गाथायें हैं। बाहरी जीवन के स्वरूप के साथ ही अन्तर जीवन के सत्य को समलीन नारी उपन्यासकारों ने चीन्हने की चेष्टा की। सामाजिक, पारिवारिक तथा आन्तरिक जीवन के अनेक स्तर उद्‌घाटित हुए हैं। जीवन के उतार–चढ़ाव के अनेक चित्र प्रस्तुत किये गये है। अनेक उपन्यासों में युग के सामाजिक राजनीतिक जीवन के मूल्यों और मान्यताओं की पृष्ठभूमि है। वैयेक्तिक जीवन का भी संवदेनशील और आत्मीय चित्रण हुआ है तथा परिवार और उसके विघटन की पृष्ठभूमि में सहज मानव आचरण और उसकी विडम्बना को भी

उद्घाटित कियागया है। स्वातन्त्रयोत्तर काल की नारी उपन्यासकारों ने अपने अनुभवों के आधार पर आज की नारी की सामाजिक नियति और मनोदशा को गम्भीरता से उत्कीर्ण किया है। ये नारी उपन्यासकार न तो नारी को महिमामण्डित करती है और न उसके दुःख दर्द को बढ़ा–चढा कर पेश करती है, बल्कि नारी जीवन से जुड़े विविध सत्यों को अभिव्यक्त करने की ईमानदार चेष्टा करती है।

– मैत्रेयी पुष्पा जी का उपन्यास साहित्य संसार –

स्त्री–पुरूष सम्बन्ध सामाजिक जीवन की आधारशिला है। मैत्रेयी पुष्पा जी ने इन्हीं सम्बन्धों का ताना–बाना अपने उपन्यासों में बुना है, परन्तु ये सम्बन्ध आधुनिकता व भागदौड़ की जिन्दगी से परे अत्यन्त व्यक्तिगत और बुन्देलखण्ड की जमीं पर रचाये व बसाये गये हैं। विवाह के संदर्भ में बदलती परिस्थितियों और दृष्टिकोणो का चित्रण नारी उपन्यासकारों की कृतियों में सहज देखा जा सकता है। जहां पहले उपन्यासकार विवाह, रीति–रिवाज, संस्कार आदि को मानवीय मूल्यों के अन्तर्गत स्थापित करने में लगे थे। अब वहीं अनेक उपन्यासकार विवाह संस्था को आवश्यक नहीं मानते और न ही समाज के रीतिरिवाजों व संस्कारों का इतनी शिद्दत से पालन करते दिखलायी देते हैं। मैत्रेयी जी के पात्र बुन्देली जमीं से सराबोर होने के पश्चात भी अत्यन्त स्वच्छन्द मनोवृत्ति के दिखलायी देते हैं। अधिक आयु अविवाहित तरूणियों की चर्चा, विवाह पूर्ण गर्भ धारण की बात, पर पुरूष सम्बन्ध, शारीरिक सम्बन्धों की मांग तथा दहेज की कुप्रथा का मार्मिक प्रस्तुतीकरण मैत्रेयी जी के उपन्यासों के प्रधान विषय है।

" स्त्री और पुरूष भले ही एक दूसरे के पूरक हों, किन्तु दोनों की शारीरिकता तथा मानसिकता में अन्तर है। शारीरिक दृष्टि से जिस तरह नारी अंगो का झुकाव कोमलता की ओर है, वहीं पुरूषों का झुकाव कठोरता की ओर है। इसी प्रकार मानसिक दृष्टि से जहाँ पुरूष में नारी पर विजय की भूख होती है वहीं नारी में समर्पण की। पुरूष जहाँ लूटना चाहता है, स्त्री वहीं लुट जाना चाहती है। फिर भी वह स्नेह व सौजन्य की प्रतिमूर्ति होती है। वह वाणी से जीवन को अमृतमय करती है। उसका हृदय संतप्तों को शीतल छाया देता है। उसका हास निराशा की कालिमा को पोंछकर आशा की किरणें बिखेरता है। यदि नारी वर्तमान के साथ भविष्य को भी हाथ में ले ले तो वह अपनी शक्ति से बिजली की तड़प को भी लज्जित कर सकती है। आदिकाल से ही नारी

[7] राधिका सोनटक्के–ज्ञानोदय, वर्ष 1979 अप्रैल पृ0 03

जीवन के विविध क्षेत्रों में पुरूष के साथ चलती रही हैं। अधिकांश सभ्यताएं और संस्कृतियाँ अपने आदिम युग में मातृसत्तात्मक रही हैं।"[8]

स्त्री के उपरोक्त रूप को मैत्रेयी ने अपने उपन्यासों व कृतियों में यथोचित स्थान दिया है, जो नारी के सद्‌गुणों को उजागर कर उसकी सशक्त भूमिका हमारे समक्ष लाते हैं।

आज विवाह को मात्र संयोग नहीं माना जाता और न विवाह को अनिवार्यता की संज्ञा प्राप्त है। इन उपन्यासों के कुछ पात्र तो वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट के कारण विवाह प्रथा को ही अमान्य कर देना चाहते हैं। फिर चाहे वे मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'झूलानट' की शीलो हो या 'इदन्नमम' की कुसुमा भाभी, ये सभी पात्र विवाह जैसी आवश्यकता को आवश्यक नहीं मानते तथा पर पुरूष के स्वच्छन्द प्रेम में विचरण करते हैं। विवाह पूर्व लड़के और लड़की की सहमति भी आज अनिवार्य मानी गयी है और इस तथ्य को स्पष्ट रूप से अंकित किया गया है कि बिना मर्जी के विवाह जीवन में एक घुटन और आडम्बर भर देता हैं। तभी तो 'इदन्नमम्' की मंदा और 'कस्तूरी कुंडल बसै' की पुष्पा दोनों अपनी मर्जी के खिलाफ विवाह को अमान्यकर देती हैं। बदलती रचना धर्मिता के फलस्वरूप पति पत्नी में शैक्षणिक असमानता को भी वैवाहिक जीवन की बाधा कहा गया है।

अनेक लेखिकाओं की भाँति मैत्रेयी पुष्पा जी ने भी अन्तर जातीय विवाह को आदर व सम्मान की दृष्टि से देखा है। इसका विरोध करने वालों की दुखद परिणतियाँ भी दिखलाई हैं। ऐसे विवाहों में वर पक्ष के सम्बन्धी पहले तो कुछ समय तक असन्तुष्ट रहते हैं, किन्तु यह भी देखा गया है कि दूसरी जाति से आयी बधू को अन्ततोगत्वा अपना ही लेते हैं।

यद्यपि समाज में अनेक उदाहरण इसकी विपरीत स्थिति को लेकर मिलते हैं। समकालीन बदलती परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में नारी मनोदशा के दोनों रूप दृष्टिगोचर होते है। सामान्य रूप में तो अत्याधुनिक कही जाने वाली नारी विवाह संस्कार का ही बहिष्कार करती है। उसकी दृष्टि में "शादी एक महज कर्मकाण्ड" है। झूठ, छल, प्रपंच,

---

[8] डॉ0 शीतल प्रभा वर्मा–महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ – पृ0 17

धोखा, दाम्पत्य जीवन बाहर से जितना ही अच्छा सुन्दर और आदर्श दिखाई देता है, भीतर से वह उतना ही कुरूप, बदशक्ल, पापमय और अन्यायपूर्ण होता है।"[9]

इसी परिभाषा से सहमत प्रतीत होती मैत्रेयी ने भी शादी को मात्र समझौता माना है। मैत्रेयी जी ने सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा मानवीय धरातल पर की है, किन्तु पूर्व युगीन जर्जर प्रगतिरोधी मूल्यों का खुले रूप में बहिष्कार किया है। वैश्विक नारी सचेतना भारतीय नारी को भी प्रभावित कर रही है। मैत्रेयी जी के उपन्यासों में नारी जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी पक्ष परिवेश से प्रभावित होकर परिवर्तित हुए हैं। भारतीय संस्कृति में सात जन्मों का साथ माना जाने वाला विवाह आदि आज समझौता माना जाने लगा है। विधवा विवाह, प्रेम विवाह, अतंरजातीय विवाह आदि आज समझौते माने जाने लगे हैं। मैत्रेयी जी ने विवाह के सम्बन्ध में अनेक बदलते दृष्टिकोण को रेखांकित किया है। विवाह पूर्व की समस्याओं और वैवाहिक समस्याओं में स्पष्टतः परिवर्तित 'युग बोध' हैं। विवाह से सम्बन्धित समस्यायें तथा बदलते परिवेश में नारी की परिवर्तित समझ का स्वरूप मैत्रेयी जी की कृतियों में जिस रूप में प्रस्तुत है, उसके कतिपय परिदृश्य दृष्टव्य है।

मैत्रेयी पुष्पा जी के साहित्य की क्रमबद्धता निम्न प्रकार है, जिसमें तीन कहानी संग्रह है – (अ) 1. चिन्हार (1991) 2. ललमनियाँ (2002) 3. गोमा हँसती है (1998)

(ब) उपन्यास साहित्य संसार– 1. बेतवा बहती रही (1994) 2. इदन्नमम (1994) 3. चाक (1997) 4. झूलानट (1999) 5. अल्मा कबूतरी (2000) 6. अगनपाखी (2001) 7. विजन (2002) 8. कस्तूरी कुंडल बसै (2002) 9. कही ईश्वरी फाग (2004), नारी विमर्श सम्बन्धी पुस्तक – 1. खुली खिड़कियाँ (2003)

वर्षो से भारतीय समाज के अन्तर्गत स्त्री की जो दीनहीन और 'हाय बेचारी' वाली स्थिति बनी हुयी है, मैत्रेयी जी इस छवि को बसूबी तोड़ती हुयी नजर आती है, साथ ही उनके भीतर बैठी स्त्री इतनी सशक्त, मजबूत तथा दृढ़ दिखलायी देती है, जो हर क्षेत्र में लोहा लेने को तैयार है। उनके नारी पात्र किसी कल्पना महल के न होकर इसी धरातल के यथार्थ में जीवन यापन करते है, हंसते बोलते दिखलायी देते है। बुन्देलखण्डी जमीं और अनेकानेक समस्याओं से रूबरू होने के बाद भी उनके पात्र अन्य आधुनिक लेखिकाओं के पात्र से कहीं 'बोल्ड' दिखलायी देते हैं। पात्रों की

[9] 'प्रेम अपवित्र नहीं'–लक्ष्मी नारायण लाल, पृ0 44

स्वच्छन्ता और बेबाक बातचीत नगरीय जीवन में रची बसी आधुनिक स्त्रियों के वक्तव्यों को कहीं पीछे छोड़ देती हैं। वे रहन सहन, खान–पान व परिवेश की आधुनिकता को महत्व न देकर वैचारिक स्वतन्त्रता व आधुनिकता की पक्षधर दिखलायी देती हैं। बस यहीं और यहीं मैत्रेयी पुष्पा जी अन्य सभी उपन्यासकारों से अलग व हटकर दिखलायी देती हैं। ग्रामीण जीवन को अपने लेखन का आधार बनाने पर भी उन्होंने नारी जीवन की सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक समस्याओं के साथ–साथ नारी जीवन के विविध पहलुओं पर अपनी लेखनी चलायी हैं।

७. मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यास साहित्य का पूर्वार्द्ध

"उपन्यास आधुनिक युग का विशिष्ट साहित्यांग है। जीवन की नाना समस्याओं का उद्घाटन तथा उनका हल, यद्यपि हल सदैव 'अपेक्षित नहीं होता, आज के उपन्यास का प्रधान काम हैं।"[10]

उपन्यासकार स्वयं एक सामजिक प्राणी होता है और तभी वह जीवन की विविध समस्याओं और परिस्थितियों से प्रभावित होता है। अपनी रचनाओं में वह उस प्रभाव को उद्घाटित करता है। आज का समय विषम समस्याओं का समय है। जैसे–जैसे परिस्थितियों में परिवर्तन हो रहा है, वैसे–वैसे विभिन्न समस्यायें हमारे समक्ष उपस्थित हो रही हैं। जिसमें विकटतम समस्या 'नारी–जीवन' है। समस्यायें मूलतः सामाजिक क्षेत्र में जन्म लेती हैं। जिनका सम्बन्ध अधिकतर नारी जाति से ही होता है। बहुत सी ऐसी समस्यायें हैं जिन्होंने नारी को समाज में दयनीय बना दिया हैं।

हिन्दी का उपन्यास साहित्य नारी समाज के महत्वपूर्ण प्रश्नों को लेकर समाज में आया है। नारी समस्याओं पर मैत्रेयी जी ने अपनी कुशल लेखनी द्वारा प्रकाश डाला है। बुन्देलखण्डीय जमीं पर रची बसी नारी के जीवन की विद्रूपताओं, रीति–रिवाजों, नियमों, प्रतिबन्धों, अन्यायों के साथ–साथ स्त्री के विविध रूपों को मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों का आधार बनाया है। साहित्यकार के पास तो वैसे भी अभिव्यक्ति का उत्कृष्ट साधन होता है और फिर मैत्रेयी जी तो स्वयं एक नारी हैं। और बुन्देलखण्डी जमीं पर ही पली–बढ़ी। ऐसे में उन्होंने यहाँ से जुड़ी अनेकानेक समस्याओं को महसूस

[10] उपन्यास संदेश–निबन्ध, समस्यामूलक उपन्यास–प्रो0 महेन्द्र भटनागर, उपन्यास अंक, 1956 जुलाई–अगस्त

व अनुभव किया और उसे ज्यों का त्यों अपने साहित्य में उतार दिया। नारी की दारूण दशा का उन्होंने विभिन्न रूपों में उद्घाटन किया है।

मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य को हम दो भागों में बांट सकते हें –

1. मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यास साहित्य का पूर्वार्द्ध
2. मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यास साहित्य का उत्तरार्द्ध

सन् 1991 से लेकर सन् 1999 तक की रचनाओं को हम उनके साहित्य का पूर्वार्द्ध कह सकते है। इसके अन्तर्गत हम मैत्रेयी जी की निम्न रचनाओं को शामिल करेंगे।

(क) उपन्यास

1. बेतवा बहती रही (1994)
2. इदन्नमम (1994)
3. चाक (1997)
4. झूलानट (1999)

(ख) कहानी संग्रह–

1. चिन्हार (1991)
2. गोमा हंसती (1998)

(क) उपन्यास साहित्य–

1. बेतवा बहती रही (1994)

यह मैत्रेयी पुष्पा जी का प्रथम उपन्यास है। जो 1994 को किताबघर, नयी दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। यह एक आंचलिक उपन्यास है। एक ऐसी युवती, जिसका नाम उर्वशी है, की कहानी जो समाज के बनाये अंध नियमों व कानूनों को मानने के लिए बाध्य है तथा आजीवन इसी समाज की बनायी रूढियों, परम्पराओं और कुप्रथाओं को झेलते–झेलते अपना जीवन होम कर देती है और हमारे सामने एक प्रश्न छोड़ जाती है कि क्या स्त्री जीवन की नियति यही है?

2. इदन्नमम् (1994)

यह मैत्रेयी पुष्पा जी का सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यास है। यह भी किताब घर नयी दिल्ली से 1994 में प्रकाशित हुआ था। इसके प्रकाशन के पश्चात् ही

मैत्रेयी पुष्पा जी अचानक हिन्दी साहित्य के शीर्ष लेखकों में गिनी जानी लगी। यह उनकी प्रसिद्धि का प्रबलतम आधार है। इसमें एक ऐसी लड़की की मंदाकिनी की कहानी है, जो ग्रामीण परिवेश और स्त्री जीवन की अनेकानेक सच्चाइयों और समस्याओं को सामना करते हुये अपने गाँव और गाँववासियों को प्रगति के पथ पर ले जाती है।

3. चाक (1997)

चाक मैत्रेयी जी का महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसका प्रकाश 1997 में नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन की ओर से हुआ था। इसमें एक ऐसी स्त्री सारंग की कहानी है जो अपनी फुफेरी बहन रेशम के कातिलों को सजा दिलाने के लिए कृत संकल्प है और इस हेतु उसे अनेकानेक विरोधों और समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसमें मैत्रेयी जी ने स्त्री जीवन के विविध पहलुओं को समाज के समक्ष गम्भीरता से रखा है।

4. झूलानट (1999)

झूलानट मैत्रेयी जी का बेहद रोचक और लघु उपन्यास है। यह 1999 में राजकमल, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। इसमें शीलो नाम की ऐसी युवती का चित्रण है जिसके हाथ में छः उगलियाँ है और रंग काला है जिसके कारण उसका पति उसे उपेक्षित कर छोड चला जाता है। फलतः वह अपने देवर बाल किशन की ओर आकर्षित हो उससे शारीरिक सम्बन्ध बनाती है और उसे ही अपना पति मान लेती है और समाज द्वारा बनाये ढर्रे को मानने से इन्कार कर देती है। सास और बहू में निरन्तर द्वन्द्व बना रहता है, फलस्वरूप नायक बालकिसन एक विषम और अन्तर्द्वन्द्वीय स्थिति से गुजरता है और अन्ततः अपनी सोचने समझने की शक्ति खो बैठता है।

(ख) कहानी संग्रह

1. चिन्हार (1991)

'चिन्हार' मैत्रेयी जी का प्रथम कहानी संग्रह है। यह 1991 में प्रकाशित हुआ था, चूंकि यह उनकी पहली कृति थी, अतः इसके प्रकाशन के बाद मैत्रेयी जी का भी चिन्हार हो गया। इस कहानी संग्रह में मैत्रेयी जी की 12 उत्कृष्ट

कहानियाँ शामिल हैं। इन सभी में स्त्री जीवन को बड़ी निकटता से देखा व परखा गया हैं।

2. गोमा हँसती है (1998)

यह मैत्रेयी जी का द्वितीय कहानी संग्रह है। यह 1998 में किताब घर नयी दिल्ली से प्रकाशित किया गया था। इसमें मैत्रेयी जी ने यथार्थ जीवन से जुड़ी दस कहानियों को स्थान दिया हैं। जिसमें मानव जीवन के विविध पहलुओं की पड़ताल की गयी है। यह चुनिन्दा दस कहानियाँ उनके उत्कृष्ट लेखन को उजागर करती है।

इस प्रकार हम देखते है कि मैत्रेयी जी का पूर्वार्द्ध का लेखन स्त्री जीवन की समस्याओं और विविधता की ओर संकेत करता है जहाँ उनके प्रथम उपन्यास की नायिका उर्वशी समाज द्वारा शोषित और अभिशप्त रूप में हमारे सामने आयी है वहीं ज्यों–ज्यों उनका लेखन आगे बढ़ता जाता है उनकी नायिका में स्त्री शक्ति का आभास मिलता जाता है और अब वह अपने विरूद्ध होने वाले अत्याचारों का विरोध करने लगती है साथ ही समाज को यह बतला देती है कि अब वह उर्वशी नहीं जिसे समाज या रिश्तेदार जहाँ चाहें पशु की भांति बांध सकते है। अब वह अपनी इच्छा अनिच्छा को जाहिर करना सीख गयी है, तभी तो इदन्नमम की कुसुमा, चाक की सारंग और झूलानट की शीलो समाज द्वारा बनायी परिपाटी पर चलने से इंकार कर अपने पसंदीदा पुरूष से सम्बन्ध स्थापित कर समाज की खोखली मान्यताओं को दरकिनार कर अपना अलग ही संसार रचती है।

८. मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यास साहित्य का उत्तरार्द्ध

आज का परिवेश निरन्तर परिवर्तन की दिशा में गतिशील है। युग परिवर्तन ने नारी चेतना को विभिन्न स्तरों पर आंदोलित किया है। परिणाम स्वरूप उसकी निजी मान्यताओं एवं स्थापनाओं का प्रणयन होना स्वाभाविक है। अपने प्रति चले आ रहे सामाजिक मानदण्डों की पुनर्व्याख्या करवाने की उसकी दलील जोर पकड़ती जा रही हैं। बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नारी की आचरण सम्बन्धी नैतिकता और अनैतिकता की परिभाषा एवं मुहावरों की अभिनव अर्थवत्ता की आवश्यकता नारी ने अनुभव की तथा

समय–समय पर स्वतन्त्र विचार सम्प्रेषण द्वारा वह निःसंकोच आगे बढ़ी। यौन सम्बन्धों को लेकर पवित्रता स्थायित्व एवं इनके प्रयोजन से सम्बन्धित विश्वास बदले और उनमें नये आयाम जुड़े। आज की शिक्षित नारी हो या ग्रामीण युवती में परिवर्तित आस्था दोनों वर्गों की नारियों में परिलक्षित होती है। नैतिकता के लिए जो दोहरा मापदण्ड था, उसके सम्बन्ध में शिक्षित स्त्रियों का दृष्टिकोण काफी बदल गया और अधिक से अधिक स्त्रियाँ इस दोहरे मापदण्ड को आपत्तिजनक मानने लगी। मैत्रेयी जी ने बुन्देलखण्ड की जमीं पर रची बसी नारी के माध्यम से इसी दोहरे मापदण्ड को नकारने की कोशिश की है। मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यास साहित्य का उत्तरार्द्ध हिन्दी उपन्यास के माध्यम से पारम्परिक सोच से उबरने, दैहिक एवं माँसल परिप्रेक्ष्य उजागर करने में अतिशय 'बोल्डनेस' प्रदर्शित करने के लिए जाना जाता है।

मैत्रेयी जी के उत्तरार्द्ध साहित्य की कृतियों में समन्वय का नव सृजित जीवन मूल्य विविध परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। सन् 2000 से लेकर सन् 2004 तक की रचनाओं को हम उनके उत्तरार्द्ध साहित्य के अन्तर्गत रख सकते है। जिसमें मैत्रेयी पुष्पा जी ने नारी जीवन की महत्वपूर्ण स्थापनायें की हैं। इनमें मनोवैज्ञानिक एवं अन्तरद्वन्द्वनिक तथ्यों एवं तत्वों के आधार पर पात्रों की चारित्रिक सृष्टियाँ की गयी हैं। उत्तरार्द्ध साहित्य के अन्तर्गत निम्नलिखित रचनायें शामिल की जा सकती है–

(क) उपन्यास साहित्य–

1. अल्मा कबूतरी (2000)
2. अगन–पाखी (2001)
3. विजन (2002)
4. कस्तूरी कुंडल बसै (2002)
5. कही ईश्वरीय फाग (2004)

(ख) कहानी संग्रह–

1. ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ (2002)

(क) उपन्यास साहित्य–

1. अल्मा कबूतरी (2000)

अल्मा कबूतरी मैत्रेयी पुष्पा जी का राजनैतिक पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् 2000 में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ था। इसमें ऐसी नायिका अल्मा, जो एक कबूतरी है, की कहानी है जो इतर जाति के युवक राणा से प्रेम ही नहीं करती अपितु जिंदगी के कठोर अनुभवों को झेल जीवनयापन करती स्त्री है। यह उन लोगो की कहानी है, जो समाज द्वारा एक ओर फेंक दिये गये हैं, तथा सरकार भी उनकी ओर से उदासीन है। वास्तव में 'अल्मा कबूतरी' उस वास्तविक यथार्थ की जटिल नाटकीय कहानी है जो हमारे अनजाने ही आस–पास घटित हो रही है। यह मैत्रेयी जी की एक विचारोत्तेजक कृति है जो कथा–रस को नए अर्थ देती है।

2. अगनपाखी (2001)

'अगनपाखी' मैत्रेयी जी का पुनः पाठ है। यह उपन्यास 'स्मृति दंश' नाम से आ चुका है। किन्तु इसकी नायिका भुवन मोहिनी का कमजोर पक्ष मैत्रेयी जी को गंवारा न हुआ और उन्होंने इसे नया नाम 'अगनपाखी' दिया यह 2001 में वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसमें इसकी नायिका भुवनमोहिनी अपने सशक्त व प्रबलतम पक्ष को लेकर आगे आयी है। अब यह एक नवीन रचना है। जिसमें सम्पत्ति बटवारे को लेकर खेले गये सांमती दांव पेचों के जिक्र के साथ–साथ परिवार में झगड़े, स्त्री पर अत्याचार विधवाओं के हत्या अनुष्ठानों, का सजीव चित्रण किया गया है।

3. विजन (2002)

'विजन' मैत्रेयी जी का सबसे अलग हटके उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् 2002 में वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से किया गया था। जहाँ मैत्रेयी अभी तक ग्रामीण परिवेश व ग्रामीण, जन मानसों की कथायें लिखती आयी थीं, वहीं इस उपन्यास में उन्होंने इन सबसे परे खेत खलिहानों, बैलगाड़ी और रेत भरे दगरे को छोड़ महानगर के पॉश अस्पतालों के चमकते कॉरीडोर, जीन्स और ऍप्रन पहने, स्टैथिस्कोप लटकाए डाक्टर, मोबाइल फोन और ए. सी. गाडियों से लैस कहानी 'विजन' लिखकर सबको एक बारगी चौंका

दिया। विजन एक ऐसी स्त्री की कहानी है जो स्वयं डाक्टर है और शादी के बाद डाक्टरी पेशे से ही जुड़े ससुराल में जाती है वहाँ उसे विभिन्न विषम परिस्थितियों से सामना करना पड़ता है। वह महसूस करती है कि जैसा सब दिखता है वैसा है नहीं। 'विजन' स्त्री शक्ति के नये आयाम खोजने और खोलने का मैत्रेयी जी का साहसिक प्रयोग है।

4. कस्तूरी कुंडल बसै (2002)

यह मैत्रेयी जी का आत्मकथात्मक उपन्यास है। मैत्रेयी जी के जीवन की महत्वपूर्ण घटनायें इसमें समाहित हैं। यह सन् 2002 में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, की ओर से प्रकाशित हुआ था। इसमें स्वयं मैत्रेयी और उनकी माँ कस्तूरी देवी के जीवन का ताना–बाना प्रस्तुत है। एक माँ और बेटी की कहानी। ऐसी माँ और बेटी की कहानी, जिन्होंने जीवन पर्यनत कठिनतम् घड़ियों का सामना करते हुये समाज के बंधे बंधाये ढर्रे को मानने से इंकार कर दिया। एक ऐसी माँ–बेटी जिन्होंने सामाजिक कुरीतियों रूढ़ियों, प्रथाओं, परम्पराओं और नियमों से बाहर निकल स्वयं एक स्वच्छन्द किन्तु आदर्शपूर्ण नियम बनाये तथा उन पर अमल करने हेतु सामाजिक विरोधों का डटकर सामना किया। एक बदहाल माँ तमाम संकट में हार न मानने का पाठ देती हैं, यह इस उपन्यास का खास तत्व है।

5. कही ईसुरी फाग (2004)

बुन्देलखण्डीय महान श्रृंगारी कवि 'ईसुरी' को आधार बनाकर लिखा गया यह उपन्यास मैत्रेयी जी का अब तक का आखिरी उपन्यास है, इसका प्रकाशन राजकमल, नई दिल्ली की ओर से किया गया है। इस उपन्यास का नायक ईसुरी है, मगर कहानी रजऊ की है। ईसुरी और रजऊ का आपस में घनिष्ठ प्रेम है। प्यार की रासायनिक प्रक्रियाओं की कहानी जहाँ ईसुरी और रजऊ दोनों के रास्ते बिलकुल विपरीत दिशाओं में जाते हैं। प्यार बल देता है तो तोड़ता भी है। इसमें मैत्रेयी जी ने 'ईसुरी' की प्रसिद्ध श्रृंगारिक फागों को यथास्थान रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है।

वास्तव में यह उपन्यास उस अनुसंधित्सु छात्रा 'ऋतु' के पक्ष में है जिसे 'डाक्टर' की डिग्री नहीं मिल पायी क्योंकि उनके रिसर्च गाइड प्राध्यापक

प्रवर पी.के.पांडेय की दृष्टि में ऋतु ने ईसुरी पर जो कुछ लिखा था, वह न शास्त्र सम्मत था, न शोध–अनुसंधान की जरूरतें पूरी करता था। उनकी नजर में वह शुद्ध बकवास था। इसी बकवास को मैत्रेयी जी ने 'लोक' माना। ऋतु को प्रेम को कथा व बीहड़ों के प्रति सम्मोहन माना तथा इस उपन्यास के माध्यम से उसे सही ठहराया क्योंकि उनके अनुसार बंधे बंधाये नियमों के अन्तर्गत शोध नहीं किया जा सकता और न ही उसके लिए किसी 'एक गाइड' की आवश्यकता होती है। 'लोक' सबसे बड़ा गाइड होता है।

(ख) कहानी संग्रह–

1. ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ (2002)

'ललमनियाँ' मैत्रेयी पुष्पा का बेहद प्रसिद्ध कहानी संग्रह है। इसका पहला संस्करण सन् 2002 राजकमल पेपर बैक्स की तरफ से निकाला गया। इसमें भी दस चुनिन्दा कहानियों को स्थान दिया गया। गरीब व शोषित जनता के साथ–साथ स्त्री की दयनीय और करूण दशा का चित्रण इनकी कहानियों में किया गया है। बेहद संक्षिप्त और सरल भाषा में लिखित ये कहानियां बेहद रोचक है और हमें जीवन की सच्चाईयों के करीब लाती है। मैत्रेयी जी की इन कहानियों का उद्देश्य जन मानस को अपनी संस्कृति से जोड़े रखना भी है।

उपर्युक्त उपन्यासों की कथाओं के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यास साहित्य का उत्तरार्द्ध बेहद सशक्त है। उसका प्रत्येक पक्ष अपने प्रबलतम् रूप में उभर कर सामने आया है। जिनमें खुली खिड़कियाँ, नारी विमर्श सम्बन्धी पुस्तक नारी जीवन को नई दिशा व नजर प्रदान करती है।

'अमर उजाला'– 10 मार्च, 2002 को कला साहित्य के अन्तर्गत 'रविवासरीय' पृष्ठ पर लिखित' मैत्रेयी पुष्पा जी का साक्षात्कार, जो उनके लेखन व साहित्य के प्रति हमें महत्वपूर्ण जानकारी देता है–

प्रश्न नं0 1. अपने लेखन की शुरूआत के विषय में बताएं?

मैत्रेयी जी– जब मैं इंटर में पढ़ती थी तो कॉलेज मैगजीन में लिखा करती थी। फिर मैने बी.ए. के दौरान अखबारों में भी छिटपुट लिखा। मुझे पढ़ने का बेहद शौक था और इत्तिफाक से मेरे बीहड़ गांव में एक सरकारी लाइब्रेरी थी। जहाँ नियमित आने वाली पत्रिकाएं नवनीत, धर्मयुग आदि, मैं देख पाती थी। साथ ही वहाँ नीरज और भवानी प्रसाद मिश्र को भी पढ़ने का अवसर मिला। मैथिलीशरण गुप्त और वृंदावन लाल वर्मा तो झाँसी के ही थे। इसलिए उन्हें सुनने का मौका कई बार मिला। उस वक्त बुन्देलखण्ड कॉलेज झाँसी का एक मात्र कॉलेज था और जब कभी झाँसी में कवि सम्मेलन होता तो उसका आयोजन इसी कॉलेज में होता। इन कवि सम्मेलनों में नीरज, बच्चन जैसे बड़े कवि आते। उनको देखती–सुनती तो अक्सर यह लगता कि मैं भी कविताएं लिखूँ, पर लिख नहीं पायी, यही मेरी शुरूआत थी।

प्रश्न न0 2. फिर इतनी लंबी चुप्पी की वजह क्या रही?

मैत्रेयी जी– अपनी माँ से स्वतंत्र होने के लिए ग्रेजुएशन के बाद मैंने कहा कि मेरी शादी करा दो। अपने गाँव के हिसाब से मैं अठारह वर्षीय, तब बूढ़ी हो चुकी थी। उस वक्त मैं कल्पना करती थी कि वैवाहिक जीवन फिल्मों जैसा होगा। क्योंकि माँ की गृहस्थी कभी देखी नहीं, नानी के घर कभी गई नहीं, बुआ थी नहीं। फिर हम लड़के लड़कियाँ साथ घूमा करते थे तो लगता था कि पति भी साथी की तरह ही होगा। एक बात और, मेरी यह सोच भी थी कि विवाह से तानों–कटाक्षों, लांक्षनों से मुक्ति मिलेगी। खैर, विवाह होते ही पारिवारिक जिम्मेदारियों और तुरत–तुरत हुए तीन बच्चों के लालन–पालन के बीच कभी वक्त ही नहीं मिला कि लेखन के

विषय में सोच पाती। इस दौरान कभी–कभार कोई कहानी–कविता पढ़ती तो उसके समानान्तर मेरे भीतर भी एक कहानी बनती चलती, झुंझलाकर मैंने पढ़ना छोड़ दिया और पूरी तरह गृहस्थी में 'रम' गयी। फिर तो ऐसी स्थिति आयी कि कभी चिट्ठी भी लिखती तो हाथ कांपते थे। जब बच्चे कुछ बड़े हुये तो उनके लिए वाद–विवाद प्रतियोगिताओं के लिए कभी लेख तो कभी कहानी लिखती रही, मसलन, अपनी बड़ी बेटी नम्रता के लिए मैंने अपने गाँव के फकीर 'हवेली' के ऊपर कहानी लिखी। जिसे पढ़कर वह 'फर्स्ट' आयी। ऐसे ही 'एज केयर इंडिया' की तरफ से आयोजित प्रतियोगिता में नम्रता के लिए मैंने लेख लिखा थी और वह अखिल भारतीय स्तर पर प्रथम आई। बस बच्चों को ही पढ़ाती लिखाती रही और मेरी तीनों बच्चियाँ डॉक्टर बनीं।

प्रश्न नं0 3. इसके बाद आपने अपने लेखन को व्यवस्थित कैसे किया?

मैत्रेयी जी– सबसे बड़ी बेटी जब एम.बी.बी.एस. कर चुकी तो उसने एक रोज मुझसे कहा कि क्या आपको याद है जब हम स्कूल में पढ़ते थे, उस समय आप हमारे लिए लिखती थीं। आपके लिखे हुये पर हम तीनो फर्स्ट आती थीं। आप अपने लिये क्यों नहीं लिखती। मुझे प्रेरित करने के लिए स्मितां पाटिल की फिल्म का एक कैसेट लगा दिया जिसमें स्मिता पाटिल एक लेखिका होती है और कहा, जब यह लिख सकती है तो आप क्यों नहीं लिख सकतीं। संयोग से उसी वक्त (1989) साप्ताहिक हिन्दुस्तान के प्रेम विशेषांक में कहानियाँ आमंत्रित की गई थीं। बच्चों की जिद पर मैंने चौबीस पेज की एक प्रेम कथा लिखी। अब समस्या थी उसे पहुँचाने की। दिल्ली में पच्चीस साल रहने के बाद भी मैंने तब हिन्दुस्तान टाइम्स का दफ्तर नहीं देखा था। बच्चों के कहने पर स्कूटर करके हिन्दुस्तान टाइम्स पहुँची। वहाँ लोगों से पूछती कांपते हाथ पैरों से हिमांशु जोशी के कमरे में पहुंची और किसी तरह उन्हें अपनी कहानी पकड़ा दी। वह कहानी नहीं छपी। दो महीने बाद, मैं कहानी वापस लेने पहुँची तो हिमांशु जी ने कहा, हमारे लिए छोटी कहानियाँ लिखो। साथ ही उन्होंने यह भी जोड़ा कि इतनी लम्बी कहानी लिखती हो तो उपन्यास लिखने की क्यों नहीं

सोचती। फिर, आठ अप्रैल नब्बे को साप्ताहिक हिन्दुस्तान में मेरी कहानी पहली बार प्रकाशित हुई। गाँव की स्त्री पर केंद्रित यह कहानी, आक्षेप' नाम से छपी थी। बाद में मैंने कई और कहानियाँ लिखीं, जो 'चिन्हार' शीर्षक कहानी संग्रह के अन्तर्गत प्रकाशित हुईं। इसकी कई समीक्षाएं आयी, पाठकों की खूब चिट्ठियाँ मिलीं। यानी इस कथा संग्रह से मेरा भी चिन्हार हो गया। 'चिन्हार' के बाद मेरा उपन्यास 'बेतवा बहती रही' आया। फिर साप्ताहिक हिन्दुस्तान से लौटी उसी चौबीस पेज की कथा पर मैने 'इदन्नमम्' उपन्यास लिखा, और फिर लिखती चली गयी।

प्रश्न नं0 4. आप विषय वस्तु का चयन कैसे करती हैं?

मैत्रेयी जी – इसकी कोई इकहरी प्रक्रिया नहीं होती। मसलन 'इदन्नमम' को ही लें, मैं एक विवाह के सिलसिले में अपने गाँव गयी थी। वहीं, इस उपन्यास की नायिका 'मन्दा' का पता चला था। फिर तो पूरी शादी के दौरान अंधेरे में बैठी उस लड़की को उठते–बैठते, चलते फिरते देखती रही, सोचती रही, चुपचाप लोगों से उसके विषय में पूछती रही। फिर उस पर उपन्यास लिखा। वहीं 'चाक' में एक स्त्री की हत्या से जुड़े कई पेंच हैं, तो जाटों की दबंग स्त्रियों के चरित्र चित्रण भी हैं। साथ ही लम्बे, अरसे से मैं अपनी गाँव की लोक–कथाओं और लोक गीतों को लिपिबद्ध करना चाहती थी। मैं अकसर सोचती थी कि क्या "खेरापतिन दादी' के खत्म होते ही लोकगीत और कथाएं खत्म हो जायेंगी। इसलिए, इन उपन्यासों में ही नहीं बल्कि अपनी आत्मकथा में भी मैंने इनका उल्लेख जगह–जगह पर किया है, ताकि वे जीवित रहें और पसरें। इसके अलावा 'अल्मा कबूतरी' की शराब बेचती कबूतरियाँ झाँसी के किनारे जगह–जगह दिख जाएंगी। उनके साथ मैं कई साल उठती–बैठती रही, तब जाकर उनके जीवन को इस उपन्यास में उतार पायी और दिखा पाई कि उनकी स्थिति हमारी स्थिति से कई–कई गुना यंत्रणादायक है।

प्रश्न नं0 5. अपनी रचना प्रक्रिया के बारे में बताए?

मैत्रेयी जी– दरअसल, रचना प्रक्रिया अनायास होती चलती है क्योंकि कथावस्तु के तौर पर कभी कहानी मिलती है तो कभी सिर्फ शुरूआत, तो कभी सिर्फ संघर्ष ही होते हैं जिसके इर्द–गिर्द कहानी रचती हूँ। फिर उसमें पात्रों के मूड के हिसाब से प्रकृति गढ़ती हूँ। जैसे 'झूलानट' में प्रकृति का वर्णन नहीं के बराबर है, क्योंकि यह अंतर्मन की कथा है। फिर रचना को व्यवस्थित करने के लिए कई–कई ड्राफ्ट करने पड़ते हैं। मैंने उपन्यासों के छह–छह, सात–सात ड्राफ्ट किए हैं। इस प्रक्रिया में कई चीजें बाहर निकली हैं, कई बातें जुड़ती हैं।

प्रश्न नं0 6. आपका शिल्प परंपरागत होता है। क्या अपने लेखन के दौरान आपको शिल्प तोड़ने की जरूरत महसूस नहीं हुई?

मैत्रेयी जी– जीवन जब जिद पर आ जाता है तो कोशिश करके भी शैली को बदलना मुश्किल होता है। इतने दबाब और दमन के बाद शैली का होश ही नहीं रहता। बस लिखती जाती हूँ, लिखती जाती हूँ। जो भी लिखती हूँ, लोकमाला के रूप में ही सही, लोगों को प्रभावित करती है। मैं किसान की पत्नी न सही, किसान की बेटी तो हूँ। फिर जीवन की कथा किसी भी शैली मे लिखी जाय अगर वह पाठकों को संप्रेषित करती है तो सबसे अच्छी शैली वही है। बीच के दौर में पाठकों की कमी की वजहों में से एक जीवन कथा प्रस्तुति में अत्यधिक कलात्मकता का होना भी था। जिससे पाठक भटक जाते थे। मुझे पाठक मिलने की एक अहम वजह मेरी परंपरागत लेखन शैली भी हैं।

प्रश्न नं0 7. 'कस्तूरी कुण्डल बसै,.........की मैत्रेयी आपके उपन्यासों 'इदन्नमम' की मंदाकिनी और चाक की सारंग में दिखती है। क्या ये उपन्यास अलग परिस्थितियों में अपकी आत्मकथा के रिहर्सल थे?

मैत्रेयी जी– लेखक, जो भी नायक–नायिका गढ़ता हैं उसमें वह अपने सपनों की माटी का ही इस्तेमाल करता हैं। बदलता हैं तो सिर्फ परिवेश, यानी रंग रोगन।

'इदन्नमम्' की मन्दा में, मेरे कुंआरे पन की भी कथा और चाक की सारंग में मेरे वैवाहिक जीवन के भी अंश आते हैं। दरअसल, ज्यादातर हमारे एहसास ही कला को विस्तार और गहराई देते हैं।

प्रश्न नं0 8. आपके उपन्यास 'झूलानट' का नायक 'बालकिशन' आपके अन्य उपन्यासों के पुरूष चरित्रों से भिन्न है क्यों? इस चरित्र की कल्पना कहाँ से आई?

मैत्रेयी जी– इसे एक प्रयोग ही समझा जा सकता हैं। उसका दीन–हीन होना दरअसल उसकी संवेदनशीलता है, उसके अंदर का सखी भाव है, जो उसकी पत्नी और माँ के बीच बार–बार बंटता है। मैंने कई जगह 'इडिपस कांप्लेक्स' के प्रभाव को देखा है। दूसरी ओर, इस उपन्यास की स्त्री चरित्र 'शीलो' कुरूप, अनपढ़ होने के बाबजूद अपने हक के लिए परंपराएं तोड़ती है। 'बछिया' नहीं करवाती, यानी जो परंपराएं स्त्री को गाय से भी ज्यादा मूक बना देती हैं, उसका खण्डन करती है।

प्रश्न नं0 9. आप स्त्री लेखन को अलग श्रेणी में रखे जाने की हिमायती हैं। यानी, आप रचनात्मकता के लैंगिक विभाजन को मानती हैं?

मैत्रेयी जी – अगर स्त्री लेखन जैसी कोई चीज नहीं होती, तो आज लिख रहीं स्त्रियों की नायिकाएं शरतचन्द्र, जैनेन्द्र की नायिकाओं से भिन्न क्यों होती? दरअसल, यह अनुभवों का फासला है और जो सताया जाता है, उसका अनुभव पीटने वाले के अनुभव से भिन्न होगा ही। आज स्त्रियाँ जब अपने सच का बयान खुद करने लगीं तो साहित्य एकदम से बदल गया। अब एक नयी हवा बह रही है। यह सर्वविदित है कि स्त्री को पुरूष की सहानुभूति नहीं चाहिए, सिर्फ बराबरी भर चाहिए। साथ ही, वह अपने मुक्ति के रास्ते खुद बनाएगी और तय करेगी।

प्रश्न नं0 10. समकालीन कथा साहित्य के विषय में आपकी क्या राय है?

मैत्रेयी जी – नब्बे का दशक आते–आते समकालीन कथा परिदृश्य में तेजी से बदलाव आया है। आज न पाठकों की कमी हैं न लेखकों की। कई पत्रिकाएं पुनः

शुरू हो रही हैं। साथ ही, मैं पाती हूँ, कि महानगरीय जड़ता से दूर हमारे गाँव–कस्बों का माहौल ज्यादा गतिशील है। बौद्धिक वर्ग की सोच में भले ही गाँव वाले भुज, गंवार, जड़ और बेवकूफ हों, लेकिन आज गाँव की स्थिति बदल चुकी हैं। यह सही है कि जनसंख्या के अनुपात में वहाँ शिक्षा का प्रचार–प्रसार कम हुआ हैं पर वहाँ लोग पढ़ रहे है।, लड़कियाँ पढ़ रही हैं। यह अलग बात हैं कि 'विवाह के बाद उनकी दिशा बदल जाती है लेकिन आज की स्त्रियाँ जब चूड़ी–बिछिया न मांग कर किताब माँगती है तो इस परिवर्तन का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है। जहाँ तक स्त्री लेखन का सवाल है तो वह पुराने स्त्री लेखन से अलग है। पुराने लेखन में पुरूषों की इजाजत और बंदिश दोनो दिखती थीं। निश्चय ही, कृष्णा सोबती इसकी अपवाद हैं। लेकिन आज की लेखिकाओं को पितृसत्तात्मक मापदण्डों द्वारा निर्धारित कथा भूमि और शैलीगत औजारों की परवाह नहीं है। हालांकि आज पुरूषवादी समीक्षा को यह नागवार गुजरता है। ऐसे में स्त्री समक्षकों की कमी खलती है। उनका आगमन हो तो महिला लेखन को देखने का एक नया औजार मिलेगा।

द्वितीय अध्याय

मैत्रेयी पुष्पा के सम्पूर्ण साहित्य का परिचय एवं विकास क्रम

(अ) उपन्यास साहित्य–

1. बेतवा बहती रही
2. इदन्नमम्
3. चाक
4. झूलानट
5. अल्मा कबूतरी
6. अगनपाखी
7. विजन
8. कस्तूरी कुंडल बसै
9. कही ईश्वरी फाग

(ब) कहानी संग्रह–

1. चिन्हार
2. गोमा हंसती है
3. ललमनियाँ

(स) नारी विमर्श सम्बन्धी पुस्तक

1. खुली खिड़कियाँ (साक्षात्कार सहित)

(द) कविता संग्रह

1. लकीरें (अप्रकाशित)

मैत्रेयी पुष्पा जी के सम्पूर्ण साहित्य का परिचय एवं विकास क्रम

मैत्रेयी पुष्पा जी के समस्त उपन्यासों का मुख्य आधार है – बुन्देलखण्ड। भारत के भू–भाग में बसे बुन्देलखण्ड को तपोभूमि, कवि–भूमि, वीर–भूमि और उच्च तुंग श्रृंगों से सहस्रों झरनों व प्रपातों से सज्जित सौजन्य भूमि की ख्याति मिली है। प्राकृतिक रमणीयता, अपने निश्चित समय पर षट–ऋतुओं की प्रदक्षिणा और कन्द–मूल–फल, जड़ी–बूटी और अन्नादि जैसे उद्भिज भोज की प्रचुरता ने आदिकाल से ही इस भू–भाग को विशेष महत्व प्रदान कर दिया था। इस पावन भूमि पर कवीन्द्र केशवदास, गोस्वामी तुलसीदास, बिहारी, मतिराम, पद्माकर, के साथ मैथलीशरण गुप्त जैसे अनेक श्रेष्ठ कवि व लेखकगण जन्में हैं।

वर्तमान में भारत का हृदय प्रदेश कहा जाने वाला बुन्देलखण्ड संभाग उत्तर में यमुना नदी तथा दक्षिण में जबलपुर व सागर जनपदों तक फैला हुआ है। प्राकृतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि से अनूठा कहा जाने वाला यह भू–भाग आर्य सभ्यता के आदिम काल से बहुत पहले अनार्यकालीन संस्कृति से जुड़ा हुआ माना जाता है। यमुना, नर्मदा, केन, चम्बल, औंस, धसान, बेतवा, काली सिंध आदि नदियों के तटवर्ती क्षेत्रों से प्राप्त अवशेष इस क्षेत्र को नदी–घाटी सभ्यता से लेकर नागरीय सभ्यता जैसी मानव संस्कृति व इतिहास से जुड़ा बताते हैं। प्राचीन से प्राचीनतम् तीर्थ क्षेत्र तथा समृद्धशाली राजधानियाँ, गढ़ व्यापारिक नगरों, मंदिरों, गुफाओं और स्तूपों के अवशेष यहाँ कितने ही स्थानों पर पाये जाते हैं। इन्हीं सब को अपने उपन्यासों का आधार बनाकर मैत्रेयी जी ने उत्कृष्ट बुन्देली उपन्यास लिखे हैं। उनकी कथायें इन्हीं नदियों, पोखरों और खण्डहरों के बीच पनपती है और सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में फैल जाती हैं।

वर्तमान में बुन्देलखण्ड आर्थिक दृष्टि से भले ही एक पिछड़ा क्षेत्र माना जाता है इसका अतीत अत्यन्त समृद्धशाली रहा है। सर्वोतोन्मुखी वैभव का दर्शन कराने वाली बुन्देल भूमि की प्राचीन अद्भुत विशेषताएँ और इतिहास को दिशा देने वाली प्रतिमाएं इन भू–भाग के समाज को अनुप्राणित करती रहीं हैं और ऐसी उज्जल परंम्पराओं का कोई स्वरूप इस भू–भाग के लोक–साहित्य तथा लोक काल में रूपायित होता रहा है। यहाँ की संस्कृति और लोक साहित्य आज भी ग्रामों में सुरक्षित हैं। इसी से मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों में बुन्देलखण्ड के ग्रामीण जीवन व लोक संस्कृति को ही वरीयता

दी है। अनुभूतियों के अक्षय स्रोत का रूप लिये किसी भू–भाग का लोक साहित्य जनपद विशेष के हित–साधन तक सीमित न रहकर एक बड़े भू–भाग में बसे समूचें संघबद्ध मानव समाज का हित साधता रहता हैं। भौगोलिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप यह क्षेत्र–विशेषकर एक–सी भाषा, संस्कृति और साहित्य से ओतप्रोत बना रहा। इतने बड़े भू–भाग में जिस भाषा अथवा बोली का प्रयोग हुआ है, उसे बुन्देली का संबोधन प्राप्त है। इसी भाषा व बोली को मैत्रेयी जी ने अपनी रचनाओं में विशेष स्थान दिया हैं।

ऐतिहासिक, साहित्यिक व कलाकृतियों से परिपूर्ण बुन्देलखण्ड की पावन भूमि परम वन्दनीय है और जो इसमें बसे लोगों को ऐतिहासिक गरिमा तथा संस्कृति से संबद्ध बनाए रखती हैं। बुन्देलखण्ड की लब्ध प्रतिष्ठित कलाकार और साहित्यकार मैत्रेयी पुष्पा को बुन्देलखण्डीय संस्कृति, सभ्यता, लोकाचार, अनाचार, लोकगीतों आदि का पूर्ण ज्ञाता ही माना जायेगा। इनकी चिन्तनशील एवं रसमाधुर्य से युक्त सृजनात्मक चेष्टा समाज में सभी को प्रेरणा प्रदान करती रहती है।

वेदों के पश्चात साहित्य की जो अखण्ड धारा प्रावाहित हुयी वह आज तक बिना किसी बाधा के गतिमान है। साहित्य रूपी इस पयस्विनी में भिन्न–भिन्न धाराओं के समान अनादि काल से भिन्न–भिन्न साहित्यकार उत्पन्न हुये। जिनके साहित्य के अध्ययन के पश्चात् आज का पाठक धन्य हुआ है। इन्हीं में से बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक की प्रसिद्ध उपन्यासकारा मैत्रेयी पुष्पा जी हैं। जिन्होंने महानगरों के सीमित ड्राइंगरूमों तक के लेखन को ग्रामीण पृष्ठभूमि से जोड़ उसे विस्तृतता प्रदान की और यह विस्तार इतना अधिक बढ़ा कि वे एक बाद एक ग्रामीण भूमि से रंजित उपन्यास लिखती ही चली गयीं। इसी से इन्हें 'ग्राम्य जीवन' की कथाकार की संज्ञा प्रदान की गयी। कुछ आक्षेप भी लगे कि ग्रामीण भूमि में जन्मी स्त्री और लिख भी क्या सकती है? किन्तु मैत्रेयी न हतोत्साहित हुयीं और न हारी, बल्कि अपनी इसी 'गंवारू' जिद के चलते वे हमें एक से एक उत्कृष्ट ग्रामीण परिवेश से रचे बसे उपन्यास दे सकीं। कहानियां हो या उपन्यास न मैत्रेयी ने गांव का दामन छोड़ा, न गाँव ने मैत्रेयी का।

ग्रामीण परिवेश से शुरू होकर यह रचनायें जैसे–जैसे आगे बढ़ती हैं, पाठक के सामने स्त्री विमर्श की जटिलतायें 'सहजता' से खुलती जाती हैं, साथ ही मैत्रेयी जी ने

मानव जीवन के ठोस यथार्थ के तीखे–मीठे अनुभवों को भी अपने उपन्यासों में समेटा है। ये मानव के आपसी लगाव–दुराव की संघर्षपूर्ण गाथायें हैं। जहाँ इन कहानियों में निजी जीवन की पीड़ा का चित्रण है वही राजनीतिक परिवेश को भी समेटा गया है। जो पाठकगण को अपनी ओर आकर्षित कर सामाजिक यथार्थ से जोड़ता है।

उपन्यास या कहानियों आदि में स्त्रियों के चरित्र का जितना अच्छा चित्रण स्त्री लेखिकाओं के द्वारा होता है, वैसा अच्छा चित्रण और विकास पुरूष लेखको के द्वारा नहीं होता। वस्तुतः इस बात में कोई संदेह नहीं है। नारी हृदय का जैसा अच्छा ज्ञान नारी को हो सकता है–वैसा पुरूष के लिये असम्भव है।

चूंकि हमारा समाज पुरूष प्रधान रहा है इसलिये यहाँ नारी सर्वत्र बन्धनयुक्त है। उसका जीवन कई समस्याओं से घिरा है। उन समस्याओं के निराकरण एवं अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए नारी अनवरत् रूप से संघर्षशील है। ज्ञातव्य है कि एक नारी के हृदय को नारी ही पहचान सकती है। अतएवं बहुत सी उपन्यासों का केन्द्र बिन्दु बनाकर उनकी समस्याओं का निराकरण करना चाहा है।

मैत्रेयी पुष्पा जी ने नारी विशेषकर ग्रामीण नारी के दुःख–दर्द को, उसकी संवेदना को प्रत्येक रूप में जाना है एवं अपने कथा–साहित्य व उपन्यास–साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। आपका साहित्य भण्डार उत्कृष्ट है। अब तक नौ उपन्यास तथा तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। स्त्री–विमर्श–सम्बन्धी एक विशेष पुस्तक 'खुली–खिड़कियाँ' भी समाज के समक्ष हैं। समुपलब्ध साहित्य का विकास क्रम और परिचय दृष्टव्य है–

अ. उपन्यास साहित्य

उपन्यास मानव जीवन का गद्य ही नहीं, वैयक्तिक जीवन का प्रत्यक्ष प्रभाव भी है। यह एक लोकप्रिय विधा है। इसमें किसी भी चरित्र का चित्रण विस्तार से किया जा सकता है। यह एक विस्तृत फलक है, इसी से मैत्रेयी ने नारी के प्रति अपने विचारों व उद्गारों को रूप देने के लिए यही फलक चुना और नारी जीवन का चित्रण बड़े ही स्वाभाविक ढंग से किया। उपन्यास के आरम्भ से आज तक उपन्यास साहित्य में नारी जीवन के विविध पक्षों का चित्रण मिलता है। हिन्दी उपन्यास अपने उन्मेष काल से ही

सामाजिक सरोकार से जुड़ा रहा है। वस्तुतः भारतीय जन–जीवन की मार्मिक गाथा के रूप में उपन्यास का विकास हुआ और प्रेमचन्द से ही भारतीय सामाजिक समस्याओं का चित्रण उपन्यासों में आरम्भ हो गया। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में शोषितों की श्रृंखला में नारी शिखर पर है। यही कारण है कि मैत्रेयी जी ने अपने महिला कथा लेखन के माध्यम से नारी के प्रति संवेदना ही नहीं समस्त परम्परा व्यक्त की है तथा इस दिशा में अनेक प्रयास किये हैं। अपने उपन्यासों में लेखिका ने इसी समस्या का पर्यालोचन किया है। विदुषी मैत्रेयी जी की प्रस्तुत कृतियों में नारी जीवन से जुड़ी अनेक समस्याओं की ओर संकेत किया है।

बुन्देलखण्ड की जमीं पर जन्मीं और पली बढ़ी मैत्रेयी पुष्पा बचपन से ही अपने परिवेश के प्रति जागरूक बालिका थीं। इसी से उनके उपन्यास व कहानियाँ ग्रामाँचल को आधार बनाकर लिखे गये हैं। उनके उपन्यासों में नारी अपनी सम्पूर्ण अस्मिता व संवेदना के साथ साथ गाँव की धरती के खेत खलिहान, नदी नाले, पशु पक्षी, हल–बैल, भाषा, गीत, त्यौहार आदि भी समान रूप से स्थान पाते हैं, और ये सब मिलकर एक मार्मिक व संवेदना से पूर्ण कथा कहते हैं।

मैत्रेयी जी के अब तक के नौ उपन्यास प्रकाश में आ चुके हैं। जिनमें, 'विजन' नामक उपन्यास छोड़कर सभी में ग्राम जीवन का सफल चित्रण किया गया है। यहाँ क्रमबद्ध ढंग से सभी उपन्यासों की सम्यक विवेचन प्रस्तुत है –

१. बेतवा बहती रही

मैत्रेयी पुष्पा का प्रथम उपन्यास–"बेतवा बहती रही।" नारी जीवन की यंत्रणाओं से रक्तरंजित उपन्यास। एक ऐसी कहानी जो नारी संवेदना के प्रति सोचने को विवश कर दे। इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1994 को किताब घर, नई दिल्ली से हुआ था। उस समय मैत्रेयी पुष्पा एकदम नवीन उपन्यासकारा थीं। किन्तु उन्होंने अपने प्रथम उपन्यास से ही सिद्ध कर दिया कि वे मानवीय संवेदनाओं को छू लेने में सिद्धहस्त कलाकार हैं। तभी तो इनकी प्रथम कृति पर ही 'उत्तर प्रदेश' साहित्य संस्थान की ओर सन् 1995 को 'प्रेमचन्द सम्मान' से नवाजा गया। जो एक नवीन उपन्यासकारा की बहुत बड़ी उपलब्धि थी। बेतवा बहती रही एक ऐसी 'उर्वशी' की कहानी है जिसने आजीवन सामाजिक रीति रिवाजों व कुप्रथाओं के चलते कष्टों को भोगा।

हमारे देश में एक ओर जहाँ अंधविश्वासों पर विश्वास करने वालों की कोई कमी नहीं, वहीं दूसरी ओर प्राचीन रूढ़ियाँ समाज में अपना मजबूत सीन बनाये हुये हैं। जिसके चलतें ग्रामीण समाज में नारी की दशा सोचनीय बनी हुई है। अशिक्षा का अंधकार यहाँ चहुँ ओर व्याप्त है और ऐसे ही अंधियारों और यातनाओं के बीच भटकती उर्वशी—

राजगिरी में उर्वशी और मीरा दो हम उम्र सखियाँ। घर भी आपस में लगा हुआ। उर्वशी ने जिस घर में जन्म लिया था, वहाँ बड़ी विपन्नता थी। दरिद्रता का घोर साम्राज्य। घर की दीवार के उस पार रोज ही रोटियों के लाले पड़ते। उर्वशी के पिता के पास नाम—मात्र की जमीन थी। बित्ते भर धरती। उसके बल पर किसी बाल बच्चों वाले परिवार का भरण—पोषण सम्भव नहीं था। दूसरों की खेती जोत पर लेते, बटिया पर उठाते। साल भर कड़ी मेहनत करते। हिम्मत करके बोते, उगाते, काटते और ईमानदारी से मौरूसीदार की पाई—पाई चुका देते। बाल—बच्चों के पेट को चार दाने घर में आ जाते। उर्वशी ज्यों—ज्यों बड़ी हुयी और भी सौन्दर्यशालिनी होती गयी। मीरा की नानी कहतीं— "कैसी गुलाब के फूल—सी मोंडी है मोहन सिंह की। कहूँ राजरनिवास में पैदा होती। यहाँ कहाँ जनमी है दिलिद्दर में।" मीरा भी उसके रूप को देखती रह जाती। दोनों सखियाँ साथ खेलती, हंसती—गाती और घंटो बेतवा किनारे बतियाती रहतीं। अचानक पढ़ाई के लिए मीरा को झाँसी जाना पड़ा और उर्वशी अकेली रह गयी। छुट्टी में मीरा अपने पिता के पास चन्दनपुर न जाकर राजगिरी उर्वशी के पास आ जाती और फिर दोनों अपनी दुनिया में रम जाती।

उर्वशी बड़ी हुयी, तो उसकी शादी की चिन्ता हुयी। उर्वशी के भाई अजीत को बहन से कोई सरोकार न था। उसने अपने हाथ खड़े कर दिये और उसकी शादी से अपना पल्ला झाड़ लिया। अतः मीरा के नाना और उर्वशी के पिता ने यथासम्भव सुयोग्य वर तलाश लिया— सर्वदमन। सर्वदमन—कानून पढ़ने वाला लड़का। चाल—चलन, बातचीत और व्यवहार का गुणी। सभी ने उर्वशी के भाग्य को सराहा। उर्वशी ब्याह कर सिरसा चली गयी और मीरा वापस पढ़ने झाँसी। पत्र के माध्यम से आपसी हालचाल मालूम पड़ते रहते। अचानक उर्वशी की जिंदगी में बज्रपात। सर्वदमन की सड़क दुर्घटना में मृत्यु। उर्वशी विक्षिप्त, मीरा शोक संतप्त। उर्वशी की गोद में छोटा सा बालक। स्थिति असहज। कुछ समय बीता। घाव भरे। स्थिति सहज हुयी तो

उर्वशी को चेत आया। घर बार सम्भाल जीवन दाऊ जी और जेठानी की सेवा में अर्पण कर दिया। जेठ जेठानी उसे बहुत प्रेम करते और उसकी दशा के प्रति चिन्तित रहते। लेकिन भाई अजीत के मंसूबे कुछ और थे।और वह उर्वशी को वापिस लाकर अपने स्वार्थ की खातिर मीरा के पिता बरजोर सिंह से शादी कर देता है। एक बूढ़े आदमी से। मात्र उसकी कामभावना की तृप्ति के लिए। उर्वशी का जीवन नरक समान। जहाँ दो सखियाँ दिनभर चहका करती थीं। अब माँ–बेटी के रिश्ते में बंधी बैठी थीं। उर्वशी ने खाना–पीना–बोलना सब लगभग बन्द कर दिया, सिर्फ शून्य में ताका करती। मीरा दुखित, उर्वशी से भरपूर आँख न मिला पाती, अपनी पिता की करनी पर शर्मिंदा। मीरा के भाई उदय व विजय भी उर्वशी से आँख चुराते जिसे कभी बहिन माना था, आज वह माँ बनी सारे घर का बोझ, अपने कंधे पर उठाये है। उर्वशी रात दिन काम करती। समय रहते मीरा का विवाह भी हो गया। उर्वशी बीमार रहने लगी। एक बार मरने की चेष्टा की थी, उसी बेतवा मइया के अंक में समा जाने की अदम्य लालसा, लेकिन मर न सकी। शायद उसके जीवन के कष्टों का अन्त न था। तभी तो रातदिन तड़पती, पता चला दोनों किडनी खराब हो चुकी हैं। इलाज जल्द न हुआ तो मृत्यु सम्भव। वही बरजोर सिंह जो उस के रूप को देखकर कामातुर रहते थे, उसकी ऐसी दशा देख उससे घृणा से मुंह फेर लेते। घृणा का कारण उर्वशी द्वारा विजय की मृत्यु के पश्चात उसकी बहू से उदय का विवाह करवा देना। उनके दहेज के मंसूबो पर पानी। बस, उर्वशी आँख का कांटा बन गयी। इसके चलते उन्होने थोड़ी बहुत हारी बीमारी में उर्वशी को एक झोलाछाप डॉक्टर के माध्यम से दवाई रूप में धीमा जहर देना शुरूकर दिया और अंततः उर्वशी इस दशा में पहुँच गयी कि उसका बिस्तर से उठना मुश्किल हो गया। खून की उल्टियाँ। बिस्तर से लगा सूखी हड्डियों का ढांचा। दिल्ली ले जाने की तैयारी। सब ट्रैक्टर मे उर्वशी को ले साथ चले। लेकिन जैसे ही बेतवा का किनारा आया, उर्वशी ने अपने प्राण त्याग दिये। उर्वशी, जिसने आजीवन कष्ट ही कष्ट झेले और लोगों को जीवन दान दिया, वह यों ही सबको रोता बिलखता छोड़ सदा सदा के लिए इस रूढ़िग्रस्त समाज को अकेला छोड़ गयी। छोड़ गयी उस बेतवा को, सदा बहने के लिए, जिसमें उसे सदा के लिए समा जाने की अन्तिम लालसा थी।

मुख्य कथानक इतना ही है किन्तु साथ साथ शोषण में डूबे समाज का भी चित्रण है। एक ऐसे अंचल विशेष की कहानी, जहाँ एक मीरा या उर्वशी नहीं अनेक मीरायें व उर्वशियां हैं, जो इस शोषित समाज में जीने को अभिशप्त हैं। जिस प्रकार

बेतवा अपने साथ समस्त खरपतवार, गंदगी को बहा ले जाती है और सत्त गतिशील है, उसी प्रकार उर्वशी भी इस गंदेले–मैले, कीचड़युक्त मानसिकता वाले समाज में सब कुछ सहन करते हुये भी गतिशील है। जैसे बेतवा है सदा बहने के लिए वैसे उर्वशी है सदा सहने के लिए और सदा सहेगी। क्योंकि मैत्रेयी जी का मानना है कि औरत होती ही सदा सहने के लिये, झेलने के लिए और जूझने के लिए।

२. इदन्नमम्

यह मैत्रेयी पुष्पा जी का द्वितीय और सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यास है। इसका प्रकाशन भी सन् 1994 में किताब घर, नयी दिल्ली से हुआ था। यह विशुद्ध बुन्देलखण्डी उपन्यास है। इसके प्रकाशित होते ही सभी ने मैत्रेयी जी के लेखन का लोहा माना। मात्र इस एक उपन्यास पर ही मैत्रेयी को साहित्य संस्थानों की ओर से पांच पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। प्रथम पुरस्कार 'शाश्वती संस्था', बंगलौर की ओर से 1994 को "नंजना गुड्डू तिरूमालम्बा पुरस्कार" द्वितीय पुरस्कार "उ0प्र0 साहित्य संस्थान" की ओर से "प्रेमचन्द सम्मान" तृतीय पुरस्कार 'म0प्र0 साहित्य परिषद, की ओर से 'वीरसिंह देव पुरस्कार' चतुर्थ पुरस्कार 1998 में 'हिन्दी अकादमी, दिल्ली की ओर से 'साहित्यकार सम्मान, पंचम पुरस्कार सन् 2000 में 'कथा–क्रम सम्मान', लखनऊ की ओर से। जो अपने आप में व हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

'इदन्नमम' – "बऊ (दादी), प्रेम (माँ) और मंदा, तीन पीढ़ियों की यह बेहद सहज कहानी तीनों को समानांतर भी रखती है और एक दूसरे के विरूद्ध भी। बिना किसी बड़बोले वक्तव्य के मैत्रेयी ने गहमागहमी से भरपूर इस कहानी को जिस आयासहीन ढंग से कहा है, उसमें नारी सुलभ चित्रात्मकता भी है और मुहावरेदार आत्मीयता भी। हिन्दी कथा–रचनाओं की सुसंस्कृत सटीक और बेरंगी भाषा के बीच गाँव की इस कहानी को मैत्रेयी ने लोक कथाओं के स्वाभाविक ढंग से लिख दिया है, मानो मंदा और उसके आस–पास के लोग खुद अपनी बात कह रहे हों– अपनी भाषा और लहजे में, बुन्देलखण्डी लयात्मकता के साथ.......अपने आस पास घरघराते क्रैशरों और ट्रैक्टरों के बीच।"[1]

---

[1] 'इदन्नमम' की भूमिका से – राजेन्द्र यादव

कहानी की शुरूआत तेरह वर्षीय मंदाकिनी और बऊ के परिस्थितिवश दूसरे गाँव श्यामली में प्रवेश करने से होती है, प्रवेश करते ही अनेकानेक शंकाओं, प्रश्नों और परिस्थितियों से सामना होता है। जिन्हें मंदा का बाल मन नहीं समझ पाता और अपनी दादी (बऊ) से अपनी माँ और पिता के बावत प्रश्न करने लगती है। न चाहते हुये भी बऊ को मंदा को वह सब बताना पड़ता है जिसे वे नहीं बताना चाहती थी कि किस प्रकार लोभ लालच व प्रेम पिरीत के चलते तुम्हारी माँ (प्रेम) अपने जीजा के संग तुझे छोड़ भाग गयी और किस प्रकार तेरे पिता राजनीतिक षड़यन्त्रों का शिकार हो मृत्यु को प्राप्त हुये। यह सब सुनकर मंदा को बाल मन पर गहरा असर होता है और वह प्रण लेती है कि वह अपने पिता महेन्द्र के सपने (कि गांव के अस्पताल में डाक्टर को लाने का सपना) को पूरा करेगी। ज्यों–ज्यों मंदा बड़ी होती हैं– सबका मन जीतती चलती है साथ ही उसका प्रेम मकरन्द नाम के लड़के से हो जाता है। उनके विवाह की बात भी चलती है लेकिन मकरन्द को 'डाक्टरी' की पढ़ाई के लिए शहर जाना पड़ता है। मंदा उसका इंतजार करती है। इधर मंदा का विविध ग्रामीण समस्याओं से सामना होता है। वह एक एक कर समस्याओं को सुलझाने में लगी रहती है, वह कुसुमा भाभी और दाऊ जी के प्रेम को देख भाभी से स्त्री प्रेम के नये अर्थ जानती है। अस्पताल की बाबत वह दिन रात भाग दौड़ कर अफसरों को हलकान किये रहती है और आखिर में डाक्टर को गाँव में लाकर ही दम लेती है। अब उसका उद्देश्य है – ग्रामीण विकास। इसके लिए वह चहुँ तरफा कोशिश करती रहती। कुछ बुरी मानसिकता के लोग उसे बदनाम और हलकान करे रहते हैं किन्तु मंदा हिम्मत नहीं हारती और कड़ाई से सबका सामना कर स्त्रियों के सामने एक मिशाल पेश करती है, यहाँ तक कि उसकी इज्जत लुट जाती है फिर भी वह साहस नहीं छोड़ती और वीरता के साथ सबका सामना करती है। वह अपने बल पर पहले गाँव में ट्रेक्टर, बीज खाद्य, क्रैशर और रोजगार की व्यवस्था करती है। इस प्रकार वह सबके सुख दुख की साथी बनती है। बीच बीच में उसके विवाह की चर्चा चलती है किन्तु मंदा ह्रदय में मकरन्द को ही अपना सब कुछ मान आजीवन उसके इंतजार में काट देती है। कहानी के बीच में अनेकानेक पात्रों के माध्यम से अनेकानेक घटनायें हमारे सामने आती है, जो पाठक को यह सोचने पर विवश करती है कि ग्रामीण जीवन और वहाँ का स्त्री जीवन कितना कठिन और संघर्षमय है।

सुगना, कुसुमा, डबल बब्बा, कायले वाले महाराज, जगेसर आदि पात्र कथानक में रोचकता बनाये रखने के साथ–साथ उसे आगे बढ़ाने में भी सहायक है। कथानक में कहीं भी एकरसता का समावेश नहीं होने पाया है, और लगातार पाठक उससे बंधा रहता है। कहा जाता है कि प्रेमचन्द के गोदान, की भाँति 'इदन्नमम' में भी सौ से अधिक पात्र हैं, जो प्रसंगवश अपनी प्रासंगिकता बनाये रखते हैं।

यह मैत्रेयी पुष्पा जी का पहला सुप्रसिद्ध उपन्यास है जो स्त्री शक्ति को हर कोण से दर्शाता है। वे चाहे वृद्धावस्था की बऊ जो या युवावस्था की प्रेम व कुसुमा, चाहे किशोरावस्था की मंदा व सुगना सभी अपने क्षेत्र में साहस का परिचय दिखलाती हुयी समाज से लोहा लेने को तैयार हैं। वे समाज द्वारा बनायी गयी परिपाटी को दरकिनार कर एक नवीन मार्ग तयकर अपना संसार खुद बनाती हैं। चूँकि किशोर व युवावस्था में उत्साह व ताकत ज्यादा होती हे। इसी से मैत्रेयी ने मंदा के माध्यम से समस्त युवा वर्ग को सचेत किया है। कि यदि वे चाहे तो अपना संसार स्वयं रच सकती हैं, सिर्फ अपने बल पर। लड़कियों को तो कमर कस ही लेनी चाहिए इस दो मुँहे समाज से लड़ने को और जगेसर व कैलाश मास्टर जैसों को बता देना चाहिए कि हमें कमजोर न समझें। जिस प्रकार पुरूष के हर अपराध व पाप समाज में क्षम्य माने जाते हैं उसी प्रकार स्त्री भी अपने छोटे से अपराध को अक्षम्य मान अपने को स्वाहा न कर समाज से अपने हक–अधिकार मांगने चाहिए और पुरूष सत्तात्मक इस समाज को, मनुष्य का मूल रूप नारी और जनसंख्या का आधा प्रतिनिधित्व करने वाली इस नारी को यह अधिकार देने ही होंगे हर कीमत पर। शायद यहीं संदेश है मैत्रेयी का।

३. चाक

चाक मैत्रेयी जी का बहुचर्चित उपन्यास है। यह 1997 को राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में एक ऐसी स्त्री की कहानी है, जो अदम्य जिजीविषा और साहस के बल पर अकेले ही इस विद्रूप समाज से लड़ रही है।

उपन्यास का आरम्भ विचारों में निमग्न उपन्यास की नायिका सारंग से होता है, जिसकी चचेरी बहन रेशम की 'मौत' हो गयी है। 'मौत' या 'कत्ल'। इसी सच्चाई को वह समाज के सामने लाना चाहती है और बताना चाहती है किस प्रकार समाज के तथाकथित हत्यारे एक 'हत्या' को अपने षडयन्त्रों से 'मौत' का नाम दे देते हैं। इसके

लिए सर्वप्रथम वह अपने पति रंजीत को विश्वास में लेकर कार्यवाही प्रारम्भ करवाती है और दोषियों को सजा दिलवाती है लेकिन वह आश्चर्यचकित रह जाती है जब देखती है किस प्रकार समाज के ये गुनहगार पैसे और तबके के बल पर आसानी से छूट जाते हैं और समाज उनका कुछ नहीं बिगाड़ पाता और स्त्रियाँ मूक दर्शक की भाँति सब कुछ बनता बिगड़ता देखती रहती हैं। शायद यही स्त्री के स्वातन्त्र्य की दबी कुचली कामना सारंग के भीतर पनपने लगती है और वह एक के बाद एक ऐसे कार्यो को अंजाम देती जाती है जो उसके पति रंजीत और अन्य पुरूष बर्दास्त नहीं कर पाते और उसे प्रताड़ित करते हैं। स्त्रियाँ विरोध करती हैं लेकिन भीतर ही भीतर उसी के समान स्वातन्त्र्य की कामना किया करती हैं। सब मिलकर भी सारंग की हिम्मत को तोड़ नहीं पाते है और अतंतः वह अपने तरीके से जीने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दी जाती है। सारंग स्त्रियों के हक की खातिर आखिरकार मोर्चा उठा ही लेती है और चहुँ ओर विरोध के बावजूद भी वह अपने पति रंजीत के दावेदार होने पर भी 'जिला पंचायत अध्यक्ष' का चुनाव लड़ने के लिए पर्चा दाखिल कर देती है और अपनी लड़ाई स्वयं लड़ती है। 'श्रीधर' जो की उसी गांव के मास्टर है और सारंग के विचारों से अभिभूत उसे मन ही मन प्रेम करते हैं, सारंग के हर उचित कार्य में भरपूर सहयोग देते है और उसे आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। 'श्रीधर' और भंवर व अपने बेटे चन्दन का सहयोग पाकर सारंग इतना आगे बढ़ जाती है कि अब उसे किसी का डर नहीं रह जाता, न पति का न समाज का। अंततः ग्रामीण स्त्रियाँ भी उसके साहस और स्त्रीत्व को देखकर अपने अपने घरों से निकलकर उसके पक्ष में आ खड़ी होती हैं। इस प्रकार सारंग अपने समस्त दावेदारों और समाज के शोहदों को पछाड़ती हुयी सबसे प्रबल दावेदार व चरित्र के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती है। पति रंजीत अपने पुरूष दंभ और समाज के दबाब के चलते उसका सहयोग नहीं कर पाते है और मानसिक दबाब के चलते अपना सारा गुस्सा सारंग पर ही उतारते रहते हैं। लेकिन जब उन्हें समाज की सच्चाई व षडयन्त्रों का भान होता है तो वे शराब में डूबे अपने घर की ओर चल देते हैं, अपनी सारंग के पास। उसके पास जिसके विचारों से अब तक नफरत करते आये हैं लेकिन अब उन्हें अहसास हो चला है कि वास्तव में अपना कौन है कौन और पराया और जब वे समाज द्वारा दुत्कारे अपनी चौखट पर पहुँचते है तो उन्हें बाबा, चन्दन और सारंग के अपनेपन की सुंगन्ध चहुँ ओर घेर लेती है और वे महसूसते हैं कि जैसे वे चाक पर बैठे हों। यहीं उपन्यास का अंत हो जाता है।

ग्रामीण परिवेश से रची बसी यह कहानी जैसे जैसे आगे बढ़ती है, ग्रामीण जीवन की दुरूहता, स्त्री जीवन परदेदारियाँ, उच्च पद पर आसीन व्यक्तियों के षडयन्त्र आदि का पर्दाफाश होता जाता है। गहरे भावनात्मक संवेद से लिखी गयी यह कहानी स्त्री जीवन के नये अध्याय खोलती हैं। सारंग एक ऐसी स्त्री के रूप में उभरकर सामने आती जो अकेले ही स्वतन्त्र विचारों के बल पर इस रूढ़िवादी समाज से लोहा लेना चाहती है जबकि रंजीत एक ऐसे पति की भूमिका में है जो अनेकानेक दबाव के चलते सारंग का साथ नहीं दे पाते और सदैव भ्रमित रहते है। भंवर नामक पात्र भगवान 'लक्ष्मण' की भूमिका में नजर आते हैं जो सारंग का साथ तो देते है किन्तु जल्दी ही धैर्य भी खो देते है। मास्टर श्रीधर एक ऐसे समाज सुधारक के रूप में हमारे सामने आते है जो अनेक कठिनाइयाँ व आरोप प्रत्यारोप सहन कर अपने मुहिम पर डटे रहते हैं और अंततः समाज को एक नयी दिशा प्रदान करते हैं। उपन्यास का सर्वाधिक प्रबल व उज्जवल पक्ष यह है कि सारंग जिस स्वातन्त्र्य की खोज में है वह पुरूष से मुक्ति नहीं बल्कि पुरूष के विचारों से मुक्ति है तभी तो वह पति रंजीत की समस्त उलाहनों और प्रताड़नाओं के बावजूद उसका साथ नहीं छोड़ती और उससे निरन्तर वाद–विवाद करके उसे सत्य की ओर ले जाना चाहती है और स्त्री के प्रति बनायी समाज की धारणा तोड़ना चाहती है और अंततः इसमें सफल भी होती है।

सारंग, रेशम, गुलकंदी, संतो, लौंगसिरी बीबी, चुनिया नाइन, हरि प्यारी, आदि चरित्र के माध्यम से मैत्रेयी जी ने नारी के विभिन्न रूप और परिस्थितियों को दर्शाया है और साथ ही यह भी दिखलाया है कि वे एक ऐसी आग को अन्दर ही अन्दर लिये है जो बाहर आये तो इस पुरूष समाज को खाक कर दें। अतः पुरूष समाज को पहले ही चेत जाना चाहिए कि स्त्री किसी मायने में कमजोर नहीं। यदि वह आपनी करनी पर आ जाये तो समाज के दस बड़े व्यक्ति भी उसका रास्ता नहीं रोक सकते। स्त्री स्वातन्त्र्य को विभिन्न घटनाओं के माध्यम से दर्शाया गया है जैसे– रेशम का विधवा होने के बाद गर्भ धारण करना। गुलकंदी का विसुनदेवा के संग प्रेम विवाह, सारंग का श्रीधर से शारीरिक सम्बन्ध, बेटे चंदन को अपनी मरजी से स्कूल में दाखिला दिलाना, चुनाव में अध्यक्षी का पर्चा दाखिल करना, बनिया की बहू का कैलाश सिंह से अभिसार के लिए आमन्त्रण, कलावती चाची का कैलासी सिंह से शारीरिक भोग आदि प्रकरण हैं,

जो स्त्री अदम्य कामनाओं को उजागर कर हमारे समक्ष स्त्री जीवन को नये सिरे से परिभाषित करते हैं।

४. झूलानट

झूलानट मैत्रेयी पुष्पा जी का सर्वाधिक लघु और रोचक उपन्यास है। पहला पुस्तकालय संस्करण राजकमल, नई दिल्ली से 1999 में प्रकाशित हुआ था। 'झूलानट' के सम्बन्ध में राजेन्द्र यादव का कथन है–"पता नहीं झूलानट शीलो की कहानी है या बालकिशन की। हाँ, अंत तक, प्रकृति और पुरूष की यह 'लीला' एक अप्रत्याशित उदात्त अर्थ में जरूर उद्भासित होने लगती है।

इससे स्पष्ट होता है कि मैत्रेयी जी के अन्य उपन्यास की भाँति सिर्फ नारी प्रधान उपन्यास ही नहीं पुरूष प्रधान उपन्यास भी है। इसमें शीलो के साथ साथ बाल किशन का चरित्र भी उतना ही सशक्तता से हमारे सामने आता है।

कहानी का प्रारम्भ बाल किशन की निद्रा से होता है, जो माँ दुर्गा के स्वप्न में निमग्न था, लेकिन माँ और पत्नी शीलो की आपसी लड़ाई, कलह, रार, झगड़े से उसकी निद्रा खुल जाती है और फिर वह देखता है कि वर्षों से चला आ रहा दोनों का आपसी युद्ध फिर दोनों आपस में लड़ना छोड़ बाल किशन को कोसने लगती हैं। जब वह किसी एक को समझाता तो दूसरी नाराज हो जाती है, इस प्रकार वह दोनों के झगड़े को सुलझाने में नाकाम रहता है।

बाल किशन अपने अब तक के जीवन का पुनरावलोकन करता है कि वह बचपन से ही अंतर्मुखी किस्म का बालक था। माँ ने जहाँ समस्त दुलार बड़े भाई सुमेर पर उड़ेल, उसे अपने प्यार से वंचित रखा वहीं बड़े भाई सुमेर ने पढ़ाई के चलते उसे खूब प्रताड़ित किया। पिता थे नहीं। ऐसे में बालकिशन दब्बू बनता चला गया और अंतर्मुखी व्यक्तित्व का स्वामी हो गया, चूँकि उसे बचपन से ही डांट फटकार और अयोग्यता का खिताब मिला था, इसलिए वह अपने आप को नाकाबिल समझने लगा था, इसी के चलते वह अपने मन की बात किसी से नहीं कह पाता था।

इसी बीच बड़े भाई की पुलिस में नौकरी लगने पर शादी कर दी जाती लेकिन वह अपनी नयी नवेली दुल्हन शीलो को उसके असुन्दर रूप के कारण छोड़कर शहर

नौकरी के लिए चला जाता हैं। शीलो उसके इंतजार में तिल–तिल कर जलती रहती है।

शीलो–"गाँव की साधारण सी औरत है शीलो – न बहुत सुन्दर और न बहुत सुघड़.......लगभग अनपढ़ न उसने मनोविज्ञान पढ़ा है, न समाजशास्त्र जानती है। राजनीति और स्त्री विमर्श की भाषा का भी उसे पता नहीं है। पति उसकी छाया से भागता है। मगर तिरस्कार, अपमान और उपेक्षा की यह मार न शीलो को कुएँ– बाबड़ी की ओर धकेलती है और न आग लगाकर छुटकारा पाने की ओर। वशीकरण के सारे तीर–तरकश टूट जाने के बाद उसके पास रह जाता है जीने का निःशब्द संकल्प और श्रम की ताकत– एक अडिग धैर्य और स्त्री होने की जिजीविषा उसे लगता है कि उसके हाथ की छठी अंगुली ही उसका भाग्य लिख रही है......और उसे ही बदलना होगा।[2] और सचमुच ही एक दिन शीलो तेजधार हथियार लेकर बेजान सी लटकने वाली अपनी उस अंगुली को एक झटके में काट डालती है उन समस्त सामाजिक बंधनों को जो उस जैसी स्त्री के लिए बनाये गये है। अब वह अपने तरीके से जीने के लिए स्वतन्त्र है। पति और समाज की उपेक्षा के चलते, प्यार और आत्मीयता की भूखी शीलो, बालकिशन के पुरूषीय शरीर से प्रभावित हो उससे शारीरिक सम्बन्ध बना उसे ही अपना पति मान लेती है, उधर उसका देवर बालकिशन भी इन्हीं सब उपेक्षाओं और समस्याओं के चलते उसे अपना लेता है और भरपूर प्यार देता व पाता है किन्तु समाज को यह स्वीकार नहीं होता है और लोग उस पर चरित्रहीनता का आरोप लगाकर उपेक्षित करते है। सास सामाजिक बंधनों के चलते 'बछिया' दान कर देवर बालकिशन से विवाह कर देना चाहती किन्तु शीलो को यह स्वीकर नहीं, इसलिए नहीं कि उसे बाल किशन से प्यार नहीं, इसलिए कि उसे अब सामाजिक बंधनों की दरकार नहीं। वह उन समस्त रूढ़ियों और प्रथाओं को मानने से इंकार कर देती है जो झूठी परम्परा निभाते चले आये हैं। इसी से सास बहू में निरन्तर छोटी–बड़ी बातों को लेकर झगड़ा होता रहता है और बीच में पिसता है बालकिशन। उसकी स्थिति उस गधे के समान है जो घर का न घाट का हो जाता है, अर्थात वह न माँ का समर्थन कर सकता है न पत्नी का। उनके बीच वह दो भागों में बंट कर रह जाता है। वह हर वक्त माँ दुर्गा से अपने गृह की शांति के लिए प्रार्थना करता रहता है तथा गृह अशान्ति के लिए अपने आपको ही दोषी मानता है। अंततः गृह कलह इतनी बढ़ जाती है कि वह अपनी सोचने

[2] 'झूलानट' की भूमिका से – राजेन्द्र यादव

समझने की शक्ति क्षीण कर देता है। एक तरफ वह माँ को भी बहुत चाहता है दूसरी ओर शीलो के रूप व प्यार से भी मुक्त नहीं हो पाता। अतः अपना मन ईश्वरीय भक्ति में रमा देने के लिए ओरछा के मंदिर में साधु बाने में प्रवेश करता है लेकिन वहाँ आरती के समय जब परदा उठता है तो माँ जगत्जननी सीता के रूप में भी उसे शीलो दिखलायी देती है और वह सब कुछ भूल, सुध बुध खो उनकी आगोश में समा जाना चाहता है दुक जाना चाहता है, छिप जाना चाहता है उनके आंचल में। लेकिन भेद नहीं कर पाता शीलो की रपटती–चमकती और माता सीता की उज्जवल और पवित्र देह में। बस आगे बढ़ता जाता है और आगे। माता सीता की देह छूता है अपने होंठ बढ़ाता हैउनके होंठ की ओर। अचानक बज्रपात, आघात। आरती रोक दी जाती है। चहुँ ओर से शोर ही शोर–गालियों की बौछार–

- कौन है यह नीच?
- बाहरी आदमी। साधु के बाने में उचक्का बदमाश।
- मारो साले को। घेर लो, जाने न पाए, बहन चो........
- पापी मंदिर की मर्यादा नहीं जानता?
- देवी का बदन सहला रहा था, आँचल खोलकर।
- छिः होंठ बढ़ा रहा था मूर्ति के होंठो की ओर।
- नरक का कीड़ा। साला संत भेष में बदकार आदमी।
- ऐ..., लुच्चपन करता है? हरामी, चल थाने। बेंतो के मारे चमड़ी उधेड़ दी जायेगी

आदि सुन मानो बालकिशन को होश आता है। वह घबड़ा जाता है। शीलो कहाँ? सिया जू अंतर्धान हो गई? मंदिर में ही खाल उधड़ने लगी बालकिशन की। गालों पर बेहिसाब थप्पड़........लगा कि खोपड़ी उड़ जायेगी। कंधे कूट–कूट कर नीचे गिरा दिया गया। बीसियों जोड़ी लातों से पसलियाँ चूर–चूर, कमर तोड़ रहें है लोग। खून से नहाया हुआ।

– अरे, ज्यादा मारपीट मत करो। मर गया, तो तीरथ थाम अपवित्र।
– मारो–निकालो, मारो–निकालो, मारो–निकालो, और अंततः उसे उठाकर मंदिर के बाहर फेंक दिया जाता हैं। लंगड़ाता कराहता हुआ चलने लगा आगे और आगे.......

मठ–मंदिर पीछे छूट गए। भीतर कोई निशब्द बोल रहा था, मैं आ रहा हूँ।....मैं जा रहा हूँ।

यहीं कहानी का अंत हो जाता है। मैत्रेयी के सम्बन्ध में राजेन्द्र यादव जी का कथन है– 'मैत्रेयी न वक्तव्य देती है, न भाषण वह पात्रों को उठाकर उनके जीवन और परिवेश को पूरी नाटकीयता में 'देखती' हैं। संबंधो के बीहड़ों में धीरे–धीरे उतरना उन्हें बेहद पठनीय बनाता है। शीलो की कहानी भी मैत्रेयी ने इदन्नमम, चाक, अल्मा कबूतरी और गोमा हँसती है की सहज विविधता से लिखी है।

झूलानट की शीलो हिंदी उपन्यास के कुछ न भूले जा सकने वाले चरित्रों में एक है। बेहद आत्मीय, पारिवारिक सहजता के साथ मैत्रेयी ने इस जटिल कहानी की नायिका शीलो और उसकी 'स्त्री–शक्ति' को फोकस किया है।'' वहीं मेरा कहना है कि यह नायक प्रधान उपन्यास भी है जिसमें मैत्रेयी जी ने बालकिशन के माध्यम से एक पुरूष सोच, मानसिकता व उसके भटकाव को भी चित्रित किया है।

५. अल्मा कबूतरी

कबूतरा जाति को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' अपने ढंग का एकमात्र उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् 2000 में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से हुआ था। कबूतरा जाति का इतना जीवंत और सफल चित्रण करने के लिए मैत्रेयी जी को इस पर 'सार्क लिटरेरी' पुरस्कार से भी नवाज़ा जा चुका है।

मैत्रेयी पुष्पा सिद्ध और प्रसिद्ध कथाकार हैं। 'अल्मा कबूतरी' दर्जनों जीवंत पात्रों का रंगमंच होने के बावजूद उपन्यास के पठनीय कथा–रस को नए अर्थ देता है।

उपन्यास का आरम्भ कबूतरा जाति की स्त्री कदमबाई से प्रारम्भ होता है, जिसके रूपरंग पर फिदा होकर कज्जावर्ग के (बड़े समाज के) मंसाराम अपना सबकुछ गंवा बैठते हैं। कदमबाई से एक रात की मुलाकात ही दोनों की जिंदगी का नासूर बन जाती है। जहाँ वह एक रात कदमबाई के गर्भ में मंसाराम के पुत्र का बीजारोपण करती है, वहीं मंसाराम की राजनीति का शिकार कदमबाई का पति जंगलिया मौत का शिकार हो जाता है।

यहीं से शुरू होती है कदमबाई की जद्दोजहद भरी जिन्दगी और कज्जा वर्ग से संघर्ष। समय चलते कदमबाई 'राणा' को जन्म देती है। चूँकि कदमबाई और मंसाराम की आशनाई के चर्चे दोनो वर्ग के समाज में है, सो दोनो को जिल्लत व लानत भरी बातें चहुँ ओर से सुनने को मिलती हैं। जहाँ मंसाराम की पत्नी आनन्दी अपने दोनों पुत्र करन व जोधा की संपत्ति पर राणा का हक देख उसे जान से मारने की कोशिश करती है वहीं, मंसाराम घर–बाहर, पत्नी, पुत्र समाज से उपेक्षा झेलते–झेलते आखिरकार कदमबाई के डेरे पर ही आ जाते हैं और अपने एक पुराने मित्र कहर सिंह के साथ शराब के ठेके पर लाईसेंस बनवा साझेदारी का व्यापार करने लगते हैं।

मंसाराम का बड़ा बेटा जोधा जहाँ बाप से खफा उन्हें ही उनकी कुछ भूमि छोड़ बांकी सम्पत्ति से दखल कर देता है वहीं उनका छोटा बेटा करन अपने पिता का लगाव देख राणा और कदमबाई के काफी करीब जाता हुआ दिखाई देता है। समय के चलते राणा बड़ा होने लगता है, लेकिन आश्चर्य कि उसमें कबूतरा जाति के एक भी लक्षण नहीं, माँ घबराकर उसे अपने रीति रिवाजों (चोरी, मारपीट, हत्या, लूट, डकैती, फिरौती) से परिचय कराने की भरसक कोशिश करती है और आने वाली जिंदगी के प्रति सचेत रहने को कहती है। किन्तु सब व्यर्थ। हारकर मंसाराम से मिली उपेक्षा या उनका अपने पुत्र के प्रति कुछ न कर पाना कदमबाई को एक फैसला लेने पर मजबूर कर देता है। राणा की पढ़ाई के प्रति रूचि के चलते कदमबाई राणा को अपनी जाति के कज्जा सरीखे अपने परिचित रामसिंह के यहाँ मड़ोरा खुर्द भेज देती है। भेजने का एक उद्देश्य रामसिंह की इकलौती पुत्री अल्मा से राणा का परिचय और फिर विवाह करवाना भी हैं।

मड़ोरा खुर्द आकर जहाँ राणा जल्द ही अल्मा से हिलमिल उसे प्यार करने लगता वहीं रामसिंह काका का भी भरपूर प्यार पाता है। चूंकि रामसिंह की तमन्ना भी राणा को अपना दामाद बनाने की थी, सो वह उसे खूब पढ़ाता व अल्मा की जिम्मेदारी उस पर सौंप देता। होते न होते यह हुआ कि राणा अल्मा एक दिन शारीरिक प्रेम में बंध गये और एक दूसरे को तन मन से चाहने लगे।

लेकिन पटाक्षेप। एक दिन राणा को रामसिंह की असलियत पता चलती है–डाकू और पुलिस की मिलीभगत से कबूतरा जाति का नर–संहार। यह सुन और देख राणा

अपने काबू में नहीं रहता और उसी रात सब कुछ छोड़, यहाँ तक की अल्मा को घर में अकेला छोड़, अपनों को बचाने की खातिर बस्ती वापस आ जाता है और सब कुछ अपनों से बता देता है साथ ही रामसिंह का भंडाफोड़ उसे मारने की कसम खाता है। इसी के तहत वह जब बेटा सिंह डाकू की मौत की खबर सुन रामसिंह को मारने जाता है, तो स्वयं असलियत देख दंग रह जाता हैं, क्योंकि राम सिंह काका ने स्वयं डाकू बेटा सिंह बन मौत को गले लगा लिया था। राणा को गश आ जाता है। वह पश्चाताप करने लगता और वापिस अल्मा के पास जाना चाहता है किन्तु बहुत देर हो चुकी होती। अल्मा व मोघिया गुरू (जो राम सिंह के यहाँ रह जड़ी बूटी खोजकर लोगों का उपचार करता है) दोनों न जाने कहाँ जा चुके होते हैं।

यहाँ–जहाँ मोघिया गुरू राणा के पास बस्ती में आ जाता है वहीं अल्मा का सुराग रामसिंह के परम सखा दुर्जन के पास लगता है। वह उसे वहाँ से लेने जाता है तो पता चलता है कि उसे वहाँ से भी ले जाया गया है। कहाँ? पता नहीं। कहाँ ढूढें? कहाँ जाये? पश्चाताप व अल्मा के प्रेम को ठुकराने का अपराध बोध उसे पागलपन की कगार पर ले आता है।

यहाँ अल्मा एक राजनीतिबाज व्यक्ति सूरजभान की कैद की शिकार हो शारीरिक व मानसिक प्रताड़ना झेलती हैं। कैद की हुयी अल्मा की रखवाली के लिए एक निम्न जाति का व्यक्ति नत्थू और धीरज (मंसाराम की बहन का लड़का) नियुक्त किये जाते है। चूँकि धीरज का सूरजभान पर उसका दो लाख बकाया है, अतः उसे न चाहते हुये भी अल्मा की रखवाली की नौकरी स्वीकार करनी पड़ती है। लेकिन जल्द ही वह उसके प्रति हो रहे अन्याय को देखकर उसे रिहा कर देता है और बदले में पाता है दिल को दहला देने वाली सजा– चार पुरूषों द्वारा धीरज का बलात्कार।

यहाँ अल्मा भागकर नत्थू के माध्यम से राजनीतिक हल्के के एक शानदार महकमें में आ जाती है, जो प्रदेश के समाज कल्याण मंत्री श्रीराम शास्त्री का महकमा है। यहाँ भी वह संतोले व उसकी पत्नी (जो शास्त्री जी के खादिम हैं) के द्वारा शोषित होती है लेकिन पता नहीं क्यों समाज से चोट खाये श्रीराम शास्त्री अल्मा के करीब और करीब जाते हुये दिखलायी देते हैं। पहले तो अल्मा जिंदगी से मिले अनगिनत नासूरों के चलते शास्त्री जी के प्रति उपेक्षा उजागर करती है किन्तु धीरे–धीरे उनसे प्रेम और

अपनापन पा वह उनके प्रति उदार हो समर्पण कर देती है। तन–मन–धन–विद्या से। धीरे–धीरे उसे शास्त्री जी की पत्नी का दर्जा प्राप्त हो जाता है।

यहाँ धीरज, जो कि अल्मा से मन ही मन प्यार करने लगता है, राणा और अल्मा के प्रेम की सच्चाई को जानकर उन दोनों को मिलवाने की भरसक कोशिश करता है और यहाँ अल्मा शास्त्री जी के प्रति अपने प्रेम, समर्पण व कर्त्तव्य के साथ साथ राणा के प्रति अपने गहरे प्रेम के प्रति चिंतित व कशमकश में है।

एक दिन अचानक खबर मिलती है कि शास्त्री जी को गोली मार दी गयी खबर सुन अल्मा को गश आ जाता हैं। चहुँ ओर कोहराम मच जाता है। राजनीतिक हल्कों में हलचल मच जाती है। आनन–फानन में उनके दाह संस्कार का इंतजाम किया जाता है। जहाँ अल्मा उनकी पत्नी के रूप में समस्त सामाजिक नियमों कानूनों व रीति–रिवाजों का धता बताते हुये सबके समक्ष शास्त्री जी को मुखाग्नि देती है। वहीं समाज में इस कार्य को देख सभी स्तब्ध व आश्चर्य चकित रह जाते हैं।

अगले दिन अखबार में अल्मा की तस्वीर मुख्यमंत्री व राज्यपाल के साथ छपती है और साथ ही दो समाचार – एक–शास्त्री जी का दाह संस्कार उनकी पत्नी अल्मा की पसंदीदा जगह ओरछा के कंचना घाट पर उनके ही हाथों सम्पन्न, दूसरा – शास्त्री जी के निधन के कारण बबीना विधान सभा की जो सीट खाली हुई है, उसके लिये प्रत्याशी श्रीमती अल्मा शास्त्री होंगी।

इसी के साथ उपन्यास समाप्त हो जाता है और एक साथ ही एक निम्न जाति की स्त्री के दुःखों का अंत भी। किस प्रकार अल्मा जैसी मासूम व समाज की प्रताड़ित युवती अनवरत संघर्ष झेलते हुये उस मुकाम पर पहुँच जाती है, जहां उसकी कबूतरा जाति कोई मायने नहीं रखती है।

'अल्मा कबूतरी' की भूमिका में जो कुछ लिखा गया है–वह कबूतरा जाति के संघर्षों व सच्चाइयों को उजागर करता है– एक कटु सच्चाई–

कभी–कभी सड़कों, गलियों में घूमते या अखबारों की अपराध–सुर्खियों में दिखाई देने वाले कंजर, साँसी, नट, मदारी, सँपेरे, पारदी, हाबूड़े, बनजारे, बावरिया, कबूतरे न जाने कितनी जन–जातियाँ है, जो सभ्य समाज के हाशियों पर डेरा लगाए सदियाँ

गुजार देती हैं, हमारा उनसे चौकन्ना संबंध सिर्फ काम चलाऊ ही बना रहता है। उनके लिए हम हैं कज्जा और 'दिकू'–यानि सभ्य–संभ्रांत 'परदेशी' उनका इस्तेमाल करने वाले शोषक उनके अपराधों से डरते हुए, मगर उन्हें अपराधी बनाए रखने के आग्रही। हमारे लिए वे ऐसे छापामार गुरिल्ले हैं जो हमारी असावधानियों की दरारों से झपट्टा मारकर वापस अपनी दुनिया में जा छिपते हैं। कबूतरा पुरूष या तो जंगल में रहता है या जेल में.....स्त्रियाँ शराब की भट्टियों पर या हमारे बिस्तरों पर.........

अंग्रेजो के गजटों–गजेटियरों में उनके नाम हैं 'अपराधी–कबीलें' या सरकश जन–जातियाँ। मगर रामसिंह की माँ भूरी कबूतरी अपना संबंध जोड़ती है रानी पद्मनी और राणा प्रताप से, शिवाजी और झाँसी की प्रति रानी झलकारी बाई से, यानि उन सबसे जिन्होंने किसी साम्राज्य के आगे सिर नहीं झुकाया, भले ही इसके लिए वनवास की गुमनामी का ही वरण क्यों न करना पड़ा हो।

स्वतन्त्र भारत में समाज की मुख्य धारा के किनारे फेंके दिए गए इन 'अदृश्य' लोगों की लड़ाई आज भी जारी है, आज भी वे कमंद और सीढ़ियाँ लगाकर हमारी दुर्ग–दीवारों पर चढ़ते है तो ऊपर बैठे हम तीर–कमान साधे उनका शिकार करने का सुख पाते हैं।

इन्हीं 'अपरिचित' लोगो की कहानी को मैत्रेयी जी ने 'अल्मा कबूतरी' में पिरोया है। यह 'बुन्देलखण्ड की विलुप्त होती जनजाति का समाज–वैज्ञानिक अध्ययन' बिलकुल नहीं है, हालाँकि इसमें कबूतरा समाज का लगभग संपूर्ण ताना–बाना मौजूद हैं। अपनी पूर्ण सच्चाई के साथ।

६. अगनपाखी

'अगनपाखी' मैत्रेयी जी की नवीन रचना न होकर 'स्मृतिदंश' नामक उपन्यास का पुनर्लेखन है, क्योंकि मैत्रेयी जी 'स्मृतिदंश' लिखकर और छपकर आने के बाद संतुष्ट न हुयी और–''मुझे 'स्मृतिदंश' के पुनःपाठ ने लगभग झकझोर डाला और मैं यहाँ तक आ गई कि– यह तो वह है ही नहीं, जो मैं कहना चाहती थी। मेरे इस विचार को बल दिया इसी रचना की नायिका भुवन ने। परेशान कर डालने की सीमा तक उसने मेरा पीछा किया। जिद भी बड़ी अटपटी, कि उसे इस रूप में नहीं होना था। ऊपर से

असहाय होने के कारण विनम्र दिखने वाली स्त्री भीतर से किस ताकत का सपना देखती है, लेखिका यह क्यों नहीं समझी? उसके साथ न्याय नहीं हुआ?''[3] और उसके साथ न्याय के लिए मैत्रेयी जी ने पुनः इसे 'अगनपाखी' के नाम से लिखा, जो सन् 2001 में वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ।

यह एक ऐसी लड़की 'भुवनमोहिनी' और लड़के 'चन्दर' की कहानी है, जो आपस में मौसी और भान्जे का रिश्ता रखते हुये भी, समस्त सामाजिक कायदे कानूनों को ताक पर रखते हुये बचपन से ही एक दूसरे से प्रेम कर बैठते हैं। लेकिन जैसा कि होता आया है उनके प्रेम को न तो समाज स्वीकारता है और न ही घर परिवार। भुवन का विवाह 'विराटा' के एक सामंती परिवार के पगले व नपुंसक लड़के कुंवर विजयसिंह से कर दिया जाता है। जहाँ घर परिवार के चलते 'चन्दर' अपने पिता व समाज का विरोध कर भुवन से विवाह न रचा सका वहीं भुवन अपनी माँ और सामंती हवेली की इज्जत की खातिर एक नरकीय जीवन जीती रही। किन्तु बार–बार परिस्थिति, रिश्ते आदि के चलते जब जब उन्हें मिलना पड़ा उनका प्रेम, स्नेह व प्रगाढ़ता बढ़ती ही गयीं। जहाँ चन्दर का अपनी नौकरी में मन न लगता और भुवन उसके सपनों पर कब्जा किये रहती वहीं भुवन को भी उसके आने और समझने की दरकार रहती। समय के चलते दोनों ने ही अपनी इच्छाओं और मन पर लगाम कसी, किन्तु स्थितियाँ निरन्तर उन्हें मिलने पर मजबूर करती रहीं वहीं सामंती परिवार की बहू बनी भुवन जमीन जायदाद के लिए निरन्तर सामंती दाँव पेचों का शिकार होती रही। भुवन चूँकि बचपन से ही साहसी, निडर व मुहँजोर लड़की थी, अतः उसने सुसराल में भी अपनी दृढ़ता का परिचय दे, अपने जेठ अजयसिंह व सास के मंसूबों पर पानी फेर दिया और अपने पति विजय को उनकी हालत में सुधार के लिए आगरा पागलखाने भर्ती करवा दिया। जहाँ पहले वह घर की लाड़ली बहू थी, वहीं अब आँख का काटा बन गयी। भुवन को अपने पति के रहते, उसका गूमूत उठाते जो सुख कभी न मिला, उसके जाने पर उसकी दरकार भी न थी। चन्दर कभी भाई होने के नाते तो कभी हमदर्द होने के नाते उससे मिलने आता रहता है और मिल कर जाने के बाद उसके दर्द अपने जेहन में समेटे घर पहुँचता, तो उसे चैन न मिलता। बेचैन चन्दर हर हाल में भुवन का सुख चाहता और इसके लिए वह हमेशा प्रयत्नशील रहता। उसका हर बार का किया गया

[3] 'अगनपाखी' के पुनर्नवा' से – मैत्रेयी पुष्पा–05

प्रयत्न या तो खाली जाता या उन दोनों के जी का जंजाल बन जाता। थकहार कर जहाँ भुवन अपने परिवार में रमने लगती है वहीं चन्दर अपनी नौकरी में।

यकायक एक दिन चन्दर के पास खत आता है, जिसमें भुवन उसे अपने पास बुला रही थी। चन्दर जाना नहीं चाहता, लेकिन हम उम्र मौसी की ये चुनौती की तुमसे बहुत उम्मीदें थी, सब पर पानी फेर दिया, उसे जाना पड़ा। वहाँ जाकर भी वह हमेशा की तरह भुवन के लिए कुछ न कर पाया, सिर्फ झुंझलाता रहा, ठीक वैसे ही जैसे बचपन से भुवन अनेकानेक छोटी बड़ी चुनौतियाँ दे उसे हमेशा अपने से नीचा दिखलाती रहती थी, लेकिन जल्दी ही उसे मना भी लेती। इस प्रकार दोनो हमेशा एक दूसरे के अरीब–करीब बने रहे। समीपता इतनी कि वे प्रेमवश एक बार शरीर से भी इतने करीब आ गये, कि उस दृश्य को देख भुवन की माँ जहाँ फाँसी लगाने लगीं, वहीं यह दृश्य चन्दर की जिंदगी का नासूर बन गया और उसी किये की शर्मिन्दगी उसे नानी, माँ और अपने पिता के समक्ष न तो आबाज ऊँची करने देती और न ही नजर। जिसके चलते वह सब कुछ करता रहा, जो वह न चाहता था। पिता की रूतबाई रूतबा उसे भुवन से परे झटककर फेंक देता, लेकिन जितना फेंका जाता उतना ही करीब जा पहुँचता। इसी दूरी और समीपता के चलते अब वह हवेली की आँखों का काँटा भी बन गया था। भुवन की सास उसके आने पर उबाल खाने लगती पर भुवन को फर्क न पड़ता, ऐसी गालियाँ माँ से खा–खा वह पुख्ता हो चुकी थी। लेकिन उसे पता न था कि बाहर से चीखने–चिल्लाने वाले भीतर ही भीतर उसकी जान लेने का षड़यन्त्र रच रहे है। पति की मृत्यु के बाद उसे सती के लिए बाध्य किया जाता है। वह चक्रव्यूह में फंस जाती हैं। कराह उठती है। अंतिम इच्छा स्वरूप देवी माँ के दर्शन की इच्छा माँग लेती है। मंदिर जाती है, जहाँ पुजारी उसे ले गुप्त मार्ग से निकल सघन जंगल में बनी कुटी मे चन्दर के हवाले कर देते हैं। दो अन्य पात्र राजेश और दामिनी उनके मार्ग में सहायक बन उन्हें विराटा से बाहर निकालने में सफल होते हैं। एक दिन के सफर के बाद, एक ढावे में चाय पीने को दोनो रूकते हैं, जहाँ उन्हें अखबार में छपी खबर दिखती है, "अनूठा सती अनुष्ठान", जिसके तहत भुवन के जेठ अजय सिंह के बयान में कहा गया था–"कि मैं अजय सिंह गाँव वालों के विमुख होकर तो नहीं रह सकता? सती प्रथा का समर्थक यहाँ कौन हैं? उस बहू की खुद की इच्छा थीं जिसकी ऐसी इच्छा थी। जिसको ऐसी इच्छा हो, उस सती नारी को अपने धर्म से विमुख कौन कर पाया है? यह पाप माना गया है शास्त्रों में। कोई पापी बनना चाहेगा?

सती भी परलोकवासिनी होकर स्वर्ग की, मोक्ष की इच्छा रखती हुई प्राण त्यागती है। हमारी बहू देवी दुर्गा का रूप थी। विराटा की परम्परा निभा गयी। हम अपने भाई की लाश लेकर आए तब तक तो वह बेतवा नदीं में छलांग लगा गयी। ओढ़नी घाघरा किनारे पर धरे मिले। आग से बचाते, पर पानी ही लील गया। सती होना था, सती हुई। टालने वाला परमेश्वर भी सहायक नहीं हुआ। मगर सती ने अपना व्रत पूरा करके हमें दुविधा में डाल दिया।"

"लाश मिली नहीं। मै किधर जाता, कहाँ जाता? विराटा की देवी हम सब की माँ है, उन्हीं के चरणों में जा गिरा। जो रास्ता सूझा उसी पर चल दिया। शायद यही देवी की पुकार थी, यही आशीर्वाद था, यही फैसला था। देवी की अमानत सती भुवन का पुतला बनवाया। सुहागिन की तरह सजाकर भाई के पार्थिव शरीर के साथ चिता को समर्पित किया। सोचा न था कि रामायण हमारे जीवन में इस तरह सहायक होगी। सब देवी की माया है, उसी की कृपा से 'सोने की सीता' बाला आख्यान याद आ गया। देवी की दया रही तो सोने के छत्र वाला मंदिर बनेगा। हमारी बहू अमर हो गयी।

और कहानी खत्म हुई एक और हत्या से.........आगे लिखा था, खबर यह भी कि लगभग पांच सौ आदमियों ने मंदिर पर हमला कर दिया। पुजारी के वध के लिए लोग उतावले थे क्योंकि मंदिर में पूजा करने गयी भुवन (सती होने वाली स्त्री) कहीं नहीं मिल रही थी। इस हमले में जमकर उखाड़–पछाड़ हुई। मंदिर तहस–नहस हो गया। देवी की मूर्ति टूट गई और पुजारी मारा गया। सुरक्षा की दृष्टि से पी.ए.सी लगा दी गयी है। [4]

यही उपन्यास का समापन हो जाता है। जहाँ सच्चाई का अंत और स्वेच्छा चारिता का बोलवाला देखने को मिलता हैं। वहीं सदियों से चले आ रहे स्त्रियों के प्रति सामंती दाँवपेंच और हत्या–अनुष्ठानों को बल मिलता दिखलायी देता है। सब कुछ जानते हुये जनता, प्रजा खामोश है या खामोश कर दी गयी है या फिर अजय सिंह जैसे धनाढ्य लोग अपने बौद्धिक ज्ञान व प्रवचन से उनकी बुद्धि हर लेते हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहते हैं।

---

[4] अगनपाखी–मैत्रेयी पुष्पा – 174–175

सवाल उठता है इसमें नया क्या है? मैत्रेयी इस उपन्यास को दोबारा लिखने के लिए बाध्य क्यों हुई? इस तरह के घृर्णित यथार्थ को दिखला आखिर वे पाठक को क्या बतलाना चाहती हैं? उद्देश्य क्या है? भुवन जैसी साहसी लड़की का अंत यों? ग्यारह साल बाद पुनः इस उपन्यास को नये तरीके से लिखने के लिए मैत्रेयी बार बार बाध्य हुयी भुवन के कहने से, कि इतनी कमजोर नहीं, जितना तुमने मुझे बताया। मैत्रेयी कहती हैं, "सचमुच वह मेरी सबसे ज्यादा कमजोर नायिका थी, मगर उतनी ही शक्ति से मुझे पुकारती।" और फिर एक नवीन शुरूआत..........

जहाँ यह उपन्यास खत्म होता है वहीं से शुरू भी होता हैं। उपरोक्त समस्त सवालों के जबाब उपन्यास के प्रथम पेज की प्रारम्भिक पंक्तियों से मिल जाते हैं, जिनमें वकलम खुद–भुवनमोहिनी ने कचहरी में एक हलफनामा दाखिल किया है और उज्रदारी की माँग की हैं। जिसमें उसने स्पष्ट किया है 'कि वह मरी नहीं और उसका हवेली की जमीन–जायददा में उतना ही हिस्सा है जितना उसके जेठ का। जेठ ने उसे मरा बता उसकी जमीन–जायदाद पर भी अपना हक बरकरार रखा है, जिस पर उसे सख्त ऐतराज है।" अर्जी सुन कुंवर अजय सिंह को गश आ जाता है और सब सन्न रह जाते हैं।

यहीं से कहानी शुरू होकर आगे बढ़ती हैं। अंततः मैत्रेयी जी ने भुवन के साहसिक कदम का परिचय दे नारी जगत को नवीन दिशा दी है और वे इसमें सफल भी रही हैं। भुवनमोहिनी की कथा नई नहीं है। यह हम अनेक उपन्यासों, कथाओं व फिल्मों में देख चुके हैं लेकिन दृष्टिकोण नया है, दिशा नहीं है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी पूर्व परिचित दिलचस्प किस्सागोई के साथ इस कथा को नया कोण दिया है जिसके पीछे वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यास विराटा की पद्मिनी की अनुगूंजे हैं। इस तरह संस्कार बिम्बों को जगाती हुई यह कहानी नई–पुरानी दोनों एक साथ है। लोक कथाओं, लोकगीतों से गुथी अगनपाखी की भाषा फिर–फिर नई होती है, अपनी आग में जलकर जीवित हो उठने वाले पक्षी की तरह।

७. विजन

विजन मैत्रेयी जी का सर्वथा प्रथक उपन्यास है। यह मैत्रेयी जी के लेखन की ऐसी 'घटना' है जो एक साथ चौंकाती और झटका देती है कि क्या यह वही मैत्रेयी

पुष्पा हैं? कहाँ खेत–खलिहान, बैलगाड़ी और रेतभरे दगरे और कहाँ महानगर के पॉश अस्पताल के चमकते कॉरीडोर, जीन्स और ऐप्रन पहने, स्टैथिस्कोप लटकाए डाक्टर डॉक्टरनियाँ...........मोबाइल फोन और ए.सी गाड़ियाँ.........इस बार 'विजन' में मैत्रेयी जी ने अपने तीस–बत्तीस साल दिल्ली में गुजारी शहरी जिंदगी को ही नहीं लिया–नेत्र–चिकित्सा के एक विशेष क्षेत्र को चुना है। शायद इस तरह के प्रोफेशन–केंद्रित उपन्यास हमारे यहाँ दो एक से ज्यादा नहीं है।[5]

विज्ञान–तकनीक और मानवीय भावना की रोजमर्रा की द्वन्द्वात्मकता के बीच 'विजन' सिर्फ दृष्टि की ही नहीं 'दृष्टिकोण' की भी तलाश हैं।[6]

उपन्यास की शुरूआत उपन्यास की नायिका डॉ0 नेहा से होती है, जो अपने ससुर के 'शरण आई सेंटर' में उद्वेग मन से व दहशत से बैठी है, जहाँ लगातार फोन आ रहे हैं कि कैसे आपके अस्पताल में आँख के मरीज की मौत हो गयी? वह क्या जबाव दें? असमंजस में। वह बैठी–बैठी पूर्व विचारों में निमग्न हो जाती है कि किस प्रकार यह आई सेंटर पहले लोगों की उम्मीद का जगमगाता महल था। सभी पूरी उम्मीद से आते थे और उम्मीदें भरपूर पूर्ण होती थीं। धीरे–धीरे अत्याधुनिक उपकरणों के तहत यह आई सेंटर पिछड़ने लगा और पिछड़ने लगा नयी नयी आधुनिक 'फेको' आदि पद्धतियों में। इसके चलते पापा (ससुर) किस प्रकार स्वार्थ सिद्धि से घिर गये और सेंटर को बढ़ाने–चलाने के लिए डॉक्टरों से मिलीभगत करने लगे और अपने इकलौते बेटे अजय को डोनेशन देकर फर्जी डाक्टरी डिग्री दिलवा दी। अजय, पिता के अनुचर–अनुगामी। जैसा कहें, बेटा वैसा–वैसा करता जाये। उसमें स्वयं की कोई क्षमता नहीं।

अचानक फोन की घंटी बजी, विचारों की तंद्रा टूटी। दिल्ली से आभा दी का फोन, नेहा सोते से जागी। फोन पर आभा दी का दिल्ली एक आई ऑपरेशन के लिए बुलावा नेहा असमंजस में। क्या कहे? कहा, कोशिश करूँगी, आभा दी। पुनः विचारों में निमग्न नेहा उस समय में पहुँची, जब वह डॉक्टरी पढ़ रही थी और डा0 आभा उसकी सीनियर थीं। किस प्रकार आभादी उसे निरन्तर जीवन की सच्चाईययों और स्त्री पुरूष के भेद को उजागर करती रहती थी। डॉ0 नेहा ने उनसे सिर्फ डॉक्टरी गुण ही नहीं

---

[5] विजन की भूमिका से उदधृत।

[6] उपरोक्तानुसार।

सीखे। जीवन जीने का साहस भी पाया। अनेकानेक विषम और कठिनतम घड़ियों में डॉ0 नेहा ने डा0 आभा को दी तालीम ही प्रयोग में लाकर अपने को डूबते हुये सागर से बचाया।

डॉ0 आभा। जो स्वयं एक स्त्री थीं और स्त्री जीवन की सच्चाईयों को पूर्णतया भोग चुकी थीं। शादी के बाद एक प्रोफेशनल स्त्री के साथ आने वाली कठिनाइयों और प्रलोभनों का उन्होंने जमकर सामना किया था। प्रोफेशनल गतिशीलता के चलते पति की उपेक्षा, सास के ताने, सब मिला, लेकिन डॉ0 आभा अपने मकसद से पल भर भी न डिगी और अंततः पति से सम्बन्ध बद से बदतर हो गये और दोनों ने अपनी राह अलग कर ली, क्योंकि पति हरहाल में आभा के समक्ष अपने को दीन-हीन व अयोग्य व आर्थिक स्थिति में कम समझ रहे थे, साथ ही उन्हें आभा का अपने मायके में रहकर डॉक्टरी डिग्री हासिल करना रास न आया। परिस्थितियों से समझौता करते करते आखिर डॉ0 आभा ने अपने प्रोफेशन और लोगों के जीवन में रोशनी को अधिक महत्व प्रदान कर साथ ही अपना जीवन को अधिक महत्व प्रदान कर अपना जीवन उन रोशनी चाहने वालों के नाम कर दिया।

ऐसी ही डॉ0 आभा के संरक्षण में जब डॉ0 नेहा ने प्रशिक्षण लेना शुरू कर किया तो, वह उनकी स्त्री जीवन के प्रति सोच को लेकर बहुत उत्साहित हुयी, लेकिन जल्द ही चहुँ ओर से मिली उस सोच के प्रति कड़ुवाहट उसे पीछे ढकेलती, तो पुनः आभा से मिले विचार उसे नयी राह दिखाते।

नेहा-सीधी-साधी योग्य और इंटेलीजेन्ट डॉक्टर। उसकी योग्यता व व्यक्तित्व से प्रभावित जज बनकर आये डॉ0 आर.पी. शरण नेहा के घर आकर उसके पिता से अपने इकलौते बेटे अजय के लिए रिश्ता माँग ले गये। नेहा के घर बरसों बाद खुशियाँ। माँ-बाप गदगद। लेकिन खुशियों में कुठाराघात मारा डॉ0 आभा ने यह कहकर कि अजय, डोनेशन देकर डिग्री प्राप्त गधा। डॉ0 नेहा का मन उखड़ गया। शादी से इंकार। माँ-बाप सदमें में। स्थिति परिस्थिति देख आखिर नेहा शादी को तैयार। शादी हुई। डॉ0 नेहा, डॉ0 आर.पी. शरण की बहू हुई। लोगों का परिचय, तारीफ और प्यार पा नेहा खुशी से निहाल। लेकिन जल्द ही डॉ0 नेहा को महसूस हुआ कि वह वहाँ के आई सेंटर में मात्र एक गुड़िया के सिवा कुछ नहीं। उसकी योग्यता-बुद्धिमत्ता वहाँ कोई मायने नहीं रखती। डॉ0 शरण व उनका बेटा ही वहाँ

सर्वेसर्वा हैं। उनके आगे नेहा नाम की स्त्री का कोई वजूद नहीं। वह सिर्फ स्वागत कक्ष की शोभा बढ़ाने के लिए है। आपरेशन तथा अन्य शल्य क्रियायें सब पापा शरण के हाथ में थी उनके अभाव विभाव में डॉ० अजय ही सर्वेसर्वा होते, चाहे उन्हें किसी चीज की जानकारी हो या न हो। नेहा को किसी चीज से हाथ न लगाने दिया जाता है। अपनी ही आँखों के आगे नेहा अनर्थ और अनहोनी होते देखती और कुछ न कह पाती। अनेक बार नेहा आभा दी के कहने पर मायके वापस आयी और अपनी डॉक्टरी पूरी करने लगी, सीनियर रेजीडेंस भी ले ली। किन्तु उसे बार–बार कोई आवश्यक बहाना बना वापस बुला लिया जाता हैं फिर शुरू होता है उसके प्रति उपेक्षा का बर्ताव। वह सहन कर पाती और अक्सर उसका अजय से झगड़ा हो जाता। अजय अन्दर ही अन्दर चाह कर भी पत्नी का साथ नहीं दे पाते और पापा के खाते में जा गिरते हैं। नेहा आहत हो उठती। इस बीच उनके एक बेटे टिम्मी का जन्म भी हो गया। जिसके कारण नेहा और भी बंध गयी। पापा शरण जहाँ ऊपरी तौर पर नेहा को बेहद लाड़ दिखाते लोगों से उसका योग्य डॉ० के रूप में परिचय कराते, वहीं भीतर भीतर अहं को चोट खाये, नेहा से अपनी प्रतिद्वंदिता मानते उसे कभी भी आगे न आने देते और उसके किये गये प्रत्येक कार्य को बरज देते व हेय दृष्टि से देखते। नेहा का आत्मविश्वास टूट जाता और वह ससुर के समक्ष कुछ न कह पाती।

वहाँ मायके दिल्ली में नेहा की माँ जहाँ भीतर ही भीतर एक स्त्री होने के नाते नेहा से जुड़ी रहती वहीं बाहरी रूप से कुछ न कह पाती और वहीं नेहा के पिता उसे बहुत प्यार करते किन्तु उसे हमेशा सामाजिकता, नैतिकता और दुनियादारी का पाठ पढ़ा ससुराल में ही रहने की सलाह देते। नेहा ने न इधर की न उधर की। उधर जाये तो ससुराल के प्रति बगावत की गंध आती और इधर रहे तो प्रोफेशन के प्रति। वह समझ न पाती। ऐसे में सदैव उसे आभा दी की याद आती, जो उन्हें कठिनतम् घड़ियों में भी सहज रूप से 'स्त्री शक्ति रूपी संजीवनी' से उबार लेती थीं। और वह सहज हो जाती।

ऐसी ही स्थितियों–परिस्थितियों का सामना करते हुये एक बार जब डॉ० नेहा ससुराल आयी तो उसे पता चला कि एक ऐसा मरीज वापस आया है, जिसकी आँख आपरेशन के बाद भी सही नहीं हुयी। नेहा ने चैक किया पता चला, लेंस अपनी जगह नहीं, रेटिना (पिछला पर्दा) पर गिरा हुआ है। पुनः ऑपरेशन की आवश्कता है। उसे

इसकी पूर्ण व सक्षम जानकारी होते हुये भी पापा शरण और अजय ने उसे मरीज से हाथ नहीं लगाने दिया और स्वयं आधी अधूरी कचरा जानकारी के चलते ऑपरेशन करने चल दिये। नेहा को ब्लॉक (आँख सुन्न करने की सुई) देने के लिए बुलाया जाता है। किन्तु अपमान का घूँट पिये नेहा वहाँ नहीं जाती और जाने से इंकार कर देती है। अंततः डॉ0 अजय ब्लॉक देते हैं। ऑपरेशन करते वक्त अचानक मरीज की तबीयत बिगड़ने लगती है और तमाम कोशिशों के बावजूद भी मरीज की मौत हो जाती है। मृत्यु का कारण समझ में नहीं आता। सब हैरान। नेहा मृत्यु का कारण पता करती, सिम्पल जायलोकिन रिएक्शन। ब्लॉक देते समय यदि जायलोकिन असावधानी वश किसी बड़ी वैसिल में चली जाए तो भीतर ताण्डव मचा देती है। इसी असावधानी वश मरीज की मृत्यु हुई। पापा शरण गुप्ता पिछले रास्ते से भाग लेते हैं। अजय के हाथ पाँव फूल जाते हैं, क्योंकि मरीज के परिवारीजन सामर्थ्यवान लोग थे। अजय नेहा से प्रार्थना करते हैं कि वह मृत्यु की घोषणा करें व स्थिति को संभाले। नेहा वितृष्णा से अजय को देखती है। चहुँ ओर शोर मच जाता है। कि आँख के ऑपरेशन में मरीज की मौत। डा0 शरण का झूठी बुनियाद पर खड़ा किया गया 'शरण आई सेंटर' रूपी महल भरभरा कर गिर पड़ता हैं। टी.वी. चैनल्स, अखबार, रेडियो सभी में आरोप प्रत्यारोप के दौर चल निकले। नेहा अपने केबिन में चिंतित बैठी कशमकश में है और आखिर में वह एक निर्णय लेती हैं कि जिन्होंने मुझे यह कला सिखाई है, मैं उन्हें अपने माता–पिता के समान समझूँगी। उनके साथ रहूँगी। आवश्यकता हुई तो अपनी चीजें उनके साथ बाटूँगी। यह कला रोगियों के भले के लिए और वह जोर–जोर से कहने लगती है यह कला रोगियों के भले के लिए। नर्स दौड़कर डॉ0 अजय के पास जाती है और कहती है, "सर डॉ0 नेहा को कुछ हो गया, डा0 नेहा..........शी इज सिक।"

और यहीं उपन्यास खत्म हो जाता है। दृष्टि की चाहत से शुरू यह उपन्यास आखिरकार जीवन रूपी दृष्टि पाकर खत्म हो जाता है। यह ऐसी दो स्त्रियों डॉ0 नेहा और डॉ0 आभा की कहानी है, जो सांसारिक द्वान्द्वात्मकता के बीच अपनी अलग दृष्टि तलाशती है और अंततः सफल भी होती है। मानवीय भावना और विज्ञान तकनीकी के क्रिया कलापों से लबरेज यह कहानी पाठक के समक्ष नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

'विजन' के सम्बन्ध में यह कहा गया है – ''विजन'' स्त्री शक्ति के नये डाइमेंशन्स (आयाम) खोजने और खोलने का एक साहसिक प्रयोग हैं।'' सत्य है।

वास्तव में इसमें आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त कर लेने के उपरान्त भी नारी को वह स्थान नहीं प्राप्त हो पाता जो पुरूष को सहज ही प्राप्त हो जाता है। ऐसी भी स्थिति मिलती है जिसमें पति की इच्छा के कारण पत्नी अपनी लगी लगाई नौकरी या आर्थिक स्वावलम्बन के साधन का परित्याग करने पर लगभग मजबूर हो जाती है और बदले में न तो उसे आर्थिक स्वाबलम्बन मिलता है और न सामाजिक स्वतन्त्रता।

८. कस्तूरी कुंडल बसै

यह मैत्रेयी जी का आत्मकथात्मक उपन्यास है यानि स्वयं की आत्मकथा। इसका प्रकाशन सन् 2002 में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ था। इसमें मैत्रेयी ने अपने जीवन के खट्टे मीठे अनुभवों को समेटा है। इसकी भूमिका में वे लिखती हैं–''यही है हमारी कहानी। मेरी और मेरी माँ की कहानी। आपसी प्रेम, घृणा लगाव और दुराव की अनुभूतियों से रची कथा में बहुत सी बातें ऐसी हैं जो मेरे जन्म के पहले ही घटित हो चुकी थीं, मगर उन बातों को टुकड़ों–टुकड़ो में माता जी ने जब–तब बता डाला, जब–जब उन्हें अपनी बेटी को स्त्री–जीवन के बारे में नए सिरे से समझाना पड़ा।'' यानि एक ऐसी माँ और बेटी की कहानी, जिन्होंने जीवन पर्यन्त कठिनतम् समस्याओं का सामना करते हुये समाज के बंधे बंधाये ढर्रे को मानने से इंकार कर दिया। एक ऐसी माँ और बेटी जिन्होंने सामाजिक कुरीतियों व बंधे बंधाये नियमों से बाहर निकल स्वयं के स्वच्छन्द, किन्तु आदर्शमय नियम बनाये तथा उन पर अमल करने हेतु सामाजिक विरोधों का डटकर सामना किया।

माँ–मैत्रेयी पुष्पा की माँ–कस्तूरी देवी और बेटी–स्वयं मैत्रेयी पुष्पा जी। कहानी का प्रारम्भ एक ऐसी युवती से होता है, जो ग्रामीण परिवेश में रची बसी और रूढ़ि परम्पराओं व निर्धनता में जकड़ी होने के बावजूद विवाह न करने जैसी बात का साहस दिखलाती है लेकिन उसकी इस भावना को दरकिनार कर समस्त भावनाओं को कुचल उसकी माँ व भाई उसका विवाह चंद चाँदी के सिक्कों के बदले एक बूढ़े व्यक्ति से कर देते हैं। माँ और भाई आश्वस्त हो जाते हैं और चाँदी के सिक्के देखकर खुशियाँ मनाते हैं। यहाँ युवती (कस्तूरी देवी) का मोह जहाँ संसार से हट जाता है वहाँ मायके

से भी कोई मोह नहीं रहता, वह मायके से नाता तोड़ लेती है और 'फिर कस्तूरी देवी एक दिन एक कन्या को जन्म देती है, जिसे लोग प्यार से पुष्पा कहते थे। 'शराब पीने' बदहाल हालत और उम्र के कारण कस्तूरी का पति एक दिन अचानक इस दुनिया से विदा हो जाता है और रह जाती है, कस्तूरी और उसकी बेटी मैत्रेयी पुष्पा'।

बदहाल माँ तमाम संकट के बावजूद बेटी को किसी तरह जीवन में हार न मानने का पाठ देती है, यह उपन्यास का खास तत्व है और यहीं एक माँ आधुनिकता, यर्थाथता व क्रांतिकारिता में अपनी बेटी से कहीं आगे दिखलायी देती है, उनके साहस और विचारों के समक्ष मैत्रेयी एक साधारण किन्तु सामाजिक विद्रूपताओं की शिकार लड़की के रूप में हमारे समक्ष आती है जबकि माँ सामाजिक, विद्रूपताओं को अपना शिकार बनाती हैं, यही माँ और बेटी के स्वरूप में भिन्नता प्रकट हो जाती है।

सम्पूर्ण उपन्यास का सर्वाधिक रोचक तथ्य–दोनों माँ–बेटी सामाजिक बंधनों में बंधकर रहना नहीं चाहती, फिर भी एक–दूसरे के विचारों से पूर्णतयः असहमत दिखायी देती हैं। दोनों निजी व वर्तमान जीवन की पीड़ा से त्रस्त तथा समाज से मिले कटु अनुभवों की शिकार होने पर भी एक दूसरे के विचारों व मान्यताओं से सरोकार नहीं रखती मैत्रेयी जी इस बात को 'भूमिका' में स्वीकार करती है कि–''मैं ठोस यथार्थ की तरह अपने तीखे–मीठे अनुभव लिखकर मुक्ति की आकांक्षा में माता जी रूपी संस्कार को अपने 'सिस्टम' से निकाल रही थी या कि अपने बाहर–भीतर को पछीटने–खँगालने पर तुली हुई इस कथा को लिख रही थी।''

प्रस्तुत उपन्यास में वैसे तो चार पीढ़ियों का चित्रण है, परन्तु मूल रूप दो पीढ़ियों यानि कस्तूरी और मैत्रेयी नाम की माँ और बेटी के संघर्ष की दास्तान को रूचिकर ढंग से समेटा गया है। कस्तूरी, जो मैत्रेयी की माँ है आजीवन कटु अनुभवों व कष्टों को झेलकर अपना एक मुकाम हासिल करती हैं। माँ ने जो भोगा, वह चाहती है कि बेटी उन दुःख से बावस्त न हो। माँ बेटी को एक ऐसे रूप में देखना चाहती है, जो स्वयं सशक्त व दृढ़चरित्र तो हो ही, सामाजिक विद्रूपताओं की शिकार महिलाओं का संबल बन उन्हें भी एक नयी दिशा प्रदान करने में सहायक हो, किन्तु मैत्रेयी एक साधारण कोमल भावनाओं में डूबी रहने वाली लड़की है। उसके सपने, माँ के सपनों से सर्वथा प्रथक सपने हैं– एक आम लड़की की तरह के सपने–हाथों में कंगन, पैरों मे पायल, दुल्हन का जोड़ा, अपना घर, ढ़ेर सारा प्यार करने वाला पति, अपने बच्चे

आदि। बस बेटी की यही सोच माँ को बेटी का विरोधी बना देती है। माँ नहीं चाहती कि बेटी उन समस्त साधारण स्त्रियों की भांति वैवाहिक जीवन की चक्की में पिसे, जिसमें स्त्री मात्र एक भोग्य वस्तु के रूप में समझी जाती है यानि कि पति रूपी पुरूष की कामेच्छा की पूर्ति करना, ठेर सारे बच्चे पैदा करना, उनका लालन पालन और चूल्हा चौकी करना आदि।

दोनों के ऐसे विरोधी विचारों के पीछे प्रबल तर्क व अनुभव कार्य करते हैं, जहाँ माँ ने अपने विवाह के नाम पर उसका तीव्र विरोध किया था, फिर भी विवाह के नाम पर उसकी माँ और भाई ने आठ सौ रूपये के कलदार के बदले उसे बेंच दिया था और जिस अय्यास पति के रहते उसे क्षण भर सुख व सहयोग न प्राप्त हुआ, उसी स्त्री ने पति और ग्रामीण स्त्री–पुरूषों की कटुक्तियों को जहर की भांति पी पीकर अपना प्रथक रास्ता तयकर, अपनी बेटी को उस गंदे सामाजिक माहौल से प्रथक माहौल देकर उसे एक तपस्वी रूपी समाज सेविका के रूप में देखना चाहा, तो शायद गलत न था, तो वही बेटी मैत्रेयी के अपने प्रबल तर्क व अनुभव कार्य करते हैं। बेटी मैत्रेयी ने बचपन से युवावस्था तक जो भोगा, वह कम त्रासद न था और शायद माँ को भी उसके उन विकट कष्टों की उतनी अनुभूति न थी, जो मैत्रेयी ने लड़कपन से लेकर यौवनकाल तक हर वर्ग और जाति के पुरूषों द्वारा शारीरिक शोषण के रूप में भोगी थी और दिल को चीर देने वाली गालियाँ खायी थीं, शायद इसी कारण मैत्रेयी में विवाह कर सम्मानजनक जीवन यापन की लालसा निरन्तर प्रबल होती जा रही थी, तो साथ ही माँ ने अपनों तथा गैरों से सम्पूर्ण अस्तित्व को जार–जार कर देने वाली गालियों और हृदय को छिन्न–भिन्न कर देने वाले कटु वचनों को सुनकर भी अपनी पढ़ाई का मार्ग तय कर एक धीर–गम्भीर ग्राम संयोजिका के रूप में अपनी साख बनायी।

बेटी मैत्रेयी माँ के इस नीरस जीवन यापन से बाहर निकल स्वच्छन्द जीवन यापन करना चाहती हैं। अतः बी.ए. में पढ़ती लड़की स्वयं माँ से अपने विवाह की बात कहती है, जिसे सुन माँ को गहरा धक्का लगता है, क्योंकि मैत्रेयी को लेकर उनके प्रथक सपने थे, तो वे उसे समझाने का भरसक प्रयत्न करती हैं, तथा विवाहोपरांत आने वाली समस्याओं की कठिनाइयों को बतलाती हैं परन्तु माँ की यही समझदारी भरी सोच मैत्रेयी को उनका घोर विरोधी बना देती है। बेटी सोचती है कि माँ नहीं चाहती कि बेटी प्यारा सा वैवाहिक जीवन व्यतीत करे, उसका भी अपना घर हो, पति हो, बच्चे हो

और सबसे बड़ी बात वह यह सोचती है कि जहाँ उनकी (माँ) छाया भी न पड़े। माँ तो बस चाहती हैं कि उसी की तरह (माँ की तरह) सफेद साड़ी पहनकर, झोला लटकाये, चेहरे पर गम्भीरता पोते, आजीवन नीरस जीवन व्यतीत करने को बाध्य हो और उसका मन माँ के प्रति घृणा से भर जाता है। मैत्रेयी की अपने विवाह की सोच अपनी माँ से मुक्ति की आकांक्षा भी हैं।

माँ–बेटी की यह विरोधात्मक स्थिति के चलते वे एक दूसरे का सामना करने में कतराती हैं। हाँलाकि दोनों एक दूसरे के कष्टों व मानसिक स्थिति को भलीभाँति समझती हैं फिर भी बातचीत के दौरान दोनों में विरोधात्मक स्थिति बनी की बनी ही रहती हैं। बेटी मैत्रेयी में अपनी माँ को लेकर निरन्तर अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है तथा वह उनके विशद जीवन यापन से सापेक्ष भी रखती है और उसे अपने द्वारा माँ को दिये मानसिक कष्टों का बोध भी है, तो वहीं माँ भी अपनी बेटी को एक सुन्दर, इज्जतदार व साफ–सुथरा जीवन देना चाहती हैं, परन्तु दोनों का आमना–सामना होते ही अहं आड़े आ जाता है और न चाहते हुये भी दोनों एक दूसरे के विरूद्ध तर्क–वितर्क करने लगती हैं। जहाँ माँ धीर गम्भीर रूप को त्याग बेटी को स्वच्छन्द प्यार न करने के लिए विवश है तो वहीं बेटी मैत्रेयी भी अपने को अपनी माँ की बेटी मानते हुये अपनी जिद छोड़ने को तैयार नहीं।

जहाँ एक ओर अपनी बेटी की खुशी की खातिर एक माँ अपने समस्त सपनों की तिलांजलि देकर अपनी बेटी के विवाह हेतु एड़ी चोटी का जोर लगा देती है और कठिनतम् समस्याओं से दो चार होकर विवाह के दौरान होने वाले मांगलिक रीति रिवाजों को न चाहते हुये भी मन को गला–गला कर, उन्हें निभाकर बेटी का विवाह एक डॉ0 से सम्पन्न करा देती है, तो वहीं दूसरी ओर बेटी मैत्रेयी, जो अपनी माँ के बनाये नियमों व विचारों रूपी व्यवस्था के कारागार से निकलने हेतु विवाह करना चाहती थी, वहीं मैत्रेयी योग्य एवं एक डाक्टर से विवाह के पश्चात् अपनी माँ के निरन्तर करीब और करीब जाती हुयी दिखायी देती है। अपने इस बदले–बदले स्वरूप से मैत्रेयी स्वयं चकित है और अब विवाह उसे व्यर्थ की चीज जान पड़ता है साथ ही पति का घर जेल व पति जेलर के समान जान पड़ते हैं। वास्तविकता के करीब आकर मैत्रेयी माँ को याद कर जार–जार रो पड़ती है साथ ही एक निर्णय लेती है अपनी नन्हीं बच्ची के प्रति और बड़े ही सधे कदमों से सीढ़ी चढ़, बच्ची को गोद में लेकर वह

छत में जाती है और बच्ची को खुला व विस्तृत आकाश व स्वच्छन्द हवा के दर्शन कराती है। उसे महसूस होता है अब समस्त बंधन शिथिल हो गये है और घर का कारागार टूट रहा है। इसी के साथ उपन्यास का अंत हो जाता है।

उपन्यास का मुख्य आधार है बुन्देलखण्ड का ग्रामीण जीवन और सामाजिक विद्रूपतायें। मैत्रेयी जी ने माँ–बेटी के जीवन के ठोस यथार्थ के अपने खट्टे मीठे अनुभवों के द्वारा समेटा है। ये उनके (माँ–बेटी के) आपसी लगाव व दुराव की संघर्षपूर्ण गाथा है। जब–जब माँ कस्तूरी ने बेटी मैत्रेयी को समाज से प्रथक संस्कार देकर परिष्कृत करना चाहा, तब तब मैत्रेयी ने बेबाक होकर अपनी गहन जिजीविषा और पीड़ा की परतों को परत दर परत उधेड़ा है। पति खो चुकी स्त्री को समाज में क्या कुछ झेलना पड़ता हैं। इसकी गहन पड़ताल की गयी है, साथ ही साथ सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि समस्याओं के साथ–साथ समाज, में कोढ़ के समान फैली दहेज प्रथा की समस्या का चित्रण भी यथा समय किया गया हैं।

ग्रामीण परिवेश से शुरू होकर यह रचना जैसे–जैसे आगे बढ़ती हैं, पाठक के सामने स्त्री–विमर्श की जटिलतायें सहजता से खुलती जाती हैं, जैसा कि मैत्रेयी जी ने स्वयं स्वीकारा है कि यह एक आत्मकथात्मक उपन्यास है यानि उनके निजी जीवन का चित्रण। दरअसल कामयाब आत्मकथा का सार ही अपने अनुभवों को वृहद सरोकारों से जोड़ना है और मैत्रेयी जी काफी हद तक इसमें कामयाब भी रही हैं। जहाँ निजी जीवन की पीड़ा का चित्रण वहीं राजनीतिक परिवेश को भी समेटा गया है। उपन्यास में बतलाया गया है कि किस प्रकार स्त्री की पदोन्नति व उसके अस्तित्व के खंडन हेतु राजनीतिक षड्यन्त्र रचे जाते है तथा कभी काम आने वाले सहयोगी किस प्रकार बेगाने हो जाते हैं, इस तथ्य से पाठक रूबरू होते हैं।

आखिर में उपन्यास के आखिर में मैत्रेयी को अपनी माँ की जीवटता का अहसास होता है और वह उनके कष्टों की अनुभूति कर विलाप कर उठती है। गले का खारीपन जाता रहता है। मैत्रेयी अब स्वयं एक माँ है और वह माँ निर्णय लेती है कि वह अपनी बच्ची को वह ढेर सारा प्यार देगी, जो उसकी माँ प्रत्यक्ष रूप में उसे कभी न दे सकी, जिससे मैत्रेयी उन्हें अक्सर गलत समझती रही और जब बेटी को अपनी गलती का अहसास होता है तो स्वयमेंव उसके बंधन शिथिल हो जाते हैं और पहली

बार उसे सम्पूर्ण जीवन में बंधे बंधन से मुक्ति का अहसास होता है। यही उपन्यास की परिणति हो जाती हैं।

स्त्री दुर्दशा के लिए सिर्फ राजनीतिक व सामाजिक नेतृत्व ही नहीं बल्कि स्वयं स्त्री खुद कैसे जिम्मेदार है इसे 'कस्तूरी कुंडल बसै', किताब के मार्फत भली भाँति समझा जा सकता हैं।

"कस्तूरी कुंडल बसै" उपन्यास यानि एक स्त्री का सामाजिक विद्रूपताओं और स्त्री जीवन पर खरी–खरी कहने का हौसला।

९. कही ईसुरी फाग

सिद्ध संगीतकार की कविता की इस एक पंक्ति को उपन्यास का आधार बनाकर महाकवि ईसुरी और उनकी प्रेमिका रजऊ के प्रेम जीवन को चित्रांकित किया गया है किन्तु साथ ही साथ इन दोनों के जीवन के सम्बन्ध में शोध कर रही छात्रा ऋतु और उसके प्रेमी माधव की कहानी भी साथ–साथ चली है, जो उपन्यास की खासियत है कवि ईसुरी और रजऊ के प्रेम कहानी के साथ वर्तमान प्रेम व परिस्थितियों को जोड़ा गया हैं। यानि ईसुरी की रजऊ के प्रेम में गायी फागें समसामयिक हैं।

उपन्यास का आरम्भ एक ऐसे गाँव से होता है, जहाँ ऋतु नामक लड़की अपने प्रेमी माधव के साथ अपनी पी.एच.डी. के विषय के अनुसार ईसुरी और रजऊ सम्बन्धी फागों और उनके जीवन चरित्र को ढूढ़ने जाती है। जहाँ उनका परिचय सरस्वती देवी नामक महिला से होता है, जो फगवारों को जोड़कर एक मंडली बना फागों को सांस्कृतिक रूप देना चाहती हैं। जिनसे ऋतु को विषय के अनुसार काफी कुछ मिलने वाला होता है शहर के कुछ लोग वहाँ आतें है और मंडली को खरीद ले जाते हैं। उसने (ऋतु) ईसुरी व रजऊ के प्रेम की जो कहानी वहाँ हासिल की थी, वह अधूरी रह जाती है। सरस्वती देवी उसे ज्यौराहा नामक स्थान पर भेजती हैं, जहाँ उसकी मुलाकात मीरा से होती, जो स्वयं एक दृढ़ सशक्त स्त्री का उदाहरण है। उसका जीवन विषम परिस्थितियों का सामना करते बीता है। उसके मार्फत उसके शोध विषय की कहानी आगे बढ़ती है। जहाँ उसे बसारी बाली बऊ मिलती हैं जो रजऊ और ईसुरी की कथा को आगे बढ़ाती हैं। पन्द्रह दिन बाद बऊ को दमा घेर लेता है तब ऋतु को आगे की खोज के लिए ओरछा जाना पड़ता है, जहाँ उसकी भेंट शालिगराम कटारे

नामक गाइड से होती है। जो उसे रजऊ के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी देता है लेकिन अचानक विदेशी पर्यटकों के आगमन से पैसे के लालच में ऋतु व माधव को छोड़ उनकी ओर चला जाता है। अपनी मजबूरी बताते हुये जाने से पहले वह उन्हें सागर के पास पथरिया जाट गाँव का पता देता है। जहाँ ऋतु को काफी जानकारी हासिल हो सकती है जिसके तहत वह खजुराहो जाती है, जहाँ उसे करिश्मा बेड़िनी मिलती है, जो उसे अन्य जानकारियां देती है। इसी बीच माधव, कई मजबूरियों के चलते ऋतु को छोड़–छोड़ कर कई बार वापस जा चुका था। इस बीच माँ की बीमारी जान ऋतु अपने घर आ जाती है, जहाँ उसे हिन्दी विभाग के अध्यक्ष आनन्द मोहन जैन मिलते हैं जो उसे रजऊ व ईसुरी के सम्बन्ध में विभिन्न लेख उपलब्ध कराते हैं, जिससे वह कहानी की वास्तविकता तक पहुँचती है। करिश्मा बेड़िनी से मिलने के बाद वह उरई के रमन लाल रमन से भी जानकारी का पता लगाने की कोशिश करती है किन्तु वे उपलब्ध नहीं होते। आगे करिश्मा उसे सुजानपुर की अनवरी बेगम, जिनकी दादी का सम्बन्ध ईसुरी से था, के पास भेजती है, ऋतु विभिन्न मुश्किलों का सामना करते हुये सुजानपुर पहुँचती है। जहाँ उसे अनवरी बेगम मिलती हैं, जिनकी दादी का सम्बन्ध भी ईसुरी से था। उनसे उसे महत्वपूर्ण जानकारियाँ हासिल होती हैं बेगम उसे तालबेहट कुटारा के एक प्राचीन मंदिर भी ले जाती है जहाँ उसे एन.सी.सी. के टीचर से भी रजऊ के बारे में खास बातें पता चलती हैं और साथ ही पता चलता है कि किस प्रकार रजऊ की मृत्यु हुई और ईसुरी का क्या हुआ?

ईसुरी और रजऊ की प्रेम कहानी को उपन्यासकारा मैत्रेयी पुष्पा ने विभिन्न घटनाओं व परिस्थितियों के माध्यम से जहाँ–तहाँ बिखेरा है किन्तु उनकी जो मूल कहानी है, वह इस प्रकार है–

माधोपुर का युवक प्रताप छत्तरपुर में काम करता था और उसकी नवयुवा पत्नी रज्जो अपनी बूढ़ी सास (जिन्हें सभी प्यार से काकी कहते थे) के साथ माधोपुर में रहती थी। एक दिन वहाँ ईसुरी और धीरे पंडा अपनी मंडली लेकर फागें गाने आते हैं। ऐसे लोगों को फगवारे कहा जाता था। ये बसंत ऋतु में गाँव–गाँव जाकर फागें सुनाया करते हैं। ईसुरी मंडली की फांगे प्रेम व यौवन को समर्पित थीं। ऐसे में एक दिन ईसुरी का रज्जो से परिचय हो जाता है, और प्रथम मिलन में ही रज्जो को अपना दिल दे बैठता है, और इसके बाद शुरू होती है उनकी रज्जो के प्रति दीवानगी। उन्होंने रज्जो को रजऊ नाम देकर अपनी फागें उसे समर्पित कर दीं। हरएक फाग में उसका नाम

आता। रज्जो के अंग प्रत्यंग का वर्णन रस से भरपूर। जो सुनता वहीं दंग रह जाता। बात रज्जो व सास तक भी पहुँचती। पति के प्यार से वंचित रज्जो जहाँ फागें सुन विभोर हो उठती वहीं सास का कलेजा जल उठता। एक ओर ईसुरी रज्जो से मिलने के बहाने ढूंढते, वहीं दूसरी ओर रज्जो के आँखे भी ईसुरी दर्शन के लिए दरसती रहतीं। इस प्रकार वे गाँव के रीति रिवाज व सामाजिक नियम कायदों के अनुसार न चल सके और धीरे–धीरे सम्पूर्ण गाँव में बदनाम हो गये। सास का जीना मुहाल। उसने ईसुरी से रज्जो का नाम न लेकर गाने को कहा। जब ईसुरी ने रज्जो के दुःख व सामाजिक उलाहना को देखा तो वे माधोपुर छोड़ अपनी मंडली समेत चले गये। इधर प्रताप रज्जो के सम्बन्ध में ऐसी बदनामी पूर्ण बाते सुन रज्जो को प्रताड़ित करता है और उसे अपने प्रति वफादार न देख वह उसे छोड़ अंग्रेजों की सेना में भर्ती होने चला जाता है।

इधर रजऊ से विलग ईसुरी रातदिन उसकी यादों में तड़पते रहते और उससे सम्बन्धित ही फागें गाया करते। उस समय सम्पूर्ण भारत में आजादी हेतु क्रान्तिकारीगण अपना अपना दल बना योजनाओं को अंजाम दे रहे थे। ऐसे ही एक दल, जिसके मुखिया देशपत थे, की गुप्तचर गंगिया बेड़नी, जो कि ईसुरी की फागों से प्रेरित व उनकी प्रसंशक व हमदर्द थी, एक दिन माधोपुर जा ईसुरी के प्रेम तड़पती रज्जो को अपने संग भगाकर ले आती है और फगवारे से मिलवाने का वचन देती है किन्तु परिस्थिति वश वह उसे भी देशपत के दल में शामिल कर देश भक्ति की ओर उन्मुख करती है। इधर ईसुरी हवेली के मालिक मुसाहिब जू के यहाँ एक दिन फाग गा रहे थे, जिसमें रजऊ नाम का उल्लेख था, जिसे मुसाहिब जू की बेटी रज्जू राजा सुन, फाग को अपने लिए समझ ईसुरी से गहन प्रेम करने लगती है। ईसुरी उसका तहेदिल से किया गया प्रेम अस्वीकार नहीं कर पाते और कुछ दिनों के लिए उस पर मोहित हो जाते हैं किन्तु जब मुसाहिब जू को उनके प्रेम के बारे में पता चलता है तो वे ईसुरी को संगीन सजा देने के लिए उन पर चोरी का इल्जाम लगा जहाँ पेड़ से लटकाकर कोड़े बरसवाते हैं वहीं अपनी बेटी के बदनामी के डर से उन्हें एक काल कोठरी में बंद कर देते हैं। इधर रज्जूराजा उनकी खातिर अनेक यातनायें व निम्न कोटि के व्यक्तियों का शोषण सहते हुये एक दिन ईसुरी संग भाग जाती है। कुछ ने कहा कि वह मर गयी। किन्तु रज्जूराजा का पता न चला।

इधर रज्जो देशपत के देश प्रेम से प्रभावित हो अपना प्रेम विस्तृत कर राष्ट्र प्रेम बना लेती है। अंगिया के साथ फागें गा–गा वह अंग्रेजों की षड्यन्त्रकारी योजनाओं का पता लगाती। ऐसे में उसका राजकुमार आदित्य से परिचय होता है और दोनो का भावनाओं वश आपस में लगाव हो जाता है और एक दिन रज्जों दल अनिमितताओं व आपसी फूट को देखकर आदित्य के संग दल से अलग हो रानी लक्ष्मीबाई की शरण में चली जाती हैं, जहाँ वह युद्ध के समय झलकारीबाई के बाद स्वयं रानी लक्ष्मीबाई का रूप धर अंग्रेजों को काफी समय तक भ्रमित कर रानी को अपनी मंजिल तक पहुँचने का पर्याप्त समय प्रदान करती है। अंततः वह युद्ध करते–करते शहीद हो जाती है।

यहाँ जब ईसुरी को उसकी मृत्यु का सामाचार सुनाया जाता है, तो पहले तो वे यकीन ही नहीं करते, लेकिन धीरे–धीरे वास्तविकता जान पागलपन की ओर बढ़ने लगते हैं और मानसिक संतुलन खो कुछ भी रजऊ से सम्बन्धित बकते रहते हैं। उनकी हालत गम्भीर से गम्भीर होती जाती है जिसे देख उनके परममित्र धीरे पंडा और उनकी हमदर्द आबादी बेगम हर वक्त चिंतित रहते हैं। चूँकि ईसुरी पहले से ही शादी शुदा थे। अतः अंत समय वे अपने जीवन की सम्पूर्ण कमायी अपनी बेटी गुरन को भेज निर्गुण ब्रह्म की ओर अग्रसर हो सन्यास धारण कर लेते हैं। उनके प्रेम का ऐसा अन्त देख धीरे तड़प उठते है, और यहीं ईसुरी और रजऊ की कहानी का अंत हो जाता है।

जो ऋतु नाम की युवती की खोज का परिणाम है, जो अथक परिश्रम और लगन के बाद हमारे सामने आता है। किन्तु गौर करने लायक बात ये कि इतने तन–मन–धन से प्रयत्न करने के बाद भी उसे पी.एच.डी. की डिग्री हासिल नहीं हो सकी। क्यों? क्योंकि रिसर्च गाइड प्राध्यापक प्रवर पी.के.पाण्डेय की दृष्टि में ऋतु ने ईसुरी पर जो कुछ लिखा, वह न शास्त्र सम्मत था, न शोध–अनुसन्धान की जरूरतें पूरी करता था। वह शुद्ध बकवास था क्योंकि 'लोक' था।

परिवेक्षकों का कथन है – 'लोक' में भी कोई गाइड नहीं होता। लोक उस बीहड़ जंगल की तरह होता है जहाँ अनेक गाइड होते हैं – जो जहाँ तक का रास्ता बता दे वही गाइड बन जाता है – कभी–कभी तो कोई विशेष पेड़, कुआं, या खंडहर ही गाइड का रूप ले लेते हैं। ऋतु भी ईसुरी–रजऊ की प्रेम–कथा के ऐसे ही बीहड़ों के सम्मोहन की शिकार हैं। बड़ा खतरनाक होता है, जंगलो, पहाड़ों और समुद्र का

आदिम सम्मोहन........हम बार–बार उधर भागते हैं किसी अज्ञात के 'दर्शन' के लिए.........
'कही ईसुरी फाग' भी ऋतु के ऐसे ही भटकावों की दुस्साहसिक कहानी है।[7]

कहानी जो सिर्फ ईसुरी और रजऊ की ही नहीं बल्कि ऋतु और माधव की भी। ऋतु बार–बार अपने व माधव के प्रेम को रजऊ और ईसुरी के प्रेम की कसौटी व परिस्थितियों पर कसती रहती है। माधव के बीच में उसे छोड़कर चले जाने या अपने मामा जो एक बहुत बड़े उद्योगपति व राजनीतिक पार्टी से सम्बन्धित व्यक्ति हैं, के यहाँ जाने पर उसके प्रति उपेक्षित हो जाती है। हांलाकि माधव उसे तहेदिल से चाहता है, फिर भी सामाजिक व पारिवारिक परिस्थितियों का शिकार हो विदेश जाने के लिए मजबूर हो जाता है। लेकिन जाने से पहले वह ऋतु से एक प्यारा सा वादा कर जाता है, और दोनों अपने अपने रास्ते पर बढ़ जाते हैं और यहाँ होता है अंत।

किन्तु आखिर में ऋतु कहती है कि मैंने अपने शोध का ऐसा अंत कब चाहा था। आकांक्षा थी कि ईसुरी और रजऊ का मिलन होता, वे अपनी चाहत को आकार देते हुए जीवन यात्रा तय करते और फागों का संसार सजाते। लेकिन चाहने से कुछ नहीं होता। मेरे व माधव के तन मन से मिलने के बाद भी वहीं भावनाओं का दर्दनाक बँटवारा, अपने अपने रास्ते जाते मैं और माधव या रजऊ और ईसुरी? ऋतु कहती है, मेरी दशा रजऊ से प्रथक नहीं। मैं कुछ भी तो न कह सकी माधव से, चाहत का यह भी एक रूप है? या कि मुक्ति का मार्ग?[8]

इसी कशमकश में उपन्यास का अंत हो जाता है और पाठक के समक्ष चाहत के विभिन्न मोड़ सामने आते हैं , जो परिस्थितियों से रचे बसे हैं। इस उपन्यास का नायक ईसुरी है, मगर कहानी रजऊ की है, प्यार की रासायनिक प्रक्रियाओं की कहानी, जहाँ ईसुरी और रजऊ दोंनो के रास्ते बिल्कुल विपरीत दिशाओं में जाते हैं। प्यार बल देता है तो तोड़ता भी है।

उपन्यास की भूमिका में लेखक का यह सार्थक कथन कि, सिद्ध संगीतकार कविता की किसी एक पंक्ति को सिर्फ अपना प्रस्थान बिन्दु बनाता है, बाकी ठाठ और विस्तार उसका अपना होता है। 'बाजूबंद खुल खुल जाए'' में न बाजूबंद रातभर खुल पाता है, न कविता आगे बढ़ पाती है, क्योंकि कविता की पंक्ति के बाद सुर–साधक की

---

[7] 'कही ईश्वरी फाग' उपन्यास के आवरण पृष्ठ से उदधृत
[8] कही ईश्वरी फाग – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ आखिरी

यात्रा अपने संसार की ऊँचाईयों और गहराइयों के अर्थ तलाश करने लगती है। मैत्रेयी पुष्पा की यह कहानी उसी आधार का कथा–विस्तार है–शास्त्रीय दृष्टि के खिलाफ अवैध लोक का जयगान।

ब. कथा साहित्य

कहानी साहित्य

उपन्यास साहित्य के अतिरिक्त लेखिका मैत्रेयी पुष्पा जी के तीन कहानी संग्रह एवं कई फुटकर कहानियाँ प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनके अध्ययन के पश्चात हम मैत्रेयी जी के बहु आयामी व्यक्तित्व और चरित्र से परिचित होते हैं। मैत्रेयी पुष्पा जी का कथा साहित्य उत्कृष्टता व विभिन्नता के विविध आयामों को स्पर्श करता है। समस्त नारी जीवन की क्रियाओं और संवेदनाओं को मैत्रेयी जी ने अपने कथा–साहित्य, में स्थान दिया है। उनके कथा साहित्य में नारी के विविध रूप दृष्टिगोचर होते है– माँ, पत्नी, बहन, प्रेमिका, सखी, सिस्टर, पड़ोसन, भाभी, ग्रामीण, बाला आदि।

मैत्रेयी पुष्पा जी ने अपने कथानाकों को ऐसी स्त्रियों को आधार बनाया हैं जो समाज में अप्रिय हैं। शहरी समाज में वे हेय दृष्टि से देखी जाती हैं। उन्हें न तो समाज में स्थान प्राप्त हैं और नही साहित्य में सम्मान तो दूर की बात। ऐसी ही ग्रामीण भारतीय गरीब स्त्रियों की ओर संकेत करती ''निर्मला पुतुल'' की यह कविता मैत्रेयी जी की नायिकाओं व पात्रों की स्थिति को सार्थक कर रही है–

'' वे घृणा करते हैं हमसे
हमारे कालेपन से।

हँसतें हैं, व्यंग्य करते हैं हम पर
हमारे अनगढ़ पर करते हैं फब्तियाँ।

मजाक उड़ातें हैं हमारी भाषा का
हमारे चाल चलन रीति–रिवाज
कुछ भी पसंद नहीं उन्हें
पसंद नहीं है? हमारा पहनावा–ओढ़ावा

जंगली, असभ्य, पिछड़ा कह
हिकारत से देखते हैं हमें,
और अपने को सभ्य श्रेष्ठ समझ
नकारते हैं हमारी चीजों को

वे नहीं चाहते
हमारे हाथों का छुआ पानी पीना
हमारे हाथों का बना भोजन
सहज गाह्य नहीं होता उन्हें

वर्जित है उनके घरों में हमारा प्रवेश

वे नहीं चाहते सीखना
हमारे बीच रहते, हमारी भाषा
चाहते हैं, उनकी भाषा सीखें हम
और उन्हीं की भाषा में बात करें उनसे

उनका तर्क है कि
सभ्य होने के लिए जरूरी है उनकी भाषा सीखना
उनकी तरह बोलना–बतियाना
उठना–बैठना
जरूरी है सभ्य होने के लिए उनकी तरह पहनावा–ओढ़ावा
मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नजर में

प्रिय है तो बस
मेरे पसीने से पुष्ट हुये अनाज के दाने
जंगल के फूल, फल, लकड़ियाँ
खेतों में उगी सब्जियाँ/घर की मुर्गियाँ

उन्हें प्रिय है/मेरी गदराई देह
मेरा माँस प्रिय है–उन्हें।"[9]

---

[9] कविता – 'मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नजर में' – निर्मला पुतुल– 'हंस' सितम्बर 2003 पृ0–51

नारी इन समस्त रूपों का निर्वाह करते करते, किन–किन परिस्थितियों से गुजर अपने चरित्र को दृढ़ता प्रदान करती है, यह उनके कथा साहित्य का खास तत्व है। यही तत्व उन्हें अन्य कथाकारों से अलग पहचान देता है। आपके अब तक तीन कहानी संग्रह 'चिन्हार', 'ललमनियाँ', और गोमा हँसती है' अलग–अलग समय में प्रकाशित हो चुके हैं। यहाँ हम तीनों की अलग–अलग विस्तृत रूप में समीक्षा करेंगे–

(अ) "चिन्हार" कहानी संग्रह

यह मैत्रेयी पुष्पा जी का प्रथम कहानी संग्रह हैं। बहुचर्चित व उत्कृष्ट 12 कहानियों का संग्रह। इसका प्रथम संस्करण 1991 को प्रकाशित हुआ था, जो हाथो हाथ बिक गया। तब इसका द्वितीय संस्करण पुनः 1997 में प्रकाशित हुआ, जो समय रहते पुनः समाप्त हो गया। मेरे शोध हेतु मेरे अनुरोध पर विनयशीला मैत्रेयी जी ने इसका तृतीय संस्करण भी प्रकाशित कराया, जो सन् 2004 में आर्य प्रकाशन मंडल, सरस्वती भंडार, गांधी नगर, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ, इसके लिए मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ।

प्रस्तुत संग्रह में नारी जीवन से जुड़ी 12 कहानियों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया गया है। ये कहानियाँ उनके निजी अनुभवों का दस्तावेज हैं, जिन्हें उन्होंने अपने लेखन कौशल से कहानी का रूप दे दिया हैं। 'चिन्हार' की कहानियों के बारे में चर्चा करते हुये 'हंस' सम्पादक श्री राजेन्द्र यादव ने कहा था, "मैत्रेयी ने इन दस्तावेजों में अनुभवों की बहुमूल्य पूँजी को बेदर्दी से खर्च किया है।"

१. अपना अपना आकाश

यह मैत्रेयी जी की 'चिन्हार' कहानी संग्रह की प्रथम कहानी हैं। चूँकि आपके प्रिय विषय नारी लेखन है। इसलिये इसमें भी एक 'बूढ़ी माँ' की व्यथा कथा को समेटा गया है। एक ऐसी स्त्री, जिसका पति एक बीमारी में स्वर्गलोक को चला गया। पीछे तीन बच्चे छोड़ गया। देवर ने यथायोग खेतों में परिश्रम कर भतीजों को पढ़ाया

लिखाया। समय के साथ तीनों बड़े हुये और नौकरी करने लगे। बड़े दोनों दिल्ली में और छोटा आगरा में बैंक मैनेजर। शादी की बातें आयी तो तीनों ने अपने पसन्द की शादी कर माँ और चाचा चाची के अरमानों को ठेंगा दिखा दिया। माँ ने बेटों की खुशी में ही अपनी खुशी ढूढ़ी, और जब वे तीनों मेहमान की भांति बेटों की शादी में गये तो वहाँ मिले उपेक्षा भाव से कैसी विकट वेदना महसूसी थी एक माँ ने –" नौ महीने गर्भ में रखा उन्होंने, पाल पोसकर खड़ा कर दिया बिन्दो ने और खून पसीने से सींचता रहा लखिया। मन में असंख्य कीकर–बबूलों की अव्यक्त चुभन लिए अनायास ही दुरियाये से वे तीनों तटस्थ भाव से तमाशाई बने बे–बात सारी रात जागते ब्याह देखते रहे थे।"[10]

"बरस साल गुजरने लगे अचानक एक दिन वह क्षण आया जब गाँव आकर उनके बेटों ने अप्रत्याशित ज्वालामुखी का विस्फोट किया था।........और बाप दादों की जमीन के बँटबारे का प्रश्न पुत्रों ने माँ के समक्ष, फाँसी के फंदे सा लटका दिया था। वे रोयीं, गिड़गिड़ायी। कहाँ कहाँ नहीं भागी, किस किसके पास नहीं गयी थीं कि कोई उनके पुत्रों को समझाए कि जिस चाचा से वे धरती बाँटने की बात कर रहे है, वह उनके निज जनक से ज्यादा पूज्य है, आदरणीय, आत्मीय हैं।......अपने ही बेटों के समक्ष भिखारिन सी हा–हा सी खाती रही थी, दूध की लाज रखने की भीख माँगती रही थी, दादा और बाप की आबरू का वास्ता देती रही थी, पर वे क्यों मानते? दुनियादारी की किताब का हर पृष्ठ घोंटकर पीने वाले को कोमल मिट्‌टी का मोह व्यापता है भला? अपने बेटों की वाक्‌पटुता और बुद्धि–चातुर्य के समक्ष वे निरी मूर्ख बनी पराजित होती रहीं थीं। उनके बुद्धिमान पुत्रों ने जाने कैसे–कैसे बँटवारा किया था कि विधुर निःसन्तान चचिया ससुर और जेठ के हिस्से की जमीन तीनों भाईयों में बेहिचक बँट गयी थी।"[11] माँ को इच्छा के बिना ही वे जबरदस्ती अपने साथ ले गये–

"उसी दिन वे जान गयी थीं कि औरत आखिर में औरत ही होती हैं–हाथ की लकीरों की तरह अमिट रिश्तों में बंधी हुई भी महत्वहीन और स्वत्वहीन।"[12]

और वहाँ जाकर उन्होंने माँ से उस कागज पर भी दस्तखत करवा लिये, जो मात्र उनके जीने का विकल्प थी। उन्हें क्या पता था कि यह लिखावट उनके नाम चढ़ी दस बीघे जमीन को भी छीन ले जाएगी और आज से उनका बुढ़ापा रेहन चढ़

[10] अपना अपना आकाश–मैत्रेयी पुष्पा–पृष्ठ 14
[11] वही पृष्ठ–15

जायेगा। और फिर माँ बंट गयी चार–चार महीने के लिए अपने तीनों बेटों पर। चार महीने बीतते ही माँ को घर से रवाना कर दिया जाता, उनकी हारी बीमारी को देखे बगैर और आखिर में वह दिन भी आ गया जब माँ सबके लिए बोझ बन गयी। अब चार महीने झेलना भी मुश्किल। निर्णय लिया गया बंगलौर के आश्रम में भेजने का। कोई पूछेगा तो कह सकेंगे– ''उनका मन भगवद्–भक्ति में रम गया था सो गृहस्थ का मोह त्याग गयीं। कितना आसान तरीको.....मुक्ति का, उनकी और परिवार को....दोनों की।''[13]

लेकिन इससे पहले कि उन्हें वहाँ भेजा जाता, वे सब छोड़ वापिस अपने गाँव चली जाती हैं और बेटे माँ को लापता समझ थाने में रिपोर्ट डलवा देते हैं। यहीं कहानी का अंत हो जाता है।

रेहन चढ़ा बुढ़ापा, ग्रामीण सुलभ भोलापन, श्रम और रिश्तों की गरिमा व शहरी स्वार्थपरता से लबरेज यह कहानी वर्तमान समाज का आईना है।

२. बेटी

'बेटी' एक ऐसी बेटी की कहानी, जो हमारे भारतीय ग्रामीण परिवेश में पली बढ़ी हर बेटी की कहानी है। इसमें सदियों से चली आ रही बेटियों के प्रति भेदभावना को मैत्रेयी जी ने बड़े ही मार्मिक ढ़ंग से दर्शाया है। बचपन से ही बेटियों के प्रति यह भावना कि वह तो पराये घर का दलिद्दर हैं और बेटे तो हमारे बुढ़ापे का सहारा हैं, को एक नन्हीं बच्ची मुन्नी के माध्यम से दर्शाया गया हैं।

कहानी का प्रारम्भ मुन्नी की अभिन्न सखी वसुधा के विचारों से होता हैं। वसुधा का बाल मन सदैव मुन्नी से ईर्ष्या करता कि वह स्वच्छन्द है, उसे पढ़ना नहीं पड़ता, स्कूल नही जाना पड़ता, टीचर्स की डाँट नहीं खानी पड़ती आदि। वह तो बस खेलती कूदती हैं, खेतों में काम करती है और कहीं भी कभी भी आ जा सकती है। लेकिन जैसे जैसे वसुधा बड़ी होती जाती है उसे मुन्नी के प्रति सहानुभूति बढ़ने लगती हैं। तब उसे अहसास होता है कि जिसे वह स्वच्छन्दता समझ रही थी, वह वास्तव में अमूल्य

---

[12] वहि पृष्ठ–15
[13] अपना–अपना आकाश–मैत्रेयी – पृष्ठ 19

समय का क्षय था और जिसे बंधन, वह वास्तव में जीवन की सच्चाई। उसे वह सब याद आता है कि मुन्नी किस प्रकार अपनी अम्मा से जिद् करती थी–

"अम्मा, तुम मेरे साथ जो कर रहीं हो, वह कुछ अच्छा नहीं कर रहीं। तुम पांच–पाचं लड़कों को पढ़ा सकती हों, लेकिन मेरे लिए तुम्हारे घर अकाल है..........मेरी किताब–कापी के पैसे तुम्हें भारी हैं अम्मा।"

उसकी माँ खींच कर कहती–"रोज एक ही बात की हठ करती है तू। हमने कह दिया न, नहीं पढ़ा सकते तुझे।"

"क्यों नहीं अम्मा, मुझे क्यों नहीं?"

"चुप होती है कि नहीं? बहुत जबान चल गयी है तेरी। तू लड़कों की बराबरी करती है। बेटे तो बुढ़ापे की लाठी है हमारी, हमें सहारा देंगे तू पराए घर का दलिद्दर। तेरी कमाई नहीं खानी हमें......कह दिया, कान खोल कर सुन ले।"

मुन्नी इसके आगे क्या कहती एक ही हाँक में चुप हो जाती। लेकिन वसुधा जानती थी कि मुन्नी बड़ी चतुर और बुद्धिमान लड़की थी यदि उसे पढ़ाया जाता तो वह अति प्रतिभाशाली छात्रा साबित होती अपने भाईयों के मुकाबले में। लेकिन उससे तो घर का सारा काम कराया जाता। मुँह अंधेरे भाइयों के लिए पराठें सेंकती, उन्हें स्कूल भेजती, कपड़े धोती, पिता के साथ खेत में काम करती और बासी कूसी रोटी खाकर सो जाती। लेकिन अपनी रूचि के चलते वह अनेक विद्याओं में पारंगत हो गयी। पाक कला, नृत्यकला, सिलाई कढ़ाई के हुनर के साथ वह रूपवती व गुणवती कन्या सरलता से ब्याह कर चली गयी।[14]

धीरे–धीरे उस माँ के पाँच बेटे बड़े होकर, ब्याहकर अपनी अपनी गृहस्थी में ऐसे रमें कि माँ के कष्टों की अनुभूति पाँचों में से किसी को न हुई थी। बहुओं ने ऐसे तेवर दिखाये कि माँ को खाने तक के लाले पड़ने लगे। जिस माँ को मुन्नी के रहते कभी तवे में एक चिन्दी नहीं डालनी पड़ी, वह अब आँखों में मोतियाबिन्द लिए दिनभर चूल्हा फूंकती रहती और खाँसती रहती। माँ ने ना उम्मीदी से मुन्नी को खत डाला। उसी समय वसुधा भी अपने ससुराल से आयी थी, तभी मुन्नी भी अपनी बेटी को लेकर माँ के पास गाँव आयी थी। दोनों सखियाँ खुशी से प्रफुल्लित हो उठीं। तभी मुन्नी ने

---

[14] 'बेटी' – कहानी – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 21

बताया, कि माँ की चिठ्ठी मिली, तो मैं अपने को रोक नहीं पायी और दौड़ी चली आयी, साथ अपनी बेटी को लायी हूँ, यही छोड़ जाऊँगी माँ की रोटी बनाने के लिए, और वह माँ के दुःख को बता रोने लगी। वसुधा उसे चुप कराने लगी और बोली, ठीक किया तूने लेकिन मूर्ख, यह उसके पढ़ने की उम्र है, यहाँ पढ़ेगी कैसे?''

मुन्नी ने अपने आँसू पोंछते हुये कहा–''वसुधा तू भी तो यहीं रहकर पढ़ी थी, ऐसे ही वह भी पढ़ लेगी।''[15]

यही कहानी का अंत हो जाता है। मैत्रेयी जी ने कहानी के माध्यम से बतलाना चाहा है कि एक माँ के दर्द को जितना एक बेटी समझ सकती है उतना बेटे नहीं। फिर भी माँयें सदियों से बेटियों की उपेक्षा कर बेटों के लिए आंचल पसारती आयी हैं, जो बुढ़ापे में उन्हें फालतू की चीज समझ किनारा कर लेते हैं। बेटे सक्षम होने पर भी माँ को सहारा न दे सके, किन्तु बेटी अक्षम होने पर भी माँ का सहारा बनी–फिर चाहे वह बेटी की बेटी ही क्यों न हो। मैत्रेयी जी अपने उद्देश्य में सफल रही हैं।

३. सहचर

'सहचर' एक ऐसे युवक की कहानी है जिसे बचपन से ही छोटे भाई की अपेक्षा उपेक्षा का शिकार होना पड़ा। जहाँ उसे पढ़ाई–लिखायी से वंचित कर खेतों में जोत दिया गया, वहाँ उसकी सरलता व सीधेपन को उसकी मूर्खता व पागलपन से जोड़ कर देखा जाता है। जब वह बंसी नाम का युवक बड़ा हुआ तो उसका विवाह एक योग्य, नृत्य में रूचि लेने वाली रूपवती कन्या छबीली से कर दिया गया। हाँलाकि शादी के पीछे दहेज का लोभ था किन्तु छबीली के रूप व गुन को देख बंसी व उनका छोटा भाई ठगे से रह गये। चूँकि छोटे भाई को शुरू से ही योग्य, पढ़ा–लिखा व बुद्धिमान माना जाता था, अतः वह भी भइया भाभी को अपने काबिल न समझ निरन्तर उनकी उपेक्षा कर अपनी पढ़ाई में मशगूल रहता, वहीं बंसी छबीली का प्यार पा विभोर सा रहता और समस्त गृहकार्य व खेतों की निराई–गुड़ाई–बुबाई–कटाई समस्त कार्य प्रसन्नता पूर्वक करते। घर आकर छबीली की एक मुस्कान पर ही समस्त थकावट भूल न्योछावर हो उससे हंसता बतियाता। उन्हें इस प्रकार देख अम्मा व दद्दा का कलेजा फुँक जाता व वे बंसी को हजार गाली देते। निक्कमा, मूर्ख, बौड़म, जोरू का

[15] 'बेटी' – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 23

गुलाम, पागल आदि वचन सुन भी बंसी अपने में मगन रहता। बंसी ने अपने जीवन में सिर्फ अपनी दादी माँ व छबीली से प्यार पाया था। वे दादी को खो चुके थे और अब छबीली को खोना नहीं चाहते थे। बंसी रात दिन बेचैन रहते और अम्मा दद्दा की हजार गाली सुनकर भी छबीली की देखभाल में कोताही न बरतते। घर में और किसी को छबीली की ऐसी हालत से कुछ लेना देना नहीं था। किन्तु भाई की ऐसी दशा देख व भाभी के अपने प्रति (छोटे भाई के प्रति) किये गये कार्यों को देख जब छोटे भाई ने अम्मा व दद्दा से बात की, तो वे उसे अस्पताल ले जाने को तैयार हुये। बंसी भईया चाहकर भी दद्दा की वजह से अस्पताल न जा सके। वहाँ पता चला छबीली को पाँव में गैंगरीन हो गया है और घाव बढ़ने के कारण पाँव काटना पड़ेगा। सुन छोटा भाई भी चौंक गया किन्तु दद्दा में कोई असर न हुआ और वे छबीली को निरर्थक जान उसे उसके चाचा के पास मायके भेज देते हैं। बंसी को जब यह बात पता चलती है तो वह बर्दास्त नहीं कर पाता चलती है और विक्षिप्तों जैसी बातें व हरकते करने लगता है। वह समस्त गृहकार्य त्याग अपने में ही खोया–खोया रहने लगता है।

छोटा भाई शहर इम्तहान देने जाता है जहाँ उसे अपने गाँव के मास्टर से बंसी भइया के दूसरे विवाह के बारे में पता चलता है। वह यह अनहोनी रोकने के लिये गाँव जाता है तो दद्दा उसे बरगला कर वापिस भेज देते हैं, किन्तु वह ऐन मौके पर उस गाँव पहुँच जाता है, जहाँ बंसी भइया की बारात पहुँची थी, लेकिन वहाँ दद्दा की हालत देखने लायक थी। बंसी भइया का कहीं पता न था। बहुत ढूढनें के बाद भी जब बंसी भइया न मिले तो दुल्हन के मुंह बोले डाकू भाई विक्रमसिंह के दबाव के चलते आखिरकार दद्दा को बंसी के छोटे भाई को दुल्हे के रूप में प्रस्तुत करना पड़ा। मन मारकर, न चाहते हुये भी उसे ताड़का स्वरूपिणी लड़की से विवाह करना पड़ा, जो उसके योग्य न थी। समय के साथ–साथ सब बंसी भइया को भूल गये और उन्हें ढूंढ़ने की कोशिश भी न की गयी।

बहुत दिनों बाद घर में बच्चा हुआ है। अम्मा व दद्दा प्रसन्न हैं। दद्दा कस्बे में बाजार करने गये थे कि उन्हें वहाँ बंसी भइया दिख गये। दद्दा को बहुत नफरत है उनसे, उसकी सूरत भी देखना नहीं चाहते थे। अतः उससे नहीं मिले। लेकिन उसके जाने के पश्चात् वे उस सुनार की दुकान पर गये, जहाँ बंसी खड़ा था। दुकानदार ने

बताया कि बंसी यह आरसी वाली अंगूठी (जो उसे उसकी दादी माँ ने बहू की खातिर दी थी) बेंच गया है "कह रऔ हतो कि वो छबीली को पाँव बनवाने पूना जा रऔ।"[16]

इसी के साथ कहानी का अंत हो जाता हैं। मैत्रीयी जी कहानी के माध्यम से बंसी की संवेदना को प्रकट करने में सफल रही हैं साथ ही उस वातावरण को भी प्रकट करने में सफलता पायी है जहाँ निस्वार्थता, सरलता, सीधेपन को उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है।

४. बहेलिये

यह एक ऐसी मां और दो बेटियों की कहानी है जिनके गाँव में चहुँ ओर शर–संधान हो रहे थे। हत्याओं के षड़यंत्र, आत्महत्याओं की बाध्यता–उन्मादी और उत्पीड़क यंत्रणायें। ऐसे माहौल में पली बढ़ी दोनो बेटियाँ बिना बाप के चाचा के घर आश्रित थीं। जहाँ चाचा ने अपने तीन लड़को व एक बेटी रूपा को खूब पढ़ाया लिखाया वहाँ अपनी दोनो भतीजियों को निरक्षर रखा और दोनों का विवाह अधबूढ़े, कमजोर और अयोग्य व्यक्यितों से कर दिया, जिसमें से एक बहन अपने पति से क्षय रोग का शिकार होकर असमय ही इस दुनिया से विदा हो गयी और अपने पीछे तीन माह के बालक 'सूरज' को छोड़ गयी। दूसरी बहन का पति भी तेज हवा से उखड़कर गिरे पेड को अपने ऊपर नहीं झेल पाया और इस दुनिया से सदैव के लिये चला गया। छोड़ गया पीछे गिरजा के लिये वैधव्य का संसार। माँ, बेटी गिरजा के पास तड़पती हुयी आ गयी। और फिर बेटी ने उन्हें जाने नहीं दिया, क्योंकि चाचा के घर उनकी दशा एक नौकरानी से ज्यादा न थी। माँ–बेटी ने मिलकर सूरज को बड़ा किया और उसे एक काबिल पुलिस अफसर बनाया गाँव में हो रहे अत्याचार के खिलाफ लड़ने के लिये जहा माँ स्वयं प्रधान के पद पर आसीन होती है वहीं सूरज से काफी उम्मीदें लगाये रहती है लेकिन सूरज की अन्य शहर में नियुक्ति के कारण वह गाँव में हो रहे अनाचारों को चाहकर भी रोक नहीं पा रही है। रोज अतरे दिन गाँव में मासूम लड़कियों के साथ बलात्कार, हत्या और संगीन जुर्म हो रहे थे और पुलिस सिर्फ अपराधियों की तिजोरी ताक रही थी। जब सब्र की इंतहा हो जाती हो वह सूरज को अपने गाँव में तबादला करवाकर लाने का फैसला लेती है और इसके लिये वह

---

[16] कहानी – 'सहचर' – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 21

अफसरों के यहाँ एड़ीजोटी का जोर लगा देती है। आखिरकार एक परिचित एम.एल.ए. साहब काम करवाने के लिये तैयार हो जाते है और तबादले हेतु उनसे सूरज द्वारा लिखित एक प्रार्थना पत्र लाने को कहते हैं। माँ (मौसी) बड़ी उम्मीदों के साथ बेटे के पास पहुँचती है। बेटा–बहू दोनों मौसी के चरण स्पर्श कर आवभगत करते हैं माँ बेटे को तत्परता देख प्रसन्न होती है और सूरज से अपने गाँव चलने को कहती है। सूरज एक अर्जी लिख देता है। माँ सोने के लिये अपने बिस्तर पर जाने ही वाली थी कि उसे अपने संग लाये गाँव के आदमी 'हरिया' का ध्यान आया और वह उसे देखने कि, उसने खा–पी लिया और उसके सोने का क्या इंतजाम है, हेतु बाहर जाती है, थोड़ी दूर पर उसे सूरज का ऑफिस दिखलायी देता है, वहाँ भरपूर रोशनी थी, वह यह सोच कि बेटा अभी तक काम कर रहा है, उसे देखने की ललक से वहाँ चली गयी, खिड़की से देखा – सूरज पीठ किये अपनी कुर्सी पर बैठा था, सामने एक वृद्ध और एक षोडशी कन्या खड़ी थी। वे खड़ी होकर उनका वार्तालाप सुनने लगी। और जो सुना उससे उनकी कनपटी जल उठी। उनका बेटा सूरज उस वृद्ध से उसकी ही बेटी का व्यापार कर रहा था। वह उसके लड़के को छोड़ने की एवज में उस लड़की की देह माँग रहा था। ऐसा सुन उनका कलेजा मुँह को आ जाता है। वे वापिस घर आ जाती है और रात भर बैचेनी में काट देती है, सुबह जल्दी उठ नहा धोकर व तैयार हो जाती है। सूरज पत्नी से यह कह – कि लौटकर नाश्ता मौसी के साथ करूँगा, ऑफिस चला जाता है। माँ अपने साथ लाये हरिया को लेकर तुरन्त बस स्टॉप पहुँच जाती है और बस में बैठ जाती हैं। बस चल देती है। पीछे सूरज भागता हुआ चला आ रहा था। लेकिन वे नहीं रूकी और उस कागज के मुश्किल से चार टुकड़े कर दिये, जिसे ले वे कल बड़ी उम्मीद से वहाँ आयी थी।

"धुँआ उड़ाती बस थानाध्यक्ष सूरज प्रकाश की पहुँच से बाहर हो गयी। सूरज ने जमीन पर पड़े वे कागज के टुकड़े उठा लिये, जिन्हें मौसी फाड़कर फेंक गयी थीं ..... तबादले का प्रार्थना पत्र था उनके अपने ही हाथों का लिखा हुआ चार चिन्दियों में विभाजित।"[17]

इसी के साथ कहानी का अंत हो जाता है और अंत हो जाता है एक माँ की ढेर सारी उम्मीदों, मंसूबों और इच्छाओं का। मैत्रेयी जीने इस कहानी के माध्यम से वर्तमान समय व सामाजिक यथार्थ की घिनौनी तस्वीर हमारे समक्ष प्रस्तुत की है।

[17] कहानी 'बहेलिये' – मैत्रेयी पुष्पा

७. मन नाँहि दस-बीस

सूरदास के भ्रमरगीत की प्रसिद्ध पंक्ति को आधार बनाकर लिखी गयी यह कहानी वर्ण और जाति के भेदभाव को दर्शाती है। यह एक ऐसे लड़के–लड़की के प्रेम की कहानी है जिसमें लड़का हरिजन जाति का युवक है, जिसके पिता उस बस्ती के एक मात्र साहूकार (लाला) के यहाँ ढोर–डंगरों के चारे पानी की व्यवस्था के लिये मजूरी करते थे। इन्हीं लाला को एक की मात्र बेटी चन्दना से युवक स्वराज का प्रेम ऐसा जुड़ा कि दोनों के बड़े होने पर लोगो की निगाहे उन्हें शंका से देखने लगी। किन्तु दोनों ने परवाह न की और पूर्ववत मिलते जुलते, खाते पीते हंसते खेलते रहे। लेकिन इस समाज को यह कहाँ मंजूर था कि एक चमार का लड़का एक सवर्ग जाति की लड़की के साथ उठे–बैठे, प्रेम तो दूर। लोगों ने काना फूसी आरम्भ कर दी। लाला व सेठानी घबरा उठे अपने अहसानों के बदले में और अपनी बेटी के सुखद भविष्य की खातिर लाला ने स्वराज के पिता से स्वराज का वनवास माँग लिया और एक रात स्वराज को बिना बताये वे उसे पढ़ाई का बहाना कर ग्वालियर ले गये और वहीं छोड़ आये। इधर चन्दना उधर स्वराज दोनों ही विछोह में तड़पते रहे और माँ–बाप कसम कौल धरते रहे। ऐसे में लाला ने चुपके से चन्दना का विवाह आगरा कर दिया। लौटकर जब वह वापिस आयी तो उसे एदल, जो स्वराज का बचपन का दोस्त था, से स्वराज का पता मिला, उसने स्वराज को पत्र डाल एक बार मिलने को कहा, लेकिन स्वराज न आ सका। छः महीने बाद एदल का एक पत्र फिर मिला, जिसमें लिखा था। कि अब चले आओ स्वराज। चन्दना का गौना है फिर पता नहीं कब आये? स्वराज अपने को रोक न सका और उससे मिलने चला गया। वहाँ पहुँच कर उसे चन्दना की पहले जैसी आतुरता देखने को न मिली। पता चला उसका देवर व पति उसे लेने आये हैं। जाने से पहले की रोज चन्दना चुपके से उससे मिलने आयी और जानना चाहा कि वह उसे यूँ अकेला छोड़ कर क्यों चला गया था? स्वराज के ये बताने पर कि उसे जबरदस्ती लाला ने ही ग्वालियर भेज दिया था, वह फूट–फूट कर रोने लगी। कुछ क्षण वे दोनो खामोश बैठे रहे। फिर स्वराज ने उसे अपने गले की जंजीर निशानी स्वरूप दे दी। वह वहाँ से चली गयी और अगले दिन स्वराज ग्वालियर।

उसके बाद समय बीतता गया और स्वराज अपनी मेहनत से प्रशासनिक अधिकारी बन गया और एक दिन स्वराज को सूचना मिली की चन्दना ने अपने पति

और देवर को जहर देकर मारने की कोशिश की। तब से बेचैन स्वराज उससे मिलने को आतुर उसे जगह–जगह खोजते रहे। आज अचानक वनगाँव के दौरे के दौरान वह उन्हें दिखलायी दी। किसी प्रकार उन्होंने महिला विकास केन्द्र की कर्ताधर्ता कल्याणी देवी से मिलकर उससे मिलने का इंतजाम किया और उसके मुख से सच्चाई सुनकर आवाक रह गये। चन्दना ने बताया कि उस रात जब वह उससे मिलने आयी थी, तो देवर भी पीछे से आ गया था, जिसका उसे पता न था। बस उसी दिन से प्रताड़ना चालू हो गयी और तुम्हारे नाम के उलाहने प्रतिपल दिये जाने लगे। पति के नपंसुक होने के कारण मैं बच्चा जनने में असमर्थ सास की शह पर देवर के अत्याचार व बलात्कार की कोशिशों को निरन्तर झेलती रही और पति दब्बू स्वभाव के कारण सिर्फ मूक दर्शक बन सब देखते रहे। जब सब्र की इंतहा हुयी तो मैने आटे में जहर मिला देवर को खाना बना परोस दिया। वह अभी खा ही रहा था कि दूसरे शहर से लौटे पति इतने भूखे थे कि मेरे मना करने पर भी उसके साथ उसी थाली में खाने लगे। खाने की मात्रा के अनुसार रात में दोनों पागल हो उठे। सुबह पुलिस आयी और मैंने आत्मसमर्पण कर दिया। केस चल रहा है। एदल, जो अब वकील बन गया था, चन्दना का केस लड़ रहा था, जान स्वराज को खुशी हुयी। इस सब के लिये वे स्वयं को दोषी मानते थे और चन्दना से माफी मांग रहे थे, किन्तु चन्दना का यह कथन – 'क्षमा किसलिये, स्वराज! वह तो हमारी अपनी–अपनी जंग थी, जो जिसके हिस्से आया, वह तो लड़ना ही था। तुमने भी लड़ा और मैने भी। घायल कौन कितना हुआ, जंग में इसका हिसाब होता ही कहाँ है।' जीवन की सच्चाई को उजागर करता है।

"अब सारे युद्ध समाप्त हो गये चन्दना" स्वराज के इस स्वर के साथ कहानी का सुखद अंत हो जाता है और पाठक एक राहत की सांस महसूस करता है ठीक वैसे ही जैसे किसी हिन्दी फिल्म के नायिका नायक के मिलन पर। स्त्री का एक ही मन होता है मैत्रेयी जी कहना चाहती है। तभी तो चन्दना जो अपना मन स्वराज को दे चुकी थी, शादी के बाद न तो पति को दे सकी और न ही शरीर के भूखे देवर को। उसका मन समस्त जाति बन्धन को तोड़ आखिरकार स्वराज से मिल ही गया। कहानी के माध्यम से मैत्रेयी ने जाति परक भेदभाव को दर्शाया है।

६. हवा बदल चुकी है

कहानी का प्रारम्भ परतंत्र भारत से होता है। एक ऐसे प्रधान 'सुजान ठाकुर' की कहानी, जो सदैव अपने सदकर्मों व व्यवहार के कारण निर्विरोध चुने जाते है। गाँधीवादी सुजान बापू के सपनों को साकार करने की जुगत में लगे रहते। अनपढ़ ग्रामीणों को स्वराज का अर्थ बतलाये।

स्वराज मिला तो सुजान ने प्रीतिभोज कर डाला। हरिजनों को पंगत में बिठा कर खिलाया। बापू की मृत्यु पर सुजान महीनों शोक–संतृप्त रहे। कुंओं के घाट और मंदिरों के द्वार हरिजनों के लिये खोल दिए गए। विरोधियों के स्वर सुजान के सहृदय व्यक्तित्व के आगे स्वयं ही धीमे होते–होते विलीन हो गये और गाँव के महापंडित भी हरिजनों के साथ उठने बैठने लगे। पाकिस्तान बनने पर हिन्दू–मुस्लिम दंगों की मार–काट में सुजान आहत मन इधर–उधर भागे फिरे थे। गाँव के गरीब मुसलमान अपनी घर–मड़इया छोड़कर कहाँ पाकिस्तान में बसने जाते। सुजान ने सारे मुसलमान के नाम बदल डाले। ऐसे धर्म निरपेक्ष सुजान मुश्किल से उस भीषण अलगाव से उन्हें बचा पाये थे। इसी प्रकार अनेकानेक समस्याओं का सामना सुजान अपनी बुद्धि चातुर्य से निकाल ही लेते और प्रगति योजनाओं का आगे बढ़कर स्वागत करते। सभी सुखी, सम्पन्न व चिंता मुक्त।

समय ने पलटा खाया। परतंत्र भारत की विपदाओं के शूलों की चुभन लोग भूलने लगे। नैतिकता का जो गढ़ उन्होंने अपने चरित्र की कसौटी पर निर्मित किया था भरभराकर गिरने लगा और दबने लगी सुजान की अपेक्षायें।

फिर से धीरे–धीरे अत्याचार व गुण्डागर्दी का साम्राज्य फैलने लगा। जघन्य अपराधी सुजान के विरोध में खड़े होने लगे और अपने भी, क्योंकि वे आजाद भारत के नागरिक थे। 'कुछ भी' करने को स्वतंत्र। इन विरोधी बाड़ो के समक्ष सुजान सिंह अपने ही भतीजे चित्तर सिंह से इस साल चुनाव हार गये। सुजान के हटते ही गाँव का कार्यतंत्र बदल गया। घूसखोरी व भ्रष्टाचार ने जन्म ले लिया। चोरी, राहजनी और कत्ल की वारदातें होने लगीं, मुकदमों में दलाली .... सब सुजान के आगे। वे विवश, लाचार वे घर में भी अपना वर्चस्व खोने लगे। बेटे बात–बात पर चिड़चिड़ाते। उनकी आदर्शवादिता पर कोरी मूर्खता का आरोप जड़ते किन्तु सुजान अपने विचारों से न

डिगे। चहुँ ओर अराजकता का साम्राज्य देख वे खून का घूँट पीते रहे। अचानक एक दिन वृद्ध सुजान को उनके एक परिचित से अपनी पहली पत्नी की दशा के बारे में पता चला, जिसने ऐन सुहागरात के दिन न जाने क्या कह दिया था कि सुजान ने पिता से कहकर नवविवाहिता को सीधे उसके पितृगृह भिजवा दिया। ऐसी ढलती उम्र में भी सुजान न्याय की बात नहीं छोड़ पाये और मायके में पिसती, भैया भाभजों की टहल करती अपनी पहली पत्नी को वापिस ले आये। चालीस बरस बाद अपनी सौत देख वे पुत्रों को अपनी छाती–तले दबोची थाती सरक जाने का भय सताने लगा। चहुँ ओर से विरोध व उलाहना मिले। लेकिन वे अपने किये पर प्रसन्न थे।

विधान सभा के चुनाव फिर आ गये। वही वातावरण गाँव के दीनहीन लोग छिप के सुजान के पास आने लगे "ठाकुर, फिर वही, जो आपके टेम पर हुआ था... पेटी बदला–बदली।" क्या करें सुजान। कब तक चलेगा यह जबरदस्ती का राज। सुजान ने एक अर्जी लिखी और चुनाव अधिकारी को देने चले। पहली पत्नी पास आकर बोली घूसखोरी चल रही है, रीते हाथ वालों की कौन सुनेगा? चुनाव अधिकारी मेरा भतीजा है रिश्ते का। मेरा नाम ले देना। सुन सुजान का चेहरा विवर्ण हो गया, वे क्रोध से बोले "जान–पहचान के बल पर मैं तो काम करा लूँ, लेकिन जिनका कोई नहीं। नहीं। सरकारी चौखट पर भूखा बैठूँगा। या तो चुनाव केन्द्र बदला जायेगा या फिर मेरे प्राण......" कह सुजान बाहर निकल गये।

यहीं कहानी का अंत हो जाता है और एक न्यायी व्यक्ति अंत तक अपने आदर्शों पर डटा रहता है और वह इसके एवज में अपने प्राणों को त्यागने से भी नहीं डरता। कहानी के माध्यम से मैत्रेयी जी ने उन कुछ लोगों की ओर संकेत किया है, जो अपनी ईमानदारी, सत्यावांदिता, न्याय व सदाचार पर आजीवन चलते अपना जीवन स्वाहा कर देते है लेकिन समाज से उन्हें सिवाय उलाहना के कुछ हासिल नहीं होता।

७. आक्षेप

'आक्षेप' एक ऐसी ग्रामीण वाला रमिया की कहानी है जिसे अपने पुण्य, सद्‌भावना और अपनत्व से भरे कार्यो के बदले सदैव मानसिक प्रताडना और चरित्र हीनता के उलाहने मिले। ऐसे में ही उसके गाँव एक शहरी बाबू विशाल नाथ तबादला होकर रूकमपुर आते है। वहाँ रमिया उनकी सेवा के लिये आ जाती है। ग्रामीण वासी

निरन्तर विशाल बाबू को रमिया से सचेत रहने के लिये कहते है और उसके गंदे कारनामों को बतलाते रहते हैं। विशाल भी देखते कि रमिया रात–रात भर घर से बाहर रहती और पूछने पर निम्न बहाने कहती –

- "आज हम मास्टर के संगे चले गये थे सहर, का करते बिमार हते सो हमें संगै ले गये। हमाई जानकारी है न डाकधर से।"
- नम्बरदार के घर हते हम। बिचारे अकेले हैं, कोऊ पानी दैवे बारौ नईया। भट्टिन बुखार में तप रयेते। हम रात भर पानी पट्टी माथे पै धरते रहे, गोड़े दाबत रहे। काढो बना के पिवाउत रहे।
- हम का मानत नइयाँ के सेर खां गुण्डा–बदमाश हैं। पर देखौ तो बाबू जी बाकी जोरू अबै एक महिना पहलें गुजर गयी – दो बच्चा छोड़िके, सेरा दुखी हुइकैं मोंडी को सहर के कंजर देने जारऔ हतो। बड़ी मुश्किल से समझा कै लौटा लाये हम कि सेरा हम पाल देहें तेरे बच्चा, आज से इनकी माँ हम हैंरे।
- चम्पा राम पंडित बाबू जी बड़े अकेले है। समय रहते सब बेगाने हो गये बाबूजी हमसे जो बनत है कर देते हैं।

ऐसे ही नितरोत नयी कहानी सुन विशाल बाबू बौखला उठे और उससे बोले – गाँव वाले तुम्हारे विषय में क्या कहते है? पता है तुम्हें?

"पतौ काहे नइयाँ। चरित्तर खराब समझत् हैं, जई न? सुन विशाल बाबू आवाक रह गये कि सब जानते समझते यह औरत बदनामी झेल रही है। लोगों के ताने सुन–सुन विशाल बाबू ने उसका आना जाना बिलकुल बंद करा दिया। अब वह कहीं न जाती और उदास रहती।

अचानक विशाल बाबू को अपनी माँ की बीमारी की खबर सुन वापिस अपने शहर जाना पड़ा। वहाँ कई दिनों की तीमारदारी के बाद भी उनकी माँ चल बसीं। ऐसे में बाबू को रमिया बहुत याद आयी कि कैसे वह सब परिस्थितियों का सामना सहज ढंग से कर लेती है। वह पुनः गाँव की ओर चल पड़े कि ऐसे में रमिया उनकी टूटी हिम्मत बंधायेगी। गाँव के करीब पहुँचे थे कि सामने से रमिया आती दिखायी दी, वह एक बच्चे को अपने कंधे पर बैठाये थी, उसे देख बोली – "बाबू जी। बहौत दिन लगा दयै, सब ठीक तो है।"

फिर कुछ रूक कर बोली – "बाबू जी, जे मुन्ना बीमार है–जाके इन्तान के परचा हैं और जाके पिता बाहर गाँव गए है। बिचारी माँ हती अकेली...... बोऊ बुखार में परीछा बराय रही। सो बाबू जी, हम जाये कन्धा पै लये चले आये। परचा छूट जातो तौ साल बरबाद हुई जाती ...... हम अबै आए लौटिकें......। कहकर वह तेज कदमों से चली गयी।

यही कहानी का अंत हो जाता है अर्थात् रमिया अपनी निस्वार्थ सेवा भावना को चाहकर भी नहीं छोड़ पाती और बाबू के जाते ही पुनः जन उद्धार में लग जाती है। लोगों के ताने उलाहने भी उसकी सात्विक प्रवृत्ति को रोक नहीं पाते। मैत्रेयी जी ने कहानी के माध्यम से उस समाज की ओर संकेत किया है जो लोगों के सद्कर्म में भी उसकी बुराई ढूंढ उसे बदनाम करने से नहीं चूकते।

८. कृतज्ञ

'कृतज्ञ' एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो ताउम्र अपने प्रति किये गये उपकार को नहीं भूलता और पैसे से अधिक रिश्तों को मान देता है वही यह एक ऐसे व्यक्ति की भी कहानी है जो सिर्फ स्वार्थ पर टिके रिश्तों को ही महत्व देता है बाकी के रिश्ते उसके लिये कोई मायने नहीं रखते हैं।

कहानी की शुरूआत एक ऐसे पति अनुपम और पत्नी वसुधा से होती है, जो एक जमीन को खरीदने के लिये पैसे का इंतजाम करने में लगे हैं किन्तु पैसे का कहीं भी इंतजाम नहीं हो पाता। हारकर वे अपने पूर्व के स्थान मथुरा के बैंक से पैसे निकालने के लिये जाते है जहाँ उन्हें उनका परिचित हरीश कुमार गुप्ता उर्फ मुरली मददगार साबित होता है और बैंक से पैसे दिला आदर सहित अपने घर ले जाता है। वसुधा विहल हो उठती है क्योंकि इसी मुरली की आड़े वक्त अनुपम ने कोई मदद न कर उसे उपेक्षित किया था। वसुधा को याद आता है कि– वह वर्षों पहले जब सर्दी की सुबह हमारे यहाँ मदद माँगने आया था कि भाई–साहब मेरे पिता बहुत बीमार हैं पास के हॉस्पिटल में भर्ती है, आप चलकर डाक्टर से मिलकर मदद कर दीजिये। तब ये अनुपम उपेक्षा से उसकी तरफ देख काम का बहाना बना ऑफिस चले गये थे और जब मैने मदद करनी चाही थी, तो मुझे डांटना और झिड़कना प्रारम्भ कर दिया था। चाहकर भी वह उनकी उतनी मदद नहीं कर पायी थी, जितनी उनको आवश्यकता थी।

बस अनुमप से चोरी छिपे थोड़ा बहुत कर सकी थी और चाचा (मुरली के पिता) असमय ही चल बसे थे, किन्तु आज मुरली ने उनके लिये इतना बड़ा उपकार कर उन्हें मुसीबत से बचा लिया। अनुपम स्वयं उसकी सहायता व आदर सम्मान देख उसके प्रति कृतज्ञ हो उठे और अंततः आत्मग्लानि सी महसूस करते हैं।

मैत्रेयी जी ने जहाँ कहानी पर स्वार्थ रहित रिश्तों पर जोर डाला है वहीं स्वार्थ से घिरे रिश्तों को महत्व देने वालों पर प्रकाश डाला है साथ ही एक नारी की मनः स्थिति का चित्रण भी किया है कि किस प्रकार वह शादी के बाद बंध जाती है कि अपनी भावनायें भी प्रकट नहीं कर पाती और न ही अपनी मरजी से कोई कार्य कर सकती है, उसका जीवन व समस्त कार्य पति की मर्जी पर क्रियान्वित होते है।

९. भंवर

'भंवर' एक ऐसी स्त्री 'विरमा' की कहानी है, जो शादी के बाद से ही पति केशव के अत्याचार–प्रताड़ना को झेलती रही और वे सास ससुर मूक दर्शक बने देखते रहे, जिनकी वह रात दिन सेवा करती थी। ग्रामीण परिवेश में रची बसी यह कहानी एक स्त्री के दर्द को उजागर करती है। उस स्त्री के दर्द को, जो सदियों से पुरूष के द्वारा छली जा रही है।

कहानी का प्रारम्भ विरमा के मायके से होता है, जहाँ उसका भाई अपनी बहन को बहनोई की प्रताड़ना के कारण ले आता है। लेकिन जब बहुत दिनों बाद भी बहनोई वापस लेने नहीं आता और विरमा की आँखें भी राह देखते–देखते थक जाती है, तो सभी उसे उलाहना देने लगते हैं। भाई भाभी भी समय बीतते न बीतते उससे उपेक्षा का बर्ताव करने लगते हैं।

ऐसे में एक दिन विरमा को खबर लगती है कि उसके पति केशव ने दूसरी शादी कर ली है ऐसे में वह अपने भाई को लेकर अपने ससुराल जाती है, जहाँ उसे उसकी सौत सुमन मिलती है। उसका अपनत्व से भरा सद्व्यवहार देख भाई–बहन उसके खिलाफ आवाज नहीं उठा पाते और वह विरमा को दीदी कह अपने साथ रहने के लिये राजी कर लेती है वह अपना बच्चा भी विरमा को दे देती है, जिसे देख विरम सब भूल बच्चे के लालन पालन में लग जाती है। वह कोई काम सुमन को न करने देकर स्वयं दिन रात खटती रहती है। समय के साथ सुमन व पति का व्यवहार फिर

बदलने लगता है और उसकी हैसियत उस घर में सिवाय एक नौकरानी के कुछ नहीं रह जाती। हारी—बीमारी पर पैसा मांगने पर अनन्त गालियों और प्रताड़नाओं की बौछार मिलती धीरे—धीरे सब उसके हाथ से जाता रहा। अंततः वह वहाँ से चले जाने का फैसला लेती है और यों ही बीमार और चिंतामग्न अवस्था में ही घर छोड़ कर चल देती है। अंधेरे में अचानक उसका एक स्कूटर वाले से एक्सीटेंड हो जाता है और सारे अंग भंग हो जाते है और जब आँख खुलती है तो पति व भाई दोनों पास होते हैं वह पुनः दोनों के प्यार से बंध जाती है, भाई बहनोई का बहन के प्रति प्यार देख वापिस लौट जाता है। उसे जाते ही पति केशव स्कूटर वाले से समझौता कर उससे पैसे लेकर सदैव के लिये विरमा को उसी अंगभंग अवस्था में छोड़कर चला जाता है और विरमा शून्य में ताकती रह जाती है। यहीं कहानी का अंत हो जाता है।

इस करूण कथा के माध्यम से मैत्रेयी जी ने उन ग्रामीण सतायी हुयी स्त्रियों का चित्रण किया है जो दहेज, बाँझपन के चलते समाज व पति द्वारा शोषित होती चली आयी है। उन्होनें ऐसी ही शोषण की शिकार एक महिला का विरमा की संवेदना के माध्यम से चित्रण किया है।

१०. सफर के बीच

'सफर के बीच' एक ऐसे युवक की कहानी है जिसके गरीब रहते तो कभी किसी ने कोई मद्द न की। भाई भी बेगाने बने रहे किन्तु उसके प्रशासनिक अधिकारी बनते ही उससे अनेकानेक उम्मीद बांधे उसके पास चले आते हैं।

कहानी का प्रारम्भ युवक गिरिराज से होता है जो अपने आगे की पढ़ाई के लिये गाँव अपने पिता के पास पैसे की जुगाड़ में जाता है किन्तु वहाँ पिता की लाचार हालत देख और भईया भाभी का रूखा व उपेक्षापूर्ण बर्ताव झेल वापिस शहर आकर ट्यूशन आदिकर पैसे कमा अपनी पढ़ाई जारी रखता है। इस बीच उसे हेमन्ती नामक युवती से प्यार हो जाता है और हेमन्ती का अपनत्व भरा प्यार उसे जीवन में एक नयी उमंग देता है। लेकिन हेमन्ती के पिता भी तबादला कराकर एक दिन वहाँ से चले गये, क्योंकि गिरिराज उस समय हेमन्ती के काबिल न थे, कमाऊ न थे। गिरिराज आजन्म कुँआरे रहने का व्रत लेते है और कड़ी मेहनत करके प्रशासनिक ओहदे पर पहुँच जाते

है लेकिन तब तक हेमन्ती की शादी हो चुकी होती है और वे जीत कर भी हार जाते है।

उनके प्रशासनिक अधिकारी बनते ही उनके कभी न पूछने वाले भाई, भाभी, फूफा, परिचित आदि उनके पास मक्खी मच्छारों की तरह मंडराने लगते है और उन्हें अपने अनेकानेक जायज–नाजायज काम बता उन्हें धर्म संकट में डालते रहते हैं। व्यवहार के संकोची गिरिराज हर संभव ईमानदारी से सब कार्यों को अंजाम देने की कोशिश करते हैं। नौकरी दिलवाना, माल सप्लाई करवाना, बिल्डिंग बनवाना, घर बनवाना, छोटे भाई–बहन की शादी करवाने से लेकर हर छोटे बड़े कार्यों के लिये हर व्यक्ति उनके पास दौड़ा चला आता और वे चाहकर भी मना नहीं कर पाते। यहाँ तक की न चाहते हुये भी उन्हें पिता की इच्छा वश शादी भी करनी पड़ती है।

धीरे–धीरे लोगों का आना बढ़ता जाता है साथ ही उनका अवसाद भी। अफसरों में गिरिराज के कार्यों के प्रति कानाफूसी होने लगती है सब सुन भी वे शान्त बने रहते है लेकिन कब तक? अंततः बेईमानी पर ईमानदारी हावी होती है और वे साहसपूर्वक व क्रोध के साथ ऐसे रिश्तों से नाता तोड़ लेते है, जो सिर्फ और सिर्फ स्वार्थ पर टिके थे।

यहीं कहानी का अंत हो जाता है। कहानी के माध्यम से मैत्रेयी जी ने ऐसे युवक की मनोदशा का चित्रण किया है जो अपने जीवन के सफर के बीच अनेकानेक परिस्थितियों से गुजर जिस मुकाम पर पहुँचता है वहाँ सिर्फ स्वार्थ से लिपेपुते रिश्तों को देखता है धीरे–धीरे संवेदना मरने लगती है अतः वह ऐसे रिश्तों से सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है।

११. केतकी

'केतकी' उन स्त्रियों की ओर संकेत करती हुयी कहानी है, जो इस दबे घुटे समाज में तथाकथित शोहदों, पंडितों तथा उच्च, सम्मानित व्यक्तियों द्वारा शोषित, अपमानित और बलात्कारित होती आयीं है और अपने जीवन और संवदेना का दम घोंट अपना जीवन अंधकारमय बनाती आयी हैं। लेकिन केतकी ऐसा नहीं करती।

केतकी एक ऐसे घर की बहू बन कर आती है जिसे उसकी सास ने अपनी शिक्षा व सुघड़ता से एक आदर्श गृहस्थाश्रम बना दिया था। किन्तु समय के साथ वे तीन बच्चों को छोड़ इस दुनिया से चली गयी थी। केतकी का विवाह बड़े बेटे श्रीकान्त से हुआ था। श्रीकान्त को गुरूकुल की शिक्षा के लिये बाहर भेजा गया था। पढ़ाई पूरी होने के छः महीने पहले उसका विवाह केतकी से कर दिया गया। वह अपने पिता के पास अपनी अमानत केतकी को छोड़ वापिस पढ़ाई के लिये चला गया।

केतकी जिस गाँव में ब्याह कर आयी थी वह मधुपुर था। यहाँ के ग्रामप्रधान गंधर्व सिंह माने हुये व अत्यन्त सम्माननीय व पूज्यनीय व्यक्ति थे। केतकी के ससुर के साथ उनका उठना बैठना था। गन्धर्वसिंह हर समस्या का हल अपनी बुद्धि चातुर्य के बल पर (या कहे पुरूष की घिनौनी व अपराधिक हरकतों को सभ्यता का जामा पहनाकर) गाँव में सुख शान्ति बनाये रखते थे। गाँव में ये परम्परा थी कि यदि कोई विधवा या कुँआरी स्त्री गर्भवती होती थी तो वे उसका विवाह उसके ही किसी रिश्तेदार से कराकर समस्या का समाधान कर देते थे। इसमें स्त्री की संवेदना, राजीनामा आदि का कोई महत्व नहीं होता था। गाँव भर उनकी बात को सिर झुकाकर मानता था।

श्रीकान्त का छोटा भाई मणिकान्त जनम से गूंगा व अल्पज्ञानी था। उनकी बहन वैशाली जल्दी ही ससुराल को प्रस्थान कर गयी। ऐसे में भाभी केतकी का प्यार पा मणि की अल्पबुद्धि विकसित होने लगी। वह उनके स्नेह में माँ का प्यार देखता। एक दिन ससुर के गाँव से बाहर जाने पर गन्धर्व सिंह केतकी को अकेला जान घर में घुस उसके साथ जबरन बलात्कार करता है और मणि को कमरे में बंद कर देता है वह चाहकर भी कुछ नहीं कर पाता और वह केतकी को धमकाकर चला जाता है। समय बीतते–बीतते केतकी गर्भवती हो जाती है फिर से एक दिखावटी पंचायत जुड़ती और इससे पहले की फिर किसी स्त्री को किसी दूसरे की करनी का जामा पहनाकर सब आश्वस्त हो जायें, केतकी भरी सभा में गन्धर्व सिंह का भांडा फोड़ देती है और सब स्त्रियों से आगे आकर ऐसी कुप्रथा को बन्द करवाने का आग्रह करती है। सभी पुरूष आवाक रह जाते है लेकिन तभी केतकी का कॉलेज का मित्र इंस्पेक्टर चन्दन वर्मा आकर उन्हें गिरफ्तार कर जेल डाल देता है। लेकिन यहीं केतकी जैसी स्त्रियों के दुखों का अंत नही होता।

गन्धर्व सिंह के जेल जाने के पश्चात उनका पुत्र गजराज जब केतकी से नहीं जीत पाता, तो हारकर एक षडयंत्री पत्र श्रीकान्त को गुरूकुल पते पर लिख देता है। पढ़ा लिखा श्रीकान्त जिस पर केतकी को नाज था और वह भी केतकी से प्यार करता था, पत्र पाकर सीधा गाँव आता है और सब जानकर भी वह वेद–पाठी, श्रीराम का ही भक्त निकलता है और पत्नी के तन से पराये मर्द के स्पर्शो की गंध पा उसे छोड़ सदैव के लिये चला जाता है। पिता आवाक् रह जाते हैं।

केतकी ससुर को लज्जित व दुःखी देख वहाँ से जाने का निर्णय लेती है लेकिन ससुर पंडित श्री गोपाल उसे रोक सारी संपत्ति व मणि को उसके हवाले कर निश्चिंत हो जाते है। कुछ माह बाद पंडित श्री गोपाल के घर केतकी के गर्भ से एक बालक जन्म लेता है जिसका नाम स्वंय मणि ने अपनी हथेली पर लिखकर भाभी को दिखाया – 'सत्यव्रत'।

इस प्रकार झूठ से रचे बसे एक गाँव की स्त्री के जीवन का अंत एक कठोर सत्य के साथ खत्म हो जाता है। मैत्रेयी जी ने केतकी के माध्यम से एक ऐसी साहसिक स्त्री का चित्रण किया है जो सदियों से चली आ रही घिनौनी झूठी परम्परा को अपने साहस के बल पर तोड़ने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार उन्होंने ग्रामीण स्त्रियों को अपने खिलाफ हो रहे अनाचारों के खिलाफ आवाज उठाने का आवाहन किया है।

12. चिन्हार

'चिन्हार' कहानी संग्रह की अंतिम कहानी चिन्हार एक ऐसी स्त्री की कहानी है, जो मैत्रेयी जी के जीवन का एक हिस्सा है। क्योंकि उन्होनें इस कहानी का जिक्र अपने आत्मकथात्मक उपन्यास 'कस्तूरी कुंडल बसै' में भी किया है।

कहानी की शुरूआत एक डाक्टर महिला से होती है, जो पेशेण्ट 'सरजू' को देखकर चौंक जाती है क्योंकि यह वहीं सरजू होती है जो उनके पढ़ाई के दिनों में किराये के मकान पर खाना बनाने आती थी और बेहद अपनत्व से उनसे जुड़ गयी थी। बाद में उन्हें पता चला था कि सरजू का पति जहरीली शराब से मर गया था। आज उसे ऐसी दयनीय दशा में देख वे (डाक्टर) विहवल हो उठी। तब उसके साथ

आये युवक–युवती ने बताया कि उनके पति की मृत्यु बाद उनकी ननद वहाँ आयी और उनका बढ़ा पेट देख उसे अपने साथ ले गयी। वर्षो से बच्चों की आस संजोये ननद ने उनके बच्चे के जन्म देते ही उन्हें पीछे के नौकरों के कमरे में डाल दिया और उनकी बच्ची को अपनी बच्ची बना, उसका नाम कनक रखा। 'कनक' के लिये आया और समस्त सुख सुविधायें घर आ गयी। सरजू चाहकर भी वह 'वात्सल्य' कनक पर न लुटा सकी, जिसकी वह हकदार थी। सरजू तो अपनी ननद के अहसान तले दबी थी और कनक को यों सम्पन्न व सुख सुविधा में देख ही संतुष्ट थी। बस, उसे ननद ने कनक का काम सौंप दिया। तो वह निहाल हो उठी। धीरे–धीरे कनक बढ़ी होने लगी। जब ननद घर पर नहीं होती, तो वह वात्सल्यवश कनक को अपने पास सुला लेती और उनके आते ही उसे उसके विस्तर पर लिटा देती। लेकिन कनक भी उसे एक नौकरानी से ज्यादा कुछ न समझती। किन्तु सखियों के यह कहने पर कि तेरी नौकरानी की शक्ल तो तुझसे मिलती है, वह सोच में पड़ जाती।

एक दिन कनक के विवाह का अवसर भी आ गया। चहुँ ओर सजावट व पैसे का तामझाम। शादी भी पाँच सितारा होटल से। लेकिन सरजू को इस अवसर से वंचित रख, वही अंधेरी कोठरी में रहने का संकेत किया गया। विवाह भर कनक रोती रही और जब दहलीज पुजने की बारी आयी तो वह भागकर सरजू की कोठरी में पहुँच गयी, पीछे–पीछे समस्त बराती–घराती आ गये, वे सब आश्चर्य चकित थे कि वह यहाँ क्यों आयी है? तभी कोठरी में से सरजू को खींच कर रोती हुई कनक बोली – माँ ऽ ऽ आँ ऽ ऽ दहलीज पुजवाओ ऽ ऽ माँ ऽऽ. और उससे लिपट गयी। सरजू ने बेटी को सीने से लगा लिया लेकिन पत्थर हो गयी कि क्या ....? यह लड़की जानती है? .... सरजू आवाक, आश्चर्यचकित और जड़वत्।

बस, उस दिन से डाक्टर साहिबा, यही हालत है। कहकर वह युवक, जो सरजू का दामाद था कुर्सी से उठ गया और वह युवती कनक थी, जो हिलकी बांधे रो रही थी। और उन तीनों को इस प्रकार देख डाक्टर साहिबा भी अपने को रोने से न रोक सकीं।

यहीं कहानी समाप्त हो जाती है। इसमें मैत्रेयी जी ने एक माँ की संवेदना व ममता को बड़े मार्मिक ढंग से पिरोया है और एक ऐसी बेटी का चित्रण, जो कशमकश भरी जिंदगी से जूझते हुये आखिरकार अपनी माँ के आगोश में आ ही जाती है।

'चिन्हार' कहानी संग्रह की इन समस्त कहानियों के सम्बन्ध में स्वयं मैत्रेयी जी का कहना है कि – "किसी भी वाद, किसी भी पंथ को नहीं मिलाया इन कथाओं में, ये तो संवेदना की धरती पर उकेरे गये मामूली से ग्रामीण चित्र है। हर्ष इस बात का है कि आज मेरी कथा पात्र सरजू चंदना, रमिया, केतकी आदि महानगर दिल्ली के साहित्य मंच पर आ खड़ी हुई।" वास्तव में इन कहानियों में स्त्री जीवन का हर पल पहलू मौजूद है। स्त्री चरित्र व संवेदना को उकेरती कहानियाँ। लेखिका ने अपने जिए हुये परिवेश को जिस सहजता से प्रस्तुत किया है, जिस स्वाभाविकता से उससे अनेक रचनाएँ, मात्र रचनाएँ न बनकर, अपने समय का, अपने समाज का एक दस्तावेज बन गयी है।

(ब) 'गोमा हंसती है' कहानी संग्रह

यह मैत्रेयी पुष्पा जी का दूसरा कहानी संग्रह है, जो सन् 1998 में किताब घर, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ थ। जिसमें आठ नयी कहानियों को शामिल किया गया है। मैत्रेयी पुष्पा की कहानियाँ शहरी मध्य–वर्ग के सीमित कथा संसार में उन लोगों को लेकर आयी हैं जिन्हें आज समाजशास्त्री 'हाशिए के लोग' कहते हैं।

'गोमा हंसती है' की कहानियों के केन्द्र में है, नारी और वह अपने सुख–दुख, यंत्रणाओं और यातनाओं में तपकर अपनी स्वतंत्र पहचान माँग रही है। उसका अपने प्रति ईमानदार होना ही 'बोल्ड' होना है, हालाँकि वह बिलकुल नहीं जानती कि वह क्या है जिसे 'बोल्ड होने' का नाम दिया जाता है। नारी–चेतना की यह पहचान या उसके सिर उठाकर खड़े होने में ही समाज की पुरूषवादी मर्यादाएं या महादेवी वर्मा के शब्दों में 'श्रृंखला की कड़ियां' चटकने टूटने लगती हैं। वे औरत को लेकर बनायी गई शील और नैतिकता पर पुनर्विचार की मजबूरी पैदा करती हैं। 'गोमा हंसती है' की कहानियों की नारी अनैतिक नहीं, नई नैतिकता को रेखांकित करती हैं।

१. शतरंज के खिलाड़ी

यह ऐसे दो राजनीतिज्ञों पीतमसिंह और धनपाल की कहानी है जो राजनीति खेलते–खेलते स्वयं राजनीति का शिकार हो जाते हैं। दोनों ही अपने आप को शतरंज

का माहिर खिलाड़ी समझ श्रेष्ठता की गलतफहमी में रहते है और अंततः अपना ही विनाश कर लेते हैं।

कहानी का आरम्भ पीतमसिंह के नौकर कामता चमार के सोच विचार से आरम्भ होता है, वह कल की घटना के बारे में विचार करता है, कि किस प्रकार कल उसके मालिक होने वाले चुनाव की चर्चा अपने दोस्तों–यारों से मजे से कर रहे थे। मालिक ने उसकी पत्नी को भी, महिला आरक्षण सीट हो जाने के वजह से बुलाया था, लेकिन दुरगी राजनीतिज्ञों की चालों को समझ नहीं आयी थी। अंततः चहुँ ओर से सोच विचार कर मालिक पीतम सिंह ने अपनी धर्म पत्नी सुशीला देवी को ही चुनाव में खड़ा कर दिया। सुशीला देवी को चुनाव की न तो कोई जानकारी थी और न ही रूचि। वहीं धनपाल ने भी अपनी पत्नी कोमलादेवी को सुशीला देवी के विरूद्ध खड़ा कर दिया। कोमला देवी अपने पति की मनौती और चिरौरी लेकर मानीं। जहाँ दोनों औरतों के पीछे से उनके पति राजनीति कर रहे थे, वहीं उन दोनों को दिखावटी तौर पर भी घर–घर जाना अपने रूप की घटौती जान पड़ रहा था। दोनों राजनीतिज्ञ एक दूसरे को पछाड़ने के लिए दिनरात एक किये थे। लोगों को रिझाने के लिए कहीं धोती बांटी जा रही थी, तो कहीं आलता–बिछिया। आदमियों को रिझाने के लिए दावतें, शाही खाना व बजाना नृत्य आदि ऐसे में एक दिन पीतम सिंह और धनपाल का नशे में धुत अवस्था में आमना–सामना हो जाता है। दोनों गाली–गलौज पर उतर आते हैं। झगड़ा बढ़ जाता है। इतना कि दोनों भरपूर वार करते हैं, एक दूसरे पर और अंततः ढेर हो जाते हैं। समस्त हितैषी व चमचागीर, तमाशगीर, साथी, मित्र मण्डली, चाकर आदि खड़े तमाशा देखते रह जाते हैं, चूंकि वे सभी स्वयं राजनीति के आलम में, मौजमस्ती और नशे के रंग में इतने डूबे थे कि क्या हो रहा है, इसका उन्हें होश न रहा और दो राजनीतिज्ञ खिलाड़ियों का अंत हो गया। जहाँ दोनों की लाशें एक दूसरे के ऊपर पड़ी थीं वहीं सामने की दीवार पर इश्तिहार बराबर चमक रहे थे, सुशीला देवी – पत्नी पीतम सिंह को अपना बहुमूल्य वोट दें। कोमला देवी – पत्नी धनपाल को अपना मत देकर विजयी बनायें।

यहीं कहानी समाप्त हो जाती है और समाप्त जाता है उस राजनीति का अन्त जो चुनाव की एवज में जातिवाद को लेकर खेली जा रही थी। इसमें राजनीति के समस्त दण्ड विधान मौजूद हैं।

२. राय प्रवीण

'राय प्रवीण' एक ऐसे गाइड गोविन्द की कहानी है, जो ओरछा घुमाते समय पर्यटकों को जिस राय प्रवीण की कहानी सुनाता है उससे खुद कहीं न कहीं जुड़ा है लेकिन इसका भान वह किसी को नहीं होने देता है।

कहानी का प्रारम्भ उसके दमदार व्यक्तित्व से होता है। कुल मिलाकर पर्सनैलिटी निखार कर रहता है, धंधे की जरूरी शर्त। झाँसी स्टेशन पर मौजूद गाइड गोविन्द हमेशा विदेशी पर्यटकों को पटाने में रहता है ताकि पैसा अच्छा मिल सके। किसी न किसी भांति वह उन्हें पटा ओरछा का किला दिखाने ले जाता है और उससे जुड़ी राय प्रवीण की कहानी सुना उन्हें अचम्भित कर देता है, कि किस प्रकार कंचन नाम की नर्तकी की बेटी सावित्री को 'राय प्रवीण' नाम राजा इन्द्रमणि सिंह ने दिया, और वही योग्य लड़की परिस्थितियों से लड़ते–लड़ते अनेक कष्टों को भोगकर विषम परिस्थिति में बाढग्रस्त इलाके में लगे राहत कैम्प के अधिकारियों द्वारा यौन शोषित होती है और एवज में मिलता है कुछ अन्न। अन्न खा जहाँ परिवारी सदस्यों में ताकत आयी, तो पति ने लातमार सावित्री पर चरित्रहीनता का आरोप लगा घर से बाहर कर दिया। मायके आयी तो पिता ने भी स्वीकार नहीं किया। अंततः जीवन से तंग आकर उसने ओरछा की नदी में छलांग लगा दी।

कहते हैं न कि मरे पूत की बड़ी बड़ी आँखे। सावित्री के मरने के बाद सभी ने शोक जाहिर किया और लम्बी–लम्बी सांसे लीं, सभी ने कहा–बेचारी का शीलभंग हुआ, सतीत्व नष्ट हुआ, पर अपने आदमी का पिछौरा मैला होने से पहले अपनी जान पर खेल गई। इन्हीं सतियों के दम पर कायम हैं संसार....

गाइड गोविन्द पूरी कहानी सुनाने के बाद मन ही मन हंसता है क्योंकि कोई नहीं जानता कि उसकी 'राय प्रवीण' (सावित्री) कहाँ रहती हैं।

यहीं कहानी समाप्त हो जाती है। कहानी में मैत्रेयी ने गाइड गोविन्द के माध्यम से ओरछा किले की चर्चित नृत्यांगना 'राय प्रवीण' के जीवन पर प्रकाश डाला है साथ ही स्त्री जीवन की नियति को भी व्यक्त किया है।

३. प्रेम भाई एण्ड पार्टी

यह ऐसे दो भाइयों सौदानसिंह व नरेन्द्र सिंह की कहानी है, जिसमें सौदान सिंह जहाँ संसद सदस्य जैसे ऊँचे ओहदे पर है तो वही नरेन्द्र जूनियर हाई स्कूल के अदना से मास्टर। चहुँ ओर सौदान सिंह की ही प्रसिद्धी व चर्चे व्याप्त रहते। नरेन्द्र उपेक्षित व असहाय।

नरेन्द्र जब अपनी बड़ी बेटी मुन्नी के लिए वर खोजने जाते, तो सभी उसे सौदान सिंह का भाई मान बड़ी रकम की मांग रखते जबकि उसका भाई सौदान से कोई लेनदेन नहीं था। थकहार करके वापिस आ जाते। आखिर में एक सम्बन्ध हुआ भी तो सौदान सिंह के नाम पर कि बस वे शादी में आ जायें, बांकी व्यवहार हम बना लेंगे। जैसे–जैसे शादी करीब आने लगी, नरेन्द्र व परिवारी जन नित्य सौदान की खुशामद में जाते व भतीजी के विवाह का संदेश देते, किन्तु निराश वापिस आ जाते, नरेन्द्र की पत्नी तारा को यह सब अच्छा न लगता और वह इसका भरपूर विरोध करती कि वे पहले भाई हैं, मंत्री बाद में। आना हो तो आयें वरना शादी नहीं रूक जायेगी। लेकिन जब उसे पता चलता है कि उसकी बेटी की शादी सौदान सिंह के नाम पर ही तय हुई है, तो वह मूक रह जाती है।

शादी का दिन आ जाता है। बारात आ जाती है। नाते रिश्तेदार जुड़ आते हैं। शादी की दो शर्तो में से एक प्रेम भाई की आर्केस्ट्रा पार्टी आ जाती है। नाच होने लगता है लेकिन नरेन्द्र व उनके परिवार जन इस चिंता में हैं कि सौदान सिंह अभी तक क्यों नहीं आये? लड़के वाले बार–बार सौदान सिंह के बारे में पूंछते हैं मानो शादी मुन्नी से नहीं सौदान सिंह से करने आये हों। तभी अचानक सौदान सिंह की गाड़ी अपने बंदूकधारी सैनिकों के साथ आती हैं। सभी उनके जिंदाबाद के नारी लगाते हुये उन्हीं को घेर लेते हैं। सभी उनकी आवभगत में बिछे जा रहें हैं। दूल्हा दुल्हन की तरफ किसी का ध्यान नहीं। और गांव के लोग भी जुड़ आये। लड़के का पिता खुश। कुछ देर ही में सौदान उठ खड़े हुयें जाने की मुद्रा में। जाने से पहले वर वधू को आशीर्वाद दिया। नरेन्द्र व उनकी पत्नी तारा ने उनके प्रति आभार व्यक्त किया। वे चले गये।

अचानक नरेन्द्र की छोटी बेटी पप्पी दौड़ती हुयी आती है कि पापा! देखो अंदर मम्मी को क्या हो गया? नरेन्द्र दौड़कर अन्दर जाते हैं। तारा बेसुध बेहोश। पास में खुला बक्सा। वे सब समझ जाते हैं और पास खड़ी तारा की भतीजी से चुपके से कहते कि तुम अपने जेवर मुन्नी को पहना दो, ससुराल से आते ही लौटा देगी और फिर तारा को हकीकत बताते हैं कि सौदान सिंह यों ही नहीं आ गये थे। उनके पी.ए. ने स्पष्ट कहा था। एक–एक पल बेशकीमती है उनका.....माना कि तुम क्षेत्र के आदमी हो, पर भइया, घोड़ा घास से यारी करे तो खाये क्या?'' इसलिए मुझे मुन्नी की वे सब चीजें बेंच कर पैसे का इंतजाम करना पड़ा, जो तुमने रात दिन सिलाई करके मेहनत से बनवायी थीं। नहीं तो सौदान न आते। अचानक नरेन्द्र देखते कि तारा की आँखें बन्द व आँसू लुढ़क जाते हैं। वे आवाक! बाहर बारात की विदा के लिए उनकी ढूँढ मची थी।

यही कहानी समाप्त हो जाती है और समाप्त हो जाती है रिश्तों की गरिमा व विश्वास। मैत्रेयी ने कहानी के माध्यम से नेतागणों पर कटाक्ष किया है कि जब वे अपने सगों के नहीं हो सकते, तो आम जनता के क्या होंगे। उनके समस्त वादे व रिश्ते सिर्फ अपने व्यक्तिगत स्वार्थ तक ही सीमित रहते हैं।

४. ताला खुला है पापा

यह एक ऐसी युवती बिन्दो की कहानी है जो ब्राह्मण होकर एक नाई के बेटे अरविन्द से प्यार करने लगती हैं। यही उसकी खता का कारण बन जाता है और माँ–बाप उसे ताने उलहाने देने लगते है और उसे घर में ताला बन्द कर कैद रखा जाने लगता है।

कहानी का प्रारम्भ वहाँ से होता है जहाँ बिन्दो की माँ बीमार होकर झाँसी अस्पताल में भर्ती हो जाती है, वहाँ उसकी दोनों बहनें और पिता को उनकी देखभाल के लिए जाना पड़ता है। बिन्दो को वे उसके प्यार के दण्ड स्वरूप घर में ताला लगाकर बन्द कर जाते हैं। जब वे वापस आते हैं तो बिन्दो को घर मे ंन पा परेशान व बेहाल हो उठते हैं। चहुँ ओर खोजने पर वह उन्हें लकड़ी–कंड़ो की अंधेरी कोठरी में सोते हुये मिलती है, पास ही उसकी लिखित एक डायरी मिलती है। जगदीश चौबे (पिता) उसे पढ़ने लगते हैं। उसमें उनकी बेटी बिन्दो द्वारा पत्र लिखे मिलते हैं, जिसमें

उसने अपने और अरविन्द के प्यार पनपने के अवसरों को सीरियलबद्ध तरीके से लिखा था। और यह भी बताया था कि किस प्रकार पहले हर काम और सहयोग करने पर अरविन्द को यही माँ–बाप शाबासी दिया करते थे और तारीफें किया करते थे। लेकिन जैसे मैं बढ़ी हुयी और हमारे प्यार की भनक उन्हें पड़ी, वे दोनों उनके दुश्मन हो गये, और फिर उसे पीठ पीछे तारीफों की जगह गालियां मिलने लगी और मुझे हर बिगड़े काम के लिए जिम्मेदार ठहराया जाने लगा। अरविन्द से विवाह की बात बिन्दो के मुख से सुनकर माँ ने उसे कितना और कितना मारा था और फिर आर्थिक स्थिति के चलते बड़ी बेटी इन्दु के विवाह के कर्ज से दबे हम निरन्तर विपन्न स्थिति का सामना करते रहे। माँ की जंजीर, पायलें, भैंस सब बिक गये। कोई ऋण देने को तैयार न होता। इसके लिए भी बिन्दो को ही जिम्मेदार समझा जाता है। थकहार कर बिन्दो अरविन्द से सम्बन्ध तोड़ने का फैसला ले उसके आने पर एक पत्र देती है, जिसमें उसे भूल जाने का जिक्र था। पिता आगे पढ़ते हैं–अरविन्द से मिले एक महीना हो जाने पर भी वह उसे भूल नहीं पाई है। पता नहीं उसे नींद क्यों नहीं आती? एक बेचैनी। बार–बार उसी का नाम, न चाहकर भी। न मिलना चाहती हूँ न नाम लेना, लेकिन उसकी सूरत आँखों से हटती नहीं। जीना नहीं चाहती, लेकिन इन्तजार उसका।

इतना पढ़ जगदीश चौबे को लगा बिन्दो को बाल पकड़कर आंगन में ले आये और गर्दन उड़ा दें। उनके हाथ पैर गुस्से से फड़क रहे हैं। कापी के पन्ने फाड़–फाड़ कर विखेर दिये। आखिरी पन्ना फाड़ने वाले थे कि तभी उस पर नजर पड़ी जिसमें लिखा था–आज इस कंडे वाले घर में किसी बंसती मिश्रा की चिठ्ठियां पापा के नाम थीं। जिसमें जिक्र है कि वह और वे दोनों कितना प्यार करते थे आपस में। लेकिन उसके पिता ने जबरदस्ती उसका विवाह दूसरे से कर दिया क्योंकि वे जगदीश नामक लड़के से डर गये थे कि कहीं यह उनकी लड़की के साथ विवाह न कर ले। पिता जी तुम्हें गिरफ्तार करवाना चाहते थे कि कहीं शादी में तुम बबंडर न मचा दो। साथ में यह जिक्र भी था – कि " मैं तुम्हारी अपराधिनी हूँ जगदीश, क्योंकि तुम्हारी मर्जी के अनुसार घर से भाग जाना मेरे बस की बात नहीं थी।" विवाह के दस–पन्द्रह साल तक की चिट्ठी थी वहाँ। पति अफसर है, खोजती है पापा को। जूनियर हाईस्कूल के मास्टर को। काश! ये आंटी मिले तो पापा को समझा दें।

पढ़ जगदीश चौबे झटका खा गये। मानो सोते से जगे हों। बंसती की समस्त यादें ताजा हो उठीं। सांसे तेज हो गयी। कॉपी सोती हुयी बिन्दो के पास चुपके से रख बाहर आ गये। अन्तर्द्वन्द्व चल रहा है। पैर लड़खड़ा रहें है। कांप रहे हैं। खाना लेने आये थे, भूल गये। साइकिल उठायी, तो गिर गयी। लगा बिनदो आवाज सुन जग गयी होगी, पुनः जल्दी से साइकिल उठा, पैड़ल मार चल दिये, पीछे मुड़कर भी नहीं देखा कि कहीं बिन्दो उनके उड़े चेहरे के रंग को भांप न जाये। पीछे से एक महीन स्वर सुनायी दिया–"ताला खुला है पापा।"

यहीं कहानी समाप्त हो जाती है और बिन्दो के बन्धन भी। यहाँ पर प्रेम करने वालों पर लगाये गये सामाजिक बन्धनों को चित्रित किया गया है। यह मैत्रेयी जी की विशिष्ट कहानी है, जो पत्रात्मक शैली या डायरी शैली में लिखी गयी है।

७. साँप-सीढ़ी

यह एक ऐसे बेरोजगार युवक राजन की कहानी हैं, जो वर्तमान भ्रष्ट प्रणाली का शिकार हो नौकरी के बावत अपने माँ–बाप से खेतों को बेंच कर पैसा पाना चाहता है। लाचार माँ–बाप जब एकमात्र जीने का सहारा खेत को बेचने से मना करते तो बेटा गुस्से में उन्हें धमकाता। लेकिन ताउम्र आदर्श के रास्ते पर चलने वाले पिता 'दाऊ' उसकी इस नाजायज मांग से घबरा उठते हैं और उसे तरह–तरह से समझाते हैं किन्तु बेटा बस एक ही रट लगाये है–खेत बेंच दो। चूंकि बेटा विवाहित है, इसलिए उसकी इन नाजायज मांगों के पीछे मां बहू का हाथ ही मानती है और उसे उलाहना दिया करती है। बहू जिसने राजन से प्रेम विवाह किया है, हमेशा मूक बनी माँ–बाप की सेवा किया करती है, लेकिन उसके भी कुछ सपने हैं, इच्छायें हैं, जिन्हें वह जब कभी राजन से अकेले में कहती, जिसे माँ चुपके से सुन पिता को बता गलत अर्थ लगाया करती।

पिता ने आजीवन विषम परिस्थितियों का सामना करते हुये बेटे को पढ़ाया लिखाया व आदर्श शिक्षा दी। उन्होंने अपना सारा धन बच्चों में ही लगा दिया। वे याद करते हैं किस प्रकार एक बार छोटे में राजन को डकैत पकड़ ले गये थे और एक लाख रूपये की मांग की थी, तब चहूँ ओर से निराश हताश उन्होंने अपने खेतों को बेचकर ही पैसों का इंतजाम कर बेटे की जान बचायी थी। इसी तरह बेटी रज्जो के विवाह में ऐन वक्त पर लड़के के पिता द्वारा डेढ़ लाख की मांग के आगे कैसे उन्होंने

घुटने टेके थे, गिड़गिड़ाये , किन्तु वह नहीं माना, तब सेठ मोदी के यहाँ सात बीघे खेती का रूक्का लिखकर, पैसे का इंतजाम किया था और आज बेटा रही–सही जमीन भी बिकवा देना चाहता है, किन्तु बेटा राजन के लिए इस समय सबसे बड़ी चीज है नौकरी। रेलवे–स्टेशन मास्टर की नौकरी। उसके लिए वह नित प्रतिदिन माँ–बाप को उसके फायदे गिनाता व वर्तमान जीवन जीने का सलीका बताता। आखिरकार बेटे की खातिर कि यह किसी और गलत रास्ते न चल दे, पिता खेत बेचने को राजी हो जाते हैं। लेकिन इसके बाद भी दो लाख रूपये का इंतजाम नहीं हो पाता, तब माँ बेटे से कहती है, बांकी का इंतजाम कहाँ से करोगे? राजन कहता है, बाकी का इंतजाम अपनी ससुराल से करेगा, दामाद होने की बावत। नहीं देंगे तो गर्दन मरोड़ देगा। लड़की भगाकर थोड़े लाये हैं। कौन रोकेगा.........बेटीचो.... ।' यह सुनकर बहू सुमन स्तब्ध रह जाती है और घर छोड़कर जाने लगती है। राजन और माँ उस पर क्रोध करते है और तब राजन क्रोध में कहता हैं। " जा हरामजादी, साली कुतिया! तेरी ही खातिर कर रहा था मैं सारे जुगाड़, किसी और के लिए तो नहीं। हरामजादी, तेरे मायके की बारी आयी तो.....बेटी चो....ने दिया है एक फूटा सिक्का भी? मैं पूछता हूँ, तू नहीं उठाएगी ऐशो आराम।" किन्तु सुमन घर से जा चुकी है। राजन मिसमिसाकर बैनामा के कागज फाड़ अन्दर चला जाता है। पिता ऐसा चमत्कार देख स्तब्ध हैं और खुश भी। उनके खेत बच जाते हैं। अन्दर माँ–बेटा गमगीन खड़े है और वे तेजी से बाहर आ जाते हैं और लगभग दौड़ते हुये भागने लगते हैं। बहू सुमन को वापस लाने के लिए।

यहीं कहानी खत्म हो जाती है। यहाँ पर मैत्रेयी जी ने वर्तमान जीवन में ऐशो आराम की जिंदगी जीने की लालसा और समाज की भ्रष्ट प्रणाली, बेरोजगारी और निर्धन व ग्रामीणजनों की लाचारी की ओर संकेत किया है।

६. उज्रदारी

एक ऐसी स्त्री 'शान्ति' की कहानी है, जिसके पति के मरते ही जेठ–जिठानी उसे व उसके बेटे सोमू को दुत्कारना प्रारम्भ कर देते हैं। दोनों माँ–बेटा से भरपूर काम लिया जाता और पेटभर खाने को भी न दिया जाता हैं। जहाँ जेठ का बेटा बीरू पढ़ाई लिखाई करता वहीं उसका बेटा दिन भर ढोर डेंगरों की रखवाली। ससुर लाचार जीव से बीमार पड़े रहते, जरा सी गलती पर सोमू को कठोर सजा दी जाती, जिसे देख माँ सब्र का बांध तोड़ विद्रोह कर उठती, जिसे जेठ जिठानी अपनी जलती आंखों से भस्म

कर देते हैं। जब अन्याय की हद हुई तो उसने खेत में कुछ जगह अपने लिए मांग अलग होने की बात कही, तो सब चेत गये। सद्व्यवहार होने लगा लेकिन पीठ पीछे उसी जमीन पर माँ–बेटे के लिए कब्र भी बनने लगी, जिसका भान होने पर शान्ति अपने बेटे सोमू को लेकर रातोंरात अपने गाँव के ही एक हमदर्द भोलाराम भइया के साथ उनके परिचित स्थान आजादपुर आ जाती हैं। जहाँ वह वहाँ के प्रधान के यहाँ टहल का काम करती–गोबर पानी, दाल–नाज छाँटना, मौका पड़े तो खेतों की रखवाली करना। सोमू ढ़ोरों की देख–रेख। एक दिन प्रधान शान्ति से भाभी कह अनुचित मांग रखते हैं जिसे शान्ति अस्वीकार नहीं करती और स्वयं उनकी आगोश में जाकर अपने को मजबूत करती है। शायद अब वह खुद जिंदगी जीना चाहती है–अपनी तरह। समाज व दूसरों के हिसाब से जीकर उसने कुछ ना पाया था। सो आजाद हो गयी। यहाँ जेठ उन्हें भगा–मरा जान अपने को एकमात्र जमीन का अधिकारी समझ लेते हैं और पिता के मरने के बाद अपने आप को एकमात्र उत्तराधिकारी घोषित कर देते हैं। जिसे भोलाराम के मुख से सुन शान्ति उज्रदारी की दरखास्त के लिए प्रधान के संग निकल पड़ती हैं। उसे लगता है कि अब उसका समय आ गया है। भीतर एक पुख्ता जोरदार आवाज गूँजती हैं– 'मैं आ रही हूँ'।

यहीं कहानी समाप्त हो जाती है। इसमें मैत्रेयी जी ने जहाँ एक विधवा के जीवन के कष्टों को चित्रित किया हैं वहीं जमीन की खातिर किये गये षड्यन्त्रों के साथ ही एक स्त्री के साहस का चित्रण भी किया हैं। यह कहानी इनके ही उपन्यास 'अगनपाखी' के 'भुवनमोहिनी' के जीवन से काफी मिलती है।

७. रास

यह एक ऐसी स्वाभिमानी स्त्री जैमन्ती की कहानी हैं, जिसने 'गौने' की पहली रात अपने बिस्तर पर पति के स्थान पर ससुर को पा कुहनी मार नीचे गिरा दिया और सबेरे अपने मायके वापस आ गयी। लेकिन वहाँ माँ ने भी उसे स्वीकार नहीं किया, तो लोगों की टहल चाकरी कर जिंदगी बसर करने लगी। जाति की नाई थी। जन्म, मुंडन, कनछेदन, ब्याह आदि अवसर पर बुलायी जाने लगी।

एक दिन उसके गाँव में रास मंडली आयी कुछ दिनों के लिए। उनकी सेवा टहल की जिम्मेदारी जैमन्ती को दी गयी। जैमन्ती भी गीत गाने में प्रवीण थी। इसके चलते धीरे–धीरे उसका मंडली के मनसुखा महाराज से प्रेम हो गया। उसे देख वह रस

में भीग उठती। मनसुखा महाराज भी अवसर पा उससे मीठी–मीठी बातें करते और प्रेम के क्रियाकलाप। जैयन्ती चहकती फिरती। उसे जीवन सार्थक प्रतीत होता।

एक दिन किसी ने सूचना दी कि 'रास उखड़ रहा हैं।'' सुन जैमन्ती को गश आ जाता है, वह दौड़ कर मण्डली के पास जाती है। मनसुखा महाराज को ढूढ़ती फिरती है, कि 'वे उसे छोड़ नहीं जा सकते।' अचानक मनसुखा महाराज मण्डली के मालिक दयाराम के साथ आते हुये दिखलायी देते हैं, पास आकर कहते हैं, 'ये धोतियां हैं, अब मण्डली के काम की नहीं, आप कहें तो इस नाई की लड़की को दे दें।' 'दे दो, दे दो।' 'लो, दो धोती हैं। अब तो खुश।' कह मनसुखा महाराज चले जाते हैं। जैमन्ती ने न मानों कुछ सुना न लिया। घर आकर खटिया पर ढह जाती हैं। मण्डली का काफिला चला जाता है।

मनसुखा महाराज को याद नहीं करना चाहती जैमन्ती। उठने की शक्ति नहीं बची। माँ की तीखी आवाज सुनी और चल दी, अपने काम धंधे पर। वह वहाँ देखना नहीं चाहती जहाँ मनसुखा महाराज अपनी मंडली संग उसे देख गाया करते थे, लेकिन बरबस आँखें उस ओर उठ ही जाती हैं– सजल आँखें, उन्हें याद कर मन ही मन मुसका उठती है जैमन्ती ।

यहीं कहानी समाप्त हो जाती है। इसमें मैत्रेयी ने स्त्री जीवन के छलावों को एक रसात्मक लीला के माध्यम से प्रस्तुत किया हैं। सदियों से स्नेह व प्रेम की भूखी स्त्री व उसके साथ होते आये धोखों को मैत्रेयी जी ने जैमन्ती के माध्यम से चित्रित करने में सफलता पायी है।

८. गोमा हँसती है

इस कहानी संग्रह की अंतिम और शीर्षक भूमिका वाली कहानी 'गोमा हंसती है'' एक ऐसे युवक किड्ढ़ा की कहानी है, जिसका विवाह बड़ी मुश्किल से गोमा से होता हैं। किड्ढा रूप में सुन्दर नहीं किन्तु गोमा से बहुत प्रेम करता है। हरहाल में उसे खुश देखना चाहता है। उसी के गांव के बली सिंह दाऊ का उसके घर आना जाना है। धीरे धीरे गोमा और बली सिंह की अतरंगता देख किड्ढा बेचैन हो उठता, लेकिन गोमा की प्यार की प्यार भरी बातें सुन सब भूल जाता है। धीरे–धीरे बली सिंह उसके ही घर

रहने लगता है और गोमा की अधिक ही तीमारदारी करने लगता। गोमा भी ऊपरी तौर पर तो सामान्य पर अन्दर से बली का ज्यादा ध्यान रखती। किड़ढा बीमार हो जाता है। ऐसे में गोमा गर्भवती हो जाती हैं। किड़ढा को शक होता है। गाँव की ही कलावती चाची उसे समझाती हैं। गोमा एक बालक को जन्म देती है, जिसका नाम किड्ढा भंवर रखना चाहता है, बली सिंह – बलबान। गोमा अधिकतर उसे बलवान कहकर पुकारती। किड्ढा का कलेजा जल उठता। वह गोमा के संग मार–पीट भी करता, लेकिन उसका मुरझाया चेहरा देख पिघल उठता और उसकी एक मुस्कान पर न्योछावर हो उठता और विष के घूँट पीता रहता। दोनों को कई बार आपत्तिजनक स्थिति में देख भी वह मूक बना रहता तो सिर्फ गोमा की खातिर। वह उसे बहुत प्यार करता था, उसकी खुशी में अपनी खुशी समझता।

ऐसे में उसे जब पता चलता कि बच्चे के होने पर उसकी जगह बली सिंह को भइयादौज देने भेज रही है, गोमा तो उसके आग लग जाती है। वह क्रोध से जल उठता है। बली सिंह चला जाता हैं। किड्ढा भी गोमा और बच्चे की तरफ से मुँह फेर कर इगलास चला जाता है। उसे वहाँ पता चलता है कि उसके ससुराल में उसके सालों ने बली सिंह को खूब मारा पीटा है, जिससे वह घायल होकर पड़ा है। सालों ने कहा कि तू उनका जीजा नहीं, फिर आया तो खैर नहीं।' सुन जहाँ किड्ढा खुश हुआ वहीं न चाहकर भी वह बलीसिंह को देखने चल दिया। उसकी हालत देखकर वह उसे अपनी साइकिल में बिठा असमंजस की स्थिति में घर तक ले आता है, यह सोचकर की इसे देख, गोमा खुश होगी, मुस्करायेगी, हँसेगी। और उसे क्या चाहिये।

यहीं कहानी खत्म हो जाती हैं। इसमें मैत्रेयी ने जहाँ स्त्री के त्रिया चरित्र को रेखांकित किया हैं वहीं किड्ढा की असमंजस भरी स्थिति को भी रेखांकित किया है। यहाँ किड्ढा की मासूम संवेदना को भी रेखांकित किया है।

इस संग्रह की समस्त कहानियों में मैत्रेयी जी ने स्त्री जीवन को नये सिरे से व्याख्ति किया है, और समाज की सबसे महत्वपूर्ण संस्था परिवार को भी विशेष महत्व प्रदान किया गया है। एक कथाकार से साहित्य जगत व पाठक वर्ग जो अपेक्षायें करता हैं, मैत्रेयी जी उसमें सफल सिद्ध होती है।

इस संग्रह की कहानियों के सम्बन्ध में राजेन्द्र यादव जी का कथन है कि इन कहानियों की भावनात्मक नाटकीयता निस्संदेह हमें चकित भी करेगी। और मुग्ध भी। ये सरल बनावट की जटिल कहानियाँ हैं, 'गोमा हँसती है' सिर्फ एक कहानी नहीं, कथा–जगत की एक ''घटना'' भी है।

(स) 'ललमनियाँ' कहानी संग्रह

'ललमनियाँ' मैत्रीयी पुष्पा जी का तीसरा महत्वपूर्ण कहानी संग्रह है इसका प्रकाशन सन् 2002 में राजकमल, नई दिल्ली की ओर से हुआ था। इसमें मैत्रेयी जी की दस उत्कृष्ट कहानियों को शामिल किया गया है जिसमें मानव चरित्र व व्यवहार को कुशलता से चित्रित किया गया है।

१. रिजक

इस संग्रह की प्रथम कहानी 'रिजक' है यह एक ऐसी स्त्री 'लल्लन' की विवशता की कहानी है जो 'जातिगत राजनीति' की भेंट चढ़ जाती है, लेकिन अंततः वह अपना रास्ता चुन ही लेती है।

कहानी का प्रारम्भ लल्लन, जो कि जाति बसोर की हैं, को दिये गये संदेश से होता है कि उसका पति आसाराम अस्पताल व सरकार के विरूद्ध राजनीति करने के कारण हवालात में बंद कर दिया गया है, लल्लन बेचैन हो उठती है, चहुँ ओर से प्रयास करने पर भी वह उसकी जमानत हेतु पैसे इक्कठे नहीं कर पाती। वह उन दिनों को याद कर तड़प उठती है जब वह एक सफल व सम्मनित बच्चा जनने वाली 'दायी' थी, जिसके एवज में उसे भरपूर पैसा व मान सम्मान मिलता था। फिर समय आया जब वह शहर के शहरीचाल के तरीके से बच्चा जनने की ट्रैनिंग ले कर आयी, तो उसका सम्मान और बढ़ गया और लोग उसे सिस्टर कह कर बुलाते, डाक्टर के समान इज्जत देते। लल्लन का घर परिवार सुखी सम्पन्न। यह उसका पुश्तैनी काम था। पहले यह काम उसकी सास करती थीं।

समय ने पलटा खाया, बसोरों का दिमाग फिरा, खास तौर से लल्लन के पति आसाराम का, जो आजकल जातिगत राजनीति कर रहा था। उन्होंने ऐलान किया कि

अब हमारे घर की स्त्रियां यों घर–घर जाकर बच्चा जनने का गंदा काम सिर्फ कुछ अनाज–पैसे के लिए नहीं करेंगी। उन्हें भी नौकरी दी जाये, वेतन मिले व शहरी सुविधायें दी जायें। स्त्रियाँ पुरूषों की आशा तले दब गयीं। चाहकर भी किसी गर्भवती स्त्री के दर्द में शामिल न हो सकीं और जो शामिल हुयी, उनका जाति से बहिष्कार समझा गया। धीरे–धीरे इस राजनीति ने सब कुछ लील लिया। पैसे खत्म हो गया, लेकिन राजनीति नहीं। 'लल्लन' गाँव के लिए अन्जान हो गयी। वह मान सम्मान रूतबा–फतवा सब जाने कहाँ धरे रह गये। चाहकर भी वह पति आसाराम के विचारों से बाहर नहीं जा पायी। बच्चे दाने–दाने को मुँहताज हो गये और एक दिन ऐसा आया कि आसाराम भी राजनीति के एवज में गिरफ्तार कर लिया गया। वह कभी अपनी जाति को कभी राजनीति को तो कभी आसाराम को कोसती। बच्चों व बूढ़ी सास की हालत देख व तड़प उठती। गाँव में बच्चा जनते समय हुयी समस्त मौतों के लिए अपने आप को दोषी मानती।

आसाराम को गिरफ्तार हुये महीने से ऊपर हो गया। सास समझती बेटा अपनी बेटी के लिए वर खोजने गया है वह तो हकीकत लल्लन ही जानती थी और घर की बेहाल परिस्थिति उसे बेहाल किये थी। ऐसे में एक दिन गाँव में 'मोदी की बहू' की पीर सुनायी दी। बच्चा जन्मते समय की पीर। लल्लन लाख चाहकर भी अपने को रोक न सकी और वहाँ पहुँच बच्चे को जन्माती है, आत्मग्लानी जाती रहती है और बरबस होंठो से गीत फूट पड़ता है "जसोदा जी से हँस–हँस पूछत दाई। नन्दरानी जी से.....।"

यही कहानी समाप्त हो जाती है मैत्रेयी जी ने कहानी के माध्यम से जातिगत राजनीति को तो परोसा ही है साथ ही उसमें फंसी स्त्री की संवेदना व मनोदशा का भी बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है

२. पगला गई है भागवती!

यह एक ऐसी स्त्री भागवती की कहानी है जो बाल विवाह के चलते कच्ची उम्र में ही वैधव्य का शिकार हो अपनी बड़ी जिज्जी व जीजा के यहाँ रह उनके द्वारा जन्मी पांचवी लड़की 'अनुसुइया' को माँ (जिज्जी) द्वारा उपेक्षा से मुँह फेर लेने पर पाल पोसकर बड़ा करती है और जब उस रूपसी, गुणवती के विवाह का अवसर आता है तो मानो नियति को कुछ और मंजूर होता है

कहानी का प्रारम्भ एक ठाकुर के घर की शादी की ऐसी जगमगाहट से होता है, जहाँ चहुँ ओर उल्लास–उमंग, रोशनी और रंगीनी बरस रही है समस्त आधुनिक सुविधाओं का तामझाम। आज भगवती के जिज्जी–जीजा जी के इकलौते पुत्र नरेश के विवाह का अवसर है जीजा अत्याधिक प्रसन्न व मूँछो पर ताव देते नजर आ रहे है जिज्जी भी दौड़ दौडत्र कर समस्त कार्यो को अंजमा देती नजर आ रहीं है भगवती ने सुना है कि नरेश शहर में पहले ही कोर्ट में शादी कर आया है, अब तो सिर्फ दिखावटी फंक्शन बाकी है ऐसे में भगवती को अपनी पाली बेटी अनुसुइया की याद आ जाती है जो अब इस दुनिया में नहीं है लेकिन किसी अन्य के चेहरे पर उसने उसकी याद के चिन्ह नहीं देखे, सब नयी बहू के स्वागत में मरे जा रहे है

स्टेज सज जाता है, नयी पोशाकों में लकदक दूल्हा दुल्हन स्टेज पर आ जाते हैं, सभी स्टेज पर चढ़–चढ़ आशीर्वाद देते है और उनके संग फोटो खिंचवाते है सबसे आखिर में ठाकुर और ठकुराइन यानि जीजा व दीदी वर–वधू को आशीर्वाद देने जाते हैं तभी अचानक स्टेज पर पत्थरों की बौछार होने लगती है तीव्र और तीव्र। ठाकुर लुढ़क कर एक ओर गिर जाते है खानदानी शेरवानी लाल खून से रंग जाती है ठकुराइन विलाप करने लगती है सब बेचैन। हमलावर गायब अन्त में लाला की रोड़ी–पत्थर से भरी छत से जो पकड़कर लाई थी, वह थी भगवती। वह चीखी–"ओ अधरमी! अन्यायी ! ठाकुर माधों! आज बेटा–बहू के स्वागत में मरे जा रहे हो तुम? खुसी में असपेर भर के गाँव जिंवा रहै।"

"आज आँखे मूँद लई? बेटा की गलती दिखाई नहीं दई तुम्है? याद करों माधौ... ...जे ही गलती तौ मेरी अनुसुइया ने करी थी......बस जे ही! 'तैने जो सराबी–जुआरी ढूँढ़ो हतौ सो बा ने पसन्द नहीं करौ। मास्टर जी से प्रीत हती......हमें बताई हमारी बिटिया ने। भगवान के अगाई मंदिर में ब्याह करौ हतौ और फिर गरभ........."मास्टर आन–बिरादरी हतो सो का? भलौ मानस हतो। और जा बहू......जा की तुम आरती उतार रहे.........जा कौन सी असल ठाकुर की जाई है, जा तैं हिन्दू तक नइयाँ! और चार महिना गरभ.......माधौ फिर आज दै दै बेटा को जहर......जैसे मेरी अनुसुइया को ...।'

वह चीखती–चीखती धरती पर लुढ़क पड़ी। बाकी लोक अवाक्! अवसन्न...! एक दूसरे को उलझी हुई प्रश्नवाचक, निगाहों से घूरते हुये.........। धीरे–धीरे फुसफुसाहटें

उभरने लगीं। उन सारी आवाजों के ऊपर रोदन में लिपटा हुआ ठकुराइन का स्वर तैरने लगा, "भागो सिर्रिन हो गई...."

यहीं कहानी खत्म हो जाती है मैत्रेयी जी ने कहानी के माध्यम से सदियों से चले आ रहे बेटियों या स्त्रियों के प्रति भेदभाव, पक्षपात व अन्याय को रेंखांकित किया है बेटा बेटी की अपेक्षा हर माँ बाप पर हावी बैठता है माँ बाप बेटे की हर गलती को क्षमा कर देते है और अपना लेते है जबकि बेटी की एक छोटी सी गलती भी अक्षम्य अपराध का कारण बन जाती है और एक माँ जो स्वयं बेटी को जन्मती है अपने पति व पुरूष समाज के समक्ष लाचार और मूक बनी देखती रहती है दोष, बेटा, पति, समाज को न देकर स्त्री को ही देती दिखायी देती हैं जैसे ठकुराइन का यह कथन – "कि भागो सिर्रिन हो गयी'। शायद स्त्री जीवन की यही नियति है।

३. छाँह

यह एक ऐसे रियासती जमींदार 'ददुआ' की कहानी जिनकी नरमदिली और कोमल स्वभाव के चलते जहाँ उनकी जमींदारी जाती रही, वहीं अंग्रेजो व अपनों के कोपभाजन बनते रहे फिर भी ताउम्र न तो वे अपना स्वभाव बदल पाये और न किसी का सहारा लिया।

कहानी का प्रारम्भ उनकी तेजस्विता व आनबान से होता है समय के साथ जब उनकी जमींदारी टूटती है, तो वे एक राहत का ही अनुभव करते है, क्योंकि वे उस जिम्मेदारी के कारण अपने कोमल ह्रदय की अभिव्यक्ति को व्यक्त नहीं कर पाते थे। पत्नी कब की मृत्यु का शिकार हो चुकी है वहीं बेटी रेशमा भी शादी के कुछ वर्षो पश्चात् ही एक बेटा 'वेदू' छोड़ इस दुनिया से चली गयी। दोनों बेटे चन्द्रभान और सूरज शहर में नौकरी करने लगे है तथा अपनी अपनी गृहस्थी में रम गये। दोनों को बाप से कुछ लेना देना नहीं है है तो बस इतना कि जब फसल बेंचनी होती है तो वे चील की भांति आते है और पैसों पर झपट्टा मार वापस चले जाते है ददुआ दामाद की दयनीय और लाचार हालत देख 'वेदू' को अपने पास ले आते है किन्तु वे स्वयं लाचार व दयनीय अवस्था में है किसी तरह ही वेदू के खाने पीने का थोड़ा बहुत इंतजाम कर पाते है ऐसे में एक दिन अलीगढ़ जाते समय उनकी भेंट अपने ही गांव के मुसलमान सन्नू और उसकी बीबी बतासो से हो जाती है अचानक वहाँ हिन्दू–मुसिलम

दंगा हो जाता है, जिसमें सन्नू मारा जाता है किसी तरह ददुआ और बतासो एक दूसरे को बचाते हुये वापस अपने गांव आ जाते है ददुआ की ऐसी दयनीय हालत देख व वेदू को भूखा पड़पता देख बतासो उनके गृहकार्य में सहायता करने लगती है बतासो के बारे में पता चलने पर उनके दोनो बेटे शहर से आकर खूब खरी खोटी सुनाते है और बहुयें चरित्र हीनता का आरोप जड़ती हैं लेकिन कोई भी उनकी व वेदू की जिम्मेदारी उठाने को तैयार नहीं। वे सब सुनते व देखते रहते है बेटों को डर है कि बाप अपने नाम की जमीन वेदू और बतासो के नाम न लिख दे, इसलिए वे उसकी पहरेदारी करने लगते हैं और नाममात्र का अन्न ही उनके खाने के लिए छोड़तें है गांव वासी कभी बेटों की तो कभी ददुआ की तरफदारी करते दिखलायी देते हैं। बतासो उनकी बेटी रेशमा बन 'वेदू' की समस्त जिम्मेदारी ले लेती है वहीं ददुआ हमेशा चिंतामग्न रहते है कि उनके मरने के बाद 'वेदू' का क्या होगा? या बतासो उसका खर्चा कैसे उठायेगी। ऐसे में वे एक दिन निर्णय कर लेते है और अपने वकील को बुलाकर अपने हिस्से की जमीन बतासो के नाम कर देते हैं, ऐसा कर उनके मन में मचा महाभारत विराम पर आ जाता है और वे शान्ति पूर्वक आँखें मूंद लेते है।

यहीं कहानी खत्म हो जाती है। मैत्रेयी ने यहाँ बुढ़ापे में उपेक्षित बाप की दयनीय दशा का चित्रण किया है वहीं हिन्दू मुस्लिम के भेदभाव को मिटाने की कोशिश भी की है।

४. बोझ

प्रस्तुत कहानी में वर्तमान जीवन की आधुनिक जीवन शैली का चित्रण किया गया है कि किस प्रकार माँ–बाप धनोपार्जन के मोह में बच्चों को उपेक्षित कर उन्हें एक बोझ समझते है यह एक ऐसे बच्चे अक्षय की कहानी है, जिसके माँ–बाप दोनो ही नौकरी करते है जिससे उनकी दिनचर्या बेहद व्यस्ततम् हैं और वे अपने बच्चे अक्षय की ओर ध्यान नहीं दे पाते, जिससे उसका जीवन मशीनीकृत बन गया है और उसकी कोमल भावनायें मन में ही दबी रह जाती हैं।

कहानी का आरम्भ माँ–बाप की दैनिक क्रियाओं से होता है वे अक्षय को जल्दी से उठा उसे टूथब्रश और पॉटी करने को कहते हैं। तीन वर्षीय अक्षय बेमन सब कामों

को करता जाता है वे बीच–बीच में उसे शाबासी भी देते जाते है किन्तु उसके मन में कोई उत्साह नहीं जागता, क्योंकि उसे पता है कि अभी माँ बाप उसे क्रैश में छोड़कर दिनभर के लिए अपने–अपने ऑफिस चले जायेंगे और फिर वही होता है क्रैश जाकर अक्षय अपने दो तीन दोस्तों में मग्न हो जाता है जहाँ घर पर उसकी छोटी–छोटी गलतियों पर माँ–बाप झल्ला उठते है वहीं क्रैश में "आया" भूख न लगने पर भी बेस्वाद खाना जबरदस्ती मुँह में ठूस देती है और पेशाब आदि कर देने पर कान खींच कर चाँटे लगा देती है। थकेहारे माँ–बाप जब घर आते हैं, तो ऐसे में अक्षय की बाल सुलभ चेष्टायें व क्रीड़ायें व शैतानियाँ देख जहाँ झल्ला उठते है वहीं क्रैश से आने वाली रोज शिकायते उनके क्रोध को और बढ़ा देती हैं और वे अपना सारा गुस्सा अक्षय पर उतार देते हैं।

ऐसे में एक दिन अक्षय की बुआ आ जाती हैं, हॉस्टल से छुट्टी लेकर, क्योंकि अब अक्षय का एक और भाई या बहन आने वाला है। अक्षय अब क्रैश नहीं जाता है पूरे दिन बुआ के संग खेलता। वह अब बहुत खुश रहने लगा है उसने अपने पड़ोस के नौकर बहादुर को भी अपना दोस्त बना लिया है वह भी अक्षय से प्यार करता है, लेकिन एक दिन माँ–बाप देख लेते है और उसे अपने बच्चे से दूर रहने की हिदायत दे देते हैं, बहादुर अब नहीं आता। बुआ भी एक समय पश्चात् वहाँ से चली जाती हैं अक्षय फिर अकेला हो जाता है, माँ–बाप को फिर उसकी हरकतों पर गुस्सा आने लगता है और वे उसे दूसरे क्रैश में डालने की सोचने लगते हैं किस तरह यह बोझ खत्म हो। अंततः अक्षय के लाख न चाहने पर भी उसे नवीन क्रैश में डाल दिया जाता है। अक्षय रोता है पापा ऽऽ........प्लीज, पापा ऽऽ.......प्लीज। उसके नन्हे कोमल हाथ पर आया की मजबूत पकड़ और अधिक कसती चली जाती है।

यहीं कहानी समाप्त हो जाती है यहाँ मैत्रेयी जी ने पैसे के मोह में फंसे माँ–बाप की जीवन शैली की ओर इशारा किया है कि जिसके चलते वे बच्चों को सिर्फ एक बोझ समझते है और उन्हें क्रैश आदि में डाल अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री समझते है वहीं कहानी में अक्षय के माध्यम से बाल सुलभ चेष्टाओं और उसके भोले स्वरूप का सफल चित्रण किया गया है

९. ललमनियाँ

'ललमनियाँ' इस कहानी संग्रह की मुख्य व शीर्षक कहानी है। ललमनियाँ एक तरह का बुन्देलखण्डी नृत्य है, जिसमें स्त्री रंग बिरंगा घाघरा–चोली पहन, हाथ में दर्पण लेकर नृत्य करती है, यह विवाह आदि अवसरों पर किया जाता है।

कहानी का आरम्भ एक ऐसी स्त्री 'मौहरो' से होता है, जो घर का आंगन लीप रही है, तभी उसकी छः वर्षीय बच्ची पिड़कुल आकर बताती है कि साबो मौसी आयी हैं, साबो मौसी मौहरो को ताहरपुर में एक विवाह के अवसर पर ललमनियाँ नृत्य प्रस्तुत करने के लिए बुलाने आयी हैं। ललमनियाँ के नाम पर वह पुरानी यादों में खो जाती है कि किस प्रकार पहले ललमनियाँ का चलन घर घर में था और उसकी अम्मा इस नृत्य में प्रवीण विवाह आदि अवसरों पर नृत्य दिखाने जाती थी, फिर वह इस कला में प्रवीण हो गयी। एक बार जब वह एक विवाह के अवसर पर ललमनियाँ दिखाने गयी तो वहां एक शहरी नवयुवक जोगेस उसके रूप पर न्यौछावर हो जाता है और उससे विवाह कर अपने घर ले आता है लेकिन उसके माँ–बाप एक नाचने वाली से उसका विवाह स्वीकार नहीं करते और उसे वहाँ से चले जाने को' कहते हैं, जोगेश उसे अपने जीजा के यहाँ ले जाते हैं। कुछ दिन तक जोगेश अपने जीजा के यहाँ मौहरो से मिलने आते रहे फिर आना बंद। जीजा धन के अभाव में मौहरों को उसके मायके छोड़ आये। जाते समय जोगेस बोले थे– कि नौकरी लगते ही लिवा जाऊँगा, पर फिर कभी नहीं आये। नौ महीने बाद पिड़कुल का जन्म हुआ और दो साल बाद माँ मर गयी। तब से मौहरो अकेली है, तभी उसकी तन्द्रा भंग होती है और वह ताहरपुर, जहाँ उसे कल ललमनियाँ दिखाने जाना है, की तैयारी करने लगती है।

सुबह वह, पिड़कुल और साबो मौसी जल्दी ताहरपुर पहुंच जाती हैं। बारात आने पर मौहरो पूर्ण साजो–श्रृंगार कर ललमनियाँ प्रस्तुत करने के लिए दर्पण लेकर छत पर चढ़ जाती। नृत्य प्रारम्भ हो जाता है तभी पिड़कुल, दौड़कर आती है और कहती है–माँ रूको, नीचे चलो, बापू आये हैं मौसी कह रही हैं, वे दूल्हा बने हैं, अम्मा। हंस–मोटर पर बैठे हैं–चलो अम्मा! देखो! मौहरो का नृत्य रूक जाता है तभी हंस मोटर ऐन उसकी आँखो के आगे से गुजरती है, मौहरो की आँखे फट पड़ीं, पुतलियाँ चूर हो गईं। दरपन वाले हाथ की नसे ऐंठ गईं। पिड़कुल अभी भी गुस्से से माँ को खींच रही है,

बाजों का शोर छाया है सारे शोर से बेखबर मौहरो दरपन के लश्कारे मार–मार कर बेसुध हुई नाचती रही.....नाचती रहीं........एक आदिम नाच।

यहीं कहानी समाप्त हो जाती है जहाँ कहानी में मैत्रेयी जी ने बुन्देलखण्ड के ललमनियाँ नृत्य पर प्रकाश डाला है वहीं वर्तमान समय में उसके खोते हुये स्वरूप पर चिन्ता व्यक्त की है साथ ही एक स्त्री, जिसका पति दूसरी शादी करने जा रहा है, की संवेदना की मार्मिक पुष्टि की है

६. बिछड़े हुए

यह एक ऐसी स्त्री चंदा की कहानी है जिसका पति घर–गृहस्थी सब त्याग उसे गंगा घाट पर अकेला छोड़ सन्यासी बन जाता है, वह सोचती है कि गांगा में डूब कर मर गया है, वह कर्जे में डूबी जिंदगी को अपनी बेटी मंगना संग जैसे–तैसे बिता रहीं है फिर एक दिन..........

कहानी का आरम्भ गाँव के मास्टर शंकर लाल के वचनों से प्रारम्भ होता है, वे गाँव में आये एक साधु स्वामी शतानन्द को सोते से झकझोर कर उठाते है और कहते हैं – 'कि तुम सुग्रीव हो, चंदा के पति! उसके बाद वे तरह–तरह के उलाहना देते है और चंदा भाभी की माली हालत के बारे बताते है स्वामी शतानन्द पहले तो अपने सन्यासी भावों से नहीं डिगते। लेकिन बार–बार अपने ही गांव वासियों व परिचितों की बाते सुन–सुन उनका धैर्य डिगने लगता है और वे मन ही मन सोचतें है कि वास्तव में ये सब उन्हें पहचान गये है और सच बोल रहे है किन्तु वे ऊपरी तौर पर एक भी परिचित भाव नहीं लाते ओर सबको अनजान नजर से देखते रहते हैं, वे वहाँ से भाग जाना चाहते है, उन्हें याद आता है कि रात में नशे की हालत में वे इस गांव आ गये थे, पर अब सबकी नजरों से बच वे वहाँ से अपने गुरू के पास भाग जाना चाहते हैं पर सब उन्हें घेरे खड़े हैं, वे निर्विकार भाव से सबको देखते हैं, कुछ असमंजस में हैं, तभी कुछ लोग उनकी बेटी 'मंगना' को बुला लाते हैं, बेटी को देख उनका धैर्य खोने लगता है और यह जान कि बेटी का विवाह है, वे अपना समस्त प्यार उस पर उड़ेल देना चाहते हैं, लेकिन वे ऐसा नहीं कर पाते। सन्यास धर्म से बंधे हैं, नियम नहीं तोड़ पाते। अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है, ममता भीतर उमड़ रही है, पश्चाताप भी जागता है, लोग मंगना को चरण छूने को कहते हैं, वे बिदक जाते हैं, सभी कहते चंदा को बुलाना

चाहिए, वही इन्हें पहचान, मनाकर ले जायेगी। चंदा चीनी लेने गयी थी। चीनी की बोरी सिर पर रखे वहाँ आती है एक बार फिर स्वामी शतानन्द चंदा को देख विहवल हो उठते है, कभी उसकी ओर ताकते हैं, कभी उससे नजरे चुराते हैं, अब क्या होगा? जैसी विषम परिस्थिति में फंसे स्वामी शतानन्द बीस बरस बाद अपनी पत्नी को देख सीने में उठी हिलोंरो को भरसक दबाने का प्रयत्न करतें हैं, अन्दर ही अन्दर अनेकानेक प्रश्नोत्तर का व्यूह। संयम, नियंत्रण, अंकुश, निगृह पर पूरी शक्ति से लगे हैं, स्वामी शतानन्द? तभी चंदा करीब आती है, वे संभल जाते हैं, उसका मन कहता है, क्षमा कर दे चंदा, मैं तेरा सुग्रीव, मैं तेरा अपराधी। लेकिन यह क्या चंदा तो अपनी बेटी मंगना के पास जाकर कहती है–"मंगना बेटी, तू यहाँ.........घर में तो कितना काम फैला है, इस गाँव के आदमी तो बाबरे ठहरे, जो भी साधु आता है, उसे तेरा पिता......" और वह बिना पीछे मुड़े, मंगना को लेकर चली जाती है स्वामी शतानन्द फटी–फटी आँखों से देखते रह जाते हैं दूर तक। देर तक। धीरे–धीरे भीड़ छँटने लगती है।

यहीं कहानी समाप्त हो जाती है जहाँ सुग्रीव सन्यास धारण कर भी सन्यासी नहीं हो पाये, बार बार पत्नी व बेटी के प्रति मोह व्याप्ता है वहाँ चंदा गृहस्थ होकर भी सन्यासिन है, तपस्विन है उसका जीवन तप है साधु को देखकर, गाँववासियों की बातें सुनकर भी पति के प्रति उसका मोह नहीं व्याप्ता। वैसे भी एक असहाय, बेबस, दयनीय व कर्ज से दबी जिंदगी में जो व्यक्ति उसे अकेला छोड़ गया हो और वापिस आने पर भी पहचानने से इंकार करें और उन्हें देख दया या मोह न जागे, ऐसे व्यक्ति को वापिस पाकर भी वह क्या करेगी, इससे अच्छा तो लोग उसके पति को लापता या मरा ही समझते रहे, तो अच्छा। एक स्त्री के हृदय की गहरी संवेदना को मैत्रेयी जी ने चंदा के माध्यम से व्यक्त किया है।

७. बारहवीं रात

यह एक ऐसे माँ–बेटी–बहू–ससुर की कहानी है, जो आपस में एक दूसरे की भावनायें नहीं समझ पाते और एक दूसरे को ताने देकर आपस में नीचा दिखाने की सोचते रहते है और इसका सबसे बड़ा खामियाजा उनकी बहू सीता आत्महत्या के रूप में झेलती है लेकिन इसके बाद भी आपसी भावनाएं विद्रोह नहीं छोड़ती।

कहानी का आरम्भ सीता के सास–ससुर के वार्तालाप से होता है, जिससे ज्ञात होता है कि सीता की मृत्यु के बाद उनका बेटा सुरेन्द्र गिरफ्तार कर लिया गया है और जमानत के लिए न तो उनके पास पैसे हैं और न ही खुद के छिपने का ठिकाना। किसी तरह एक दूसरे गाँव में छिप कर बैठे हैं, उन्हीं के वार्तालाप से यह भी ज्ञात होता है कि सास अपने सासत्व के चलते बी.ए. पास बहू से भरपूर काम कराती और उसे दहेज का ताना देती रहती है साथ ही ससुर पर त्रिया चरितर फेलाने का आरोप लगाती। वहीं ससुर का कहना है कि उसकी हारी बीमारी में थोड़ी सी हमदर्दी को ही वह सौतिया डाह समझती। उसे सम्पूर्ण बंदिश में रक्खा जाता। ससुर ख्याल रखते, तो उन्हें व बहू को भरपूर उलाहने व ताने दिये जाते, क्योंकि सास को शायद अपने जीवन में इतनी हमदर्दी व प्रेम न मिला था, फिर वह बहू के प्रति ऐसा प्रेम कैसे देख लेती? इसी के चलते सास उससे वह काम भी करवाती, जिसकी आवश्यकता भी न होती, इस कारण बहू का गर्भ तक गिर जाता है, लेकिन फिर भी सास व पति की हमदर्दी उसे हासिल नहीं होती। बहू सीता को उसकी बुआ के यहाँ शादी पर भी नहीं जाने दिया जाता है अंततः बहू तंग आकर फंदा लगाकर जान दे देती है। पुलिस हत्या का केस मान पति सुरेन्द्र को पकड़ ले जाती है सास–ससुर भागकर दूसरे गाँव शरण लेते है उनके आखिरी वार्तालाप से पता चलता है कि अब वे अपने लड़के की दूसरी शादी खुसी–खुशी करना चाहते हैं। माँ बहुत खुश है कि अस्सी हजार में रिश्ता तय हो रहा है लेकिन तभी बाप बताता है कि कल नाई आया था, जहाँ रिश्ता तय हो रहा था, वहाँ कि लड़की अपने बाप से कह रही थी कि हमें कुँआरे रहना पसन्द है लेकिन कत्ल वाले घर में जाना नहीं। सुन माँ भरपूर गालियाँ देती है और साथ ही सीता बहू को कोसती है कि यह सब उसकी वजह से हो रहा है क्योंकि सुबह का उजाला फैल चुका था और दिन के हिसाब से आज सीता बहू की तेरहवीं है और जब तक सूतक नहीं छूटते, वह मेरे लाल को ऐसे ही सतायेगी।

ससुर, सास को सांत्वना देते है और यहीं कहानी खत्म हो जाती है। यह मैत्रेयी जी की अपने आप में अनोखी कहानी है जो वार्तालाप में ही गढ़ी गयी है, यह वार्तालाप से ही शुरू होकर वार्तालाप पर ही खत्म हो जाती है। इसका एक तरफा वार्तालाप पाठक को बांधे रहता है व कहानी में रूचि जगाता है यह मैत्रेयी पुष्पा जी की कहानियों में से मेरी पसंदीदा कहानी है।

८. सेंध

यह एक ऐसे किसान गंगासिंह की कहानी है, जिसकी सारी जमीन चकबन्दी में काटकर उसे उज़रबंजर जमीन दे दी जाती है और उनकी सारी जमीन उन्हीं के दिवंगत दोस्त जोगी बौहरे की पत्नी को रिश्वत की एवज़ में मिल जाती है लेकिन वे इसलिए शान्त रह जाते है कि उन गरीब, लाचार और बेबस की कौन सुनेगा। वहीं जोगी बौहरे के उन पर अहसान के चलते वे उनकी पत्नी से कुछ न कहना चाहते थे।

समय के साथ गंगासिंह का सब कुछ बिक जाता है और वे दाने–दाने को मोहताज हो गाँव छोड़कर शहर मजदूरी करने लगते है यहाँ समय के साथ पैसे, राजनीति और धांधली के बल पर बौहरे की पत्नी कलावती जहाँ नौकरी पा जाती है वही राजनीति भी करने लगती है उनके विधायक जी से अच्छे सम्बन्ध बन जाते हैं, वे कलावती को अपने क्षेत्र गाँव से चुनाव लड़ने की सलाह देते है साथ में यह भी बतलाते है कि किस प्रकार गाँववासियों को रिझाया व मनाया जाता सकता है इसके लिए वे गाँव जाकर जहाँ लोगों के दुखदर्द सुनती वहीं थोड़ी बहुत आर्थिक मदद कर देतीं। उन्होंने गाँव में अपना खाली पड़ा कमरा भी प्रधान को गाँव की सहूलियतों के लिए दे दिया। सभी उनके गुण गाने लगे। गाँव वाले बिचारे बड़ी–बड़ी बातें क्या जानें?

एक दिन विधायक ने कलावती को चुनाव के सम्बन्ध में हिदायद दी कि तुम्हारा क्षेत्र ब्राह्मण बहुल है यदि तुम जातिवाद को लेकर चलोगी तो जीत तुम्हारी होगी। रहे ठाकुरों के वोट, सो गंगासिंह तो तुम्हारे पति का मित्र ठहरा, तुमसे बाहर नहीं जाना चाहिए, और तुम भी............। तभी से कलावती गंगासिंह की खोज में थी और एक दिन अचानक वे उन्हें शहर में मजदूरों के बीच मजदूरी करते दिखलायी दे गये। गाँव के नाते में वे उनके जेठ लगते थे। अतः कलावती सिर पर पल्लाकर बड़े सलीके से उनके पास गयी और उनका हालचाल पूँछने लगी। जमीन के बावत भी पूछा। गंगासिह ने उनका आदर सम्मान कर चाय पिलायी। वे अचनाक खेत व चकबन्दी की बात कर बैठीं और साथ ही यह भी कि आपने केस मुकद्दमा क्यों नहीं किया? तब गंगा सिंह हाथ जोड़कर बोले कि वे जोगी बौहरे की बहू यानि की आप के खिलाफ मुकदमा कभी नहीं कर सकते थे, क्योंकि बौहरे ने उनका आड़े वक्त बहुत साथ दिया साथ ही उन्होंने उन्हें (कलावती) उनकी उपलब्धियों को गिनाते हुये कहा कि जोगी ये काम कभी न कर पाते, क्योंकि तुम जैसा शातिर और चतुर दिमाग उनके पास नहीं था। बहू

तुमने तो हमारी और हमारे गाँव की काया ही पलट दी। कच्चे खेल नहीं खेली बौहरी तुमने। जोगी बौहरे तुम्हारे मुकाबले कहाँ बहू? वे तो अपने हाड़ बेंचकर परमारथ करने वालों में से थे।''

यह सुनकर वे अवसन्न......स्तब्ध! उन्हें लगा कि पांवों के नीचे की जमीन भयानक दलदल में बदलती चली जा रही है और वे उसमें अन्दर धंसती चली जा रहीं हैं।

''किरपा बनाए रखना बौहरी......'' गंगा सिंह हाथ जोड़े खड़े थे।

यहीं कहानी खत्म हो जाती है इस कहानी के माध्यम से मैत्रेयी जी ने राजनीतिक स्वार्थपरता पर कटाक्ष किया है वहीं एक किसान की बेबसी व लाचारी पर भी प्रकाश डाला है।

९. सिस्टर

यह एक ऐसी सिस्टर 'डोरोथी डिसूजा' की कहानी है, जिन्होंने अपने बीमार पिता व नर्स के व्यस्त जीवन के कारण आजन्म विवाह नहीं रचाया। रिटायर होने के पश्चात वे प्राइवेट तौर पर इंजेक्शन लगाने का काम करने लगी थीं तथा गरीबों व असहायों की मुफ्त सेवा किया करती थीं।

ऐसे में एक दिन उन्हें एक पेशेन्ट सुरेश चन्द्र को देखने जाना पड़ा। धीरे धीरे उनके ार से उनका मेल–मिलाप व अपनत्व बढ़ता ही गया और एक दिन मि. सुरेश चन्द्र व उनकी पत्नी ने उन्हें अपनी बहन मान लिया व बच्चों की बुआ। सिस्टर की खुशी का ठिकाना न रहा। इस उम्र में अपनों सा प्यार पाकर वे निहाल हो उठीं और 'फ्री' सुरेशचन्द्र की सेवा करने लगीं। वे सबको बतातीं कि अब वे अकेली नहीं हैं, उनके भइया–भाभी है, भतीजें–भतीजी हैं। सुरेशचन्द्र का परिवार भी उन्हें पूरी इज्जत देता व भाभी मोहल्ले–पड़ोस में तारीफ करतीं। सिस्टर हर सम्भव उन्हें अपना पूरा सहयोग देतीं। सुरेश चन्द्र बहुत जल्द स्वस्थ हो गये।

एक दिन सिस्टर को अपनी महरी से ज्ञात होता है कि उनके भतीजे ऋषि की शादी है, वे प्रसन्न हो उठती हैं और तरह–तरह की तैयारी करने लगती हैं, क्या पहनेंगी, क्या देंगी? आदि। आखिर में बुआ के नाते वे एक बड़ा सा गिफ्ट देने की

सोचती है, किन्तु पड़ोसिन उन्हें धिक्कार देती है कि आपकों तो सोने की चैन या अंगूठी देनी चाहिए, वे असमर्थ होने के बावजूद एक सुन्दर सी अंगूठी अपनी बहू को देने के लिए ले आती है। पड़ोसिन यह भी बताती है कि घुड़चढ़ी के वक्त बुआ ही लड़के की आरती उतारती है, और यह काम उन्हें ही करना है, सिस्टर सोचने विचारने में असमर्थ जल्दी बाजार जा साड़ी, शॉल, सैंडिल ले आती हैं, जिसे पहन वे बिल्कुल हिन्दू लगती हैं, और उन्हें अधिकांश लोग पहचान नहीं पाते। पड़ोसिन हाथों में चूड़ी डाल देती है वे अपने भतीजें की खातिर सब कुछ करने को तैयार हैं, जब वे भइया के घर जाती हैं, तो उन्हें एक मेहमान की तरह बैठा चाय–नाश्ता दे दिया जाता है। घुड़चढ़ी व आरती की रस्म में कोई सावित्री नाम की स्त्री का बुलावा सुन सिस्टर स्तब्ध रह जाती है वह अपने से ही आँख चुराने लगती है जल्दी से किसी तरह वहाँ से निकल अपने घर जाकर साड़ी उतार, अपना एप्रिन मोजे व टोपी पहन लेती हैं और अस्पताल की ओर चल देती हैं, सड़क पर शादी के बाजे बज रहे हैं लेकिन उनका रिक्शा उस ध्वनि को छोड़ बहुत आगे बढ़ जाता है।

यहीं कहानी खत्म हो जाती है। कहानी के माध्यम से मैत्रेयी जी ने खानदानी रिश्तों व खून के रिश्तों को ही महत्तता प्रदान करने वालों पर प्रकाश डाला है तथा अपना सब कुछ होम कर देने व निस्वार्थ भाव के रिश्ते बनाने वाली सिस्टर जैसे लोगों की उपेक्षा को भी दर्शाया है यहाँ पर जातिभेद को भी दर्शाया गया है।

१०. तुम किसकी हो बिन्नी?

यह एक ऐसी स्त्री की कहानी है। जो बेटे की चाहत में तीसरी बार भी बेटी के जन्म लेने पर उसे उपेक्षित कर घृणा की दृष्टि से देखती है, तो वहीं एक ऐसी बच्ची की कहानी है जो माँ के पेट से बेटी रूप में जन्म लेने के कारण सदैव अपने माँ–बाप के प्यार से वंचित रहती है।

मिसेज गुप्ता जहाँ अपनी दो बड़ी बेटियों अंजू और गुड़िया को भरपूर प्यार करती, वही तीसरी बेटी बिन्नी से नफरत। उन्हें लगता इसने जन्म लेकर मेरे पुत्र की अभिलाषा को मार डाला है, वे उसे बात–बात पर ताना देती, काम कराती, खाने को व पहनने को अच्छा न देती। दोनों बहने भी उससे चिढ़ती। वह दिन भर घर का काम करती और फटे पुराने में खुश रहती। मिस्टर गुप्ता भी पत्नी का रौद्र रूप देख कर

उसे प्यार न दे पाते। मम्मी (मिसेज गुप्ता) के बीमार होने पर जहाँ दोनों बड़ी बेटियाँ पास तक न आती वही बिन्नी रात दिन उनकी सेवा करती फिर भी ताने–उलाहने सुन उपेक्षा की शिकार रहती। बिन्नी की दादी से बिन्नी की दुर्दशा देखी नहीं गयी और वे उसे अपने साथ गाँव ले गयीं। अब तक उसके सद्व्यवहार से अंजू व गुड़िया भी उसे पसंद करने लगी थीं। उसके जाने पर जहाँ माँ ने एक बार भी न रोका वहीं पापा व बहनें कुछ न कर सकीं। गाँव जाकर बिन्नी की दादी ने उसका स्कूल में दाखिला करवा दिया और उसे भरपूर प्यार दिया।

पुनः एक बार मिसेज आरती गुप्ता गर्भवती हुयीं और बिन्नी के पापा बिन्नी को लेने गाँव आ गये और अपनी मजबूरी बताते कहने लगे, अम्मा! अपनी मम्मी के लिए बिन्नी में मोह–माया ज्यादा ही है, इतना उन दोनों में नहीं, उन्हें तो जब से पता चला कि घर में नया बच्चा, तब से दोनों लड़किया माँ की दुश्मन हो गयी, मुँह से बात तक नहीं करतीं। देखा था अम्मा, माँ के इशारे पर कैसे नाचती फिरती थी बिन्नी! सारा काम उठा लेती थी।'' लेकिन दादी पापा की एक नहीं सुनती और बिन्नी की पढ़ाई का नुकसान बता उसे नहीं भेजतीं। मि0 गुप्ता खाली हाथ वापिस चले जाते हैं।

यहीं कहानी का अन्त हो जाता है। मैत्रेयी जी ने जहाँ एक ओर बेटे की चाहत में एक के बाद एक ऍबोर्शन करा बेटियों को उपेक्षित करने वाली माँ को बतलाया है वहीं स्वार्थी रिश्तों पर भी प्रकाश डाला है साथ ही मासूम बिन्नी की संवेदना पर भी प्रकाश डाला है बढ़ती उम्र, जातिबाद, वेधव्य की मार, आधुनिक जीवन की व्यस्तता, स्त्री के दुखदर्द, स्वार्थपरता एवं लिंग भेद आदि से चित्रांकित ये कहानियाँ मानवीय संवेदना व मनोभावों से लबरेज है यहाँ प्रस्तुत कहानियों में भाषागत बिम्बों और दृश्यों को सजीव कर देने की अपनी अद्भुत क्षमा के साथ वे जिस पाठ की रचना करती है, उसे पढ़ना कथा–रस के एक विलक्षण अनुभवों से गुजरना है, 'ललमनियाँ' की मौहरो, 'रिजक' कहानी की लल्लन, 'पगला गई है भागवती' की भागो या 'सिस्टर' की डोरोथी, ये सब स्त्रियाँ अपने परिस्थितिगत गहरे करूणा भाव के साथ पाठक के मन में गहरे उतर जाती है, और यह चीज लेखिका की भाषा–सामर्थ्य और गहरे चरित्र–बोध को सिद्ध करती है।

मैत्रेयी पुष्पा की उनकी कहानियों के सम्बन्ध में राजेन्द्र यादव का कथन है– इन साधारण और छोटी–छोटी कथाओं को 'साइलैंट रिवोल्ट' (निश्शब्द विद्रोह) की कहानियाँ भी कहा जा सकता है क्योंकि नारीवादी घोषणाएं इनमें कहीं नहीं है, ये वे अनुभव खंड है जो स्वयं 'विचार' नहीं हैं मगर उन्हीं के आधार पर 'विचार' का स्वरूप बनता है।

कलात्मकता की शर्तों के साथ बेहद ही पठनीय ये कहानियाँ निश्चय ही पाठकों, को फिर–फिर अपने साथ बांधेगी, क्योंकि इनमें हमारी जानी पहचानी दुनिया का वह 'अलग' और 'अविस्मरणीय' भी है जो हमारी दृष्टि को माँजता है, इन कहानियों की भावनात्मक नाटकीयता निस्संदेह हमें चकित भी करेगी और मुग्ध भी। ये सरल बनावट की जटिल कहानियाँ है जो कहन और कथन में ही नहीं, भाषा और मुहावरे में भी मिट्‌टी की गंध समेटे हमें अभिभूत करती हैं।

(स) खुली खिड़कियाँ

मैत्रेयी पुष्पा अपनी बोल्ड नायिकाओं को लेकर साहित्यिक गलियारों में अक्सर गहमागहमी पैदा करती रही हैं। उनकी नायिकाएं स्त्री के लिए वर्जित क्षेत्र में प्रवेश का साहस रखती हैं। वे नारी के लिए तय मानदंडों पर चोट करती हैं और अपने लिए मन मुताबिक जगह तलाशने की जद्‌दोजहद में दिखती हैं। इस क्रम में मर्यादाओं और नैतिकताओं के सीने से आँचल सरक गये जिन्होंने संस्कारी पाठकों और आलोचकों के लिए असुविधा पैदा की। मैत्रेयी जी की इन छोटी बड़ी नायिकाओं के पीछे जो वैचारिकी काम करती हैं उसे उन्होंने समय–समय पर अपने लेखों में प्रकट किया है जो 'खुली खिड़कियां' शीर्षक से पुस्तक के रूप में सामने आया हैं। स्वयं लेखिका के अनुसार, स्त्री विषयक वैचारिक लेखों की 'विषय वस्तु हजारों सालों में फैली हुयी हैं।' इसे उन्होंने धर्म, संस्कृति, समाज, साहित्य, राजनीति, फिल्म और टेलीविजन जैसे छह खंडो में विभाजित किया हैं।

कहना न होगा कि प्रत्येक नवोदित अस्मिता चाहे वह वर्ग, वर्ण, लिंग आदि किसी भी आधार पर निर्मित हो, अपने परवर्ती साहित्य, इतिहास और तमाम संस्थाओं का पुर्नमूल्यांकन करती हैं। अपने लिए एक नया पाठ तैयार करती हैं। उसमें अपनी

अब तक की भूमिका के साथ अपना भविष्य खोजती हैं, उन्हें खंगालती हैं। 'खुली खिड़कियां' में भी यही प्रयास नजर आता हैं। यहाँ मैत्रेयी ने स्त्री जीवन से जुड़े हर पहलू को विविध आयामों में परखने की कोशिश की हैं और हर जगह पुरूष वर्चस्व को ही पाया। हर जगह स्त्री के लिए हथकंडे और षड्यंत्र भिन्न हैं और लक्ष्य एक ही है, स्त्री की दोयम स्थिति को बरकरार रखना। धर्म, संस्कृति, राजनीति हर स्तर पर उसे छला गया। 'विधान सभा और संसद में औरत सुहाती नहीं, बाजार में औरत ही औरत चाहिए। समाज के महत्वपूर्ण हलकों में उसके लिए कोई जगह नहीं। 'वे पैसे की नौकरी' करने वाली को तो छोड़िये आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर औरत को भी पुरूष जैसी सहूलियतें नहीं मिलती। परंपराओं का दबाब उस पर लगातार बना रहता हैं। सिनेमा और टेलीविजन ने स्त्री की जो छवि अपने व्यावसायिक लाभ के लिए उभारी उसने स्त्री के विकास को भारी नुकसान पहुंचाया हैं। आदर्श भारतीय नारी की तस्वीर को भुनाने के लिए उसके मानवी रूप की खतरनाक तरीके से उपेक्षा की हैं। आम औरत 'सिनेमा वाली औरत' से कभी भी अपना तादात्म्य नहीं जोड़ पायी। यही स्थिति साहित्य जगत की भी हैं। मैत्रेयी ने कई लेखों में अपना और अन्य लेखिकाओं के अनुभवों का हवाला देकर स्त्री के प्रति उनकी संवेदनाशीलता का प्रमाण दिया है। इसीलिए उन्हें संवेदनशील दिखने वाले आलोचकों की नीयत पर शक है। 'साहित्य आकाओं' के भोले बयान ने हमारा इतिहास पलट डाला।

मैत्रेयी को परेशानी उक्त पुरूषों से नहीं हैं, बल्कि शहराती अभिजात्य से पीड़ित कथित स्त्री 'एक्टिविस्टों' से भी हैं जिनका एक्टिविज्म नगरो–महानगरों तक ही सीमित हैं। वे कस्बाई और ग्रामीण स्त्री की परेशानियों से पूरी तरह अनभिज्ञ हैं। मुझे लगा, यह सभ्य शिक्षित अज्ञान तो उस अज्ञान से भी ज्यादा खतरनाक है जो ग्रामीण स्त्री को रौंद रहा हैं। निश्चित रूप से किसी भी आंदोलन के लिए अपने समुदाय के एक बड़े भाग की अनदेखी घातक होती है।

मैत्रेयी ने ग्रामीण स्त्री के जीवन को बेहद करीब से देखा–भोगा हैं। उसकी संगतियों–विसंगतियों को उसका हिस्सा होकर जाना। शायद, इसीलिए मैत्रेयी की रचनाओं में वह परिवेश जीवंतता लिये रहता हैं। एक स्त्री के रूप में उनके जीवनानुभव बहुत गहरे और घने हैं। परिवार की कथित सुरक्षा उन्हें नहीं मिली। स्त्री के प्रति समाज के दोगले चेहरे को उन्होंने बचपन में ही पहचान लिया था जिसने उन्हें एक

सामान्य लड़की का जीवन नहीं जीने दिया। यह परिवेश और परिस्थितियाँ ही मैत्रेयी के रचनात्मक व्यक्तित्व को आकार देती हैं।

देश आजादी की स्वर्ण जयंती मनाकर ईक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुका हैं, पर भारतीय नारी आज भी पितृसत्ता के किले में कैद पुरातन परम्पराओं की कालकोठरी में घुट रही है। स्त्री को हजारों साल से गुलाम बनाए रखने वाली पितृसत्ता द्वारा उद्भूत तथाकथित महान संस्कृति के खिलाफ रणभेरी गुंजाती प्रस्तुत पुस्तक में हिंदी की सुप्रतिष्ठित कथाकार मैत्रेयी पुष्पा के गहन चिंतन को मुखर करते लेख संकलित हैं।

लेखिका ने इसमें बड़ी बेबाकी से औरत की गहन पीड़ा पर अपनी चिंता व्यक्त की हैं। साथ ही प्रगतिशील होने का नारा देकर भी उसकी मानसिक दासता में जकड़ी आधुनिकाओं– फैशन परस्त तथा 'सुन्दर' की प्रेमी 'उच्च–वर्णों' की लेखिकाओं, करवा चौथ का व्रत करने के लिए पुरूष के संकेत पर सदा की भांति अप्सरा की तरह सजने–संवारने वाली राजनीतिक 'बहनजियों', मंत्रियों तथा अपने 'सत्यवान' की मृतसत्ता को जीवित रखने के लिए सतत् साधनारत्, अनपढ़, अनगढ़, कलजुगी सावित्री जैसी मुख्यमंत्रियों को भी नहीं बख्शा है।

'मनुष्य की मूल रूप स्त्री' को अपनी संपत्ति मानते हुए उसे पशु एवं दलित बनाए रखकर मनमानी भोगने वाले पुरूषों के साथ–साथ सुख सुविधा–सत्ता भोगने की लालसा में भरमी, श्रृंगार और विलास के मंच पर थिरकती औरत की मानसिकता को भी अपनी पैनी दृष्टि से भेदती–उधेड़ती लेखिका निरंतर दलदल में फंसते समाज के समक्ष गंभीर चिंता की दिशा प्रस्तुत करती हैं, साथ ही प्रखर चेतावनियाँ भी जारी करती हैं–खुली खिड़कियाँ में।

सम सामयिक प्रकाशन वर्षों से नारी विमर्श की दिशा में गहन चिंतन से भरपूर उच्च कोटि का साहित्य प्रस्तुत करता आ रहा है। 'खुली खिड़कियाँ' उसी क्रम में अगला महत्वपूर्ण सोपान है। निश्चय ही यह पुस्तक भी पाठक वर्ग को भारतीय नारी के संदर्भ में सही दिशा में सोचने के लिए प्रेरित करेगी। वैसे भी 'खुली खिड़कियाँ' के विमर्श का एक महत्वपूर्ण बिन्दु हैं स्त्री की दैहिक मुक्त, क्योंकि 'देह ही तो बंधन हैं', जिसके दम पर औरत को मानसिक गुलाम बनाया गया हैं। मैत्रेयी का मत है कि स्त्री की दैहिक मुक्ति उसकी स्वतंत्रता के लिए अनिवार्य है किंतु देह शोषण के षड्यंत्र में

वह अभूतपूर्व ढंग से घिर गयी है। बाजारवाद ने दैहिक शोषण के ऐसे अचूक अस्त्र पैदा किये हैं कि आज के तकनीकी युग में शिक्षा दीक्षा से 'लैस' स्त्री भी प्रचारित शारीरिक सौंदर्य में ही अपनी अस्मिता खोजती है। जबकि उसे अपनी अस्मिता 'खुले कपड़ों से नहीं, खुल विचारों' में देखनी चाहिए।

स्त्री की प्रकृति कुछ 'हरी घास की तरह झुक जाती है', टूटती नहीं, जैसी होती है। जो लाख दबाई, कुचली जाए, पर फिर–फिर सिर उठाती हैं और अपने अस्तित्व के लिए निरंतर संघर्षरत रहती हैं। संघर्ष के इस क्रम में मैत्रेयी जी की ये चिंताए और चेतावनियाँ जायज हैं। इन पर हमें गौर करना ही होगा।

तभी मैत्रेयी कहती हैं, यह किताब रणभेरी गुंजाती ऐसी अस्मिताओं के नाम, जिन्होंने अपनी अंतश्चेतना के झरोखों से उन औरतों की तकलीफें देखी हैं, जो पितृसत्ता के किले में आज भी बंद हैं। कहने के लिए देश की आजादी की अर्द्धशती मनाकर हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर गए हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'खुली खिड़कियाँ' सम्पूर्ण नारी जीवन पर प्रकाश डालती एक सम्पूर्ण पुस्तक है।

ऐसी 'बोल्ड' पत्रिका से सम्बन्धित सवाल लेकर जब मैं मैत्रेयी जी के पास गयी और अपने सवालों के माध्यम से उन पर आरोपो–प्रत्यारोपों की झड़ी लगा दी, तब भी बेहद सहज रहते हुये, सवालो को ध्यान पूर्वक सुनते और गुनते हुये सरल स्वभाव की मैत्रेयी जी ने बेहद गम्भीरता से परिपूर्ण और चिंतनपरक जवाब दिये, जिसे सुन मैं उनकी बुद्धिमत्ता, प्रतिभा और सुलझे प्रखर मस्तिष्क की कायल हुये बिना न रही।

प्रस्तुत हैं 'खुली खिडकियाँ' पुस्तक के लेख से सम्बन्धित हमारे सवाल और स्वयं मैत्रेयी जी के वेबाक जबाव–

प्रश्न नं0 1 'खुली खिड़कियाँ'' में आपने वास्तव में बड़ी बेबाकी के साथ औरत की पीड़ा पर अपनी चिंता व्यक्त की है वह सराहनीय है, पर जो चेतावनियाँ आपने पुरूष समाज को दी हैं, वह क्या वास्तव में पुरूषों में चेतना लायेगी या कि सिर्फ 'चेत–वाणियाँ' बन कर रह जायेंगी?

मैत्रेयी जी– देखो प्रीति! औरत की पीड़ा पर मात्र चिंता व्यक्त करने से ही उसकी पीड़ा कम नहीं हो सकती। स्वयं औरत को अपनी पीड़ा कम करने के लिए समाज के ढर्रे को बदलना होगा। पुरानी पीढ़ी को आगे आना चाहिए। माँओ को आगे बढ़ना होगा। सूत्रधार उनके हाथ है वे आसानी से दिशा परिवर्तन कर सकती हैं और आने वाली पीढ़ी को भटकन भरे रास्ते से उबार नई दिशा दिखला सकती हैं।

जहाँ तक पुरूषों मे चेतना का सवाल है तो कहूँगी–'असर तो हो रहा है, क्योंकि आज 'खुली खिड़कियाँ' बहस का मुद्दा बन चुकी हैं। बड़े–बड़े दिग्गजों ने मुझे 'राष्ट्रीय मंच' पर बहस के लिए आमन्त्रित किया है। तो असर तो है, तैयारियाँ हो रही है, पुरूष कुछ हद तक तो चेता ही है। उद्विग्नता, झुझंलाहट, क्रोध, बहस आदि उसकी चेतना के ही कारण हैं, अर्थात हमारी चेतावनियाँ पुरूष समाज में कुछ तो चेतना लायीं ही हैं और समय के साथ और भी आनी चाहिए।

प्रश्न नं0 2 तब तो मैत्रेयी जी आपको समाज से व्यक्तिगत आक्षेप भी सहन करने पड़ते होंगे? (क्योंकि हर कोई राजेन्द्र यादव नहीं होता) चूंकि आपकी इस 'बोल्ड पत्रिका' ने समाज का कच्चा चिट्ठा खोल कर रख दिया है।

मैत्रेयी जी– जी, हाँ! ऐसा लगता है हर एक व्यक्ति मुझसे नाराज है, मेरे लेखन से नाराज है। वो वह चाहते हैं कि मै वह सब लिखूं, जो वे चाहते हैं। निरन्तर दबाव मिलता है। धमकी भरे फोन आते रहते हैं। 'खुली खिड़कियां' रूपी आइने में पुरूष ने जब अपना अक्स देखा, तो वह मुझसे रूष्ट हो गया। किसी ने कहा – लेखन से जी भर गया क्या? किसी ने कहा – राम जैसे देव को बलात्कारी कहा, जेल जाने को तैयार हो जाओ। किसी ने कहा – आपने अपनी शादी कैसे बचा रखी है अभी तक? किसी ने कहा – यों ही मत लिखो, बहस के लिए 'राष्ट्रीय मंच' पर आओ आदि। लेखक श्रीलाल शुक्ल तो मेरे लेख 'बिस्रामपुर में दरबारी हूरें' से इतने खफा हुये कि मुझे मिलने वाले पुरस्कारों से मुझे वंचित कर दिया और कहा – मैत्रेयी! तुम्हारी इतनी हिम्मत कि तुम मेरे लेखन का

मजाक उड़ाओ। तो आक्षेप तो बहुत हैं, सबके लिए तैयार रहना चाहिए और हूँ भी, पर लेखन से समझौता नहीं। सच्चाई तो आगे आनी ही चाहिए।

प्रश्न नं0 3 इंदिरा गांधी, एकता कपूर, आसा राम बापू, अटल बिहारी बाजपेयी आदि समाज की प्रसिद्धतम् हस्तियों के क्रियाकलापों पर तीखी प्रतिक्रिया कर कहीं आप भी तो 'विस्फोटक लोकप्रियता' हासिल करना नहीं चाहती?

मैत्रेयी जी— उपरोक्त समस्त हस्तियों ने समाज को कोई ठोस आधार न देकर एक भटकन दी है, फिर वे चाहे नेता हों या अभिनेता, देव हों या धर्मात्मा। इंदिरा गांधी अनेकों वर्ष तक गद्दी पर आसीन रहने, अधिकार सम्पन्न होने के बावजूद स्त्रियों के कल्याण के लिए कुछ न कर सकीं। वहीं वर्तमान समय में पीला चोंगा धारण किये, अनेकानेक वादों से लैस उमा भारती भी मध्य प्रदेश को सिवाय उत्तेजक भाषणों के कुछ न दे सकीं।

जहाँ तक एकता कपूर का सवाल है, वह बुद्धिमान व चालक है। वह अच्छे से जानती थी कि भारतीय स्त्रियों को क्या परोसा जाना चाहिए, यानि वही सब, जिसे उसे सदियों से पहनाया, उढ़ाया व समझाया जा रहा है। उसने इसमें मिर्च मसालों (मसलन सौत का आगमन, पूजा—पाठ, घेरलू षड्यन्त्र, तीज त्योहारों का महत्व, शादी ब्याह, प्रेम का त्रिकोण) का छौंक लगा स्त्री की सोच बिल्कुल कुन्द कर दिया, अब नारी सिर्फ घर में रहकर ही समस्त रणनीतियों को अंजाम देना चाहती है, वह खुश है, क्योंकि कीमती गहने, जेवर यही सब उसके लिए सर्वोच्च है। इसके आगे की दुनिया हमारी नहीं, पुरूषों की है। वह बंधन में ही खुश है और खुश रहने के रहस्य बताये एकता कपूर ने।

जहाँ तक धर्म की बात है फिर चाहे वे आसाराम बापू हों, सुधांशु जी महाराज या माँ आनन्दमयी, सभी ने धर्म के सहारे समाज को ठगा है। धर्म की आड़ में जितने दुष्कर्म हो रहे हैं, वह किसी अन्य क्षेत्र में नहीं, यह सर्वविदित है। जो जितना पापी होता है, उसे उतनी ही गहरायी से

धार्मिक कार्यों में हिस्सा लिये देखा जाता है। आज धर्म की परिभाषा बदल गयी है। धर्म पैसा कमाने का, गरीबों का मानसिक तथा शरीरिक शोषण करने का माध्यम हो गया है। इनके चलताऊ उपदेश किसी का आर्थिक व मानसिक उद्धार करने में अक्षम हैं। यह समाज का दुर्भाग्य है कि ऐसे लोगों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है।

प्रश्न नं0 4 स्त्री की मर्यादा, उदारता और नैतिकता को आपने सदियों की गुलामी का प्रतीक माना। आखिर आप स्त्री को आधुनिकता के कौन से पायदान की ओर ले जाना चाहती हैं और इसका क्या परिणाम होगा?

मैत्रेयी जी– वास्तव में मर्यादा, उदारता व नैतिकता का क्या अर्थ है? मर्यादा – यानि एक सीमित दायरे में रहो, बाकी क्षेत्र पुरूषों का। उदारता – सभी के प्रति उदार बनों सिर्फ अपने प्रति छोड़कर। नैतिकता – ढ़की मुंदी रहो, जब पुरूष चाहे, तब आवरण खोलो। ये मायने हैं इनके आज के युग में। क्या ये स्त्री के गुलामी के प्रतीक नहीं। जानबूझ कर षडयन्त्र–वश–पुरूष सद्‌गुणों का चोला पहनाकर स्त्री को एक खूबसूरत गुड़िया के रूप में घर में बन्द रखना चाहता है और उसका शोषण करता है।

बेचारी स्त्री पुरूष के साथ साथ स्वयं अपनी सुन्दरता व चमक दमक से प्रसन्न तथा अभिभूत है और पुरूष मुख से अपनी प्रशंसा सुन यों इतराती है मानो जीवन की सार्थकता इसी में हो।

सदियों से स्त्री खाने, पहनने, गहने, कपड़ों पर बवाल मचाती है। इसका फायदा पुरूष वर्ग ने उठाया और उसे चमकते दमकते भारी भरकम गहनों व कपड़ों से लादकर उसके बौद्धिक स्तर को लगभग शून्य कर दिया और बेचारी स्त्री समझ भी न पायी। जहाँ पुरूष ने स्त्री की सार्थकता घर में रहकर, समस्त कर्त्तव्यों की झंडी पकड़े, पति अनुगामिनी, रंभा सी सुन्दरता में बतलायी, वहीं पुरूषों ने अपने लिए बाहरी गति शील दुनिया को चुना। जहाँ एक ओर शादी–विवाह के अवसर पर लड़की के लिए सुन्दर गहने, वस्त्र, गृहसज्जा, का साजो सामान आता है तो वहीं दूसरी ओर लड़के के लिए गतिशील, गतिवान घोड़ा–गाड़ी मंगाये जाते

हैं। कभी स्कूटर तो कभी मोटर साइकिल, तो कभी एम्बेसडर कार की मांग की जाती है। षडयन्त्र यहीं से चालू होता है। स्त्री को समस्त साजो सामन के साथ घर मे रख दिया जाता है और पुरूष गाड़ी उठा दुनिया के विस्तृत आकाश की सैर हेतु निकल जाता है। अब इस मिथक को तोड़ना होगा। सीमित दायरों से बाहर निकलना ही होगा, तभी तो स्त्री आधुनिकता को सही परिभाषित कर पायेगी।

प्रश्न नं0 5. आपकी नजर में स्त्री के लिए 'आधुनिकता' शब्द के क्या मायने हैं?

मैत्रेयी जी— आधुनिकता का तात्पर्य न तो बाहरी रूप से अधनंगे घूमना, न ही विचारों में पूर्णता नंगई लाना है। आधुनिकता का तात्पर्य परिवेश, रहन सहन, और विचारों का सन्तुलित तालमेल। यानि समाज, समय और अवसर देखते हुये कपड़ों का चयन और विचारों की परिपक्वता। बाहरी रूप से फैशनेबल कपड़े पहन लेने मात्र से कोई युवती आधुनिक नहीं हो सकती, जब तक उसकी सोच भी आधुनिक न हो। यानि दोनों में सामन्जस्य स्थापित करके स्त्री आधुनिक बन सकती है।

प्रश्न नं0 6 मैत्रेयी जी! एक महत्वपूर्ण सवाल! 'सूपर्नखा प्रसंग' के माध्यम से आपने भारतीय संस्कृति के देव, मर्यादा पुरूषोत्तम राम और लक्ष्मण पर चरित्र हीनता और स्त्रियों को प्रताड़ित करने का आरोप लगाया, यहाँ तक की आपने उन्हें बलात्कारी कहने में भी हिचक नहीं की। क्या आपको नहीं लगता कि आप पर स्त्रीत्व भावना इस कदर सवार है कि सदियों से रचित 'राम महिमा से ओतप्रोत काव्य' शास्त्रों—ग्रन्थों आदि को आपने एक झटके में असत्य तथा पुरूषों का षडयन्त्र करार दे डाला या आपका पुरूषों के प्रति इतना अधिक व्यक्तिगत रोष है कि एक पुरूष का देव, पदाधिकारी, नेता, अभिनेता, सफल, सिद्ध, प्रसिद्ध आदि होना आपके लिए कोई मायने नहीं रखता, क्योंकि सदियों से चली आ रही 'राम की आदर्श मय अवधारण' के पीछे कुछ तो आधार होगा ही?

मैत्रीयी जी– देखो प्रीति! जहाँ तक 'सूपर्नखा प्रसंग' का सवाल है तो भारतीय संस्कृति के देवाधिकारी राम के अवगुणों को क्षम्य नहीं किया जा सकता। उनमें वे समस्त पुरूषोचित्त गुण मौजूद थे, जो एक साधारण आदमी में होते हैं। साधारण आदमी एक छोटे से अपराध का भी दण्ड पाता और राम बड़े से बड़े अपराध पर भी क्षम्य कर पूजे जाते हैं। वाह री! भारतीय संस्कृति।

सूपर्नखा का दोष मात्र इतना कि उस युवती का मन एक रूपवान युवक (लक्ष्मण) पर आ गया और वह उसके रूप, पर मोहित हो प्रणय निवेदन कर बैठी। इतनी प्यारी सी चेष्टा की इतनी कठोर सजा, उसकी नाक काट ली गयी। क्या राम और सीता ने विवाह से पूर्व 'पुष्प वाटिका' में एक दूसरे को कनखियों से नहीं देखा था, क्या मन ही मन उन्होंने प्रणय निवेदन की आकांक्षा न की थी। फिर उन्हें दण्ड क्यों न दिया गया? उनके अंग भंग क्यों न किये गये? इसलिए कि उनका विवाह सम्पन्न हो गया और एक को विवाह लायक ही न रखा। इस समस्त प्रसंग में माता सीता मूक हैं। क्या उनकी संवेदना भी मर गयी थी? जो एक स्त्री के दर्द व पीड़ा को न समझ सकीं या इसी को स्त्री की नियति मान बैठीं थीं। फिर राम ने उनके संग कम अत्याचार न किये थे, अग्नि परीक्षा, अविश्वास, देश निकाला आदि के मार्फत एक स्त्री को अपमानित किया, ऐसा आदमी तो साधारण आदमी से भी बदतर जान पड़ता है। जिसमें सवर्था विवेक का अभाव जान पड़ता है। इनसे तो कही बेहतर रावण जान पड़ता है, जो राक्षस कहलाता है लेकिन सदैव अपने 'अशोक वट' के नीचे सीता के सतीत्व की रक्षा करता है, वह बहन के अपमान का बदला लेता हैं, मन्दोदरी का आदर करता है। ऐसा रावण राम से कहीं श्रेष्ठ जान पड़ता है। कोई व्यक्ति कुलीन वंश में जनम लेने से ही कुलीन नही बन जाता। राम के चन्द अच्छे कर्मों के कारण उनके पापों, दुष्कर्मों व दोषों को कदापि क्षम्य नहीं किया जा सकता।

प्रश्न नं07 मैत्रेयी जी! आपके लेखों तथा उपन्यासों को पढ़कर आपके रिश्तेदारों, खासकर आपके पति डॉ0 साहब की क्या प्रतिक्रिया होती है? क्या वे

पुरूष होने के बाद भी पुरूषों की विचारधारा से प्रथक अपना मत प्रकट कर पाते हैं?

मैत्रेयी जी– (हंसकर) डॉ0 साहब तो पूर्ण पुरुष हैं। पुरूष सोच रखने वाले पुरूष। मेरे लेखों के प्रति बड़ी तीखी प्रतिक्रिया होती है उनकी, आलोचना भी करते हैं, कभी–कभी गुस्सा भी होते हैं। कहते हैं, यह सब क्या लिखती रहती हो? मुझे अभी भी दूरदराज से आयी टिप्पणियों को उनसे छिपा कर रखना पड़ता है। आत्मकथात्मक उपन्यास 'कस्तूरी कुंडल बसै' मे उनकी असफलता का जिक्र जब तक उनके 'अहम' को चोट पहुंचाता रहता है। जहाँ तक रिश्तेदारों की प्रतिक्रिया का सवाल है, वे जब तक अपनी झुंझलाहट, क्रोध प्रकट करते रहते हैं पर परवाह नहीं। मेरा लेखन किसी को प्रसन्न करने या खुशामद पसन्द लोगों के लिये नहीं। मेरा उद्देश्य समाज को आइना दिखाना है।

प्रश्न नं0 8 मैत्रेयी पुष्पा जी! आखरी सवाल! आप किस प्रकार इन समस्त दबावों से प्रथक रहकर अपनी रचनाओं को अंजाम दे पाती हैं? आपकी रचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि अब आपको किसी का डर नहीं रह गया न समाज का, न परिवार का, न रिश्तेदारों का और न ही व्यक्ति विशेष का। आपको जो कहना होता है वह आप बिना किसी दवाब के कह डालती हैं। यह कैसे सम्भव होता है?

मैत्रेयी जी– प्रीति! दबाव तो बहुत हैं। पर दबाव में लेखन वास्तविक लेखन नहीं रह जाता, उसकी आत्मा मर जाती है। अतः दबावो से प्रथक रह मैं लेखन को सच्चाई की ओर ले जाती हूँ। स्त्री जीवन के अनुभव मुझे दबाव झेलने की शक्ति प्रदान करते हैं।

(और हम सब बखूबी इस शक्ति को उनकी लेखनी में महसूस करते हैं)

द. कविता संग्रह

१. लकीरें

इस कविता संग्रह को मैत्रेयी जी ने अपने लेखन के आरम्भिक जीवन में लिखा था। लगभग सन् 1989 में। किन्तु यह संग्रह प्रकाशित न हो सका और वे कवितायें गुमनामी के अंधेरे में कैद रह गयीं। मैत्रेयी जी के अनुसार, " इस कविता संग्रह में मेरी कुंठाभावना से ओतप्रोत रचनायें ही कविता रूप में निकल बाहर आयी हैं। इसमें मेरी (मैत्रेयी जी) दशा कुंये के मेंढ़क के समान है, जो चाहकर भी बाहर नहीं आ पाता।"[18] किन्तु लेखन की प्रारम्भिकता, गृहस्थिक व्यस्तता व मानसिक उथल पुथलता के कारण वे इसका प्रकाशन न करा सकीं और यह संग्रह साहित्य जगत में आने से वंजित रह गया।

---

[18] मैत्रेयी जी से साक्षात्कार पर आधारित

तृतीय अध्याय

1. उपन्यास साहित्य का सम्पूर्ण पक्ष एवं नारी का अभिव्यक्ति पक्ष।
2. महिला उपन्यास साहित्य में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका एवं परिस्थितियाँ।
3. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास साहित्य में नारी की भूमिका एवं परिस्थितियाँ। (साक्षात्कार सहित)

१. उपन्यास साहित्य का सम्पूर्ण पक्ष
एवं
नारी का अभिव्यक्ति पक्ष

उपन्यास का क्षेत्र ऐसा क्षेत्र है जो मनुष्य जीवन के व्यापक संदर्भो को स्पर्श करने वाला और यथार्थ जीवन की गत्यात्मकता के अधिक निकट होने के कारण मानव चरित्र और उसकी समस्याओं और स्वीकृतियों को यथार्थ रूप में अंकित कर सकता हैं।

जीवन के विविध क्षेत्रों की भांति साहित्यिक क्षेत्र में भी नारी का महत्वपूर्ण स्थान है। वैदिक काल के उपरान्त रामायण, महाभारत बौद्ध तथा मध्यकाल से गुजरती भारतीय नारी की सामाजिक यात्रा अद्यतन काल तक पहुंचने तक अनेक उतार चढ़ाव देख चुकी हैं। हिन्दी साहित्य में उपन्यास विद्या पुरानी विद्या नही हैं। प्राचीन काल से ही नारी के सम्बन्ध में पुरूष उपन्यासकारों द्वारा ही विविध रूपेण प्रस्तुतियाँ होती थीं। शनैः शनैः मध्यकालीन अंधविश्वास, अशिक्षा तथा रूढ़ियों से मुक्त होती गयी नारी ने हाथ में कलम थाम ली और अपनी तथा परिवेश की मीठी कड़वी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने लगी। उषा देवी मित्रा के पूर्व के उपन्यासों में नारी के परिवेश, मानसिकता, अन्तर्द्वन्द्व, आहलाद और संवेदना, उसके बहिरंग और अंतरंग का चित्रांकन, पुरूष उपन्याकारों द्वारा होता था, पर वर्तमान समय में नारी के द्वारा नारी के दृष्टिकोण से देखे गये विविध युगीन संदर्भ अभिव्यक्त हाने लगे।

वर्तमान समय में नारी भी उपन्यास विद्या के माध्यम से जीवन से सम्बन्धित विविध क्षेत्रों के परिप्रेक्ष्य, अपने उपन्यास की कथा वस्तु में अनुस्यूत वातावरण, पात्र तथा परिस्थितियों के संदर्भ में करने लगी। नारी लेखिकाओं की सान्द्र स्वानुभूति तथा मानवीय जीवन के विभिन्न सरोकार एक दूसरे से घुलमिल कर हिन्दी उपन्यासों के पन्नों पर जिस रूप में अवर्त्तीण हुए, वे रूप हिन्दी उपन्यास विधा के लिए नवीन तथा स्वागत हेतु हैं। जीवन और जगत से सम्बन्धित प्रत्येक घटना, विचार वस्तु और भाव इन नारी उपन्यासकारों का कथ्य हैं। पुरूष उपन्यासकारों की तुलना में नारी उपन्यासकार नारी जीवन से सम्बन्धित मर्मस्पर्शी बिन्दुओं को पहचानने और महत्व देने में स्वाभाविक रूप से ज्यादा सफल हुई हैं।

समाज में नारी के व्यापक तथा बहु आयामी धरातल को दृष्टिपथ पर रखते हुए समकालीन परिस्थितियों से उपजे तथा परम्परा से पोषित बहुत सारे सवाल हैं, जिनका ईमानदार उत्तर पुरूष उपन्यासकारों की तुलना में नारी लेखनी ही ज्यादा बेहतर दे सकती थी। भूमण्डलीकरण से प्रभावित वर्तमान संस्कृति, सर्वत्र विकीर्ण होता वैज्ञानिक आलोक, उपभोक्तावादी संस्कृति से प्रभावित हो रही नैतिकता तथा नारी में विकसित हो रहा अस्मिता बोध नारी लेखन के माध्यम से नारी उपन्यासों मे विवदित है। नारी की निजस्विनी दृष्टि से अनुप्राणित होकर ये तत्व भागे हुए यथार्थ की प्रभविष्णुता के कारण पाठक की चेतना की गहराइयों में प्रविष्ट हो जाते हैं। नारी की अंतः सत्ता की संवेदना से प्रादुर्भूत अनन्त मार्मिक अनुभूतियाँ चेतना को सराबोर कर देंती हैं। जीवन के अनेक नये संदर्भ आविर्भूत हुए हैं। इस उपक्रम में नारी लेखिकाओं द्वारा सहज ही ऐसे बहुत सारे कथ्य तलाशे गये हैं, जिनके विमर्श की प्रक्रिया में नारी चेतना की समस्तता तथा परिवेशगत यथार्थ की अभिव्यक्ति को नारी उपन्यासों में जीवन्त किया जा सकता हैं। कई बार ये लेखिकायें मर्यादा तथा नैतिकता की लक्ष्मण रेखायें लांघती प्रतीत होती हैं, किन्तु यही तो वह कारगर उपाय है, जिसके माध्यम से युगीन यथार्थ के अदृश्य परिपार्श्व प्रकाश में आ सके। उषा प्रियम्बदा, निरूपमा सोबती, गौरापन्त शिवानी, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, सुमति अय्यर, क्षमा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, सुधा गोयल आदि के उपन्यासों में नारी का अभिव्यक्ति पक्ष प्रबल रूप में सामने आया हैं। इन उपन्यासकार महिलाओं ने युगीन सामाजिक संदर्भो में नारी अस्मिता के प्रति संवेदनशील रहते हुये अपने अस्तित्व चेतस–स्वरूप का प्रत्यारोपण करने की चेष्टा की हैं। सम्बन्धित युगीन सामाजिक सरोकारों से सामंजस्य बिठाती अथवा संघर्ष करती नारी के भोगे हुए यथार्थ और आदर्श समाज के प्रति स्वप्निलः सृजन धर्मी दृष्टि इन उपन्यासकारों का प्रमुख कथ्य है, जिसे विमर्शित करने के लिए इन उपन्यासकारों ने प्राणवन्त शब्दों से ओत–प्रोत भाषा को शिल्प और शैली के नये तेवरों के द्वारा प्रस्तुत किया है।

उपन्यास साहित्य का सम्पूर्ण पक्ष नारी के वाह्य और आन्तिरिक अस्मिता की खोज में लगा हुआ है। उनका उद्देश्य नारी के अनेकानेक रूपों का चित्रांकन करना हैं। नारी के सम्पूर्ण अभिव्यक्ति पक्ष की प्रस्तुति बहुधा पुरूष उपन्यासकारों द्वारा सम्पन्न हुई हैं। वैदिककाल, रामायण काल, महाभारत काल, स्मृति काल, पौराणिक काल, बौद्ध संदर्भ रचना काल के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य, अपभ्रंश साहित्य, नाथसिद्ध साहित्य,

मध्यकालीन संत भक्त तथा रीति साहित्य एवं समकालीन साहित्य में नारी की वाह्य तथा आन्तरिक पक्ष का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

उपर्युक्त लेखिकाओं और समकालीन रचना धर्मिता को छोड़कर समस्त कालों में नारी से सम्बन्धित कथ्य पुरूषों द्वारा प्रस्तुत हुए। स्पष्ट है कि नारी के स्वरूप का चित्रांकन नारी के इतर हाथों से सम्पन्न हो रहा था। नारी के विविध रूपों को यदि गैर नारी या नारी इतर मनीषियों द्वारा परिदृष्य नारी के विविध रूपों पर यदि हम एक दृष्टि डालें तो नारी के विचित्र और बेमेल चित्र परिलक्षित होते हैं। जैसे – "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता"[1] तथा "नारी नरकस्य द्वारः"[2] तथा "अवगुन आठ सदा उर रहहीं, नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं।"[3] तथा "नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में, पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।"[4] तथा "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी आंचल में है दूध और आंखो में पानी"[5] कहकर नारी के विरोधी स्वरूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किये हैं।

भारतीय समाज प्रारम्भ से ही पुरूष प्रधान रहा हैं। यद्यपि बहुत कुछ बदलता है। बहुत कुछ अच्छा हुआ है, तो भी बदलती संस्कृति, बदले मूल्य, बदलती नैतिकता, वैज्ञानिक प्रवृत्ति, वैश्विक संस्कृति का प्रभाव आदि तत्व नारी को अनुकूलता ही नहीं दे रहे हैं, इन सबकी मौजूदगी के उल्लास में नारी जब धरती से गगन की यात्रा प्रारम्भ करती हैं, तो उसे तब बहुत बड़ा आघात भी देते हैं, जब वह महसूस करती हैं कि आकाश उससे अब भी उतनी ही दूरी पर है। रूढ़ियों, परम्पराओं, ऋणात्मक मान्यताओं के कारण धरती का गुरूत्वाकर्षण उसे अन्तरिक्ष यात्रा के लिये अनुमति नहीं देता। केवल नारी अंतरिक्ष यात्रा के युग में प्रवेश कर चुकी है इस प्रकार का ऐलान करता है, प्रचार करता है और नारी की पीठ ठोकता हैं। तब की बात और थी जबकि नारी स्वाधीनता, नैतिकता वैयक्तिता तथा स्वाभिमान का अर्थ नहीं जानती थी। आज के जीवन के हर क्षेत्र में उसकी समझ और सहकारिता पुरूष से टक्कर ले रही हैं। तब नारी जानकर अनजानी सी भ्रान्ति, छल, शोषण, उत्पीड़न, पराधीनता तथा दोहरे मानदण्डों का जीवन स्वीकृति पूर्वक कैसे जी सकती हैं? किन्तु उसकी कोमल शारीरिक

---

[1] मनुस्मृति–मनु, 141
[2] प्रश्नोत्तरी–आदि शंकराचार्य पृष्ठ 27
[3] रामचरित मानस (लंका काण्ड के 15 वें दोहे के नीचे की दूसरी चौपाई) गोस्वामी तुलसी दास
[4] कामायनी–जय शंकर प्रसाद – श्रद्धा सर्ग
[5] यशोधरा–मैथली शरण गुप्त–पृष्ठ–40

तथा मानसिक संरचना, संवेदनशीलता, समर्पण शीलता उसे निर्भय, क्रूर, स्वार्थी और हृदयहीन इस सीमा तक नहीं बनने देते कि परिवेश में उसी स्थापनाओं और स्वीकृतियों का साम्राज्य स्थापित हो सके। नारी संचेतना इस यथार्थ का सूक्ष्म साक्षात्कार करती हैं और वह अनुभूति की गहराइयों में बैठकर नारी उपन्यासकारों के कथ्य का आधार बनती हैं।

उपन्यास मानव जीवन के चित्र हैं। उपन्यास का क्षेत्र मनुष्य जीवन के व्यापक संदर्भो को स्पर्श करते वाला और उसकी समस्याओं और स्वीकृतियों को यथार्थ रूप में अंकित करने वाला है। शताब्दियों से जीवन के प्रायः समस्त परिप्रेक्ष्यों में नारी को दूसरे दर्जे की नागरिकता प्राप्त हो सकी। सामाजिक स्थितियों पर दृष्टि डाली जाये तो माता की अपेक्षा पिता, पत्नी की अपेक्षा पति, पुत्री की अपेक्षा पुत्र, बहन की अपेक्षा भाई का स्थान ऊँचा हैं। प्राचीन उपन्यासों में नारी का अभिव्यक्ति पक्ष प्रबलतम् रूप में सामने न आ सका। नारी किसी ऐसी भूमि पर न खड़ी हो सकी, जहाँ उसका स्वतन्त्र अस्तित्व हो।

समय की धारा प्रवाहशील है, परिस्थितियाँ एक सी नहीं रहती। उनमें परिवर्तन दृष्टिगोचर होता हैं। स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी उपन्यासों में नारी को घर की चारदीवारी में सीमित रखकर समाज में उसकी स्थिति पुरूषमुखापेक्षी के रूप में चित्रित की गयी हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। अनेकानेक सामाजिक रूढ़ियाँ, परम्परायें और मान्यतायें विखण्डित हो रही हैं। उनका स्थान नवीन मान्यतायें ले रहीं हैं। सामाजिक यथार्थ उपन्यासों का मूल कथ्य बन गया हैं सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य में नारी भी परिवर्तित मानसिकता तथा पूर्ण वैयक्तिकता के साथ परिलक्षित होती हैं।

२. महिला उपन्यास साहित्य में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका व परिस्थितियाँ

महिला उपन्यासकारों के रचना संसार में नारी की जिस परिवर्तित मानसिकता के परिदृश्य विवक्षित होते हैं, उसी की प्रतिछाया उसकी वैयक्तिक मानसिकता में परिलक्षित होती हैं। नारी उपन्यासकारों ने समकालीन, पारिवारिक तथा सामाजिक

यथार्थ को नारी की विभिन्न मनोदशाओं, समस्याओं, आशाओं निराशाओं विवशताओं, तनावों, अनाचारों, विसंगतियों, न्यूनताओं तथा स्वतन्त्रता के नाम पर स्वच्छन्दता की ओर उड़ानों को भी अपना कथ्य बनाया हैं, जिसे पुरूष उपन्यासकारों की तुलना में अधिक मार्मिक स्वानुभूतिमय तथा तन्मय रूप में विमर्शित किया गया हैं।

उपन्यास साहित्य 'मानव जीवन के क्षितिज व्यापी संदर्भो को आत्मसात करके मानवीय चरित्र, समस्याओं अंतरंग तथा बहिरंग प्रासंगिताओं को निजस्विनी प्रतीतियों तथा आत्म पर अवबोंधों से प्रमाता को विभोर कर अपने प्रवाह में बहा ले जाने की सामर्थ्य रखता हैं उपन्यास का क्षेत्र मनुष्य जीवन विविध संदर्भो को आत्मसात करने वाला तथा यथार्थ जीवन की गत्यात्मकता से अधिक निकट होने के कारण मानव चरित्र और उसकी विभिन्न विद्रूपताओं को यथार्थ रूप में चित्रित करता हैं।

नारी उपन्यासकारों की कृतियों में कुछ अत्याधुनिक नारी रूपों में निरर्थकता के विद्रूप चित्रण भी तथ्य बन सके हैं, किन्तु उन्हें तमाम नारी पात्रों की मानसिकता नहीं कहा जा सकता। नारी उपन्यासकारों की कृतियों में चित्रित नारी हमारे जीवन के समीप है और यह समीपता मात्र फैशन के वशीभूत होकर नहीं, वास्तविक अर्थों में है। उनकी परिस्थितियाँ हमारी परिस्थितियाँ हैं। उनमें चित्रित विसंगति आरोपित नहीं हैं, यथार्थ जीवन के निकट हैं। काल–प्रवाह के साथ नारी की बहिरंग और अन्तरदशा में बदलते युग और बदलती परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में जो परिवर्तन हुआ, उसका प्रभाव नारी उपन्यासों में चित्रित नारी–चरित्र पर भी पड़ा।

छठे, सातवें, आठवें, नवें तथा शताब्दी के अन्तिम दशक के नारी चरित्रों और उसके परिवेश में नारी रूपों में बहुत बड़ा परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इनमें सारे परम्परागत रूपों को नष्ट भ्रष्ट करके यथार्थ को नग्न रूप में चित्रित किया गया हैं। इस युग की महिला उपन्यासकारों ने यौन–वर्जनाओं की अस्वीकृति का चित्रण बहुत बेबाकी से किया हैं। कृष्णा सोबती, ममता कालिया, कृष्णा अग्निहोत्री तथा मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास इस कथन के साक्षी हैं। नारी के बहिरंग पक्ष की अपेक्षा उसके अन्तरंग मनोविश्लेषण को विशेष स्तर पर रूपायित करने का श्रेय कृष्णा सोबती, शिवानी, निरूपमा सेवती, सुधा गोयल, मैत्रेयी पुष्पा, मन्नू भण्डारी, ममता कालिया, उषा प्रियम्बदा, मृदुला गर्ग, मेहरूनिशा परवेज, शशि प्रभा शास्त्री, क्षमा शर्मा, सुमति अय्यर, कुसुम अंसल, शुभा वर्मा, मृणाल पाण्डेय, दीप्ति खण्डेलवाल, मालती जोशी, बाला दुबे, प्रभा

सक्सेना, निर्मला बाजपेयी, सूर्यवाला तथा बिन्दु सिन्हा आदि यशस्विनी महिला उपन्यासकारों को प्राप्त होता हैं। इन लेखिकाओं की कृतियों में नारी का वहिरंग पक्ष यद्यपि पूरी अस्मिता के साथ उपस्थित हैं, किन्तु इनमें चित्रांकित नारी का अन्तर्जगत इतना प्रत्यक्ष, इतना यथार्थ, इतना जाना–चीन्हा तथा इतना विश्वसनीय है कि उसके आगे बहिरंग पक्ष गौड़ हो जाता हैं। नारी के मन की एक–एक परत उघाड़कर इन महिला उपन्यासकारों ने उसके वैयक्तिक पहलू की विविधता को साकार किया हैं। जिससे उपन्यासों में नारी की महत्वपूर्ण स्थिति दर्ज हुयी। विभिन्न परिस्थितियों में दबी–कुचली परतों में यही तो नारी का अन्तर्मुखी व्यक्तित्व परिदृष्य है, जो स्वयं अपने ही बनाये जाल में विषाद और पीड़ा की खाइयों में जा धंसता है और कहीं उसका बहिर्मुखी व्यक्तित्व हैं, जो अपने उन्मुक्तता और ऊर्जस्वित स्वरूप से अपने परिवेश को महकाता–चहकाता चलता हैं।

विभिन्न महिला उपन्यासकारों ने नारी की महत्वपूर्ण भूमिका को उजागर करने तथा विभिन्न परिस्थितियों मे नारी की स्थिति को उजागर करने हेतु अपनी उंगलियों मे कलम थामकर काल्पनिक कथानकों और पात्रों के माध्यम से अपने परिवेश में मौजूद तत्वों, कथ्यों, दृश्यों को अपनी अंतश्चेतना में समायोजित कर उसे अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है। उसने जो ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से अभिज्ञा प्राप्त की, उसे सामाजिक, पारिवारिक तथा वैयक्तिक संदर्भ में उस गहराई से अनुभूत किया, जो उसकी चेतना की गहराइयों को आहलाद अथवा अवसाद की संवेदनाओं से सराबोर कर देता है। उसकी लेखनी से निस्सृत कामनाओं की डोर थामकर सम्भावनाओं के असीम आकाश मे उड़ाने भरना है।, विज्ञान के नव्य आलोक में बदलते परिबोध की प्रस्तुतियाँ हैं परिशोध्यमान युगानुरूप परिवर्तित जीवन मूल्यों का स्वागत हैं, तर्कहीन, आस्थाओं, रूढ़ियों, अनावश्यक परम्पराओं तथा आवांछित मान्यताओं के प्रति मोह भंग, आधुनिकता का स्वागत, स्वतन्त्रता के प्रति ललक, धर्मनिर्पेक्षता, के प्रति सदाशयता, अनुचित के प्रति विद्रोह, सतीत्व तथा नैतिकता की नवीन परिभाषाओं के प्रति प्रतिबद्धता तथा परिवर्तन के अभिनन्दन के विकास मूलक समारोह हैं। साथ ही सामाजिक परिवारिक और वैयक्तिक परिस्थितियों की विसंगतियों, आधुनिकता और परम्परा के द्वंद्वों, युगीन संत्रास, कुण्ठा, आक्रोश और टूटन की विपरीतताओं, नैतिकता, अनैतिकता के प्रति दोहरे सामाजिक मानदण्डों से आहत नारी के विविध सरोकार नारी उपन्यासकारों के प्रमुख कथ्य हैं।

परम्परा से ही साहित्य सृजन के मूल्यों में मानव ह्रदय की दो प्रवृत्तियाँ 'वासना' और 'वेदना' कार्य करती हैं, दोनों के केन्द्र में नारी ही रही है या तो नारी को वासना के केन्द्र बिन्दु में रखकर साहित्य सृजन हुआ या फिर उसकी वेदना को वाणी देने के प्रयास में दोनों ही स्थितियों मे साहित्य सृजन में नारी की इन प्रवृत्तियों के सतहीपन को तोड़ा है और उसे अधिकाधिक मनो वैज्ञानिक धरातल देने की कोशिश की है। विशेष रूप से 'नारी मन' को सामने रखकर जो साहित्य रचा गया हैं, उसमें वासना और वेदना के विविध स्तरों को व्यापक आयाम देने की कोशिश की गयी है। व्यक्तिबद्ध वेदना और व्यक्तिबद्ध वासना साहित्य के अनेक उद्गम स्रोतों में से स्वयं दो हैं। इन दो स्रोतों ने साहित्य में जो उपमायें और प्रतीक प्रदान कियें हैं, उनमें से भावों का औदार्य न सही, तो भी भावों की तीव्रता बहुत अधिक होती है। जो नारी मन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती हैं।

अनेकानेक उपन्यास के परिपार्श्व समकालीन विविध यथार्थ के परिदृश्यों से परिपूर्ण हैं। जैसे आर्थिक कठिनाइयों से जलता दाम्पत्य जीवन, मधुर और सुखी दाम्पत्य जीवन, विपरीत स्वभाव के कारण कलह से जलता दाम्पत्य जीवन, अनमोल विवाह से व्यथित दाम्पत्य जीवन, अविश्वास और संदेह से ग्रस्त दाम्पत्य जीवन, व्याभिचार से सुलगता दाम्पत्य जीवन, संत्रास–कुण्ठा हताश से विषाक्त दाम्पत्य जीवन, विविध परिदृश्यों के साथ उपस्थित हैं।

नारी उन्यासों के सम्यक् परिशीलन से ज्ञात होता है कि नारी उपन्यासकारों ने व्यक्तिवादी मनोवैज्ञानिक दृष्टि, समूहवादी मनोवैज्ञानिक दृष्टि, परम्परागत दृष्टि, अधुनातन दृष्टि, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिप्रेक्ष्य में वहिरंग और अन्तरंग दृष्टि के आधार पर अपने कथ्य का निर्धारण किया हैं। निष्कर्षतः यह भी कहा जा सकता हैं कि नारी उपन्यासों में चित्रित पुरूषों की मानसिकता अभी तक नारी के सम्बन्ध में प्रायः पारम्परिक ही हैं। उसमें मौलिक परिवर्तन नहीं आया हैं। ममता कालिया, के 'बेघर' की संजीवनी, कृष्णा सोबती के 'सूरजमूखी अंधेरे के' की रति, मन्नू भण्डारी की 'आपका बन्टी' के नारी पात्र पुरूष के अहं का शिकार बनते हैं। इन उपन्यासों के नारी चरित्र अपने अहं की रक्षा तो करना चाहते हैं, किन्तु इनके जीवन में स्थिरता का अभाव हैं। यह स्थिरता नारी जभी हासिल कर सकती, जब वह अपने आदिम संवेगों पर विजयिनी बन पुरूष की सबल बाहों का मोह झुठलाने का साहस संजो ले। तब उसे अपनी किसी

स्थिति के लिए पुरूष के समक्ष 'जस्टीफिकेशन' की आवश्यकता नहीं होगी और वह अपनी महत्वपूर्ण भूमिका प्रदर्शित कर सकेगी।

सदियों से पुरूष नारी के सैक्सी स्वरूप को ही देखता आया है। नारी उपन्यासकारों ने इस दृष्टि को खण्डित करने की चेष्टा की है। नारी केवल 'देह' नहीं जिसे पुरूष अपनी इच्छानुसार भोग सकें, बल्कि उसकी देह में अटका वह सूक्ष्म चेतन तत्व भी हैं, जो अपनी निजी इच्छाओं रूचि, अरूचि, एवं आवश्यकता का बोध करा सकता हैं। आर्थिक मूल्यों पर यदि नारी देह उपलब्ध हो भी जाय तो भी उसकी सम्पूर्णता को पा लेना प्रत्येक पुरूष के वश की बात नहीं हैं। कृष्णा सोबती का 'सूरजमुख अंधेरे के' ममता कालिया का 'बेघर' रजिया कसीह सिद्दगी का 'पैरों के छाले' उषा प्रियम्बदा का 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' मन्नू भण्डारी का 'आपका बन्टी' शिवानी का 'कृष्णकली' ऐसे ही उपन्यास हैं, जिनमें नारी की अन्तरंग एवं बहिरंग मानसिकता का ऐसा चित्रण मिलता हैं, जिससे स्पष्ट रूप से जाना जा सकता हैं कि नारी की एक स्वतन्त्र अस्मिता है विभिन्न व्यवस्थाओं और परिस्थितियों के जाल में फंसकर भी वह अपने नारीत्व की स्वतन्त्र पहचान बनाये रख सकती है।

३. मैत्रेयी के उपन्यास साहित्य में नारी की भूमिका एवं परिस्थितियाँ

जीवन के विविध क्षेत्रों मे नारी योगदान रहा हैं। वेदों में लोपामुद्रा एवं गार्गी सी मन्त्र दृष्टा नारियों की चर्चा है। स्पष्ट है कि वैदिक काल में अध्ययन और चिरन्तन के क्षेत्र में नारी की समान गति रही हैं। आज युग बदल चुका हैं। तन्त्र बदल चुका हैं, किन्तु विभिन्न क्षेत्रों में नारियों की अनिवार्यता, उसका व्यक्तित्व एवं कृतित्व, उनकी राजनीतिक, प्रशासनिक, लेखकीय, सामाजिक एवं गृहस्थिक क्षमता दिनानुदिन विविर्धमान है। यदि हम लेखकीय मनीषा को ले तो लोपा मुद्रा और गार्गी की परम्पराओं ने महादेवी वर्मा, कृष्णा सोबती, शिवानी, सुधा गोयल, तथा मैत्रेयी पुष्पा इत्यादि अनेक महिला लेखिकाओं का रूप धारण कर लिया हैं।

महिलायें विविध क्षेत्र में दिनानुदिन शीघ्रता से नये सोपान हासिल कर रहीं हैं किन्तु उपन्यास क्षेत्र में महिला लेखनी के दर्शन अपेक्षाकृत देर से होते हैं। वस्तुतः

हिन्दी उपन्यास जगत में उषा देवी मित्रा का आविर्भाव एक महत्वपूर्ण उपलब्धि हैं। "उन्हें हिन्दी में नारी उपन्यासकारों की प्रथम पीढ़ी की आधारशिला कहा जा कता है।"[6] तो वहीं मैत्रेयी पुष्पा को वर्तमान समय की बुन्देलखण्डीय परिवेश में रची बसी उपन्यास सम्राज्ञी। बहुत समय नहीं बीता और आज वे हिन्दी साहित्य परिदृश्य की एक महत्वपूर्ण उपस्थिति हैं, सिद्ध और प्रसिद्ध कथाकार हैं। अपने कथ्य के साथ–साथ मैत्रेयी जी नगरीय एवं ग्रामीण परिवेश में रची बसी नारी के जीवन की अनेकानेक, समस्याओं, विद्रूपताओं और कुरीतियों आदि से समाज व स्वयं नारी को परिचित कराती चलती हैं। भारतीय समाज प्रारम्भ से ही नारी के प्रति अनुदार रहा है।

सदियों से हमारे समाज में नारी पात्र जिस तरह से उपेक्षित रहा है और समाज व स्वयं नारी एक विकृत मनासिकता से जकड़े हुए प्रतीत होते हैं, उस छवि को मैत्रेयी पुष्पा जी ने बखूबी तोड़ा हैं और सिर्फ उस छवि को तोड़ा ही नहीं बल्कि अपनी नायिकाओं के माध्यम से एक सशक्त एवं दृढ चरित्र नारी की रचना भी की और यही मैत्रेयी पुष्पा जी अन्य महिला उपन्यासकारों से प्रथक दिखलायी देतीं हैं और नारी जगत को नवीन दृष्टिकोण दिखलाती हैं।

मैत्रेयी जी के उपन्यास के समस्त नारी पात्र सामाजिक व्यवस्था से मुक्ति संघर्ष की कामना और विचारों का अन्वेषण करते दिखलायी देते हैं फिर वह चाहे ग्रामीण परिवेश में पली बढ़ी 'इदन्नमम' की मंदा या 'झूलानट' की शीलो हो या फिर शहरी दुनिया में रची बसी डा0 नेहा। परिस्थितियाँ भिन्न भिन्न होने पर भी सभी में पुरूषों की बनायी सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह की भावना सर्वोपरि है।

मैयेत्री पुष्पा जी के उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश व प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद नारी की महत्वपूर्ण और गरिमामय भूमिका की प्रतिष्ठापना हुई। 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी, 'इदन्नमम' की मंदा, 'चाक' की सारंग, 'झूलानट' की शीलो, 'अल्मा कबूतरी' की अल्मा, 'अगनपाखी' की भुवनमोहिनी, 'विजन' की डा0 नेहा, तथा 'कस्तूरी कुंडल बसै' की कस्तूरी व पुष्पा समस्त नारी पात्र अपनी अदम्य जिजीविषा, साहस, धैर्य, आत्मविश्वास आदि गुणों के बल पर समाज की कुरीतियों, परम्पराओं, रूढ़ियों तथा समाज के तथाकथित ठेकेदारों से लोहा लेती दिखलायी देती हैं।

---

[6] सारिका अंक 25 नवम्बर 1979–सम्पादक–कन्हैया लाल नन्दन पृष्ठा संख्या 66

मैत्रेयी पुष्पा के नारी पात्र नारीगत कोमलता, लज्जा आदि दुर्बल गुणों का त्याग कर सशक्त चरित्र को उजागर कर ठोस धरातल पर विचरण करते नजर आते हैं। परिस्थितियाँ कैसी भी हो नारी हरहाल में हर क्षेत्र में अग्रिम पंक्ति में दिखलायी देती हैं।

आधुनिक और विषम परिस्थितियों में भी मैत्रेयी जी की नारियाँ अपनी जिजीविषा, जीवटता के बल पर अपनी दिशा तय कर लेती हैं। वे परिस्थितियों से समझौता नहीं करतीं बल्कि परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाती हैं और अपनी योग्यता व क्षमता के बल पर पुरूष समाज से कहीं आगे और आगे जाती हुयी दिखलायी देती हैं।

वर्षों से नारी को दीनहीन समझ पुरूष वर्ग नारी वर्ग पर शासन करता आया है और उसके प्रति मनमाना व्यवहार अख्तियार करता आया है। इसका सबसे बड़ा कारण प्राचीन काल में नारी की दीनहीन दशा, निर्बलता, असजगता, कोमलता व अतिशय संवेदनशीलता का होना रहा है, किन्तु वर्तमान समय जागरूकता का समय है और नारी भी समयानुसार सजग व सचेत हुयी है, कुछ समाज और बहुत कुछ अपने प्रति। और समय के साथ परिस्थितियाँ भी पहले जैसी नहीं रहीं, साथ ही पुरूष वर्ग में भी संचेतना का विकास हुआ हैं, और अब वह नारी के प्रति उतना अनुदार व कठोर नहीं रह गया है। जिस कारण से नारी वर्तमान समय में अपनी दशा सुधार पायी है और एक सशक्त रूप में समाज के समक्ष उपस्थित हुई है। मैत्रेयी जी ने अपनी नायिकाओं के माध्यम से इसी छवि को और अधिक सुदृढ़ता प्रदान की है। वे समाज में अपनी नारियों के द्वारा नारी की दृढ़निश्चयी, आत्मविश्वासी, कर्मशील, साहसी एवं विजयी छवि को उजागर कर नारी वर्ग को नवीन दिशा दिखलाती हैं।

आज भी ग्रामीण परिवेश में कहीं–कहीं नारी, प्राचीन रूढ़िग्रस्त समाज में बंधी ढंकी दिखायी देती है, उस पर अनेकानेक पहरे लगाये जाते हैं, प्रताड़ित किया जाता है और इन सबका परिचय हमें नित समाचार पत्रों व टेलीविजन के माध्यम से होता रहता है, किन्तु मैत्रेयी की समस्त ग्रामीण नारियाँ इन सामाजिक, रूढ़िग्रस्त बंधनों का जमकर विरोध करती हैं और अपनी अलग ही दुनियाँ बनाती हैं, अपनी इच्छानुसार, सुविधानुसार वे वह समस्त कार्य करती हैं जिससे उन्हें शारीरिक व मानसिक सुकून प्राप्त होता है। चूँकि मैत्रेयी जी का मानना है कि कैसे भी बंधन क्यों न हों, विचारों में बंधन नहीं लगाये जा सकते और स्त्री यदि चाहे तो अपने विचारों, आत्मविश्वास व दृढ़ता से

समाज में अपना वह स्थान हासिल कर सकती है जिसकी पुरूष समाज कल्पना भी नहीं कर सकता। अतः हम देखते है कि मैत्रेयी जी की नारियाँ चाहे जैसी परिस्थितियाँ हो, चाहे ग्रामीण परिवेश की या शहरी परिवेश की, दोनों का सामना करते हुये, पुरूष के फेंके जालों से बचते हुये, कुचक्रों से प्रथक रह वह अपने अस्तित्व और समाज को परिचित कराती है और समाज उसके अस्तित्व को स्वीकारता दिखता है। मैत्रेयी जी की नारियाँ संदेश देती हैं कि स्त्री वर्ग वह सब हासिल कर सकती है, जो पुरूष वर्ग को हासिल है। बस, जरूरत है तो एक पुख्ता व बुलन्द इरादे की।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास संस्कार बिम्बों को जगाते, लगभग वृन्दावन लाल वर्मा की याद दिलाते हुये, महान साहित्यकार 'रेणु' से टक्कर लेते हुये, औपन्यासिक यात्रा के जबर्दस्त मोड़ हैं, जो वर्तमान समाज में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका को उजागर करते हुये, ग्रामीण परिवेश के चित्रण के माध्यम से स्थान विशेष की संस्कृति से अवगत कराते हुये, प्रतिष्ठित व राजनीति से परिचय कराते हुये समाज के धार्मिक–सामाजिक रीति–रिवाजों के बारे में जानकारी देते हुये, समाज के निम्न व निर्धन वर्ग की समस्याओं से रूबरू कराते हुये, और इन सबसे बढ़कर समाज में जहर के समान फैली पश्चिमी संस्कृति में लिप्त भारतीयजन का पुनः अपनी आदर्शमय भारतीय संस्कृति से जोड़ने की दीक्षा देना दिलाते हुये ही समाज को नैतिकता व सदाचारिता का पाठ पढ़ाते हुये दिखलायी देते हैं और इन सबमें नारी की भूमिका अपना विशेष स्थान रखती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा की लोकप्रियता का सबसे बड़ा राज–उनकी जन सामान्य और नारी जीवन की संवेदना से जुड़ा होना है। ऐसी ही संवेदनशील नारी मैत्रेयी से मेरी बात दो–चार बार दूरभाष पर हो चुकी थी। लेकिन एक दिन अचानक......

17 नवम्बर 2002 रात 10 बजे, मैं नित्यकार्यों को निपटाकर टी.वी. कार्यक्रम देख रही थी, तभी अचानक टेलीफोन की घंटी बज उठी, लम्बी रिंग थी, जाहिर है फोन बाहर से था, फोन मम्मी ने उठाया औपचारिक सी बातचीत के पश्चात् मम्मी ने मुझे बुलाया, कहा – प्रीति! तुम्हारा फोन है – दिल्ली से ! दिल्ली से, दिल्ली में तो अपना कोई नहीं, फिर ? किसका फोन हो सकता हैं? इतनी रात में? मेरी लिये? अनेकानेक प्रश्न मस्तिष्क में कौंध गये। धड़कते दिल से रिसीवर हाथ में लिया, हैलो? कौन? दूसरी ओर से मधुर पर परिचित आवाज आयी– "मै" मैत्रेयी पुष्पा! पहचाना? सोचा

होगा पता नहीं दिल्ली से इतनी रात कौन फोन कर रहा होगा, क्यों? प्रीति! "मैत्रेयी पुष्पा" – क्या? मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि इतनी महान लेखिका अनेकानेक पुरस्कारों से नवाजी जा चुकी मैत्रेयी पुष्पा यों ही सहज रूप से मुझ जैसी अल्पज्ञ व साधारण लड़की को फोन कर सकती हैं, अभी मैं विचारों में निमग्न अपने आप को कृतकृत्य समझ ही रही थी कि उन्होंने आगे कहा – प्रीति! मैं 23 नवम्बर को महोबा एक कार्य के सिलसिले में जा रही हूँ, लौटते वक्त 24 व 25 को झाँसी में रूकूँगी। "श्री संत सिंह यादव जी" के आवास पर रूकना होगा, सोचा तुम्हे सूचित कर दूँ, जिससे तुमसे मुलाकात भी हो जाये और तुम्हें तुम्हारें सवालों के जवाब भी मिल जायें। क्यों प्रीति? इतना समय काफी रहेगा न तुम्हारे लिये? "यस मैम, यस मैम, थैंक्यू, बहुत–बहुत धन्यवाद, सूचित करने के लिये" बस इतना ही कह सकी और उधर से "ठीक है" की ध्वनि के साथ रिसीवर रखने की आवाज आयी। बस उसी क्षण से 24 तारीख का बेसब्री से इन्तजार, उनसे मिलने की तीव्र उत्कण्ठा और अनेकानेक प्रश्न मेरे मन में उमड़ने–घुमड़ने लगे। एक–एक दिन बेचैनी व बेसब्री का इम्तहान था। छः दिन जैसे–तैसे बीते और आखिर वह दिन आ ही गया– जिसका हमें इन्तजार था।

मै अपनी शोध निर्देशिका (गाइड) 'डा० उषा अग्रवाल' को लेकर 'श्री संत सिंह यादव जी' के आवास पर ठीक दिन के 11 बजे पहुँची। पीले रंग से रंगा मकान, भूरे रंग का 'गेट', गेट पर हमारे प्रति श्री संत सिंह यादव जी का अभिवादन। सम्मान व अपनत्व के साथ भीतर तक ले जाना। "बैठक" में पैर रखते ही उस "भव्य आत्मा" के दर्शन। एक नजर में ही बेहद अपनी सी लगने वाली मैत्रेयी पुष्पा, अत्यन्त सादगी से ओत–प्रोत दिखीं। वस्त्र बेहद साधारण किन्तु शालीन व आकर्षक। उठकर उन्होंने हमारा अभिवादन किया और हमसे बैठने का आग्रह किया। औपचारिक सी बातचीत के पश्चात मैंने अपने प्रश्नों का रूख उनकी ओर किया मैत्रेयी जी पहला सवाल–

प्रश्न 1. आपको लेखन की प्रेरणा सर्वप्रथम कहाँ से मिली?

मैत्रेयी जी– सर्व प्रथम प्रेरणा तो एक बेहद छोटी और फिल्मी घटना से मिली। जब मैं 11 वीं में पढ़ती थी। तेरह चौदह साल की रही होऊँगी, "जानकी रमण" नामक मेरे सहपाठी की निबन्ध की कॉपी मेरी कॉपी से बदल गयी और मैंने जब वह कॉपी खोलकर देखी, तो बस देखती ही रह

गयी। 'वर्षाऋतु' पर उसके द्वारा लिखा गया निबन्ध इतना अधिक प्रभावशाली और उत्कृष्ट था कि मैंने उसे बार–बार पढ़ा और उसी क्षण लगा कि मुझे भी कुल अच्छा लिखना चाहिए, लिख सकती हूँ, पर बात कुछ बनी नहीं। और जब जानकी रमण ने मेरी कॉपी वापस की तो उसमें एक कविता लिखी थी (मैत्रेयी जी के लिये), जिसने उसकी प्रतिभा से मुझे परिचित कराया। बस मैं निरन्तर उसकी प्रतिभा को किसी न किसी माध्यम से चुराती रही और वह अभागा मेरे साहित्य के प्रति आकर्षण को प्यार समझता रहा और मैं निरन्तर उसके व अन्य कहानियों के समानान्तर अपनी कहानी गुनती रही, जो आगे चल कर पूर्ण आकार लेती गयीं।

प्रश्न 2. आपके समस्त उपन्यास नारी प्रधान ही क्यों? खासतौर से ग्रामीण जीवन की निम्न व मध्यमवर्गीय नारी का चित्रांकन ही क्यों ?

मैत्रेयी जी– सबसे पहला कारण – मेरा स्वयं का अपना व्यक्तिगत अनुभव। मैं ऐसे ही ग्रामीण और मध्यमवर्गीय माहौल व परिवेश में रहीं हूँ और वहाँ की छोटी से छोटी बातों को गृहण करती रही। और सबसे बड़ी बात शहरी जीवन में उस जीवटता के दर्शन नहीं होते, जो स्त्री के जीवन को संघर्ष व श्रम से जोड़ते हैं। वहाँ के आर्थिक संकट, परदेदारी और रीति रिवाज सब मिलकर अपने आप में एक कहानी कहते है।

जहां तक नारी प्रधान उपन्यास लिखने की बात है तो कभी ऐसा सोचकर नहीं लिखा, इत्तेफाकन ऐसा हो गया, शायद स्त्री हरहाल में पुरूष से आगे आना चाहती थी।

प्रश्न 3. आपके उपन्यासों को पढ़ने से ऐसा महसूस होता है, जैसे पुरूष वर्ग पर आपका व्यक्तिगत रोष हो। क्या यह सही है?

मैत्रेयी जी– रोष पुरूष वर्ग के प्रति नहीं, रोष बुराई, असत्य, अन्याय के प्रति है। हो सकता है–यह सब चीजें पुरूष वर्ग में ज्यादा दिखलाई देती हो। जहाँ तक व्यक्तिगत रोष का प्रश्न है, तो ऐसा कुछ भी नहीं है। बस पात्रों का पुरूष वर्ग विशेष के फैलाये जालों, कुचक्रों, कुप्रथाओं से विरोध है, पुरूष

से नहीं। पुरूष वर्ग का तो मेरे जीवन में, लेखन में काफी महत्वपूर्ण सहयोग रहा है।

प्रश्न 4. आपके हिसाब से वर्तमान समय में नारी की क्या स्थिति व भूमिका है?

मैत्रेयी जी– जहाँ तक वर्तमान समय में नारी की स्थिति का सवाल है तो पिछले डेढ़ दो दशक में नारी स्थिति में एकाएक उभार व उठाव देखने को मिला है। उसकी मानसिकता में परिवर्तन आया है। अभिभावक भी जागरूक हुआ है। आज वह अपने बच्चों को (चाहे लड़का हो या लड़की) पढ़ा लिखाकर कैरियर बनाने में भरपूर सहयोग दे रहा है, तो परिवर्तन तो है और निरन्तर बढ़ रहा है, जो एक नवीन क्रान्ति का प्रतीक है, जिससे आने वाले समय में नारी अपनी स्थिति और अधिक मजबूत व सुदृढ़ कर पायेगी।

पहले जहाँ लड़कियां अच्छा घर–वर के चक्कर में पढ़ी व पढ़ायी जाती थीं, तो वहीं वे बने बनाये संस्कारों का अतिक्रमण न करने के लिए बाध्य भी थीं, पर आज स्त्री ने कभी अपने भीतर पनपे जागरूकता और नवीन धारणाओं के अंकुर का बीजारोपण अपनी सन्तानों में कर आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए नया मार्ग प्रशस्त किया है। समाज में यह उसकी बहुत बड़ी भूमिका है।

प्रश्न 5. "कस्तूरी कुंडल बसै" क्या वास्तव में आपकी वास्तविक आत्मकथा है? है तो क्या उसके महत्वपूर्ण अंश आपके जीवन परिचय के अन्तर्गत लिये जा सकते है?

मैत्रेयी जी– अवश्य ही लिये जा सकते हैं, क्योंकि वह मेरी वास्तविक आत्मकथा है। भूमिका में एकदम स्पष्ट रूप से न की गयी स्वीकारोक्ति व भूमिका स्पष्टीकरण व्यक्तिगत बचाव के लिए लिखना पड़ा।

प्रश्न 6. "इदन्नमम" की "मंदा" और "कस्तूरी कुंडल बसै" की पुष्पा में काफी समानता दृष्टिगोचर होती है। या यों कहें कि प्रत्येक उपन्यास की

नायिका आपके व्यक्तित्व से प्रभावित दिखलायी देती है, तो क्या यह सही होगा?

मैत्रेयी जी– चरित्रों में समानता का सबसे बड़ा कारण यही है कि हर लेख में लेखक का निजी व्यक्तित्व समाहित रहता ही है न चाहकर भी। और हो सकता है वह सबसे सशक्त चरित्र पर अपनी पैठ बना लेता हो। मैत्रेयी स्वयं एक दृढ़, सशक्त व स्वच्छन्द विचारों की स्त्री है, शायद इसी से उसके पात्र भी इसी भावना से ओत–प्रोत दिखलाई देते हों, और सबसे बड़ा कारण मैं स्वयं एक स्त्री हूँ इसी से स्त्री के दर्द, संघर्ष आदि को सरलता व सूक्ष्मता से गृहण कर पाती हूँ, जिसे कोई पुरूष इतनी गहनता से ग्रहण नहीं कर पाता, क्योंकि मेरा अपना मानना है कि नारी की अपनी अलग अनुभूति होती है और पुरूष की अपनी सर्वथा अलग अनुभूति, जिसे कई मायनों में जोड़कर नहीं देखा जा सकता।

प्रश्न 7. वैसे भी आप स्त्री अनुभूति, स्त्री लेखन और स्त्री मन को पुरूष अनुभूति, पुरूष लेखन और पुरूष मन से प्रथक मानती है, तो क्या मानव या मनुष्य की दो अलग परिभाषायें होनी चाहिए?

मैत्रेयी जी– वास्तव में 'मनुष्य' की क्या परिभाषा है? मनुष्य का अर्थ–मानवता से भरपूर यानि दया, ममता, प्रेम, सहयोग की भावना, मित्रता की भावना आदि, जिसमें पुरूष, स्त्री से कहीं पीछे दिखलायी देता है। दोष पुरूष का नहीं, परिवेश का है। प्रारम्भ से ही स्त्री, पुरूष को अलग–अलग परिवेश में ढाला जाता है। स्त्री जीवन के अलग दायरे में और पुरूष जीवन के अलग। जहाँ शादी के बाद एक स्त्री, एक नवीन जीवन जीती है, नये–नये अनुभव पाती है, वही पुरूष पर कोई खास फर्क नही पड़ता है। जहाँ अनुभव ही अलग हों, मन ही बदलना पड़े, वहाँ अनुभूति व मन एक से नहीं हो सकते हैं और यही अनुभव भरी जिन्दगी से गुजरकर स्त्री लेखन, पुरूष लेखन से प्रथक हो जाता है।

प्रश्न 8. पुरूष अनुभूति को सर्वथा प्रथक मानने के पश्चात् भी आप पुरूष अनुभूति को बेहद सफलतम् ढंग से कैसे प्रस्तुत कर सकीं?

मैत्रेयी जी– पुरूष प्रधान समाज होने के कारण जहाँ चहुँ ओर पुरूष वार्तालाप, क्रिया कलापों को देखकर, अनुभव कर अपनी कल्पनाशीलता, रचनात्मकता और भाषाशैली से पुरूष की अनुभूति की रचना की जा सकती है वहीं पुरूष समाज के बीच बैठकर भी उसकी एकहद तक सफलतम् अभिव्यक्ति की जा सकती है। कल्पना के पंख लगाकर ही कहीं–कहीं मैंने पुरूष सोच की ओर उड़ान भरी है।

लेकिन अभी भी ऐसे अनेकानेक क्षेत्र है, जहाँ सिर्फ पुरूष सोच ही जा सकती है, स्त्री सोच नहीं। जिस प्रकार स्त्री की प्रसव पीड़ा के कष्ट के अनुभव का चित्रण पुरूष लेखन उतनी सफलता से नहीं कर सकता, जितनी स्त्री। उसी प्रकार स्त्री लेखिका भी पुरूष की आन्तरिक सोच, ग्रन्थि व अनुभूति का चित्रण बेहद सफलतम् ढंग से नहीं कर सकती।

प्रश्न 9. आपके समस्त उपन्यासों की नारियाँ हैं तो ग्रामीण परिवेश में रची बसी, परन्तु विचारों से अत्यन्त बोल्ड, उत्तेजक, परम्पराओं को तोड़ने वाली। यानि खासकर स्त्री देह को लेकर अभी तक जो नियम, कानून बने उन्हें धता बताकर, खुलकर आगे से आगे शारीरिक सम्बन्धों की मांग करने वाली स्त्री। परिवेश और विचारों की यह असमानता क्या आपसी विरोध उत्पन्न नहीं करती?

मैत्रेयी जी– आजादी के बाद एक नयी पीढ़ी हमारे समक्ष आती है जिसकी नयी सोच व नयी–नयी मांगे हैं। जहां पहले सिर्फ लड़कियों को अच्छे वर की तलाश के लिये या सिर्फ उच्च वर्ग के दिखावे के लिए पढ़ाया जाता था, वहीं अब इस सोच में बदलाव आया है। आज की युवा पीढ़ी के अनेक सपने हैं व उन्हें सच करने में जुटी है। हर क्षेत्र में पुरूष के कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है, आज स्त्री की सोच विस्तृत हुयी है। ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ एक साथ खुली हैं। आज वह अपने कौशल से बड़े से बड़े कार्य को अंजाम दे रही है।

अक्सर कहा जाता है कि गांव की औरत सोचने में अक्षम होती है, वह कुछ नया नहीं सोच सकती। लेकिन मैं कहती हूँ कि भले उसमें

सोचने की क्षमता न हो, पर गांव की औरत अनुभव में सर्वोच्च होती है और अनुभव अभिव्यक्ति और विचारों का सबसे अच्छा माध्यम है। अनेकानेक अनुभवों से गुजरकर वह 'बोल्ड' हो जाती है। क्योंकि उसमें बनावट नहीं अतः वह अपनी बात आसानी से कह सकती है, स्पष्ट और भदेस तरीके से। यहीं उसे असभ्य, अश्लील या परम्पराओं को तोड़ने वाली मान लिया जाता है। अब भई, व्यक्ति का परिवेश जैसा होगा, वैसी ही भाषा का प्रयोग तो करेगा ही। विचार महत्वपूर्ण हैं। जिसमें ग्रामीण स्त्री अब खुलकर सामने आयी है। बनावट से परे। दो टूक जबाब देने वाली, अपनी बात स्पष्ट तरीके से सामने रखने वाली। यही उसकी 'बोल्डनेस' है।

प्रश्न 10. आपके समस्त उपन्यास बुन्देलखण्डीय परिवेश को लेकर लिखे गये और एक ही भाषा शैली में। कया आपको नहीं लगता कि बार–बार एक ही भाषा शैली का रिपिटेशन व भुजगंवारों का चित्रण आपको एक सीमित दायरे में नहीं बांधता?

मैत्रेयी जी– यह एक बहुत विस्तृत क्षेत्र है। प्रारम्भ से ही ग्रामीण स्त्री के जीवन की समस्यायें, पहरे, लड़ाई–झगड़े हमें अपनी ओर आकर्षित करते आये है। जहां एक ओर नगरीय जीवन की एकरसता में वह रस नहीं होता, वहीं वे पत्थरीय जीवन जीने को विवश जान पड़ते हैं। आज प्रत्येक व्यक्ति सभ्य व शहरी बनना चाहता है। इसी होड़महोड़ में सब खासमखास हैं। कोई अलग नहीं। शायद इसी कारण अब ग्रामीण स्त्री अपना अलग, विशेष व खास स्थान रखती है और विशेष व अलग के बारे में लिखा ही जाना चाहिए। अनेकानेक लेखक व लेखिकाएं शहरी जीवन से ओतप्रोत उपन्यास लिख रहे हैं, शायद इनसे अलग लिखने की इच्छा ने ही ग्रामीण स्त्री को मेरे लेखन का विषय बनाया। फिर कहते है न कि व्यक्ति पर प्रारम्भिक जीवन के 20 वर्ष पर अपने संस्कार व मिट्टी की गहरी छापें पड़ती हैं। शायद यही मिट्टी की सोंधी खुशबू मेरे तन–मन में उतरकर मेरे लेखन में चली आयी हो।

प्रश्न 11. 'विजन' उपन्यास की डा0 नेहा समस्त औपन्यासिक पात्रों से प्रथक पात्र है। शहरी जीवन की कशमकश भरी जिन्दगी से चकाचौंध। यह पात्र आपके मन में कहाँ से आया या इसकी प्रेरणा आपको कहाँ से मिली?

मैत्रेयी जी– 'विजन' सर्वथा प्रथक उपन्यास है। इस बात को मैं भी स्वीकारती हूँ। यह मेरे आस पास की घटना का चित्रण है। वास्तव में डा0 नेहा का चरित्र मेरी बेटी मोहिता की खास मित्र का जीवन उदाहरण है। इस उपन्यास को लिखने में डा0 मोहिता का सहयोग स्तुत्य है। वैसे भी मेरी परिवार में सभी आठ सदस्यों में से सात सदस्यों का डाक्टरी पेशे से होना भी इस उपन्यास की पृष्ठभूमि को अंजाम देता है। एक और भी बड़ा कारण यह है कि बार–बार मुझ पर यह आरोप लगाया जाता है कि मैत्रेयी को तो सिर्फ भुज गंवारों का चित्रण करना ही आता है इस आक्षेप के फलस्वरूप चुनौती रूप में 'विजन' का सृजन हुआ।

प्रश्न 12. पुरूषत्व विचारधारा के चलते क्या आपने भी अपने स्त्री जीवन (वैवाहिक जीवन) में कोई मानसिक दबाब झेला है, जिसके चलते आप अपनी नायिकाओं के माध्यम से छुटकारा पाती आयी हो?

मैत्रेयी जी– जी हाँ, बिल्कुल! स्त्री होने के नाते मैंने वो सब झेला व देखा, जिसे एक साधारण स्त्री को झेलना व देखना होता है। विवाह पश्चात तो और भी अधिक जिम्मेदारियाँ और दबाव बन जाते हैं। मुझे ही नहीं समस्त स्त्रियों को इन दबावों से गुजरना पड़ता है। जहाँ विवाह के पश्चात् हमें सामाजिक सुरक्षा मिल जाती है, वहीं हमें इसकी बड़ी भारी कीमत भी अदा करनी पड़ती है। अनेकानेक बंधनों से बंधकर। आपके समस्त क्रियाकलाप अब सिर्फ पति और उसके परिवार की पारिवारिक जिम्मेदारियाँ निभाते हुये व्यतीत होते हैं। सिर्फ स्त्री और सिर्फ स्त्री के कंधो पर ही समस्त पारिवारिक बोझ आ जाता है। समय बदला है। बंधन कुछ शिथिल व कुछ टूटे है। जहाँ तक नायिकाओं के माध्यम से छुटकारा पाने का सबाल है तो हर लेखन में लेखक का व्यक्तित्व तो समाहित होता ही है और शायद सर्वोपरि भी।

प्रश्न 13. आपके लेखन क्षेत्र में आपके पति डा0 शर्मा साहब का क्या और कितना योगदान रहा?

मैत्रेयी जी– (हँसकर) – डा0 साहब तो बस डाक्टर ही रहे। उन्हें मेरे लेखन से कोई सरोकार न था। शुरूआती लेखन में तो उन्होंने इसका काफी विरोध किया, परन्तु धीरे–धीरे मेरा इस ओर काफी व विशेष झुकाव व लगाव देखकर उन्होंने मुझे लेखन की इजाजत दे दी, पर समस्या तब आयी, जब मैं अपने लेखों के प्रकाशन हेतु घर से बाहर निकल प्रकाशकों के चक्कर काटने लगी। डा0 साहब को यह सब अच्छा न लगता था और हर रोज इसे लेकर हमारी बहस भी हो जाया करती थी, पर धीरे–धीरे सब सामान्य हो गया। मैंने घर व बाहर दोनों प्रकार के विरोधों का सामना करते हुये घर–परिवार व लेखन में एक उचित सामन्जस्य बनाये रखा। मेरी प्रतिभा रंग लायी, इसी बीच 'इदन्नमम' आ गया और डा0 साहब भी मेरी प्रतिभा का लोहा मान गये। कहा जाता है कि न कि विरोध तब तक होता है जब तक सफलता न मिल जाये, सफलता मिलते ही संकट के बादल स्वंमेव ही छंट जाते है, बस यही मेरे साथ हुआ।

प्रश्न 14. फिर आपके जीवन में, लेखन में सर्वाधिक सहयोग किसका रहा?

मैत्रेयी जी:– मेरी अपनी बेटियों का, जिन्होंने मुझे लेखन के लिए जबरदस्त प्रोत्साहित किया, जिससे मैं अपनी लेखन प्रतिभा से परिचित हुयी। दूसरा महत्वपूर्ण सहयोग मेरे परम मित्र डा0 राजेन्द्र यादव का रहा, जो सदैव मुझे उत्कृष्ट लेखन के लिए उकसाते रहे व महान साहित्यकार होने के बावजूद मेरे लेखन की निरन्तर सराहना करते रहे व सदैव मानसिक सहयोग प्रदान करते रहे हैं, जिसके लिए मैं उनकी आभारी हूँ। वे मेरे लेखों के गुण दोषों की सम्यक विवेचना कर मुझे उससे अवगत करा देते हैं, जिससे मैं उसमें सुधारकर उसे और अच्छा बना लेती हूँ।

प्रश्न 15. आपकी समस्त नायिकायें चरित्रता और उदात्तता को समाज के ढकोसले बताती है और अपनी एक अलग दुनिया रचती बसती है। क्या यह समाज के आदर्शमय अस्तित्व का विनाश नहीं?

मैत्रेयी जी– वास्तव में चरित्रता व उदात्तता क्या है? ये दो गुण स्त्री के खाते में ही क्यों डाले गये हैं? सिर्फ पति की इच्छा पर पति के साथ ही संसर्ग करना ही क्यों चरित्रता का प्रमाण है? यहाँ स्त्री नदारद है, उसकी इच्छा–अनिच्छा नदारद है। इच्छा जतलाये तो चरित्रहीनता का आरोप लगाया जाता है, बदमाश करार दी जाती है। पुरूष की इच्छा, जबरदस्ती सब प्रेम के खाते में डाल दिये जाते हैं।

जहाँ तक उदात्तता का सवाल है तो उदात्तता – पुरूष द्वारा स्त्री के लिए बनाये कठघरे हैं, जिनसे बाहर आने पर सजा दी जाती है। स्त्री की 'देह' पर ही नही, 'सोच' व 'मन' पर भी पहरे लगाये गये हैं। स्त्री 'देह' घर पर रहती है तो पुरूष खुशी जाहिर करता है– कि 'यह' उसकी है, उसके उपभोग की। यदि वह बाहर जाती है, तो पूछा जाता है। यह 'देह' इतनी देर कहाँ थी? किसके साथ थी? क्या कर रही थी? आदि, यानि वह सिर्फ 'देह' है 'देह'। 'मन' व 'सोच' सहित 'मानव' नहीं। सर्वप्रथम 'देह' से मुक्ति पानी होगी, तभी सोच व मन से पहरे हटेंगे। भटकन है। लड़ाई बहुत बड़ी है, व्यापक है, परन्तु लड़नी है, एकजुट होकर। आज के युग में चरित्रता व उदात्तता नहीं 'बौद्धिकता' मायने रखती है। मेरी नायिकायें बौद्धिकता के स्तर पर अपनी दुनिया रचती–बसती हैं। यह समाज के आदर्शमय अस्तित्व का विनाश नहीं अपितु विकास है।

प्रश्न 16. मैत्रेयी जी, आपकी नजर में 'आधुनिकता' शब्द के सही मायने क्या है? (विशेष तौर पर स्त्री परिप्रेक्ष्य में)

मैत्रेयी जी– देखो प्रीति! आधुनिकता का तात्पर्य न तो बाहरी रूप से अधनंगे घूमना, न ही विचारों मे पूर्णता नंगई लाना है। आधुनिकता का तात्पर्य है–

परिवेश – रहनसहन और विचारों का संतुलित तालमेल। आधुनिकता समय की मांग है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त पश्चात समस्त पुरूषों ने तो धोती कुर्ता त्यागकर पैंट शर्ट धारण कर लिये किन्तु स्त्रियों को परम्परा के निर्वाह के लिए धोती में ही ढांक–मूंद कर रखा। क्यों? समस्त परम्पराओं का निर्वाह स्त्री के कंधों पर ही क्यों? मन में होगा – साड़ी खुली, तो कहीं विचार व सोच के दायरे भी न खुल जायें, इसलिए उसे उसी में बांधो रखो, कसकर।

आधुनिकता का मतलब समाज, समय और अवसर देखते हुये कपड़ों का चयन और विचारों की परिपक्वता। यानि यदि आपको बस पकड़ना है–तो आप अपनी साड़ी ही न समेटती रह जायें और जहाँ आवश्यकता ही न हो वहाँ आप मिनी स्कर्ट पहन जायें। मूलरूप से विचारों में आधुनिकता होनी चाहिए। अपने को समाज के समक्ष प्रदर्शित करने की क्षमता। समाज को अपने अस्तित्व से रूबरू कराने की क्षमता। बाहरी रूप से 'माडर्न' दिखने वाली युवती आधुनिक नहीं हो सकती, जब तक उसकी सोच भी आधुनिक नयी न हो। भेड़चाल से प्रथक, सोच में परिवर्तन, विचारों में नवीनीकरण एवं सुविधाजनक परिवेश को अपनाकर 'आधुनिक' बना जा सकता है।

प्रश्न 17. मैत्रेयी जी आखिरी सवाल – आप खाली समय में क्या करती हैं?

मैत्रेयी जी– प्रीति! लेखन का इतना दबाब, रोज–रोज की यात्रायें, परिचितों से मुलाकात आदि में वक्त मिल ही नहीं पाता है। खाली समय तो है ही नहीं। जिम्मेदारियाँ बढ़ गयी हैं। आगे के लिए चिन्तन जारी है।

इसी के साथ ही मैंने अपने प्रश्नों का सिलसिला यहीं पर समाप्त किया और उनसे अपने साथ फोटो खिंचवाने का आग्रह किया, जो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। दो–तीन फोटो खींचने के पश्चात हमने उनसे आज्ञा चाही, तो उन्होंने आग्रह पूर्वक हमें चाय–नाश्ता करवाया, तत्पश्चात जाने की अनुमति प्रदान की। वे उठकर दरवाजे तक

हमें विदा करने आयीं, और हम उनसे पुनः मिलने का वादा लेकर घर से निकल पड़े।

उनका इतना सरल, सहज और अपनत्व से पूर्ण व्यवहार देखकर ऐसा लगा ही नहीं कि हम इतने भव्य व महान व्यक्तित्व से मुलाकात कर लौट रहे हैं। पूरे रास्ते हम उनकी मधुर–स्मृतियों में खोये रहे और पता ही नहीं चला कि घर कब आया गया।

चतुर्थ अध्याय

अ. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों के प्रमुख नारी पात्र एवं उनका चरित्र–चित्रण

ब. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास साहित्य में नारी के विविध रूप।

1. पारिवारिक रूप
2. सामाजिक रूप
3. राजनैतिक रूप
4. धार्मिक रूप
5. लोक कल्याणकारी रूप
6. मानवीय गुणों से परिपूर्ण आदर्शमय रूप
7. यथार्थ रूप
8. आर्थिक विपन्नता से परिपूर्ण रूप

अ. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों के प्रमुख नारी पात्र एवं उनका चरित्र चित्रण

कहते हैं कि यदि नारी न होती तो इस सृष्टि की कल्पना भी न होती। नारी के सुन्दर स्वरूप से ही पृथ्वी की रचना हुयी। उसके ओजस्वी भाल के प्रकाश से ही सूर्य ने प्रकाश पाया। नारी कोमल कपोलों की द्युति से प्रातः काल में ऊषा की किरणें चमकी, उसकी मधुर मुस्कान से कलियों ने ख़िलना सीखा। नारी के गम्भीर्य चिन्तन मनन से समुन्दर ने गहराई पायी। उसके मनोहारी रूप लावण्य से ही सृष्टि रंगमयी तथा रसमयी बनी।

भारतीय मनीषियों द्वारा नारी के उक्त स्वरूप की कल्पना की गयी। नारी सत्य, प्रेम, और विश्वास का रूप है। सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की त्रिवेणी है। श्रृद्धा, भक्ति, त्याग की जीती जागती तस्वीर है। लेकिन आज इस समाज में नारी का अस्तित्व छिन्न–भिन्न हो गया है। सामाजिक पुनर्जागरण काल के बावजूद दहेज, स्त्रियों के प्रति हिंसा, बलात्कार स्त्रियों के दमन के लिए धर्म का प्रयोग, बहु विवाह, स्त्रियों की प्रताड़ना, वैश्या वृत्ति अभी भी प्रचलित हैं। जिन पर कानून तथा नारीवाद एवं महिला उद्धार संगठन कोई सुधार न ला सकें। परिवार के भीतर झगड़े तनाव और तलाक में कोई परिवर्तन नहीं है। प्रत्येक नारी आत्मसम्मान से जीना चाहती है। इसी आत्मसम्मान की रक्षा करते हुये मैत्रेयी जी ने अपने नारी पात्रों की रचना की, जो विभिन्न तथा विकटतम् परिस्थितियों में भी हार नहीं मानती और पुरूष की बनायी सामाजिक व्यवस्था से टक्कर लेती हुयी दिखायी देती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास के नारी पात्र सशक्तता व दृढ़ चरित्रता को उजागर करते हैं तथा समाज में फैली दूषित मानसिकता को तोड़ते व छिन्न–भिन्न करते नजर आतें हैं। हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासकार एक प्रकार से परम्परागत और रूढ़िवादी नारी की प्रतिष्ठा करने में ही प्रवृत्त दिखायी पड़ते हैं मानो वे उसके लिए प्रचारक का कार्य कर रहे हों। पं० लज्जाराय शर्मा मेहता के उपन्यास 'आदर्श हिन्दू' की प्रियबंदा, जिसे उपन्यासकार ने आदर्श हिन्दू नारी के प्रतीक रूप में चित्रित किया हैं, कहती हैं "उनका सुख उन्हें ही मुबारक हो। हम पर्दे में रहने वालियों को ऐसा सुख नहीं

चाहिए। हम अपने घर के धंधे में ही मग्न हैं।"[1] इस उपन्यास की नायिका के अनुसार –"स्त्रियों की लज्जा ही प्रधान भूषण है और पर्दा ही उसकी रक्षा करने वाला हैं, इसलिये पर्दे को तोड़ना अच्छा नहीं।"[2] इस प्रकार "सुशीला विधवा" में सुशीला भी पर्दा प्रथा का समर्थन करते हुए कहती हैं –"मेरी समझ में पर्दा प्रणाली अच्छी हैं। जो लोग पर्दा–प्रणाली की निन्दा करते हैं हैं, वे भूलते हैं, झख मारते हैं। पर्दा का प्रयोजन यह नहीं है कि स्त्रियों को सात तले में बन्द रखना चाहिए, इसका मतलब यही है कि उन्हें ऐसे कुकर्म करने का अवसर न देना चाहिए।"[3] पं0 किशोरी लाल गोस्वामी भी पर्दा प्रथा का समर्थन करते प्रतीत होते हैं। अनेकानेक उपन्यासकार पति के सुख में ही नारी के सुख की परिणति मानते हैं। यही स्थिति नारी के विविध पहुलओं और अन्य सामाजिक कुरीतियों के सम्बन्ध में भी देखी जा सकती है। वस्तुतः लेखकगण तब तक नारियों के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण अपना नहीं सके थे।

मैत्रेयी पुष्पा जी ने नारी के प्रति इस विकृत मानसिकता की छवि को बखूबी तोड़ा हैं और सिर्फ उस छवि को तोडा ही नहीं, बल्कि उन टूटे टुकड़ों से एक सशक्त और दृढचरित्र नारी की रचना भी की। मैत्रेयी पुष्पा जी के समस्त नारी पात्र उन सभी सामाजिक कुरीतियों का डटकर विरोध करते दिखायी देतें हैं जिन्हें सदियों से समाज व साहित्यकारों ने उपयोगी व उपादेय सिद्ध किया है।

मैत्रेयी पुष्पा जी के समस्त उपन्यास नारी प्रधान हैं तथा नारी की सशक्त भूमिका को उजागर करतें हैं। ये नारियाँ जीवन से हार न मानने का संकल्प लिये जान पड़ती हैं। यूँ तो मैत्रेयी जी के उपन्यासों में अनेकानेक नारी पात्र अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराते हैं परन्तु उनमें कुछ विशेष, महत्वपूर्ण व प्रमुख हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. 'बेतवा बहती रहीं' की 'उर्वशी'
2. 'इदन्नमम्' की 'मंदा'
3. 'चाक' की 'सारंग'
4. 'झूलानट' की 'शीलो'
5. 'अल्मा कबूतरी' की 'अल्मा'

---

[1] आदर्श हिन्दू–भाग–1 पृष्ठ 6–7
[2] आदर्श हिन्दू – भाग–3 पृष्ठ 1

6. 'अगनपाखी' की 'भुवनमोहिनी'
7. 'विजन' की 'डा0 नेहा'
8. 'कस्तूरी कुंडल बसै' की 'कस्तूरी व पुष्पा'
9. 'कही ईसुरी फाग' की 'रजऊ' तथा 'ऋतु'

इसके अतिरिक्त इनमें तीन कहानी संग्रह 'चिन्हार', 'ललमनियां' तथा 'गोमा हँसती हैं' के समस्त नारी पात्र अपने चरित्र विशेष के कारण उल्लेखनीय हैं।

नारी जीवन घटनाओं का समूह हैं। इन घटनाओं को मूर्त करने वाले साधन हैं चरित्र। इन चरित्रों द्वारा ही कथा का निर्माण होता हैं। स्त्री का स्वभाव, विशेषतायें एवं उसकी कमजोरियाँ दिखाने का प्रयत्न उपन्यासकारा ने इन प्रमुख नारी चरित्रों के माध्यम से किया है। इनके उपन्यासों में पुरूष चरित्र की अपेक्षा नारी चरित्र विशेष स्थान रखतें हैं।

१. 'बेतवा बहती रही' की 'उर्वशी'

'बेतवा बहती रहीं' मैत्रेयी पुष्पा जी का प्रथम उपन्यास है। यह 1994 में प्रकाशित हुआ था। हमारे भारतवर्ष में जहाँ अंधविश्वासों का कोई अन्त नहीं, वहीं प्राचीन रूढ़ियां सनातन बनी हुई हैं। अशिक्षा का अंधियारा पग पग पर दिखलायी देता हैं और मानवीय यंत्रणाओं का तो मानो कोई अन्त ही नहीं हैं। ऐसे ही अंधेरो खोहों, खाइयों और विश्वासों में बंधी लड़की की कहानी हैं– 'बेतवा बहती रही'! साधारण होते हुये भी आसाधरण। एक अंचल विशेष में पली बढ़ी युवती उर्वशी की कहानी। जिसमें प्रेम, घृणा, हिंसा, वासना आदि सभी हृदयद्रावक मनोभावों को छू लेने की क्षमता हैं।

उर्वशी का जीवन बेतवा के समान शोषण में डूबे समाज में निरन्तर बहता जा रहा है। जिस प्रकार बेतवा के किनारे झाड़ झंकार उग आते हैं कीचड़ हो जाता है, बीच बीच में खरपतवार निकल आते हैं, किनारे मलिन बस्तियाँ बना ली जाती हैं, फिर भी बेतवा अपने सतत् प्रवाह से निरन्तर बहती है उसी प्रकार उर्वशी भी इस गंदे मैले, कीचड़युक्त मानसिकता वाले समाज में निरन्तर रहने के लिए मजबूर है, अभिशप्त है।

[3] सुशीला विधवा – पृष्ठ 116

वैसे तो अनेकानेक पात्र हैं इस उपन्यास के, किन्तु मीरा और उर्वशी प्रमुख पात्र जान पड़ती हैं। इन दोनो में भी उर्वशी सर्वप्रमुख चरित्र है जिसके चरित्र की विशेषतायें निम्नलिखित हैं।

१. दरिद्र व विपन्न :-

"उर्वशी ने जिस घर में जन्म लिया था, बड़ी विपन्नता थी वहाँ। दरिद्रता का घोर साम्राज्य! घर की दीवार के उस पार रोज ही रोटियों के लाले पड़ते थे। उस घर के निवासियों को हर समय पेट भरने की दुश्चितायें घेरे रहतीं। उर्वशी के पिता के पास नाम–मात्र की जमीन थी, बित्ते–भर धरती। उसके बल पर किसी बाल–बच्चों वाले परिवार का भरण–पोषण सम्भव नहीं था। दूसरों की खेती जोत पर लेते, बटिया पर उठाते। साल भर कड़ी मेहनत करते। हिम्मत करके बोते उगाते, काटते और ईमानदारी से मौरूसीदार की पाई–पाई चुका देते। बाल–बच्चों के पेट को चार दाने घर में आ जाते।..........वहाँ खाने को दो वक्त पूरा न जुटता था। ज्वार–बेझरे की रोटी मिल जाये तो समझो छत्तीसों भोग।"[4] ऐसी ही दरिद्रता व विपन्नता में बल बढ़कर बड़ी हुयी थी उर्वशी।

२. अपूर्व सुन्दरी -

गरीब घर में जन्म लेने के बावजूद विधाता ने उर्वशी को रूप तो जी खोलकर दिया था। ज्यो–ज्यों उर्वशी बड़ी हुई उसके अंग सौन्दर्य–सौष्ठव से निखर–संवरकर दिखने लगे। " आँगन में खड़ी होती तो कैसी बे–मेल लगती, कच्चे–मटमैले घरौंदा में वह अपूर्व सुन्दरी। नानी कहती –"कैसी गुलाब के फूल सी मोंड़ी है मोहनसिंह की। कहूँ राजरनिवास में पैदा होती। यहाँ कहाँ जनमी है दलिद्दर में।" मीरा देखती– उर्वशी के होंठ जैसे नानी के पानदान के पान की बीड़ा चबाकर थूक आयी हो। "दिखाना उर्वशी मुँह खोल" वह मुँह फाड़ देती। नहीं, इसने तो पान खाया ही नहीं, फिर...ऐसे लाल होंठ।"[5] तभी तो उसके सौन्दर्य को देखकर बैरागी 'हरीन्द्र सिंह यादव' बौरा से गये और अपना चिमटा कमण्डल उसके द्वार पर रखकर वहीं बैठ गये और जब लोगों ने वहाँ से उठने

---

[4] बेतवा बहती रही – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 14
[5] बेतवा बहती रही – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 14

का आग्रह किया तो बोले–"नहीं बच्चा, यहाँ से उठने का आग्रह मत करो हमसे। इस स्थान का त्याग हम नहीं कर सकते। कन्या देख ली है, हमने। सन्यास त्याग देंगे। गृहस्थ आश्रम का वरण करेंगे। गृहस्थ क्या तपस्या से कम है बालक।"[6] "उर्वशी के रूप ने दहेज के दामों को झुका दिया, "अच्छा, लड़की सुगढ़ है, खूबसूरत है, तो भइया हमें न चाहिये रूपइया–पइसा। और जब गोद भराई में मीरा ने उसे तैयार किया तो सब देखते रह गये, धूल में अटा हीरा थी वह। झाड़–पोछकर संबारते ही दिपदिपा उठी।

३. गृहकार्य मे दक्षा –

उर्वशी गृह कार्यो में दक्ष थी समस्त कार्य वह चुटकी बजाते पूरे कर देती थी। "उर्वशी पारंगत थी, खाना बनाने की पूरी विद्या नानी के प्रशिक्षण में पूरी की थी उसने। मीरा के लिए उसने खाने के साथ आठ दिन का नाश्ता भी बांध दिया– लड्डू–मठरी।"[7] समस्त कार्यो में प्रवीण थी उर्वशी– चाहे कुंये से पानी भरने का काम हो या नदिया पर कपड़े धोने का काम। हर काम झटपट निपटा देंती थी। चाहे ससुराल हो या मायका। काम को लेकर कभी किसी ने उसकी शिकायत नहीं करी। तभी तो जहाँ एक ओर उर्वशी सुसराल में अपने दाऊ और जिज्जी का घर सम्भाले थी तो वहीं काम पड़ने पर भाई अजीत उसे ससुराल से लिवाने आ जाते थे, "उर्वशी को लेने आये हैं दाऊ हम। इसकी भाभी की तबीयत ठीक नहीं हैं।" "जेई हाल भइया, यहाँ हैं। तुम्हारी जिज्जी महिनन से बीमार चल रहीं है। उरबसी जितने दिन चन्दनपुर रहीं उतने दिन बच्चन को बड़ी परेसानी रही।" दाऊ एक सांस में अपनी व्यथा कह गये।"[8] यही नहीं उसने मीरा की शादी में समस्त गृहकार्यों को अपने कंधे पर लेकर शादी को कुशलता पूर्वक सम्पन्न कराया।

४. कुशाग्र बुद्धि–

जहाँ एक ओर उर्वशी के माँ–बाप उर्वशी को आर्थिक विपन्नता के कारण पढ़ा न सके, वहीं दूसरी ओर वह अपनी सखी मीरा से बातों ही बातों में पढ़ना

---

[6] बेतवा बहती रही – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 18
[7] बेतवा बहती रही – मैत्रेयी पुष्पा पृष्ठ 25
[8] बेतवा बहती रही – मैत्रेयी पुष्पा पृष्ठा 104

सीख गयी थी, चूँकि मीरा पढ़ी लिखी लड़की थी। अतः वह उर्वशी को लिखने पढ़ने को प्रेरित करती– उसके साथ उर्वशी बेतवा के किनारे पर बैठी रेत में अक्षर काढ़ती, "बता न मीरा, काका जू को नाम कैसे लिखेंगें"? वह लिखकर बताती' ––ऐसे– बिसम्भर सिंह", अच्छा हमारे दादा कों?" वह फिर पूंछती। "मोहन सिंह", मीरा पाट की रेती में बड़ा–बड़ा लिख देती। फिर तो "अजीत सिंह, सूरज सिंह ...." पोथी और पाठशाला न सही। किताब–कापी न जुटी पर वह पढ़ गयी। माँ ने उर्वशी को भरपूर पढ़े–लिखे की जमात में शामिल कर दिया–" हमार उरवशी ऐन पढ़ी लिखी हैं, चिट्ठी पतरी बांच लेती, लिख लेती, और का चहिये?"[9] तभी तो नाना जब उसके रिश्ते की बात करने जाते हैं तो स्पष्ट कहतें है – पइसा टका नहीं हैं कुंअर सहाब। मोंडी है, पर बड़ी सूबसूरत। गोरी नारी। खूब चतुर हुसियार। तुम दिया लेके ढूँढ है, तबहूँ न मिलहै ऐसी बिटिया।"

५. दहेज समस्या से ग्रस्त –

उर्वशी सामाजिक रूढ़ियों व परम्पराओं से अछूती नहीं। रूपवती, सुन्दर व चतुर होशियार होने के बावजूद दहेज समस्या उसके समक्ष निरन्तर मुंह बाये खड़ी रहती है। "दहेज के बुलन्द झुण्ड के नीचे उर्वशी का कोरा कन्यादान अंगेजने को कोई तैयार नहीं होगा, यह तो वे भी जानते थे। उर्वशी के ब्याह का वजन उनके सीने पर भारी पत्थर सा लदा था। उसके जन्म से ही वे ऋणी होने की अनुभूति से दबे थे। दहेज का ख्याल आते ही कंगाली और दारिद्रय की खाई में जा गिरते। मन गहरे तल में डूब जाता। जहाँ माँ एक ओर हरदम टहोका देती रहती "तुम्हें कछू सोच–फिकर नहीं हैं। अरे बिटिया जनमत से ही बाप ब्याह की सोचन लगत। दहेज जोरन लगत।" वहीं भाई अजीत दहेज के प्रश्न पर ही बिदक जाते। रोज ही दहेज समस्या पर घर में कलह होती। उर्वशी का मन उदास व बोझिल हो उठता, तभी तो वह मीरा से पूछ उठती हैं– "मीरा, भगवान काहे के लाने बिटिया को जनम देता हैं? वे नहीं जानत कि लड़की पैदा होंके कितों को विपदा में डार देगी। देख रही मीरा तुम......हम न होते तो इत्ती कलेस मचती?

---

[9] बेतवा बहती रही – मैत्रेयी पुष्पा 29

६. भ्रातप्रेमी –

उर्वशी अपने भाई अजीत से बहुत प्रेम करती है जबकि भाई अजीत को बहन उर्वशी से कोई मोह न था। बहन उर्वशी के शादी के वक्त भी अजीत ने दहेज में कोई सहायता न कर हर काम काज से अपने हाथ खींच लिये। बल्कि उलटा उसके लिए ऐसा वर खोज लाये, जो दुहेजू था। उन्होंने कभी बहन के हित की बात नहीं सोची, सदैव अपना हित साधते रहे। जबकि बहन हर समय यह सोचती कि भाई की जिन्दगी खुशहाल रहे, वे सुखी रहें, बस्स। उन्हें खुश देख उर्वशी खुश हो जाती थी। मीरा को पत्र लिखती हैं–"मीरा, अजीत भइया की हालत जैसे–जैसे सुधर रही थी। मन में खुशी थी मीरा। वे अपने घर अच्छी तरह खा पी रहें, इसी बात का संतोष था। मुझे नहीं बुलाते तो न बुलाये, हंसी–खुशी रहें।"[10] और जब अजीत "सॅस्पेंड' हो जाते हैं तो वह हर वक्त चिन्तित रहती। जबकि अजीत को बहन से सिर्फ मतलब का मतलब था। वे उसे जब याद करते, जब उससे उन्हें कोई लाभ दिखलायी देता। जहाँ पत्नी के बीमार होने पर वे उसे काम के लिए घर ले आते, वहीं उर्वशी के पति सर्वदमन की मृत्यु की पश्चात वे उसे मीरा के पिता को कुछ जमीन के एवज में ही बेच देते हैं, फिर भी उर्वशी उफ्फ तक नहीं करती और भाई की खुशी और अच्छी गृहस्थी चलती रहे, के खातिर अपने जीवन को होम कर डालती है।

७. वैधव्य की मारी –

उर्वशी के भाग्य में सुख नहीं। तभी तो सुख के दिन आते ही, ईश्वर ने ऐसी ठोकर दी कि उसका जीवन तार–तार हो गया। उर्वशी कुछेक साल में ही विधवा हो गयी। उसके स्वप्नीले सपने बिखर गये।

"उर्वशी गिरती कराहती.....सफेद सूती धोती ब्लाउज, नंगे उजाड़ हाथ, बिछिया सुती पांवों की नंगी उँगलियाँ, उसके वैधव्य पर बिसूरती हुईं।

[10] बेतबा बहती रहीं–मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 61

जिस कोठे में सर्वदमन के साथ रहती थी, उसको त्याग दिया उसने। उस घर को छोड़ दिया। पुराने कच्चे घर में चटाई पर बैठी दिन–भर दीवारों को आँखे फाड़े देखती रहती। यादों की छाया नहीं छोड़ती पीछा। आँखो के आगे सर्वदमन खड़े रहते हैं.........कहाँ लगता है कि वे.....? ऊँचे पूरे कद की सुन्दर प्रतिमा सी उर्वशी किस अपराध की भागीदार मानकर महादण्ड के लिए चुन ली नियति ने। अभिशप्त जीवन के अंधेरे सुरंग–द्वार खुल गये......किसने वध कर डाला उसके कपोत का.....? आते–जाते भाव मन को रौंदते रहते। न धीरज, न शान्ति।''[11]

८. नियति की मारी –

उर्वशी का सम्पूर्ण जीवन नियति के सहारे चला। स्त्री जीवन से दुखी उसका सम्पूर्ण जीवन दीनहीन अवस्था में गुजरा–पहले दरिद्रता व विपन्नता में जीवन यापन, फिर भाई अजीत की निर्मोहता की शिकार, दहेज समस्या से पीड़ित, पति सर्वदमन की मृत्यु के पश्चात् वैधव्य की शिकार, ग्रामीण स्त्रियों के तानों की शिकार, कुत्सित मानसिकता के व्यक्तियों की आँखों का शिकार, भाभी की उलाहना, भाई का पैसे की खातिर उसका सौदा करना, बेटे देवेश से बिछड़ना, बूढ़े पति की सेवा में तन मन अर्पित कर देना और अन्त में घटिया झोलाछाप डॉक्टर और पति बरजोर सिंह के चलते मौत का शिकार होना, बताता है कि उर्वशी ने कभी सुख नहीं भोगा, सिर्फ सुख बांटती रही और अपनी झोली खाली रखी। ऐसा लगता है मानो निरन्तर नियति उसके साथ आँख मिचोली खेल रही हो और उसे धोखा दे रही हो।

९. सहनशील व जिम्मेदार –

उर्वशी निरन्तर मिलने वाले कटाक्षों को आजीवन सहन करती आयी और अपनी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाती रही। पति सर्वदमन की मृत्यु के बाद भाभी निरन्तर दाऊ (जेठ) को लेकर उलाहना देती रहतीं। मायके में उसे व उसके बेटे को भरपेट भोजन न मिलता न प्यार, ससुराल जाने को हुयी तो सुनने में आया–''इतनी जल्दी तो अपनौ आदमी होत तबहूँ नहीं करी जात। इतै

[11] बेतवा बहती रही–मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 65

जेठ के बुलउआ पर कितनी उतावली मची है, बिन्नू को, जैसे खसम बैठे हों।''
पर उर्वशी कुछ नहीं कहती, बस आश्चर्य करती हैं। वहीं जब वह मीरा के गांव विजय भइया की शादी में गयी तो ग्रामीण औरतें कहने लगीं–''काये मीरा, जे उरवसी आड़ परदा काहे नहीं करत?'' काकी ने शिकायत भरे स्वर में पूछा। ''कैसी हो काकी! आड़–परदा काहे को करें। उनकी कौन यहाँ ससुराल हैं।'' वह (मीरा) अचरज से हंसती हुयी बोली। ''ससुराल नहीं हैं, और का है? गांव–भर में तो चरचा हो रही हैं, उरवसी तुम्हारे पिता जी के बिछिया पहरैगी।'' सुन उर्वशी आवाक रह जाती हैं और जब अपना दुख भाभी से कहती है, तो बजाय सांत्वना के भाभी कटाक्ष कर कहती हैं – ''फिर कौन–कौन को मों रोकत फिरें। अपने संगे दाऊ को लिपटवा रहीं। इत्तौ हेज पिरान देत हैं का कोऊ समझत नइयाँ? वहीं पिता समान बूढ़े दूसरे बरजोर सिंह उदय की शादी की बात पर अपनी चलती न देख उर्वशी को खूब खरी खोटी सुनाते हैं–'' तो जै बात है, जा नागिन ने डसौ है तुम्हें। जई के विष से बौरा रहे।.....कौन–कौन सी पाटी पढ़ा रही थी, तुम्हें जा नटनी।''

''तो जा समझ लियो उदय, हमारे घर में रही नहीं सकत तुम। सींग समाय तहाँ जाऔ और संगै ले जाओ जा भट्टी छोत कों? काहे से कि अब जे ही है तुम्हारी खासम खास।.........

''डायन! तैने उतै तो सत्यानास कर ही दऔ। अब इतै खान लगी सबै।'' परन्तु उर्वशी बेतवा की तरह पवित्र रहते हुये, ता उम्र सिरसा, राजगिरी और चन्दनपुर की जिम्मेदारियों को अपना कर्त्तव्य व खुशी समझते हुये, अपना जीवन होम कर देती है और इन्हीं जिम्मेदारियों को बहन करते–करते वह एक दिन काल के गाल में समा जाती हैं।

१०. मातृभूमि और बेतवा से प्रेम करने वाली–

उर्वशी अपनी मातृभूमि और बेतवा नदी से बहुत प्रेम करती थी। दोनों सखियाँ मीरा और वह घंटो बेतवा के किनारे खेलती–बतियाती। समय बढ़ता गया, लेकिन बेतवा से उसका मोह कम न हुआ। जब कभी वह उदास होती तो बेतवा किनारे पहुंच जाती, उसे बेतवा अपने समान लगती–'' कैसी है नदी

शांत। ठहरी हुई। लहरों के आलोड़न में कोई शोर—कोलाहल नहीं। कितना गन्द, झाड़—झंखाड़, फेंका—पटका जाता है उसमें, मन छिलता—खुरचता तो होगा। पीर भी होती होगी, पर विचलित नहीं होती, अपवित्र भी नहीं। किस अन्तर में सोख जाती है सारा दर्द? भीषण गर्मी में कौन सुखा देता है उसे? समूचे अस्तित्व को पी जाता है। पतली कृषकाय धार ही तो बच रहती है, फिर भी नदी तो नदी ही रहती है।, अपने को समाप्त कहाँ करती।

यह कैसी विचारधारा उपज आयी? अचानक ज्ञानवती हो उठी। वह भी नदी हैं, बेतवा से निकली हुयी धार, जिसमें उछाली हुई गन्दगी भी स्वच्छ, पवित्र हो जाय। दाऊ बेदाग बने रहें। नदी की तरह ही वह देहरी को लांघकर जायेगी भी कहाँ...? एकाएक बेतवा के पाट पर लाल थाली सा सूरज नदी के पानी पर तैरने लगा। आग के गोले का प्रतिबिम्ब लहरों पर बिखर गया। पाट पर गहराई न थी। वह आगे बढ़ गयी—सती के चौरे के पास ऊँची चट्टान पर.......एकाएक पति का ध्यान हो आया। ''कभी मै न रहूँ उर्वशी तो तुम रहना। देख रही हो सामने सती का चौरा – ऐसी सती मत हो जाना – यह कायर थी। तुम कायर नहीं हो उर्वशी, तुम मेरी पत्नी हो— सर्वदमन की अर्द्धागनी, साहसी, निर्भीक।'' उसी साहस व निर्भीकता के चलते उर्वशी ताउम्र अपना जीवन तिल—तिल कर जलाती रही और अन्त समय आखिरी इच्छा जाहिर करते हुये कहती – '' एक विनती ....एक अरज ..... मरे पीछे वहीं जरइयो....बेतवा किनारे.......जा तन की खाक बेतवा में......'' कह आखरी सांस लेती है और इसी के साथ उपन्सासकारा मैत्रेयी पुष्पा उपन्यास का समापन करते हुये लिखती हैं—

बेतवा के निर्मल जल में धीरे—धीरे उर्वशी की कंचन काया समाने लगी। आसमान जल उठा। जल उठी धरती और सारे दाह को स्वयं में समेटे, आग की लपटों के साथ—साथ धधकती बेतवा क्रुद्ध भाव से बहती रही।

इन प्रमुख विशेषताओं के साथ—साथ उर्वशी के चरित्र की और भी कई विशेषताये थी, चंचलता, अंतरंग मित्रता, आज्ञाकारिता, लज्जावान, माता—पिता से प्रेम करने वाली, परम्पराओं का निर्वाहन करने वाली, सहयोगी आदि, जो उसके चरित्र को और अधिक उज्जवल व दृढ़ बनाती है।

२. 'इदन्नमम' की 'मंदा' (मंदाकिनी)

'इदन्नमम' मैत्रेयी पुष्पा का दूसरा प्रसिद्धतम् उपन्यास है। यह 1994 में प्रकाशित हुआ था। मैत्रेयी जी इसमें तीन पीढ़ियों की कहानी को लेकर चली हैं। बऊ, प्रेम और मंदा। जिसमें बऊ और मंदा ही प्रमुख हैं। यह बेहद सहज कहानी तीनों को समानान्तर भी रखती और एक दूसरे के विरूद्ध भी। इसमें अनेकानेक पात्र हैं और सबका अपना महत्व भी। किन्तु मंदा यानि कि मंदाकिनी एक ऐसा पात्र हैं जिसके ईर्द–गिर्द सारी कहानी घूमती है। वह प्रमुख पात्र है। साधारण होते हुये भी असाधारण। बहुत कुछ 'कस्तूरी कुंडल बसै' की मैत्रेयी के समान। यानि मैत्रेयी जी का अपना व्यक्तित्व भी मंदा में समा गया है। इस उपन्यास के चरित्र इतने स्वाभाविक हैं कि ऐसा लगता है मानों वे हमारे आस पास ही विचर रहे हैं और हमसे कुछ कह रहे हों अपनी भाषा में, अपने लहजे में। मंदा का चरित्र सर्वाधिक दृढ़ चरित्र है, जो उसे प्रमुखता प्रदान करता हैं। उसके चरित्र की विशेषतायें निम्नलिखित हैं –

१. आत्मविश्वासी –

मंदा आत्मविश्वासी युवती है। उसमें आत्म विश्वास कूटकूट कर भरा है। उसी आत्मविश्वास के बल पर वह अनेकानेक फैसले लेती है और उन्हें गांववासियों के समक्ष सच कर दिखाती है।

२. निडर व साहसी –

मंदा किसी से न डरने वाली साहसी युवती है, तभी तो जगेसर कक्का की ऊटपटांग और जलीकटी बातों का सामना वह बड़ी निडरता से करती है और उनकी धमकियों के बाबजूद दुत्कार सुनाती है, जगेसर कक्का! चलो यहां से! चलो उठो, इसी समय निकलो! हम कह रहे है कि उठते हो कि नहीं?" "अपने ठाकुर द्वारे में ऊँच–नीच का भेद नहीं मानते, लेकिन शराबी, नसेड़ियों को हम घोर अछूत करके देखते हैं।"[12] इसी प्रकार अनेक गम्भीर समस्याओं का सामना वह निडर होकर करती हैं साथ ही साहस का परिचय देती है।

---

[12] इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ ' 338

३. सत्यवादी -

मंदाकिनी सत्यपथ पर चलने वाली बालिका है। वह हर हाल में सत्य का अनुसरण करती हैं। जहाँ कुसुमा भाभी को अपने प्रेम के सत्य से परिचय कराती है वहीं महाराज को अपने दुःखों के सत्य से। कुसुमा भाभी का दाऊ जी से प्रेम देख वह पूछ उठती हैं–'' भाभी आप दाऊ से बोलती है?'' उनके 'हट्ट' कहने पर वह कहती हैं–''झूठ मत बोलों भाभी।'' अन्ततः वे दाऊ से अपने प्रेम को स्वीकार लेती हैं। सत्य के चलते उसे अनेक विरोधों का सामना भी करना पड़ता है। यथा–''मंदाकिनी! अभिलाख के बारे में विचार करो। आजकल तो वे माथे पर त्योरियाँ चढ़ाये फिर रहे हैं। काहे को कर दिये परमवीर जी रूष्ट? उनकी नीति के विरूद्ध कोई बात कह दी क्या?'' ''हमारी बात उन्हें उलटी ही उलटी काहे को लगती है।? आप तो जानते हो भइया जी, उन्होंने यहाँ हमारे खिलाफ अच्छा–खासा प्रचार कर रखा है।.........क्रेशर मालिकों की मंडली को भड़काते रहते हैं कि सौ दुश्मनों की दुश्मन है मंदा।''[13]

४. आज्ञाकारी-

मंदा बड़ों की आज्ञा का पालन करती है। वह बड़ों का मान रखने के लिए उनके अनुसार कार्य करती है। वह विशेष रूप से बऊ, दाऊ, कुसुमा भाभी, गनपत कक्का, डबल बब्बा, महाराज व दादा का सम्मान करती है।

५. प्रेमिका-

मंदा प्रेमिका है। वह मकरन्द से प्रेम करती है। बाल्यावस्था में उत्पन्न हुआ प्रेम उपन्यास के आखिर तक चलता है। उसे मकरन्द से बातें करना व उसके साथ खेलना अच्छा लगता है। मकरन्द के बाहर पढ़ाई हेतु चले जाने पर भी उसके प्रेम में कोई कमी नहीं आती चूंकि वह मकरन्द को ही अपना जीवनसाथी मान चुकी है अतः अन्य से विवाह के लिए इन्कार कर देती है और आखिर तक प्रेमिका बनी रह मकरन्द का इन्तजार करती है।

---

[13] इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 275

६. लज्जाशील-

मंदा में नारी का सबसे बड़ा गुण–लज्जाशीलता दर्शनीय है। जब भी उसके और मंकरन्द के प्रसंग को लेकर बातचीत होती है, तो मंदा लजा जाती है। और सखियों द्वारा 'सुआटा' में उसके गाने और नृत्य करने पर जब सखियां छेड़ती हैं, तो वह लजाकर वहाँ से भाग जाती है।

७. कर्मठ व लगनशील-

मंदा के चरित्र का सबसे बड़ा गुण उसका कर्मठ होना है। वह किसी कार्य को करने में आलस नहीं दिखलाती। गांव में अस्तपाल खोलने को लेकर वह इतनी क्रियाशील रहती है कि हर कोई उससे इसी विषय पर बात करता है। गांव में क्रैशर लगने की बात हो या किसी के आगमन की तैयारी, मंदा फुर्ती से हर काम निपटा लेती है। यथा वह सुबह चार बजे उठ जाती, नहा धोकर "पूजा अर्चना और फिर प्रधान काका के साथ एरच तक मीलों पैदल यात्रा, कभी बैलगाड़ी से और फिर बस से झाँसी। सुबह से लेकर धूलभरी दोपहरी में और घमसभरी शाम तक वह प्रधान जी के साथ सी.एम.ओ. के आफिस के आगे वाले बरामदे में बैठी रहती।"[14]

क्रैशर पर ट्रैक्टर क्या लगाया रोज की ड्यूटी हो गयी हैं मंदाकिनी की वहाँ रोज सबेरे जाना। भराई–ढुलाई की खेपों का हिसाब लगाकर देना होता है। छोटी गिट्टी, बड़ी गिट्टी और बजरी का अलग–अलग रेट, तो कभी सोलिंग की ढुलाई का हिसाब करना और ट्रैक्टर के डीजल, मोबिल ऑयल, ऊर्जा–पुर्जा का प्रबंध करवाना। इसी में सुबह से शाम हो जाती।"[15]

८. धैर्यवान व निष्ठावान -

मंदा धैर्यवान व निष्ठावान युवती है। अपनी माँ से मिलने का अवसर हो या गांव के अस्पताल में डाक्टर के आने की उम्मीद। चाहे मकरन्द से मिलने की घड़ी हो या गांव में क्रैशर लगने की बात, उसने हर मुश्किल घड़ी में धैर्य नहीं

[14] इदन्नमम् – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 168
[15] इदन्नमम् – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 224

छोड़ा और सभी के प्रति अपनी निष्ठा बरकरार रखी। वह पल पल धैर्य धारण कर निष्ठा के साथ कार्यो को अंजाम देने में जुटी रहती है। उसके लिए उसे कड़ी मेहनत करनी पड़ती हैं। माँ से मिलने के लिए जहाँ वह धैर्यपूर्वक बऊ को समझाती है। वहीं गांव के अस्पताल में डाक्टर लाने के लिए वह पदाधिकारियों व नेताओं के दस चक्कर काटती है। जहाँ एक ओर मकरन्द के इन्तजार में आजीवन कुंआरेपन का व्रत धारण करती है तो वहीं दूसरी ओर गांव में क्रैशर चालू होने की, बावत सेठ, जमीदारों, साहूकारों से धैर्यपूर्वक वार्तालाप करती है। यह उसकी निष्ठा ही है कि वह धैर्यपूर्वक समस्त कार्यो को अंजाम दे पाती है।

३. 'चाक' की 'सारंग'

'चाक' मैत्रेयी पुष्पा जी का महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसका प्रकाशन राजकमल नई दिल्ली से 1997 में हुआ था। यह एक ऐसी ग्रामीण स्त्री सारंग की कहानी है, जिसका जीवन नियति 'चाक की भांति' नित नये रूप में ढाल रहीं है। जिस प्रकार चाक का दूसरा नाम हैं समय चक्र। चाक घूमेगा नहीं तो कुछ बनायेगा भी नहीं। वह घूमेगा और मिट्टी को बिगाड़कर नया बनाएगा, नए रूप में ढालेगा।

इसी प्रकार अतरपरु की सारंग भी अपने जीवन को एक नवीन रूप देने में जुटी हैं। लेकिन जिस प्रकार बनाना एक यातना से गुजरना है, उसी प्रकार सारंग भी निकल पड़ी है। 'ढाले' जाने की यात्रा पर। वह समाज की चिरपरिचित परम्पराओं को तोड़ नवीन धारणायें बनाती है। वह यदि ममतामयी माँ है, कमजोर प्रेमिका है तो दृढ़ निश्चयी स्त्री और बरजोर पत्नी भी है। वह अपने एक रूप के साथ अनेक रूप लिये हुये है। 'चाक' सिर्फ सारंग की नहीं उस हर स्त्री की कहानी है, जो समाज की व पति की बनायी घिसी पिटी परिपाटी पर नहीं चल पातीं और अनेक विरोधों के बाद व साथ अपना एक नवीन मुकाम हासिल करती हैं। सारंग भी अनेकानेक विरोधों के बावजूद स्त्रियों के लिए आदर्श है और अंततः उपन्यास में हर स्तर व धारणा की स्त्री उसका सहयोग करने को तत्पर दिखलाई देती है।

ऐसी ही दृढ़ चरित्र सारंग की चारित्रिक विशेषतायें निम्न हैं–

१. आदर्श पत्नी -

सारंग एक आदर्श पत्नी है। वह अपने पति रंजीत से बेहद प्रेम करती है तथा उससे अपने मन में उठने वाली संवेदनाओं और शंकाओं के बारे में बताती है। वह अपने पति की जिज्ञासाओं का समाधान करती है तथा उसकी इच्छाओं की पूर्ति का भरसक प्रयत्न करती है। हॉलाकि श्रीधर मास्टर से प्रेम होने के बाद भी उसे निरन्तर पति रंजीत की चिंता लगी रहती है और वह उसके खिलाफ जाने की सोच भी नहीं सकती। बेवफा होने के पश्चात भी वह रंजीत के प्रति ईमानदार दिखलायी देती है और अपने पत्नीत्व को निभाती है।

२. ममतामयी माँ-

सारंग एक बेटे की माँ है। एक ऐसी अभागी माँ, जिसे परिस्थितियों वश अपने बालक चन्दन को अपने से दूर भेजना पड़ता है। जिससे उसके बिछोह में वह तिलतिल कर जलती। हर पल उसे चन्दन की चिन्ता सताये रहती है। उसे ज्ञात है कि उसका बालक पराये घर खुश नहीं। इस बावत उसका अपने पति रंजीत से कई बार झगड़ा भी हो जाता है। अंततः वह अपने बेटे को किसी मार्फत अपने पास बुला लेती है और अपनी ममता की छॉव में पालती है किन्तु जब रंजीत पुनः उसे उससे दूर ले जाने की कोशिश करते है, तो वह अपने पति रंजीत के खिलाफ बंदूक उठा लेती है और कहती है, "है किसी में दम, तो मेरे चंदन को ले जाकर देखे।"

३. साहसी व निडर-

सारंग एक साहसी व निडर स्त्री है। जब उसकी बहन रेशम का कत्ल कर दिया जाता है। तो सर्वप्रथम वही कातिलों के खिलाफ साहस पूर्ण कदम उठाती है और बार–बार 'डोरिया' के धमकाने पर भी वह अपने इरादे नहीं बदलती और उन्हें कोर्ट कचहरी तक घसीट ले जाती है। यहाँ तक कि उसके बेटे को मार डालने तक की धमकी दी जाती है परन्तु सारंग बेहद निडरता का परिचय देती हुयी, विरोधियों को अपनी शक्ति से परिचित कराती है। एक बारगी उसके

साहस व निडरता को देख सम्पूर्ण गांव व स्वयं उसके पति रंजीत स्तब्ध रह जाते हैं।

४. आत्मविश्वासी-

सारंग में आत्म विश्वास कूट–कूट कर भरा है। वह सिर्फ अपने आत्म विश्वास के बल पर ही विरोधियों का सामना करने के लिए तैयार हो जाती है। उसे आत्मविश्वास है कि उसका कदम सही है और वह सम्पूर्ण नारी जाति को न्याय दिलायेगा। उसे यह भी विश्वास है कि उसका पति उसके सम्पूर्ण क्रियाकलापों व गतिविधियों में सच्चे दिल से साथ देगा। वह पति रंजीत को विश्वास में लेकर कातिलों का मुकाबला करती है।

५. बहिन प्रेमी-

सारंग अपनी फुफेरी बहिन रेशम से अत्यन्त प्रेम करती है। उसके कत्ल के पश्चात सारंग एक दिन भी चैन से नहीं बैठती। वह हर समय बैचेन रहती है। उसे लगता है रेशम की नहीं उसकी आत्मा की हत्या हुयी है। वह उसके लिए अपने आप को जिम्मेदार मानती है। वह सोचती है कि यदि वह उसे अपने घर ले आती, तो शायद ऐसा नहीं होता। हर समय अपने आप को कोसती रहती है और मन ही मन उससे क्षमा याचना करती रहती है और प्रतिज्ञा करती है कि वह उसके कातिलों को हरहाल में सलाखों के पीछे डालकर ही दम लेगी।

६. सत्य पथ पर चलने वाली -

सारंग सत्य का पक्ष लेने वाली स्त्री है। जहाँ रेशम की हत्या के पश्चात् सम्पूर्ण गांव गवाही देने से मना कर देता है वहाँ सारंग सत्य का वरण कर सब कुछ सच–सच बतला देती है। वह हरहाल में रेशम को व गुलकंदी को न्याय दिलाना चाहती है, साथ ही सम्पूर्ण ग्रामीण स्त्रियों को यह संदेश देना चाहती कि यदि वे आज चुप रही तो सदियों उनके हत्या अनुष्ठान चलते रहेंगे।

७. प्रेमिका -

एक अच्छे पति रंजीत के होने के पश्चात भी सारंग श्रीधर मास्टर के व्यक्तित्व व सोच विचार से प्रभावित हो उससे प्रेम कर बैठती है। प्रेम इतना परवान चढ़ता है कि वह कब उससे शारीरिक सम्बन्ध बना लेती है और उसे पता नहीं चलता। चाहकर भी वह श्रीधर से अपने प्रेम को नहीं तोड़ पाती और बार–बार उसकी आगोश में चली जाती है। इसके चलते उसे अपने पति रंजीत की उपेक्षा और अत्याचार को भी सहन करना पड़ता है किन्तु वह श्रीधर से मिले बगैर बेचैन रहती है और उससे मिलकर ही सुकून पाती है।

८. योग्य व संकल्पवान-

सारंग एक योग्य व संकल्पवान स्त्री है। वह अपनी योग्यता के बल पर चुनाव में खड़ी होती है। भंवर व श्रीधर उसे उसकी योग्यता व लियाकत के बारे में भान कराते हैं। इसके पश्चात अनेक विरोधो का सामना करने पर भी सारंग चुनाव से नाम वापिस नहीं लेती। पति रंजीत भी नाम वापस लेने पर जोर डालते हैं किन्तु सारंग एक बार संकल्प ले चुकी तो ले चुकी। फिर उसे कोई डिगा नहीं सकता। अनेकानेक प्रलोभनों के चलते भी वह अपने संकल्प को टूटने नहीं देती है।

९. न्याय की पक्षधर -

सारंग न्याय की पक्षधर स्त्री है। वह किसी के साथ होता अन्याय नहीं देख सकती। फिर चाहे घरू मामला हो या सामाजिक। वह हरहाल में न्याय का ही पक्ष लेती है। उसकी न्याय प्रियता को देखकर ही ग्रामीणवासी उसे चुनाव में खड़ा करने की सोचते है। वह सभी के दुःखों की भागीदार बन उसे भरसक न्याय दिलवाने के प्रयत्न करती है।

इसके अतिरिक्त सारंग के चरित्र की और भी छोटी बड़ी विशेषतायें है जैसे उसके मन का भ्रमित होना, शंकालु होना, पक्की गृहस्थिन होना, 'बोल्ड' होना, आदि विशेषतायें उसके चरित्र को और अधिक दृढ़ता प्रदान करती है। इस प्रकार हम देखते है। कि सारंग में यदि अच्छाइयाँ है तो कुछ बुराइयाँ है लेकिन

हम उसे बुरा पात्र नहीं कह सकते, क्योंकि कुछ कमियाँ तो प्रत्येक मानव में पायी जाती हैं तभी तो वह मानव है और इन्हीं कमियों के चलते सारंग यथार्थ की भूमि को छू सकी है। क्योंकि मैत्रेयी जी का उद्देश्य आदर्श की स्थापना करना नहीं यथार्थ को जीवंत करना है।

सारंग की ये समस्त विशेषतायें उसे भारतीय जीवन के यथार्थ से जोड़ती हैं और साथ ही एक स्त्री के जीवन की सच्चाईयों व संवेदनाओं को भी उजागर करती हैं।

४. 'झूलानट' की 'शीलो'

झूलानट' मैत्रेयी का सन् 2001 में प्रकाशित लघु व रोचक उपन्यास है। इसकी नायिका 'शीलो' है। नायक 'बालकिशन'। "गांव की साधारण सी औरत है शीलो न बहुत सुन्दर और न बहुत सुघड़। लगभग अनपढ़ – न उसने मनोविज्ञान पढ़ा है, न समाजशास्त्र जानती है। राजनीति और स्त्री–विमर्श की भाषा का भी उसे पता नहीं है। पति उसकी छाया से भागता है। मगर तिरस्कार, अपमान और उपेक्षा की यह मार न शीलो को कुएं–बावड़ी की ओर धकेलती है, और न आग लगाकर छुटकारा पाने की ओर। वशीकरण के सारे तीर–तरकश टूट जाने के बाद उसके पास रह जाता है जीने का निःशब्द संकल्प और श्रम की ताकत– एक अड़िग धैर्य और स्त्री होने की जिजीविषा उसे लगता है कि उसके हाथ की छठी अंगुली ही उसका भाग्य लिख रही है और उसे ही बदलना होगा।"[16]

"झूलानट की शीलो हिन्दी उपन्यास के कुछ न भूले जा सकने वाले चरित्रों में से एक है। बेहद आत्मीय, पारिवारिक सहजता के साथ मैत्रेयी ने इस जटिल कहानी की नायिका शीलो और उसकी 'स्त्री–शक्ति' को फोकस किया है।"[17]

पता नहीं झूलानट शीलो की कहानी है या बालकिसन की। दोनो ही पात्र बेहद सशक्त रूप में उभरकर हमारे सामने आते है। हाँ, अन्त तक प्रकृति और पुरूष की यह 'लीला' एक अप्रत्याशित उदान्त अर्थ में जरूर उद्भाषित होने लगती है।

---

[16] 'झूलानट' – मैत्रेयी पुष्पा – (भूमिका से)
[17] वही

निश्चय ही झूलानट के दोनों ही पात्र अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। नायिका शीलो के चरित्र की विशेषतायें निम्नलिखित है :-

१. साधारण रूप की स्वामिनी -

शीलो बेहद साधारण रूप की स्वामिनी है। उसका रंग सांवला था। मोटी नाक, दोहरा बदन, पतले होठ और एक हाथ में छः अंगुली। जिसके चलते उसे अपने पति सुमेर से सदा ही उपेक्षा का शिकार होना पड़ा। किन्तु इस साधारण रूप में भी मनमोहक अदा थी। तभी तो उसका देवर उसके इस साधारण रूप पर फिदा हो गया। तभी तो शीलो भाभी उसे कभी सूरजमुखी का फूल, तो कभी फूलपरी दिखलायी देती है। तभी शायद कहा गया है कि सौन्दर्य देखने वाले की नजर में होता है।

२. भारतीय नारी की प्रतिमूर्ति -

सुबह उठ सर्वप्रथम शीलो नहा धोकर मांडदार धोती पहनती, बिंदी सिंदूर लगाती, पाजेब पहनती और फिर सूर्य और तुलसी को जल अर्पित करने के पश्चात अपने पति के लिए लम्बी उम्र की कामना करती। यही रूप तो है हम भारतीय स्त्रियों का। जिसमें शीलो खरी उतरती है।

३. उपेक्षित -

शीलो एक ऐसी स्त्री है जिसे कभी अपने पति का प्यार न मिल सका, क्योंकि शीलो अत्यन्त रूपवती स्त्री नहीं थी। हमेशा पति उसकी उपेक्षा करता, उसकी तरफ देखता भी नहीं। हर तरह से समर्पित होने के पश्चात भी उसे पति सुमेर का प्यार हासिल न हो सका। उसकी उपेक्षा के चलते सास ने भी उसे उपेक्षित करना शुरू कर दिया और समाज ने भी। फलस्वरूप उसने अपनी जिंदगी के निर्णय स्वयं लेने प्रारम्भ कर दिये।

४. प्रेम की भूखी -

शीलो को कभी अपने पति का प्रेम न मिल सका, वह उसके प्रेम को हासिल करने के लिए हर सम्भव कोशिश करती, परन्तु सफलता न मिलती, फलस्वरूप

प्रेम की चाहत में वह अपने देवर बालकिशन की ओर आकर्षित हो जाती है। बालकिशन से उसे भरपूर प्यार मिलता है। तन का भी और मन का भी। उसके प्रेम में डूब वह अपनी शारीरिक व मानसिक प्रेम की तृप्ति महसूस करती है।

५. शारीरिक वर्जनाओं को तोड़ने वाली -

हमारे भारतीय समाज में स्त्री के विवाह के पश्चात् पति के अलावा किसी पर पुरूष को प्रेम की नजर से देखना पाप माना जाता है परन्तु शीलो एक ऐसी स्त्री है, जो अपने पति से उपेक्षा मिलने पर न सिर्फ अपने देवर के प्रति आकर्षित हो उससे प्रेम करती है बल्कि समस्त शारीरिक वर्जनाओं के नियमों को ताक पर रखकर उससे शारीरिक सम्बन्ध भी बनाती है और समाज के समक्ष इन सम्बन्धों को स्वीकार भी करती है।

६. रूढ़ि-परम्पराओं को न मानने वाली-

शीलो सामाजिक रूढ़ि–परम्पराओं को न मानने वाली स्त्री है, क्योंकि समाज ने सिवाय उपेक्षा व हँसी मजाक के उसे कुछ न दिया। जिससे वह समस्त ग्रामीण रूढ़ि–परम्पराओं को ठेंगा दिखा अपनी अलग ही स्वच्छन्द दुनिया रचती है। जब सास बदनामी से बचने के लिए उससे देवर के बिछियां पहनने को कहती है तो वह साफ इंकार कर देती है और सास के यह कहने पर कि लोग क्या कहेंगे? यह रीति है। गांव समाज को क्या मुँह दिखाएंगे? वह कहती है– "मुँह दिखाने को किसी की गाय मारी है क्या? अम्मा जी, रीत, रसम लिखा हुआ रूक्का तो नहीं होती।" इस प्रकार वह रूढ़ि–परम्पराओं का खण्डन करती है।

७. निडर तथा साहसी -

शीलो एक निडर व साहसी महिला है व अपनी सास व समाज की उपेक्षा का बड़ी निडरता व साहस के साथ सामना करती है। ग्रामीण स्त्रियों के कटाक्षों का भी बड़े साहस के साथ जबाब देती है। बड़ी निडरता के साथ वह समस्त रूढ़ि–परम्पराओं का विरोध करती है। बेहद साहस के साथ वह अपने हाथ की छठी अंगुली को काट कर अपना भाग्य बदल देती है।

८. प्रत्युत्पन्नमति -

शीलो बेहद प्रत्युत्पन्नमति महिला है। उसके पास हर सवाल का बेहद सटीक उत्तर मौजूद रहता है। चाहे सास की बात हो या समाज की या उसके पति सुमेर या बालकिशन की, सभी की बातों का उसके पास तार्किक जबाब मौजूद रहता है। वह अपनी बुद्धि के बल पर समाज से लोहा लेती है।

९. हठी या जिद्दी -

शीलो हठी किस्म की स्त्री है। वह जो एक बार ठान लेती है तो उससे पीछे नहीं हटती। पहले तो वह पति सुमेर को तन–मन–धन से चाहती है और उस पर न्यौछावर रहती है किन्तु जब वह उसके मन से उतर जाता है तो वह उसे पुनः नहीं अपनाती। इसी प्रकार सामाजिक प्रथाओं को भी वह अपनी जिद्द के चलते नहीं स्वीकारती तथा सबके समझाने पर भी अपना निर्णय नही बदलती।

१०. धार्मिक प्रवृत्ति की -

शीलो एक धार्मिक स्त्री है। वह अपने पति सुमेर को प्राप्त करने के लिए नित पूजा अर्चना पूर्ण विधि विधान से करती है। इस हेतु वह पूस माह के दिनों में कड़ाके की ठंड में भी नहा धोकर तुलसी पीपल ढ़ारती। सुंदरकाण्ड का पाठ करती। सुमिरनी जपती। व्रत उपवास करती। सोलह सोमवार, सन्तोषी माता के शुक्रवार, केला पूजन के वृहस्पतिवार। शनि गृह शांति के शनिवार, सब तो कर डाला शीलो ने। यहाँ तक की महामाई के मंदिर के शिवाले तक ब्रह्म बेला में पेड़ भरे। वैसे भी शीलो एक धार्मिक व पूजा अर्चना करने वाली भारतीय स्त्री थी। तभी तो रोज सबेरे नहा धोकर सर्वप्रथम वह तुलसी व सूर्य देव को अर्घ दिया करती थी।

इसी प्रकार हम देखते है कि शीलो के चरित्र में अनेकानेक विशेषतायें समाहित है जो उसके चरित्र को पुष्ट करती है और उसे यथार्थ के धरातल से जोड़ती है।

५. 'अल्मा कबूतरी' की 'अल्मा'

"अल्मा कबूतरी" – बेहद रोचक और पकड़े रखने वाला यह उपन्यास मैत्रेयी के पिछले उपन्यासों, इदन्नमम, चाक, झूलानट से आगे के की रचना है, एक नए नक्षत्र के अनुसंधान के रोमांच से भरपूर सार्थक, विचारोत्तेजक कृति। जहाँ कबूतरा जाति के जीवन का सम्पूर्ण ताना बाना प्रस्तुत है, बडी जीवंतता के साथ।

इस उपन्यास की नायिका जहाँ एक ओर कदमबाई है वहीं दूसरी ओर अल्मा। दोनो ही कबूतरा जाति की स्त्रियाँ है और ताउम्र कठिनाइयों का सामने करते हुये अपनी राह स्वयं चुनती हैं। जहाँ अल्मा कम उम्र की अनुभवहीन कन्या के रूप में हमारे सामने आती है वहीं कदमबाई जिंदगी के अनुभव गुजार चुकी स्त्री के रूप में। जहाँ उपन्सास का आरम्भ कदमबाई नामक युवती से होता है वहीं काफी बाद में कदमबाई के पुत्र राणा की प्रेमिका रूप में अल्मा का पर्दापण होता है, फिर क्या बात है कि कदमबाई और अल्मा के चरित्र और परिस्थितियों में काफी हद तक समानता होने के पश्चात भी अल्मा ही उपन्यास की मुख्य नायिका जान पड़ती है?

इसका मुख्य कारण कदमबाई कबूतरा जाति की विषम परिस्थितियों का सामना करते करते अपनी नियति व स्थिति में जहाँ ताउम्र विशेष बदलाव नहीं कर पाती वहाँ अल्मा कबूतरा जाति जैसी निम्न जाति की होने पर भी, समाज व राजनैतिक कारणों से गम्भीर षडयन्त्रों का शिकार होने पर भी मानसिक संतुलन बनाये रखकर उस मुकाम पर पहुंच जाती है, जहां कज्जा वर्ग भी आसानी से घुसपैठ नहीं कर पाता।

अल्मा के चरित्र में जहाँ कोमलता है वहीं दृढता भी। इसी कारण वह अन्य पात्रों की अपेक्षा ज्यादा प्रभावित करती हैं उसके चरित्र की अन्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं:–

१. व्यवहार कुशल–

अल्मा व्यवहार कुशल युवती है। राणा पहली बार उसके घर आता तो वह उसे अपने मधुर व्यवहार से अपना प्रेमी बना लेती है। इसी प्रकार जब वह सूरजभान की कैद में थी, तब भी अपने कुशल व्यवहार से अपने रक्षक धीरज व नत्थू काका को भी अपनी हमदर्दी में शामिल कर लेती है। अंततः वह प्रदेश के

समाज कल्याण मंत्री श्रीराम शास्त्री को अपने सुन्दरतम व्यवहार से, उनका हृदय परिवर्तन कर अपना बना लेती है।

२. गृहकार्य दक्ष -

अल्मा गृहकार्यो में दक्ष युवती है। वह कम उम्र में ही माँ के न होने पर समस्त गृह कार्यो में कुशल हो गयी थी। पिता राम सिंह की इकलौती संतान होने के कारण उसे ही घर के समस्त कार्यो को निपटाना होता था, जिसे वह बड़ी कुशलतापूर्वक निपटाकर कर अपनी मौजमस्ती के लिये समय निकाल लेती थी। सूरजभान की कैद को उसने अपने कुशल हाथों से जीवंत घर बना दिया था, जिसे देख नत्थू काका व धीरज चकित रह गये थे। गृहकार्यो की दक्षता सेवा भावना और बुद्धिमत्ता के कारण ही वह शास्त्री जी की प्रिय बन सकी।

३. पढ़ी-लिखी

अल्मा कबूतरा जाति की होने के बाद भी पढ़ी लिखी युवती थी। उसके पिता राम सिंह ने अपनी जाति के नियमों के विरूद्ध उसे पढ़ा लिखाकर कज्जा वर्ग के समकक्ष ला खड़ा किया था। मंत्री शास्त्री जी भी उसकी पढ़ाई लिखाई व बुद्धि को देखकर उसे अपना पी.ए. बना लेते है और उसी के मार्फत अंग्रेजी सीखते और भाषणों की तैयारी करते हैं।

४. चतुर - बुद्धिमान

अल्मा चतुर व बुद्धिमान युवती है। वह अपनी चतुरता और बुद्धिमत्ता पूर्ण बातों से राणा व धीरज को अपना बना लेती है। वहीं मंत्री शास्त्री जी भी उसकी बुद्धिमत्ता से प्रभावित हुये बगैर नहीं रहते। वह समय समय पर चतुरता व बुद्धि से काम लेकर अपने स्त्री जीवन को बचाती रहती है।

५. साहसी-वीर

अल्मा साहसी व वीर युवती है। वह कठिन से कठिन घड़ी का अकेले रहकर डटकर सामना करती है और परिस्थिति को परास्त कर देती है। राणा के छोड़कर चले जाने पर, पिता के मार दिये जाने पर सूरजभान द्वारा बलात्कार

किये जाने पर सतोले द्वारा नग्न किये जाने जैसी विकट परिस्थितियों में वह अपना साहस न खोकर, उसे बनाये रखती है और वीरता का परिचय देते हुये वह अंततः अपना मुकाम हासिल करती है।

६. माननी युवती -

अल्मा स्वाभिमानी स्त्री है। वह हर हाल में अपना स्वाभिमान नहीं खोती है। इसी कारण पुरूष वर्ग उसके सम्मुख झुकता नजर आता है। युवावस्था में जहाँ वह अपने प्रेम के चलते राणा से मान रखती है। वहीं परिस्थिति के चलते वह धीरज और शास्त्री जी से भी मान करती हुयी दिखलायी देती है और पुरूष उसे मनाता हुआ हमारे समक्ष आता है। यह उसके चरित्र की विशेष विशेषता है।

७. समर्पिता -

अल्मा समर्पिता युवती है। वह जहाँ भी और जिसके पास भी रहती है, पूर्ण समर्पित रूप में रहती है। जब वह राणा के करीब थी, तो वह उसके प्रेम के प्रति पूर्ण समर्पित थी और जब वह सूरजभान की कैद में थी, तो वह अपने कार्य व धीरज और नत्थू काका के प्रति कर्त्तव्य के प्रति समर्पित थी और अंततः वह मंत्री शास्त्री के प्रति पूर्णतया समर्पित रूप में हमारे समक्ष आती है। वैसे भी समर्पण का दूसरा नाम नारी है और अल्मा कबूतरी में अनेकानेक खामियां होने के पश्चात भी वह हमारे सामने आदर्श नारी के रूप में आती है।

८. परित्यक्ता-

अल्मा परित्यक्ता नवयुवती है। जहाँ राणा उसके पिता की असलियत जान उसे त्याग देता है, वहीं समाज के बांशिदें उसका शारीरिक भोग कर उसे त्याग देते है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वह एक परित्यक्ता रूप में भी हमारे सामने आती है।

९. समाज के शोषण का शिकार-

अल्मा शुरू से लेकर अंत तक हमारे समक्ष समाज की शोषिता के रूप में आती है। समाज का कज्जावर्ग उसे हमेशा सताता रहता है। दुर्जन, सूरजभान,

परसराम, नत्थू, धीरज, सतोले, उसकी पत्नी आदि उसका शोषण करते हैं। यहाँ तक की उसका मंगेतर, प्रेमी राणा भी उससे शारीरिक संबंध बनाने के बाद भी उससे प्रेम न रख सका और परिस्थिति से घबरा कर उसे त्याग कर चला जाता है, जो एक प्रकार का शोषण ही है।

१०. प्रेमिका-

अल्मा पाठक के सामने अनेक व्यक्तियों की प्रेमिका बनकर सामने आती है। सर्वप्रथम वह अपनी ही जाति के राणा से प्रेम करती है फिर वह धीरज के व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाती है। धीरज उसे मन ही मन प्यार करने लगते हैं। जिसे वे कभी कभार अपनी क्रियाओं से जाहिर कर देते हैं। राणा का प्रेम तो खुल्लम खुल्ला था। समाज कल्याण मंत्री शास्त्री जी भी उसके प्रेम में कैद हो उसे अपनी प्रेमिका बना लेते हैं।

११. मृत पति को मुखाग्नि देने वाली-

अल्मा हमारे समक्ष एक 'बोल्ड' युवती के रूप में आती है। वह श्रीराम शास्त्री की मौत पर समस्त सामाजिक रीति रिवाजों व नियम कानूनों को तोड़ स्त्री होने के बावजूद उन्हें समाज के समक्ष मुखाग्नि देती है। उसका यह कृत समाज का नवीनतम् कृत्य मान 'इश्यू' बना दिया जाता है।

१२. मंत्री पद की दावेदार -

उपन्यास के अंत में अल्मा पाठक के समक्ष बबीना विधानसभा क्षेत्र से समाज कल्याण मंत्री के पद के दावेदार के रूप में आती है। एक साधारण, शोषित और कबूतरा जैसी उपेक्षित जाति की होने के बावजूद 'अल्मा कबूतरी' आखिरकार 'अल्मा शास्त्री' बन समाज का उच्च मुकाम हासिल कर ही लेती है।

इस प्रकार हम देखते है एक अल्मा निम्न विशेषताओं से 'लैस' पाठक वर्ग को अभिभूत भी करती है और पाठक वर्ग से अपने प्रति सहानुभूति भी प्राप्त करती है। वह यदि हंसमुख है तो परिस्थिति के अनुसार क्रोधी और विरोधी भी। उसके चेहरे की कोमलता, वर्णता, मधुरता, सुन्दरता से जहाँ एक ओर उपन्यास

का पुरूष वर्ग अभिभूत रहता है वहीं पाठक वर्ग भी लेकिन साथ ही उसकी दृढ़ता, चतुरता, कठोरता, गम्भीरता से सतर्क भी। शायद वर्तमान समय में स्त्री जीवन की यह मांग भी है।

६. 'अगनपाखी' की 'भुवनमोहिनी'

यह उपन्यास मैत्रेयी जी के प्रथम उपन्यास 'स्मृतिदंश' का पुनर्लेखन है, जो सन् 2001 में वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसमें मैत्रेयी जी ने भुवनमोहिनी के नाम से एक ऐसी लड़की की कथा को पिरोया है, जो सदियों से रूप बदल–बदल कर हमारे समक्ष आती है और हमें सोचने पर मजबूर करती है।

बुन्देलखण्ड के ग्रामीण क्षेत्र शीतलगढ़ी और बरूआसागर को आधार बना कर लिखा गया यह उपन्यास भुवन जैसा साधारण ग्रामीण बाला के साहसिक कार्यो का लेखा–जोखा है। भुंवन, एक ऐसी लड़की है जो ग्रामीण परिवेश व अभाव में जीवन जीने के बाद भी नवीन परिपाटी में चलने की हिम्मत रखती है और उन समस्त रूढ़ियों–उक्तियों का खण्डन करती है, जो समाज ने खासकर पुरूष समाज ने अपने स्वार्थ हेतु बना ली हैं। जहाँ वह रीति को तोड़ अपने भतीजे से प्रेम कर बैठती है, वहीं कुंबर विजय सिंह से विवाह के पश्चात् भी रीति परम्पराओं से लड़ती रहती है। वह एक जागरूक व सामंती दाँव पेंच की शिकार युवती है। उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषतायें है :–

१. चतुर सुजान–

भुवन चतुर सुजान बालिका है। वह अपनी चतुरता के बल पर ही अपने हम उम्र भतीजों चन्दर बिरजू व लल्लू को परास्त कर देती है। वहीं वह बाग के माली मंगल चाचा से भी चतुरतापूर्ण बातें कर बगीचे के आम तोड़ती है। वहीं वह प्रसंगवश अनेकानेक अर्थ पूर्ण कहानियाँ सुना उसका अर्थ समझाती है। तो कहीं अपनी ही मां को तर्क में परास्त कर देती है। उसकी ऐसी ही बातों को सुन चन्दर व उसके पिता उसे जादूगरनी आदि कहा करते हैं।

२. प्रसन्नचित-

भुवन एक प्रसन्नचित युवती है, वह हर परिस्थिति और समय में प्रसन्न रहती है और अपने क्रियाकलापों से सभी को प्रसन्न किये रहती है। उसके इसी प्रसन्नतापूर्ण व्यवहार से आकर्षित हो चन्दर उससे प्रेम करने लगता है। विवाह के पश्चात् भी विषम परिस्थितियों का सामना करते हुये भी वह सहज व प्रसन्न रहने का प्रयास करती है, चूंकि उसके मायूस होने पर सभी को चिन्ता लगने लगती है कि वह तो ऐसी न थी।

३. निडर व साहसी-

भुवन निडर व साहसी है। वह किसी से नहीं डरती। न समाज से न परिवार से। बचपन से वह जहाँ बड़ी निडरता के साथ बगीचे से आम चुराती थी और समाज की परवाह किये बगैर मेहतर आदि के घर खाना खा लेती थी वहीं विवाह पश्चात् भी अन्याय को न सहन करते हुये अपनी सास–जेठानी व जेठ को अपनी निडरता का साहस दिखलाती है। वह हमेशा 'लीक' से हटकर चलने वाली लड़की है।

४. जिज्ञासु व चंचल-

भुवन बेहद चंचल व जिज्ञासु प्रवृत्ति की बालिका है। इसी के चलते वह अनेक चंचलतापूर्ण कार्य कर अपने को मुसीबत में डालती रहती और डाँट खाती है। वह हर चीज का जवाब ढूँढ लेना चाहती है और अपने भतीजे चन्दर व माँ से अनेकानेक प्रश्न करती रहती है और जब तक उसे सही जबाव नहीं मिल जाये, वह बार–बार प्रश्न करती रहती है और अपने मन मुताबिक उसका सटीक उत्तर खोज निकालती है। वह पाठशाला में मास्टरों से भी अनेकानेक प्रश्न कर उन्हें हलकान किये रहती थी।

५. दुस्साहसी अथवा परम्परा को तोड़ने वाली-

भुवन एक दुस्साहसिक कार्यो को अंजाम देने वाली युवती है। वह घिसे–पिटे रीति रिवाजों को नहीं मानती और उन्हें तोड़ने में जरा भी नहीं हिचकती। इसके चलते वह 'पनका मेहतरानी' को भी मानव–मानव का दर्जा दे, उसके यहाँ भोजन करती व अपने भतीजों को करवाती है, तो वही अपने रिश्ते के भतीजे चन्दर से प्रेम कर उससे दैहिक रिश्ता कायम करती है। दोनों ही स्थितियाँ समाज व परिवार के लिए जहर सा काम करती हैं और असहनीय हैं। इसके लिए उसे सजा दी जाती है। किन्तु भुवन का रवैया नहीं बदलता और अपने पति की मृत्यु के पश्चात् सती अनुष्ठान से पहले वह एक बार फिर समाज को धता बता अपने प्रेमी चन्दर के साथ भाग कर मुक्त हो जाती है।

६. ज्ञानी-ध्यानी-

भुवन ज्ञानी ध्यानी युवती है। उसे अनेकानेक प्रसंग, उक्तियाँ व कहानियाँ जबानी याद रहती हैं, जिसे वह ठीक समय पर प्रयोग कर सामने वाले को चित्त कर अपना काम निकाल लिया करती हैं। वह जगत की व्यवहारिक बातों को ही महत्व देती है। वह वास्तविक ध्याता है। वह रोज पूजा अर्चना हेतु मंदिर जाती है, इसलिए नहीं कि वह मूर्ति पूजा में विश्वास रखती है, बल्कि इसलिए कि मंदिर जा, खुली हवा पा लोग से बातचीत कर, बाहरी जगत देख, वह एक सुकून का अनुभव करती है और लोगों व पुजारी को अपनी व ईश्वर की वास्तविक स्थिति से परिचय कराती है।

७. प्रेम की भूखी-

भुवन एक ऐसी युवती है जिसे लोग चाहते हुये भी उसके प्रति प्रेम प्रदर्शित नहीं कर पाते। माँ, जो उसे लाड़–दुलार दिखा सिर पर चढ़ाना नहीं चाहती वहीं बहन समाज व पति में बंधी, उसे जबरन खोखले व थोथे संदेश दिया करती है। दोनों स्त्रियाँ (माँ व बहन) की स्थिति एक प्राचीन भारतीय स्त्री की स्थिति से अलग नहीं, जो चाहती कुछ और करती कुछ हैं। वहीं चन्दर भुवन से बहुत प्रेम करता है, लेकिन न तो वह यह कह पाता है और न ही दिखला पाता

है। भुवन अपने पागल पति कुंवर विजय सिंह से हमेशा प्रेम को तरसती रही, किन्तु वे बिना प्रणय के ही दुनिया से बिदा हो गये। इस प्रकार वह सदैव प्रेम के लिये तरसती रही।

८. विवाह पश्चात् लाचार व बेबस-

विवाह के पश्चात भुवन भी एक सामंती परिवार के रीति रिवाजों में बंध दम तोड़ने लगती है। वह आजाद पंक्षी की तरह उड़ना चाहती है। लेकिन बड़े घर के बड़े नियम वह तोड़ नहीं पाती और मजबूरन उसे अपने पागल पति की तीमारदारी करने पड़ती है, कभी-कभी वह झुंझला उठती है, पर जल्दी ही संभल जाती है। परिस्थिति ने उसे लाचार व बेबस बना दिया है। वह अपने जेठ के सामने अन्याय का मुकाबला नहीं कर पाती और चोरी छिपे भागने का फैसला लेती है।

निष्कर्ष – इस प्रकार हम देखते है कि भुवन में अनेकानेक विशेषतायें होने पर भी वह हमारे सामने मुख्य रूप से एक निडर व साहसी रूप में सामने आती है और उस साहस का परिचय उपन्यास के प्रथम गद्य खण्ड से ही मिल जाता है। इन चारित्रिक विशेषताओं के साथ-साथ वह एक अच्छी दोस्त, कुशल पत्नी, बहू, माँ-बहन से प्रेम करने वाली, जातपात को न मानने वाली, एक मनमोहनी युवती है।

७. 'विजन' की 'डा० नेहा'

यह मैत्रेयी जी का अब तक का सर्वथा प्रथक उपन्यास है जो सन् 2002 में वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। यह उपन्यास मैत्रेयी जी के सम्बन्ध में उस धारणा को तोड़ता है जिसमें उन्हें ग्राम्य जीवन की गंवार कथाकार कहा गया है और शायद इस "कलंक' (मैत्रेयी जी के लिये गर्व की बात) को धोने के लिए मैत्रेयी जी ने चुनौती रूप में इस उपन्यास का सृजन किया। बकौल, "विजन" एक सर्वथा प्रथक उपन्यास है इस बात को मैं भी स्वीकारती हूँ। यह मेरे आस पास की घटना का चित्रण है। वास्तव में डॉ0 नेहा (उपन्यास की नायिका) का चरित्र मेरी बेटी 'मोहिता' की खास मित्र का जीवन उद्धरण है।"

मैत्रेयी जी के अन्य उपन्यासों की भांति इसकी नायिका न तो गंवार है न अनपढ़। पढ़ी–लिखी और आधुनिक सोच विचार की एक डॉक्टर युवती है, डॉ0 नेहा। इस उपन्यास में एक और चरित्र हमें बेहद प्रभावित करता है वह है, डॉ0 आभा। हाँलाकि दोनों के चरित्र में काफी हद तक समानतायें हैं, किन्तु फिर भी डॉ0 नेहा ही इस उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र ठहरती है। अतः हम यहाँ उसके चरित्र का विश्लेषण करेंगे।

१. योग्य व बुद्धिमान-

डॉ0 नेहा एक योग्य व बुद्धिमान युवती है, इसी से जहाँ वह मेडिकल परीक्षा आसानी से पास कर लेती है, वहीं वह मेडीकल सम्बन्धी समस्त क्रियाओं को योग्यतापूर्वक हासिल कर शीघ्र ही सीनियर रेजीडेंसी में शामिल हो जाती है। उसकी योग्यता के कारण उसे अनेक पुरस्कारों से भी नवाज़ा जाता है।

२. स्पष्टवादी-

नेहा स्पष्टवादी युवती है वह अपनी बातों को गोलमाल न करके स्पष्ट रूप से सबके सामने रखती है फिर चाहे वे उसके माँ बाप हो या फिर उसके पति अजय। शादी के सम्बन्ध में जहाँ वह स्पष्ट इंकार कर देती है वहाँ वह माँ को इसका स्पष्ट कारण भी बतला देती है। अजय से भी वह प्रोफेशनल व व्यक्तिगत दोनो मसलों पर स्पष्ट वार्ता करती हैं।

३. कुशल डॉक्टर-

डॉ० नेहा एक कुशल व प्रशिक्षित डॉक्टर हैं। उसकी कुशलता इसी से जाहिर होती है कि आँख के जटिलतम ` ऑपरेशन में सीनियर डॉक्टर्स भी उसकी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। चूंकि वह जल्द से जल्द नवीनतम् व आधुनिक ऑपरेशन पद्धतियों को गृहण कर अपना लेती है।

४. आदर्श बहू-

डॉ० नेहा जहाँ एक अच्छी डॉक्टर है वहीं वह एक आदर्श बहू भी है। ससुराल आने पर उसकी हर सम्भव कोशिश होती है कि वह हरहाल में ससुराली जनों को खुश रखे। इस हेतु वह हर सम्भव प्रयत्न करती है। जहाँ वह ससुर की हर बात, चाहे वह सही हो या गलत, मान लेती है वहीं अपने प्रति किये गये उपेक्षापूर्ण बर्ताव को भी सहनकर कुछ नहीं कहती। यह उसकी सहनशीलता का भी प्रमाण है।

५. अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त-

डा० नेहा के भीतर सदैव एक प्रकार का द्वंद्व चलता रहता है। वह प्रत्यक्ष रूप से सबके सामने सही और गलत का विरोध नहीं कर पाती और अन्दर ही अन्दर उसके मन में विरोधी रूपी ज्वाला उबलता रहता है। कभी कभी वह स्वयं अपने निर्णय नहीं ले पाती और अन्तर्द्वन्द्व से आक्रान्त रहती है।

६. आज्ञाकारिणी-

डॉ० नेहा एक आज्ञाकारी युवती है, जहाँ वह सीधे साधे व्यक्तित्व की मालकिन है, वहीं वह अपने से बड़े व्यक्तियों को आदर कर उनकी आज्ञा का पालन करती है। आभादी, मम्मी–पापा तथा डा० आर.पी.शरण (ससुर) की आज्ञा वह कभी टालती नहीं।

७. भविष्य के प्रति चिंतित-

नेहा अपने भविष्य के प्रति चिंतित हैं क्योंकि ट्रेनिंग के बीच ही उसकी शादी डॉ0 अजय से हो जाती है उसके ससुराल वाले चाहते हैं, कि वह ससुराल में ही रहकर घर परिवार की जिम्मेदारियाँ संभाले। जबकि नेहा का एक सपना है कि वह एक बड़ी व सफल डॉक्टर बन लोगों को एक रोशनी प्रदान कर सके। ससुराल के प्रति अपने कर्त्तव्य और अपने डॉक्टरी पेशे को लेकर वह सदैव भविष्य के प्रति चिंतित रहती है।

८. सत्यवादी-

डॉ0 नेहा सत्यवादी महिला है। वह हर संभव सत्य ही बोलती है। वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थ या किसी के लाभार्थ झूठ का सहारा नही लेती। वह अपने ससुर व पति से भी स्पष्ट व सत्य बातें कहती है यह जानते हुये भी कि यह बातें उन्हें कदापि अच्छी नहीं लगेगी।

९. सच्ची दोस्त-

डॉ0 नेहा एक सच्ची दोस्त है। जहाँ वह डा0 आभादी की बेहद करीबी व सच्ची दोस्त है वहीं वह अपने साथ कर रहे अप्रेंटिस के दोस्तों के सुख दुख में भी सदैव साथ रहती है। इसी के चलते वह डॉ0 आलोक को पसंद भी करने लगती है और उसके प्रति चिंतित रहती है। वह समय समय पर अपने मित्रों का भरपूर सहयोग भी किया करती है। वह अपने साथ साथ आलोक, गौरव, आकाश आदि के प्रति भी चिंतित रहती है।

१०. शोषण का शिकार-

डॉ0 नेहा नाम की स्त्री डॉक्टरी पेशे के शोषण की शिकार है। वह योग्य होते हुये भी अयोग्यता की श्रेणी में रख दरकिनार कर दी जाती है। यदि वह बुद्धिमत्ता व योग्यता से काम लेती है तो सामाजिक प्रताड़नाओं की शिकार होती है। जहाँ ससुराल में वह अपने ससुर से पेशे के प्रति उपेक्षा पाती है और पति

भी पिता की हाँ मे हाँ भरते नजर आते हैं, वही मायके में रूढ़ि रिवाजों में बंधे पिता सदैव उसे ससुराल के प्रति झुकने का प्रवचन देकर उसे मानसिक प्रताड़ित करते रहते हैं।

११. आशावादी व धैर्यवान-

डॉ0 नेहा चहुँ ओर से विषम परिस्थितियों से घिरी होने के बावजूद आशावान व धैर्यवान युवती है। उसे ऐसा लगता है कि एक न एक दिन अवश्य ऐसा आयेगा जब उसकी योग्यता स्वीकार कर लोग उसे एक बड़ी व सफल डॉक्टर मानेगें। इसी से वह विषम व कटु परिस्थितियों में भी धैर्य धारण किये रहती है।

१२. पुरूष अहं व दंभ की शिकार-

डॉ0 नेहा इस पुरूष सत्तात्मक समाज में पुरूष के अहं व दंभ की शिकार युवती है। जहाँ डॉक्टरी पेशे में हॉस्पिटल में उसे पुरूष डॉक्टर के मुकाबले कमतर समझा जाता है। वहाँ ससुराल में पति व ससुर अपने अहं व दंभ के चलते उसे कभी भी अपने से आगे नहीं आने देते और हर स्थिति में पीछे ही रखते हैं चाहे वह ऑपरेशन का मामला हो, नयी मशीन लाने या अन्य मामलों में बातचीत का। वह अपने जीवन में पुरूषों का स्त्रियों के प्रति उपेक्षित रवैया देख ना उम्मीद हो चली जाती है।

इसके अतिरिक्त डॉ0 नेहा शान्ति प्रिय, लज्जावान, भावनामयी, अन्तर्मुखी, दुखी आदि चारित्रिक विशेषताओं से लैस है। वह एक अच्छी बेटी, बहू, मित्र व पत्नी होने के बावजूद मानसिक शोषण की शिकार बनी रहती है। किन्तु फिर भी वह विषम परिस्थितियों का सामनाकर वह इस स्त्री समाज में स्त्री शक्ति के नये आयाम स्थापित करती है।

८. 'कस्तूरी कुंडल बसै' की 'कस्तूरी' व 'मैत्रेयी पुष्पा'

यह मैत्रेयी जी का आत्मकथात्मक उपन्यास है, यह सन् 2002 में राजकमल, नई दिल्ली की ओर से प्रकाशित हुआ था। इसमें मैत्रेयी ने स्वयं अपनी व अपनी माँ की वास्तविक जिंदगी को विभिन्न कथाओं के माध्यम से लड़ी दर लड़ी पिरोया है।

"मैत्रेयी इस आत्मकथा में भगवान दास माहौर, प्रो0 दरबारी जैसे अपनी अनेक गुरूओ का स्मरण करती है पर जो गुरू गोविन्द की तरह उनके तन–मन–प्राण और लेखनी पर छाया हुआ है वह है कबीर। अपनी पूरी अक्खड़ता और फक्कड़ता के साथ। मैत्रेयी भी इस आत्मकथा में किसी की परवाह नहीं करती, न लोक की, न वेद की, न गुरू की, न शास्त्र की। यदि मैत्रेयी की आत्मकथा का डी.एन.ए. टेस्ट करवाया जाये तो मुझे पूरा विश्वास है कि उसमें कबीर के गुणसूत्र निकलेंगे।"[18]

इसी से मैत्रेयी ने उनसे प्रभावित हो जहाँ अपने उपन्यास का नाम 'कस्तूरी कुंडल बसै" रखा, वहीं उसके अध्याय के नाम भी कबीर की पंक्तियों से प्रभावित है और मैत्रेयी के आदर्श भी। इस उपन्यास की नायिका कस्तूरी है और मैत्रेयी भी। इसी से हम दोनों की चारित्रिक विशेषताओं का एक साथ अध्ययन व विशलेषण करेंगे।

अ. कस्तूरी देवी

1. कस्तूरी देवी बचपन में एक साहसी बालिका थीं। तभी तो उन्होंने गांव की परम्परा के विरूद्ध शादी न करने का अपना फैसला माँ को सुना दिया था।
2. कस्तूरी देवी अपने दोनों भाईयों और माँ के शोषण की शिकार कम उम्र में ही चंद रूपयों की खातिर एक उम्र दराज व्यक्ति को ब्याह दी जाती है।
3. कस्तूरी देवी ने विषम परिस्थितियों का सामना करते हुये व शराबी और अय्यास पति को झेलते हुये एक पुत्री को जन्म दिया। जिसे गांव वाले पुष्पा व पिता मैत्रेयी कहते थे।
4. कस्तूरी देवी जल्द ही शराबी पति के जहरीली शराब पीने से वैधव्य का शिकार हो जाती है और अठारह माह की बच्ची के लालन पालन की समस्या से जूझती हैं।
5. वह ग्रामीण स्त्रियों के कोप भाजन का शिकार होते हुये भी पढ़ाई करने का निश्चय लेती है और बूढ़े ससुर व दुधमुंही बच्ची की जिम्मेदारियाँ निभाते हुये अपनी पढ़ाई का विषम मार्ग तय करती है।

---

[18] 'साक्षात्कार'–अगसत 2003 (सनका खाये समय और साहित्य में हलचल मचाती एक आत्मकथा)–कान्ति कुमार जैन

6. वह पढ़ाई कर अपने दम पर, योग्यता पर ग्रामीण समाज संयोजिका का पद प्राप्त करती और कुशलता से अपने कार्यों को अंजाम देती हैं।
7. वे एक कुशल माँ के कर्त्तव्य को नहीं भूलती और मैत्रेयी को हर सम्भव अच्छी से अच्छी शिक्षा दिलाने हेतु उसे विभिन्न स्थानों पर अपने परिचितों के यहाँ भेजती हैं और कॉलेजी शिक्षा के लिए भी वे उसे हॉस्टल में रह पढ़ाई की अनुमति देती हैं।
8. कस्तूरी देवी बेहद नवीन विचार धारा की स्त्री थीं। वे समाज के दबाव के चलने के बावजूद परम्पराओं के विरूद्ध जाकर बेटी मैत्रेयी को 'बोल्ड' बनाती है।
9. वे 'विवाह' और 'दहेज' जैसी प्रथा के सर्वथा विरूद्ध हैं। वे विवाह को स्त्री की कैद मानती है और दहेज को दानव। इसी से जहाँ वे मैत्रेयी के विवाह के विरूद्ध है वहीं मैत्रेयी की जिद के चलते विवाह को तो राजी होती है किन्तु दहेज के लिये कदापि नहीं।
10. वे प्राचीन व रूढ़िगत परम्पराओं के विरूद्ध है और इसी से वे मैत्रेयी के विवाह के अवसर पर उन समस्त लोकाचारों से विमुख रहती हैं जो भारतीय हिन्दू समाज में आवश्यक माने जाते हैं।
11. कस्तूरी देवी समाज की एक भुक्त भोगी महिला है। उन्होंने अपने जीवन में अनेक कष्ट उठायें हैं इसी से वे नहीं चाहती कि मैत्रेयी भी उन कष्टों को झेले या वहन करे।
12. वे एक जागरूक व कुशल समाज सेविका हैं। वे स्त्री के हक के प्रति निरन्तर राजनैतिक हलकों से बातचीत कर पुरूष अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाती हैं। वे स्त्री के हक की माँग आजीवन करती रहती हैं।
13. कस्तूरी देवी स्त्री के 'सेक्सचुअल लाइफ' और शारीरिक प्रेम के विरूद्ध हैं। उनका मानना है कि स्त्री इन सबमें बंधकर अपना मूल अस्तित्व व उद्देश्य खो बैठती है।
14. कस्तूरी देवी को एक आदर्श संस्थापक की संज्ञा दी जा सकती है, क्योंकि वे स्त्रियों के उत्थान के लिए आजीवन प्रयत्नशील व संघर्षशील बनी रहीं।
15. कस्तूरी देवी एक कुशल माँ है वे निरन्तर बेटी मैत्रेयी को जीवन की सच्चाईयों से रूबरू करा आदर्श का पाठ पढ़ाया करती है और उसे पढ़ाई का महत्व समझाती हैं।

ब. मैत्रेयी पुष्पा

1. मैत्रेयी बचपन से ही जिद्दी स्वभाव की बालिका थी। वह यदि कुछ ठान लेती है तो उसे करके रहती है।
2. मैत्रेयी बेहद शरारती और स्वच्छन्द बालिका थी। जहाँ वह अपनी हरकतों से माँ को परेशान किया करती थी, वहीं हम उम्र दोस्तों के संग चंचलता पूर्ण खेलों व कार्यो को किया करती थी।
3. मैत्रेयी एक अच्छी दोस्त या मित्र थी। जहाँ वह बचपन में अपने दोस्त एदल्ला के दुख–दर्द की साथी थी वहीं बड़े होने पर भी वह अपने दोस्तों की सच्ची दोस्त थी।
4. मैत्रेयी सजग व बुद्धिमान है वह अपने आस पास के वातावरण के प्रति बेहद सजग रहती है। वह बुद्धमती युवती है। वह अपनी बुद्धिमत्ता व सजगता के बल पर समाज के बड़े–बड़े व्यक्तियों को धूल चटाती है।
5. मैत्रेयी गुणी युवती है, वह जहाँ स्कूल के कार्यक्रमों में भाग लिया करती है, वहीं बड़ी होकर अपनी कविताओं, लेखों के माध्यम से आस–पड़ोसियों को सामाजिक वास्तविकता से रूबरू कराती है।
6. मैत्रेयी पुष्पा नवीन विचारधारा की लड़की है इसी से वह आधुनिक लड़कियों की तरह रहना चाहती है। खुले आसमान में विचरण करना चाहती है, इसी से उसकी माँ व उसमें विरोधाभास बना रहता है।
7. मैत्रेयी पुरानी व रूढ़िगत परम्पराओं को न मानने वाली युवती है। इसी से वह निम्न जाति की स्त्रियों को भी अपने समकक्ष मानती है और उन्हें आदर व सम्मान सूचक शब्दों से सम्बोधित करती है।
8. मैत्रेयी के बचपन से ही पढ़ाई लिखायी में विशेष रूचि थी। वह तो एक भोली भाली साधारण युवती थी। जिसके साधारण लड़कियों की भांति साधारण सपने थे, शादी के, पति के, अपने बच्चों के।
9. मैत्रेयी बचपन से ही इस पुरूष सत्तात्मक समाज के द्वारा यौन शोषण की शिकार होती रही है। इस उपन्यास में अनेकानेक ऐसे सच्चे प्रसंग आये है

जिसमें मैत्रेयी ने स्वीकारा है कि हर उम्र व अवस्था में वह किस प्रकार समाज के इन नुमाइंदों से शारीरिक शोषण का शिकार होती रही।

10. मैत्रेयी बेहद भावुक युवती है। वह किसी का प्यार पा जल्दी ही भावुक हो उठती है। इसी के चलते वह अपने प्रति आकर्षित व भावुक युवकों राघव, जानकी रमण, बाजबहादुर, शिवदयाल, नंदकिशोर, चित्रसिंह, मदन मानव आदि युवकों से प्रेम करने लगती है। वह अपनी माँ से भी प्रेम करती है लेकिन उनके कठोर व्यक्तित्व के चलते वह उसे व्यक्त नहीं कर पाती।
11. मैत्रेयी की माँ कस्तूरी जहां मैत्रेयी को उच्च पद पर देखना चाहती है वहीं मैत्रेयी की नौकरी या नौकरीपेशा जिंदगी में कोई रूचि नहीं है।
12. मैत्रेयी 'बोल्ड' विचारों की युवती है। इसी कारण जहाँ वह अपनी माँ (जो ग्रामीण समाज की आदर्श समाज सेविका है) से स्वयं अपनी शादी की बात करती है वहीं वह कॉलेज में अपने पुरूष मित्रों से मित्रता को गलत नहीं मानती।
13. मैत्रेयी दिखावटी दुनिया से परे युवती है। इसी से शादी बाद वह पति की दिखावटी दुनिया से आजिज आ उससे बहस करने लगती है और 'एडजेस्टमेंट' में दिक्कत महसूस करती है। वहीं पति एक उच्च घराने के डाक्टर होने के कारण शानों–शौकत की जिंदगी पंसद करते हैं।
14. मैत्रेयी पुरूष व समाज के प्रति बनी बनायी मान्यताओं को तोड़ नवीन धारणा व परिभाषा रचती है। इसी कारण वह शादी की प्रथम रात्रि सामाजिक परम्परा के विरूद्ध अपने पति को अपनी बांहों में खींच उसे चरमसुख का अनुभव कराती है, जो किसी साधारण भारतीय लड़की के वश की बात नहीं।

इस प्रकार हम देखतें हैं कि मैत्रेयी एक साधारण युवती होते हुये भी अपने उपरोक्त गुणों व विशेषताओं के कारण असाधारण है। वे अपनी हर गतिविधि से पाठक को प्रभावित करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कस्तूरी देवी प्राचीन समय की महिला होकर भी बेहद आधुनिक विचारों वाली माँ हैं। इस प्रकार हम पाते हैं कि 'कस्तूरी कुंडल बसै' न सिर्फ मैत्रेयी का उपन्यास है बल्कि कस्तूरी देवी का भी उपन्यास है। दोनो ही पाठक के समक्ष प्रबलतम् रूप में हमारे सामने आती है और एक दूसरे से बढ़कर उपस्थिति दर्ज

कराती है। इस उपन्यास के सम्बन्ध में कान्तिकुमार जैन का कथन है कि – "कस्तूरी कुंडल बसै" नयी शादी करने वाली युवतियों के लिये वरदान है।

९. 'कही ईसुरी फाग' की 'रजऊ' और 'ऋतु'

महाकवि ईसुरी की फागों और उनके प्रेममय जीवन को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास कही ईश्वरी फाग अपने आप में अनोखा उपन्यास है जो साथ ही एक शोध छात्रा के मार्ग में आने वाली कठिनाईयों व दुश्वारियों को भी उजागर करता है। इसका प्रथम संस्करण राजकमल प्रकाश, नई दिल्ली से 2004 में प्रकशित हुआ था।

जैसा कि कहा जाता है कि 'लीक' से हटकर अर्थात समाज के बंधे बंधाये ढर्रे व नियम कानूनों से प्रथक चलने की जो कोशिश करता है, उसे चहुँ ओर से विरोध का सामना करना पड़ता है फिर वह चाहे जो क्षेत्र क्यों न हो। बस इसी प्रकार के विरोधों का सामना इस उपन्यास की नायिका रजऊ व ऋतु करती हैं, किन्तु बेहद साहसिक व सहज तरीके से वे इन परिस्थितियों व विरोधों का सामना करते हुये अपने जीवन पथ पर अग्रसर होती हैं।

जहाँ रजऊ एक प्राचीन पात्र है वहीं ऋतु वर्तमान समय की आधुनिक व पढ़ी लिखी पी.एच.डी. करने वाली शोध छात्रा। फिर भी दोनों के चरित्र की विशेषतायें लगभग समान है जो इस प्रकार है–

१. आकर्षक व्यक्तित्व-

जहाँ रजऊ अपने रूप सौन्दर्य के कारण आकर्षक व्यक्तित्व की स्वामिनी है, वहीं ऋतु अपने उच्च आदर्श व बोल्डनेस के कारण आकर्षित करती है। रजऊ के सौन्दर्य को देख जहाँ ईसुरी अपने होश हवास खो उसके प्रेम में लीन हो जाते है और अपनी समस्त फागें रजऊ के नाम कर देते हैं वहीं ऋतु के ऐसे व्यक्तित्व से प्रभावित एक उच्च, सम्पन्न और सत्तारूढ़ परिवारिक पृष्ठभूमि वाला युवक माधव उससे प्रेम करने लगता है और तमाम दबावों के बाद भी वह उससे अलग नहीं हो पाता।

२. सामाजिक परम्पराओं को न मानने वाली-

दोनो ही सामाजिक परम्पराओं को न मानने वाली स्त्रियाँ है, जहाँ रजऊ सामाजिक मान्यताओं को दरकिनार कर शादीशुदा होने के पश्चात भी ईसुरी से प्रेम कर बैठती है और सबके समक्ष स्वीकारात्मक रवैया अपनाती है वहीं ऋतु भी शोध नियमावली के विरूद्ध जा एक नवीन खोज कर महाकवि ईसुरी व रजऊ के वास्तविक जीवन का चित्रण करती है, साथ ही वह हर जाति, वर्ग के साथ सामाजिक भेदभाव मिटा अपनत्व का व्यवहार करती है।

३. प्रेमिकायें-

दोनों ही प्रेमिकायें हैं। रजऊ को ईसुरी जहाँ शिद्दत से प्रेम करते है वही रजऊ भी उनसे प्रेम के चलते तमाम सामाजिक व पारिवारिक उलाहनों को सहन करते हुये उनसे अपना प्रेम बनाये रखती है। वहीं ऋतु अपने सहपाठी माधव से प्रेम करती है, जो उसके हर कार्य में मद्द करता है और उसके कार्य की सराहना करता है। वह भी ऋतु से हार्दिक प्रेम करता है और उसकी खातिर विभिन्न विषम परिस्थितियों का सामना करता है।

४. साहसी व हिम्मती-

दोनों ही स्त्रियाँ बेहद साहस व हिम्मत का परिचय देते हुये जीवन की कठिनाइयों का सामना करती हैं। जहाँ रजऊ अपने साहस का परिचय देते हुये, विभिन्न विरोधों के बावजूद, अपने प्रेम की खातिर घर से गंगिया बेड़िनी के साथ भाग आती है और देशभक्त देशपत के दल में शामिल हो अनेक साहसिक कार्य करती है। वहीं ऋतु भी अनेक परिस्थितियों में साहस का परिचय दिखलाती हुयी अपने मुहिम पर आगे बढ़ती है और माधव के बीच बीच में छोड़कर चले जाने पर वह अकेले ही विभिन्न स्थानों पर जाकर शोध सम्बन्धी ज्ञान इकट्ठा करती है।

५. शरीर समर्पिता-

दोनों ही स्त्रियाँ प्रेम में शरीर को बाधक नहीं मानती और बेझिझक अपने अपने प्रेमियों को चुम्मा दिया व लिया करती हैं। जहाँ रजऊ समस्त समाज के

लोगो की कटुक्तियों के बावजूद प्रेमानन्द की कोठरी में जाकर ईसुरी के साथ बिना शर्म संकोच के साथ एक बिस्तर पर लेट जाती है वहीं ऋतु भी ओरछा भ्रमण के दिनों में माधव के साथ ही सोया करती थी और उठने पर दोनों एक दूसरे को प्यार भरा चुम्बन दिया करते थे। इस प्रकार वे दोनों ही तन–मन से समर्पिता प्रेमिकायें हैं।

६. सामाजिक शोषण की शिकार-

जहाँ रजऊ को ईसुरी से प्रेम के चलते पति व सास से प्रताड़ना मिलती रहती है वहीं उसे जेठ व समाज के लोग उसका मानसिक शोषण करते रहते हैं, जिसके बावजूद रजऊ हमारे समक्ष एक साहसिक स्त्री के रूप में सामने आती है। वही ऋतु को भी समाज के व्यक्ति जैसे– गाइड प्रवर पी.के. पाण्डेय, माइकेल जैक्शन टाइप युवक क्रूकट, माधव के मामा, पिता जी व स्वयं माधव भी उसके शोध विषय व उसके सम्बन्धित गतिविधियों पर हतोत्साहित टिप्पणियाँ कर मानसिक कष्ट देते हैं।

७. शोक संतप्त-

रजऊ जहाँ ईसुरी के माधोपुरा छोड़कर चले जाने से शोक संतप्त है और रह रहकर उसकी याद में अश्रु बहाया करती है। वहीं ऋतु माधव को छोड़कर अपने पिता या मामा के यहाँ चले जाने पर शोकाकुल हो जाती है। इस प्रकार हम देखते है एक प्राचीन पात्र रजऊ, जिस पर ऋतु नाम की लड़की पी.एच.डी. कर रही है, और वह (ऋतु) दोनों समयान्तराल होने पर भी अपने अपने प्रेम के चलते शोक संतप्त स्त्रियां हैं।

८. वीर व कुशल योद्धा-

रजऊ जब घर से भाग कर आने पर देशभक्त देशपत के दल में शामिल हो जाती है। वहाँ से वह अनेक कार्यो मे प्रवीण हो अन्ततः रानी लक्ष्मीबाई से प्रभावित हो, उनके पास चली जाती है और युद्ध के समय अंग्रेजो को रानी लक्ष्मीबाई का रूप धर विभिन्न तरीके से छकाती है और रानी को उनके मंजिल तक पहुँचाने का समय प्रदान करती हैं। अंत में वह वीरता से लड़ते हुये

वीरगति को प्राप्त होती है। देर तक अंग्रेजो से जूझते रहने से उसके कुशल योद्धा होने का परिचय मिलता है। वहीं ऋतु नामक युवती का इस तरह की वीरता व यौद्धिक कुशलता का पाठक को कोई परिचय नहीं मिलता किन्तु अनेक विषम परिस्थितियों का सामना कुशलता पूर्वक करने पर हम उसे वीर की संज्ञा दे सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनो पात्रों की स्थितियों, समय, देश, काल, वातावरण, में भरपूर अन्तर होने पर भी दोनों के चरित्र की विशेषतायें लगभग समान हैं, जिनका विश्लेषण हमने ऊपर की पंक्तियों में किया है। 'कही ईसुरी फाग' एक ऐसे प्यार की कहानी है जो व्यक्ति को बल देकर नवीन दिशायें दिखलाता है और प्यार को विस्तृतता प्रदान करता है।

ब. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास साहित्य में नारी के विविध रूप

विगत चार दशकों की अवधि में भारतीय जन जीवन ने विकास के कई चरण पूरे कर लिये है यह विकासमान प्रक्रिया एक ओर आर्थिक और धार्मिक क्षेत्र में गतिशील है तो दूसरी ओर सामाजिक ढ़ाँचे को काफी कुछ बदलने की दिशा में भी इसकी प्रवृत्ति उल्लेखनीय है। संयुक्त प्रथा परिवार का रूप परिवर्तन, संक्षिप्त परिवारों अथवा व्यक्तिगत परिवारों में हुआ और पति–पत्नी तथा उसके दो तीन बच्चों को लेकर ही सामान्य और सुखी परिवार की कल्पना की जाने लगी, परिणामतः पारिवारिक समस्याओं में यदि संयुक्त परिवारों की समस्याओं का बोलवाला न होकर नारी की विभिन्न समस्याओं का बोलबाला किया जाने लगा है।

नारी का कार्यक्षेत्र घर के अतिरिक्त बाहर भी बढ़ गया तथा वह एक गृहिणी, माँ अथवा बहन की परिधि से निकलकर स्वावलम्बन की दिशा में उन्मुख स्वतन्त्र व्यक्तित्व की पहचान कराने लगी। मध्यमवर्गीय नारी विशेष रूप से इस परिवर्तन से प्रभावित हुई। निम्नवर्ग की नारी इनकी तुलना में पहले भी स्वतन्त्र और स्वावलम्बी थी, हाँ उनकी चेतना का परिष्कार अवश्य ही विविध धरातलों पर देखने को मिलता है, जो परिवर्तन का ही परिणाम कहा जा सकता है। अब उनमें एक बौद्धिक तेजस्विता का स्वाभिमान घर करता परिलक्षित होता है।

प्रागैतिहासिक काल से ही स्त्रियों में पुरूष के आर्थिक कार्यों में किसी न किसी प्रकार का सहयोग अवश्य दिया जाता रहा है। युग परिर्वतन के साथ नारियों का कार्यक्षेत्र भी परिवर्तित हो गया। आर्थिक सुविधा की दृष्टि से समाज के पिछड़े वर्ग की स्त्रियाँ तो काफी समय से फैक्ट्रियों में श्रमिक के रूप में, घरेलू नौकरानियों के रूप में काम करती रही हैं। इसके साथ ही साथ मध्यवर्ग तथा उच्चवर्ग की स्त्रियाँ भी घर से बाहर आकर परिवार की आर्थिक दशा सुधारने अथवा स्वयं के व्यक्तित्व का विकास करने की दृष्टि में तेजी से कदम बढ़ा रही है। जब मध्यवर्ग की स्त्रियों ने सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक व राजनैतिक कारणों से नौकरी करना शुरू किया तब समाज उनके विविध रूपों से परिचित हुआ। आज नारी विभिन्न परिस्थितियों तथा अपनी आर्थिक और मानसिक आवश्यकता के लिये पुरानी मान्यताओं को दर किनार

करके विविध क्षेत्रों और आर्थिक संदर्भों से स्वयं को जोड़े हुये हैं। इसीलिये समाज में नारी के विविध रूप देखने को मिलते है।

मैत्रेयी पुष्पा जी ने अपने अपने उपन्यासों में नारी के विविध रूपों व स्वरूपों से पाठकों को परिचित कराया है। खास तौर से निम्न, मध्यम और बुन्देलखण्डीय जमीं पर रची बसी नारी के चित्रांकन के माध्यम से उनके उपन्यासों में चित्रित नारी के विविध रूपों का अध्ययन करने के लिये हम उसे परिवार और समाज के परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित विविध संदर्भों में देखेगें। हालांकि उन्होनें नारी को विभिन्न रूपों में दर्शाया है। फिर भी हम सर्वप्रथम नारी के पारस्परिक और कदाचित अनिवार्य रूप पारिवारिक रूप से नारी रूपों की चर्चा का आरम्भ करेंगे।

१. पारिवारिक रूप

मानव समाज का इतिहास परिवार का ही इतिहास है। मानव की आदिम सभ्यता से ही उसके परिप्रेक्ष्य में परिवार का अस्तित्व रहा है और किसी न किसी रूप में यह सांस्कृतिक विकास के सभी स्तरों पर पाया जाता है। परिवार को समाज की प्राथमिक इकाई कहा जा सकता है।

मानव सभ्यता के विकास के साथ ही पारिवारिक जीवन में परिवर्तन अधिक सम्भावी था। नई आवश्यकताओं, नई वैज्ञानिक सुविधाओं का प्रभाव सामाजिक सम्बन्धों पर भी पड़ा, आज परिवार में पुरानी परम्परायें परिवर्तित हो रही हैं। उपभोक्तावादी सभ्यता के कारण नारियाँ भी घर आंगन से बाहर निकलकर जीवन के उन क्षेत्रों में संघर्ष करती दिखाई पड़ रही है, जहाँ पूर्व युगों में मात्र पुरूषों का एकाधिकार था।

नारी की परिवार में महत्वपूर्ण भूमिका के कारण बाल विवाह कम होने लगे हैं, प्राचीन मूल्य व परम्परायें अति विघटित हुई हैं। स्त्रियाँ स्वाभिमान से जुड़ी हैं और किसी भी क्षेत्र में स्वयं को पुरूष से पीछे नहीं रहने देना चाहती हैं। किन्तु आधुनिक परिवर्तनों से परिवार को और उसके केन्द्र में नारी को लाभ ही हुआ है, किन्तु घाटा भी कम नहीं हुआ। परिवार में कुण्ठा, तलाक, बिखराब बढते जा रहे हैं। महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में पारिवारिक जीवन का चित्रांकन किया है। उसके उज्जवल पक्षों के साथ नारी जीवन की समस्यायें भी उजागर हुई हैं। नारी के पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में परिवर्तित हो रहे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा प्रमुख रूप से पारिवारिक समस्या

का जीवन्त प्रस्तुतीकरण किया गया है। पारिवारिक रूप के संदर्भ में नारी के विभिन्न रूप हो सकते हैं।

1. **पत्नी रूप में** :- किसी परिवार की कल्पना गृहिणी के बिना नहीं की जा सकती। चाहे संयुक्त परिवार हो या एकाकी परिवार, गृहिणी की उपस्थिति तो अनिवार्य है। सुव्यवस्थित, शान्त तथा संतुष्ट घरों में इस सुव्यवस्था का आधार गृहिणी को ही माना जाता है। कहा जाता है कि गृहिणी परिवार की आधारशिला होती है, गृहिणी सुखी तो घर सुखी। मैत्रेयी पुष्पा जी ने गृहिणी के विभिन्न रूपों को अपने उपन्यासों में दर्शाया है। कभी वह परिवेश और वातावरण के अनुसार अत्यन्त आधुनिक हो जाती है तो कभी ग्रामीण परिवेश के कारण भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत आदर्श नारी।

   मैत्रेयी पुष्पा की नारियाँ भारतीय ग्रामीण परिवेश का प्रतिनिधित्व करती हैं। नारी के सम्बन्ध में महर्षि रमण ने उसके औदार्य एवं औदात्य का समांकलन करते हुये कहा है कि –''पति के लिये चरित्र, संतान के लिए ममता, समाज के लिये शील, विश्व के लिये दया तथा जीव मात्र के लिये करूणा संजोने वाली प्रकृति का नाम नारी है।'' मैत्रेयी पुष्पा जी ने नारी की एक नवीन परिभाषा गढ़ी है। मैत्रेयी जी ने गृहिणी के दोनों रूपों को लिया है जहाँ एक ओर उसके अच्छे, उदार, पतिपरायण और पति का मुँह जोहने वाली स्त्रियों का चित्रण है, तो वहीं दूसरी ओर वह नारी है जो अपने सुखों के लिये किसी से भीख नहीं मांगती। वह अपनी इच्छाओं और सुखों की पूर्ति अपने तरीके से करती है मैत्रेयी की नारियाँ चरित्रता, उदारता, शीलता, करूणा, दया, ममता का लबादा ओढ़े ढोंग नहीं रचाती, न ही समाज में गठ़री बनी बैठी है वे तो स्वच्छन्द विचारों और आचरण वाली नारियाँ हैं, जो अपने सुख की खातिर सामाजिक वर्जनाओं, विद्रूपताओं, रीतिरिवाजों, रूढ़ियों और नियम–कायदों की तिलांजलि दे देती हैं।

2. **माँ रूप में** :- माँ की छवि एक त्यागमयी निश्छल प्रेम से सराबोर महिला की है जो अपनी सन्तान के लिये हमेशा अच्छा सोचती है। नारी के विभिन्न रूपों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पद मात्रत्व है। वेदों में माता को पृथ्वी स्वरूप कहा गया है।

मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों में माता के शाश्वत रूप के सभी पक्षों का सविस्तार वर्णन किया है। संतान चाहे अयोग्य हो, कर्त्तव्य च्युत हो, परन्तु माँ का वात्सल्य भरा आंचल सदा उस पर छाया रहता है। 'पगला गई है भागवती', 'ललमनियाँ', 'झूलानट', 'विजन' आदि की माँये अपनी संतान के लिये सदैव चिन्तित और त्याग करती आयी हैं। जिसमें 'झूलानट' में एक ऐसे माँ–बेटे की कहानी है, जिसमें एक माँ के समस्त मनोभाव व्यंजित है, वह बेटे बालकिसन के प्रति कभी कठोर होती है तो कभी ममत्व से भर उठती है। मैत्रेयी जी ने एक माँ के हृदय में बड़ी ही मनोवैज्ञानिक दृष्टि डाली है। माँ कब खुश होती है, कब रोती है, कब गुस्सा होती है, कब दुखी? सभी मनोग्रन्थियों का सुन्दर सम्मिश्रण मैत्रेयी जी के उपन्यासों में देखने को मिलता है।

मैत्रेयी जी का आत्मकथात्मक उपन्यास 'कस्तूरी कुंडल बसै' एक ऐसी माँ बेटी की कहानी कहता है जो आपस में एक दूसरे के विचारों से पूर्णतया असहमत दिखलायी देती है। बदहाल और चिंतित माँ तमाम संकट के बावजूद बेटी को किस तरह जीवन में हार न मानने का पाठ देती है, यह उपन्यास का खास तत्व है। जहाँ एक ओर माँ अपनी बेटी की खुशी की खातिर उसके लिये देखे सपनों की तिलांजलि दे उसकी खुशी को सर्वोपरि मानती है। वहीं बेटी मैत्रेयी उपन्यास के अन्त में अपनी माँ की जीवटता का अहसास और माँ के कष्टों की अनुभूति कर जार–जार रो पड़ती है और निरन्तर अपनी माँ के करीब और करीब जाती हुयी दिखलायी देती है। चूँकि मैत्रेयी अब स्वयं माँ बन चुकी है और एक माँ की अनुभूति के बेहद करीब है।

इस प्रकार मैत्रेयी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से एक माँ की ओर बेटी के क्या कर्त्तव्य हैं? एक माँ की क्या–क्या इच्छायें हैं? इस ओर भी ध्यान खींचा है।

3. **बेटी रूप में** :– पुराणों में, स्मृति ग्रन्थों में नारी के पुत्री रूप को बहुत सम्मान मिला है। पौराणिक काल में कन्या को देवी स्वरूप माना गया है। किन्तु वर्तमान समय में ग्रामीण क्षेत्रों में बेटियों की स्थिति बड़ी शोचनीय है। उन्हें पल–पल लड़की होने का अहसास कराया जाता है – अनेकानेक अन्याय, जुल्म व कष्ट दिये जाते हैं परन्तु वे अनेकानेक अभावों, कष्टों व परिस्थितियों में रहकर भी अपने परिवार के प्रति कर्त्तव्यों को शिद्दत से निभाती रहती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा ने पुत्री के विभिन्न रूपों को अपने उपन्यासों में रेखांकित किया है। उनकी कहानी 'बेटी' में एक ऐसी बेटी की कहानी है जिसमें उसे लड़कों के मुकाबले हर चीज से वंचित रखा जाता है और जब वह पढ़ने की जिद करती है उसे फटकार दिया जाता है। यथा –

मुन्नी अपनी अम्मा की सारी जिम्मेदारी उठाकर घर का सारा काम करती रही। मुँह अंधेरे भाइयों के लिये पराँठें सेंकती, उन्हें स्कूल भेजती, उनके कपड़े धोती। पिता के साथ खेत में काम कराती और बासी–कूसी रोटी खाकर चन्द्रकला सी बढ़ती रही। फिर भी ब्याह के कारण अपने माता–पिता की चिन्ता का विषय बनी।

इतने सबके बाद भी जब बुढ़ापे में बीमार होने पर उनके पाँचों सुपुत्र और कुल वधुयें काम न आयी तो एक चिट्ठी में ही बेटी ससुराल से दौड़ी चली आयी और अपनी बेटी साथ ले आयी ताकि उसे माँ की सेवा के लिये माँ के पास छोड़ जाये। इसी प्रकार मैत्रेयी जी की कहानी 'बिन्नी तुम किसकी हो' में एक ऐसी बेटी की कहानी है जिसका सिर्फ इतना दोष है कि दो बेटियों के पैदा होने के बाद वह फिर लड़की पैदा हो गयी, जिसकी सजा उसे पल–पल मिलती, और बचपन क्या है? वह जान ही नहीं पायी।

इसी प्रकार एक बेटी के जीवन की क्या–क्या समस्यायें है, क्या–क्या दुश्चिंतायें है इन सभी को मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों में बखूवी उकेरा है। किस प्रकार से बेटियों के जन्म पर शोक मनाया जाता है। किस प्रकार उसे अनेक सुख सुविधाओं व पढ़ाई–लिखाई से वंचित रखा जाता है। किस प्रकार उसे दहेज व ससुराली समस्याओं से दो चार होना पड़ता है। पल–पल बेटी होने के नाते अनेक सामाजिक बंधनों में बंध कर रहना पड़ता है आदि से हमें रूबरू कराया है।

एक बेटी के मन में क्या होता हैं? कैसी–कैसी इच्छायें होती हैं? क्या विचार होते हैं? इसका बड़ा ही मनोवैज्ञानिक विचार मैत्रेयी जी ने अपने आत्मकथात्मक उपन्यास 'कस्तूतरी कुंडल बसै', में स्वयं अपने बेटी रूप के माध्यम से कुशलतापूर्वक दिखलाया है।

4. **भाभी रूप में** :- मैत्रेयी जी के उपन्यासों में 'माँ के सदृश' वात्सल्यमयी भाभी के दर्शन होते है तो कहीं-कहीं देवर के प्रति कठोर बर्ताव करने वाली भाभी तथा कभी-कभी देवर से यौन सम्बन्ध रखने वाली भाभी के रूप से पाठक रूबरू होते हैं। कहीं-कहीं वह अंतरंग सखी के रूप में भी दिखलायी दी है। तो कहीं भाभी के पूर्ण रूपेण सात्विक रूप में।

मैत्रेयी जी ने भाभी के रूप में नारी का विविध रूपेण चित्रण किया है, वह अपने आप में जीवन के विभिन्न रंग समेटे हुये है। फिर वह चाहे 'झूलानट' की 'शीलो भाभी' हो या 'इदन्नमम्' की 'कुसुमा भाभी' ज्यादातर मैत्रेयी जी ने भाभी के रूप में अपने पति द्वारा उपेक्षित नारी का चित्रण किया है फलस्वरूप वह पर पुरूष के प्रति आकृष्ट होती दिखलायी देती है। यथा – "शीलो भाभी लाचार हो आई", बताओ अम्मा जी, मैं क्या करती? पाँव छूने बढ़ी, तो ऐसे उचके, ज्यों बिच्छू ने डंक मारा हो। कहा कि बैठो पलिका पर, तो होंठो में जहर भरकर बोले "बात करने की जरूरत नहीं। खाने की थाली आगे धरी तो मुँह फेरकर कोठे से बाहर। ऐसे आदमी के समाने कौन सा रूप धरे कोई?"

इसी उपेक्षा के चलते व पति के छोड़कर चले जाने के कारण ही शीलो अपने देवर बालकिशन के प्रति आकर्षित होकर उससे यौन सम्बन्ध स्थापित करती है। यथा – "आवेग के क्षण या प्यार का असीम वेग – शीलो भाभी ने बाहों में भर लिया उसे और चूम लिया। एक बार नहीं कई बार लिया चुंबन-पुच्च पुच्च पुच्च।"[19]

इसी प्रकार कहीं-कहीं वह मानवता की मूर्ति के रूप में प्रकट हुयी है तो कहीं सच्चे हमदर्द के रूप में। 'इदन्नमम' की कुसुमा भाभी मानवीय संवेदना से सराबोर नारी है। मंदा के साथ कैलास मास्टर द्वारा कुकर्म करने पर वह मास्टर का भरभूर विरोध करती है तथा मंदा का हरहाल में साथ देती है तथा उसे मानसिक सांत्वना प्रदान करती है – "नहीं जायेंगे बिन्नू। तुम्हें अकेली नहीं छोडेंगे। तुम जिन घबराओ। तुम बैठी काहें हो, लेट जाओ। हम तुम्हारे संग लेटते हैं। कुसुमा भाभी साथ लेटी सिर सहलाती रहीं उसका। "रोते नहीं हैं। हिम्मत करके उठो। हम तो हैं संगे।"

"बिन्नू अपने मन में तनिक भी भय मत लाना। झिझक–हिचक में मत रहना। जो हुआ उसे भूल जाना।"[20]

२. सामाजिक रूप

समाज का अर्थ हम सबका जीवन है, हम सबकी सुरक्षा के लिये समाज का निर्माण किया गया है। "साहित्यकार भी एक सामाजिक प्राणी है। रचनाकर अपनी सामाजिक परिस्थितियों से अत्यन्त सचेतन रूप में संपृक्त रहकर पूरी सच्चाई के साथ अपने रचनात्मक दायित्व को निभाता रहता है।"[21]

यह भी सत्य है कि रचनाकार समाज के प्रति प्रतिबद्ध हुये हैं। खासकर उपन्यास क्षेत्र में। मैत्रेयी जी की कहानियाँ किसी भी युग, किसी भी गाँव, किसी भी समाज व किसी भी समय, किसी के भी घर की हो सकती है।

मैत्रेयी पुष्पा जी ने आज की सामाजिक परिस्थितियों में फंसे व्यक्ति का चित्रण कितना सटीक एवं सार्थक शब्दों में किया है– "सामाजिक विसंगतियों के भयानक जबड़े में फंसा अदना आदमी सदियों से किस हद तक चबाया जा रहा है, यह तो वहाँ की धरती छूकर, माटी छूकर वहाँ के पसीने के स्पर्श से ही अनुभव किया जा सकता है।"[22]

मैत्रेयी जी के उपन्यासों में समाज तथा परिस्थितियों का यथार्थ रूप में चित्रण प्रस्तुत है और उसके केन्द्र में है नारी, जिसका सामाजिक रूप उभरकर सामने आया है। उनके उपन्यासों में शहरी एवं ग्रामीण दोनों तरह की कहानियाँ है। जहाँ स्वच्छन्द, सैक्स एवं समाज के साथ–साथ कदम से कदम मिलाकर चलने वाली शहर की नारी है तो कहीं ग्रामीण परिस्थितियों में पली, धुन्ध और धुँए में अपने अस्तित्व को मिटाती तो कहीं संवारती नारी भी हैं। इस संदर्भ में विजन, अल्मा कबूतरी तथा कही ईसुरी फाग आदि महानगरों की कहानियाँ है, तो इदन्नमम्, अगनपाखी, झूलानट, बेतवा बहती

---

[19] झूलानट – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 71
[20] इदन्नमम् – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 94
[21] समकालीन हिन्दी कहानी : यथार्थ के विविध आयाम, पृष्ठ 31
[22] आंचलिक कथा : दिशा और दशा – साप्ताहिक हिन्दुस्तान – पृष्ठ 42

रही आदि ग्रामीण आंचलिक कहानियाँ हैं। दोनों ही क्षेत्रों में मैत्रेयी जी ने सफलता हासिल की है।

मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यासों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि विभिन्न विचारधाराओं और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नारी ने किन–किन स्वरूपों को ग्रहण कर रखा है। जो निम्न प्रकार से है:–

1. **समाज सेविका** :– उपन्यासकार मैत्रेयी पुष्पा जी ने नारी के समाज सेविका रूप का भी चित्रांकन किया है। वैसे भी यथार्थ जगत में विविध नारियों को सहज ही समाज सेवा करते देखा जा सकता है। जिस युग में मदर टेरेसा, मेधा पाटेकर तथा मेनका गाँधी जैसी समाज सेवी महिलायें हों, उस युग के उपन्यास ऐसी नारियों की मौजूदगी से वंचित कैसे रह सकते हैं? गैर पढ़ी लिखी जनता को अक्षर ज्ञान कराने, कानूनी सलाह देने, संकट में उनकी सहायता करने, सरकारी सहायता प्राप्त करने के उपाय बताने, विधवा तथा वृद्ध आश्रम चलाने आदि क्षेत्रों में अब नारियाँ भी अपनी भूमिका का निर्वाह कर रही हैं। मैत्रेयी जी की कहानी 'सिस्टर' की 'डोरोथी डिसूजा' एक 'समाज सेविका' के रूप में हमारे सामने आती है। जब कोई उनके पुण्य कार्य के लिये पैसे देना चाहता है तो वे साफ मना कर देती हैं– "तो क्या बात हो गई सिट्टर, तुम भी मेहनत करती हो। दवा मुफ्त में देती हो, जै ही क्या कम है?

सिस्टर डिसूजा ने अपने दोनों कन्धों और छाती को ऊँगलियों से छुआ, "मदद के बदले पैसा लेगा हम? ईशु हमारे सिन को मुआफ नहीं करेगा। ओ आलमाइटी गॉड।"[23]

इसी प्रकार इदन्नमम् की मंदा, विजन की डा. आभा, आक्षेप की रमिया में समाज सेविका रूप झलकता है। उदाहरण के लिये रमिया की समाज सेवा के कुछ दृश्य देखिये –

"नंम्बरदार – कित्तै बीमार हैं वे। बिचारे अकेले हैं, कोऊ पानी दैवे बारौ नईंया। भट्टिन बुखार में तप रये ते। का करते बाबू जी हम रात भर पानी की पट्टी माथे पै धर रहे, गोड़े दाबत रहे। काढ़ौ बनाकें विवाउत रहे। पर का करें जा गाँव की

गुण्डागर्दी को ..... छत पै चढ़ के पत्थर बरसायें है, सीटी मारी हैं बाबूजी। बा तो नम्बरदार पै बरसत पत्थर हमहि झेलत रये नहिं तौ बड़ी चोट आऊती उन्हें।''

''चम्पाराम पंडित हैं बाबूजी। जायदात लैबे पीछें को पूछत बुढापें मे? अब कोउ रोटी नहीं दे सकत उन्हें। जो कुछ हमसे बन परत है, कर देते हैं बाबूजी।''

लक्ष्मी नारायण के घर आग लगी, तो रमिया ही सबसे पहले बाल्टी भर–भर आग बुझाने में लगी थी। आग की लपटों में अन्दर घिरे लक्ष्मीनारायण को बाहर निकालने की हिम्मत कोई नहीं कर पा रहा था। जान सबको प्यारी थी। रमिया ही आग में झुलसती उन तक पहुँच गयी और बाहर खींच लाई। सभी ने कहा था– ''पुराना याराना था, बचाती कैसे नहीं।''

इतना सब करने के बाद भी रमिया को हमेशा आक्षेप मिलते रहे, लोग उसे चरित्रहीन समझते कहते, पर उसमें फर्क न पड़ता।

2. <u>लेडी डाक्टर</u> :– मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में लेडी डाक्टर के रूप नारी का सामाजिक रूप उनके शहरी जीवन की चमकदमक से रजित उपन्यास विजन में दिखलायी देता है। उपन्यास की नायिका का डा0 नेहा व डा0 आभा का उत्कृष्ट सामाजिक रूप उभर कर सामने आया है। वे एक सफल व कुशल डा0 के रूप में चित्रित है। प्रत्येक रोगी के प्रति उनके मन में अपार करूणा है। डाक्टरी डिपार्मेण्ट में स्त्री रोगियों के साथ हो रहे अत्याचार व शोषण का वे डटकर विरोध करती हैं–

रेपकेस .....

''रोओ नहीं। हिम्मत से सारा कुछ बताना नहीं, स्वीकारना होगा। जो स्वीकार किया है, वह अडिग रहेगा, याद रखना।'' डा0 आभा ने डा0 अनुज का मिजाज और उसके गंदे पराक्रम को याद करते हुये कहा।

सरोज के आँसुओं से कंधे की जगह डा0 आभा का एप्रिन भीग गया।

''मैं इस घटना का पर्दाफाश करूँगी। घबराओ मत। चलो मेरे साथ। अभी, इसी समय, इसी हालत में।''

---

[23] 'ललमनियाँ' कहानी संग्रह (कहानी–'सिस्टर') – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 110

......"क्या किया जाए डा0 आभा द्विवेदी आपकी राय में क्या?" सर ने प्रार्थना पत्र के पीछे से अपना चेहरा निकाला।

"जूनियर रेजीडेंसी खारिज कर दी जाए। ही शुड बी डिस्मिस्ड।"

"नौकरी करना है कि नहीं डा0 आभा?" वह बोली, "नहीं आप मुझे डिसमिस कर दीजिए। करिए तो सही।"

स्त्री को न्याय दिलाने के लिये वे अपना कैरियर भी दाँव पर लगा देती है। इसी प्रकार छोटे आदमी का केस भी वे उसी तन्मयता से हैंडिल करती, जैसा किसी अन्य ऊँचे पद वाले व्यक्ति का। वे पेशे से समझौता करती नहीं दिखलायी देती।

मैत्रेयी जी सामाजिकता के अन्तर्गत नारी के इस रूप का चित्रित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

३. राजनैतिक रूप

आज के जीवन में आम आदमी प्रतिदिन राजनीति के विविध रूपों का साक्षात्कार करता है। कोई न कोई जनसभा, आन्दोलन, चुनाव, उपचुनाव, रैली, धरना, घिराव, अनशन, आमरण अनशन आदि रोजमर्या की जिंदगी का एक हिस्सा बन गये हैं। परिवेशगत इस यथार्थ को मैत्रेयी पुष्पा जी ने यद्यपि विभिन्न परिदृष्यों के माध्यम से व्यक्त किया है। किन्तु राजनेत्री के रूप में भी नारी के ऐसे चरित्रों का यदा कदा चित्रण परिदर्शन हो जाता है।

मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों व कहानियों में राजनीति के कुचक्रों व षडयन्त्रों का बड़ी कुशलता के माध्यम से पर्दाफाश किया है। वे राजनीति की गहरी सूझबूझ रखती है। उन्होंने राजनीति के सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलू पर अपनी उत्कृष्ट लेखनी चलायी है तथा राजनीतिज्ञों के स्वार्थी इरादों का पर्दाफाश किया है। उन्होनें राजनीति की दूषित प्रणाली व व्यवस्था पर तीखे व्यंग्य किये है।

'राजनैतिक' शब्द से तात्पर्य समाज और देश व्यवस्था की नीतियों का, सत्ता द्वारा निर्धारण से लिया जाता है। दूसरों शब्दों में यह कहा जा सकता है– "राजनैतिक का अर्थ राज्य का सम्यक् या सुव्यवस्थित संचालन है।"

'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत पर ही हमारी राजनैतिक परिस्थितियाँ निर्भर करती है। मैत्रेयी जी ने कुछ कहानियाँ व उपन्यासों की रचना इस दशक के राजनैतिक परिस्थितयों को आधार बना कर की हैं। राजनैतिक कहानी और उपन्यास में राजनीति और रचनाकार की प्रतिबद्धता और ईमानदारी पर बड़े सशक्त शब्दों में एक प्रतिष्ठित कहानीकार के विचार – "राजनीति जिससे हम दो चार हो रहे हैं अगर वही राजनीति लेखक का कितना अपना क्षेत्र हो सकता है यह कहना और समझना कठिन हैं। राजनीति केवल 'राज' की ही नीति नहीं होती, सामान्य जन की भी होती है।"[24]

"राजनीति का एक अर्थ यह भी लिया जा सकता है– "व्यक्ति या व्यक्ति समूह के द्वारा संघर्ष या सहयोग के माध्यम से सत्ता के इस्तेमाल के लिये प्रयत्नशील गत्यात्मक गतिविधियाँ ही राजनीति है।"[25]

राजनीति के इन्हीं विविध पहलुओं से रंगी मैत्रेयी पुष्पा की नारियाँ राजनैतिक क्षेत्र में विभिन्न रूप में निकल कर समाने आयी हैं। जो निम्न है–

1. **राजनेत्री रूप में** :– मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में मानव और समाज पर राजनीतिक प्रभावों, उनके परिणामों और नीतियों को राजनेत्री के माध्यम से भी दर्शाया गया है। जिसे बेहद कलात्मक ढंग से पिरोया गया है। राजनीति की गंध उनके साहित्य को दूषित नहीं करती और न ही स्त्रियों की महिमा कम या खण्डित करती है, बल्बि दोनों आपस में परस्पर संबद्ध हैं। मैत्रेयी जी ने राजनेत्री की सामाजिक गति विधियों पर अधिक बल दिया है। कोई भी साहित्य राजनीति के बगैर अधूरा माना जाता है क्योंकि राजनीति और राजनैतिक परिस्थितियाँ भारतीय आम जीवन का आवश्यक अंग है, अतः साहित्य में उनका निरूपण आवश्यक है।

[24] राजनीति में लेखकों की सक्रिय भागीदारी – गिरिराज किशोर
[25] साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना – डॉ0 जितेन्द्र वत्स

राजनैतिक परिवेश से घिरी फंसी नारी व उसके ही आंचल तले लिखी गयी ये कहानियाँ ग्रामीण परिवेश व राजनीति में उतरी स्त्री की सशक्त छवि हमारे समक्ष रखती है। उनकी स्त्रियाँ राजनीति करने में सक्षम है। यथा –

क्षेत्र की विधायक उस समय एक महिला थी। अब भी है उन्हीं के पास जा पहुँचे टीकमसिंह, बोले, "हमारा सौभाग्य है कि हमारी विधायक स्त्री है। माँ और शक्तिरूपा स्त्री बेइमान नहीं होती। भ्रष्ट नहीं होती। अन्याय नहीं करती। जिस प्रकार पुरूष ओछी और स्वार्थपरक चालाकियाँ करता है, औरत नहीं करती। माँ सन्तान को धोखा नहीं देती, बस इस आसविश्वास पर आये है आपके पास।"[26]

इसी प्रकार 'कस्तूरी कुंडल बसै' की कस्तूरी देवी भी एक दृढ़ चरित्र महिला हैं, जो प्रयत्नकर स्त्रियों की दशा में सुधार लाना चाहती हैं। इसके लिये वे तेजी से कार्यों को अंजाम देती है–

"पिछले दिनों कस्तूरी देवी कुछ जरूरी कागजात लेने झाँसी आई थीं। हम लोग उनके लिये एक–एक कागज सँवारकर यत्नपूर्वक रख रहे थे। वे बता रही थी कि तीन तम्बुओं में अब साठ महिलाएँ है। माना कि भोजन–पानी की व्यवस्था गड़बडा रही है, पर सुविधाएँ ही रहें तो संघर्ष कैसा? स्त्रियाँ तो उपवास करने की आदी होती हैं। भूखे रहने की आदत खूब है।"[27]

लेकिन स्त्रियों के हक और सुविधाओं के लिये लड़ने वाली कस्तूरी देवी को बड़े नेता जल्द से जल्द पदावन्त करना चाहते हैं और मौका मिलते "कसूतरी अस्पताल में क्या रही, दल की नेता के रूप में खारिज कर दी गई। शान्ति व्यवस्था सबको जरूरी लगती है। कस्तूरी तो खलल का दूसरा नाम है जो कहती है – मेरा विश्वास रखो, आग मत बुझने देना लोग तुम्हें सब्जबाग दिखायेंगे।"[28]

"कसूतरी देवी ने अस्पताल से आकर जेहाद तेज की, तभी चार रिजनल डायरेक्टर्स (विमैन) ने आकर तम्बुओं में घोषणा कर दी – ग्राम सेविकाओं को मिडवाइफों का काम मिल रहा है। रोजी रोटी के साथ कस्बे शहरों में रहना, अपनी किस्मत मानो। जो होता है अच्छे के लिये होता है। कहने का तात्पर्य की कुशल

---

[26] इदन्नमम् – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 189
[27] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 318

महिला नेतृत्व को कोई सहज स्वीकार नहीं कर पाता, विशेष कर पुरूष राजनैतिक व्यवस्था। तभी तो राजनेत्री कस्तूरी देवी की निरन्तर काटकर अपने मनमाने तौर पर ग्रामीण स्त्रियों को उनके वास्तविक हक से जाइन्दा रख सब्जबाग दिखाते रहते हैं। लेकिन कस्तूरी देवी भी कोई साधारण महिला नहीं, ताउम्र स्त्री, जीवन की कटु सच्चाइयों से गुजरकर वे इस मुकाम पर पहुँची है और अब स्त्रियों के हक में खड़ी है। तभी तो प्रत्यक्ष रूप में मंत्री जी के पास पहुँच अपनी दलील प्रस्तुत करती हैं– "आपने ग्रामीण स्तर पर महिला मंगल का खात्मा कर दिया मंत्री जी। गाँव की औरतें, जो पढ़ना–लिखना चाहती थीं, वे हमारा इन्तजार देखती होंगी। उनकों पक्का विश्वास है कि कस्तूरी देवी अपने ग्राम सेविकाओं को लेकर गाँव लौटेंगी।"[29]

ग्रामीण स्त्रियों के हक के खातिर कस्तूरी देवी जेल भी जाती है, सजा भी काटती हैं। तभी तो स्त्रियों को उनपर भूरा भरोसा है। और जो औरतें खुद नई दुनिया की ओर कभी नहीं जा सकतीं, कस्तूरी जैसी स्त्री के आग्रह और कहने सुनने मात्र से वे चल देती हैं। तभी तो एक स्वर में माँग उठती है– "हमारा काम हीं नहीं, हमारा महकमा वापस दो।"

कहीं–कहीं ऐसी राजनेत्री का भी चित्रण हैं। जिसे राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं, बस आदमी की रणनीति के तहत वे जबरन राजनीति में आ गयी हैं–

"लूहर लगे इस चुनाव में। बहन का ब्याह है दो दिन बाद हम तो घाम में भुँज–भुँज कर काले और हुए जाते है।"[30]

2. जमींदार या प्रधान रूप में

मैत्रेयी की कहानियों और औपन्यासिक कथानकों में ग्रामीण एवं आँचलिक बोध है। ग्राम की लोक संस्कृति को विभिन्न पहलुओं से देखा है। ग्राम सभ्यता, व्यवहार, रहन, सहन, भाषा सभी का अनूठा चित्रण मैत्रेयी जी ने किया है। ग्रामीण नारी तो लगभग समस्त उपन्यासों व कहानियों का केन्द्र बिन्दु रही है। "हिन्दी कहानी में न

---

[28] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 318
[29] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 319
[30] शतरंज के खिलाड़ी – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 25

केवल नगर, महानगर के ग्राम जीवियों अपितु दूर दराज के गाँवों के खेतिहरों का जीवन अपनी सम्पूर्णता के साथ चित्रित हुआ है।"[31]

लेखिका ने जमींदार के रूप में नारी की कार्यकुशलता को चित्रांकित किया है। जमींदार वर्ग की नारियाँ समाज की मर्यादाओं, प्रतिष्ठा एवं झूठी शान के ढ़ोग में अपने आपको हताश एवं निराश पाती हैं। तभी तो पीतम सिंह की पत्नी को अपने चुनाव में खड़ा करने की बात समझ नहीं आती – "हम झूठ क्यों कहें, उझककर किसी की देहरी नहीं देखी। अच्छा होता कामता की जनी को खड़ी कर देते ... हम तो गीत–नाँद भी जैसे गये, तैसे झूल डाले लौट आये।" [32]

लेकिन पुरूष हरहाल में अपने स्वार्थ सिद्धी के लिये उसे प्रधान बनाना चाहता है तभी तो कहता है– "बड़ी सिर्रिन हो। धीरत मत खोओ। क्या–क्या सोचने लगी हो, तुमको बेमर्यादा करने के लिये प्रधान नहीं बना रहे हम। मिलने से ही वोट मिलते तो किसोर नाई, कलुआ काछी, जो रोज–रोज घर–घर जाते है, जीततें। हमें कौन पूछता? पगली, आदमी नहीं, आदमी की हैसियत को देखता है वोटर।" यानि हमारी जमींदारी देखेंगे वोटर। लेकिन ठाकुराइन कम नहीं, नहीं मानी। आखिर जमींदार वर्ग से आयी है– 'देखो, मान लिया कि लोग तुम्हें जानते हैं। तुम प्रधान भी रह चुके हो, पर अब तो हम खड़े हुये हैं। हममें कितनी लियाकत है, लोगों को यह देखनी है, मगर हम तो घर के भीतर बैठे है। हम तुम पति–पत्नि के रिश्ते में बंधे हैं, ठीक है, पर लोगों के लिये तो हमारे अलग–अलग वजूद हैं। हम अलग तासीर के दो अलग–अलग प्रानी है। अंततः ठकुराइन मिसमसा उठी– 'हृद्द है। जिन्दगी से बड़ा है चुनाव? बहन से ज्यादा कीमती प्रधानी? आँखो पर ठीकरे धरे हैं। लिहाज, प्यार, अपनापन, दया माया–ममता कुछ भी नहीं, सब चुनाव में भसम कर दिया?"

कभी–कभी ऐसा भी होता है कि जमींदार वर्ग की नारियाँ प्रेम एंव विलासिता की सीमा भी पार कर जाती हैं। उम्र का बंधन इन्हें रोक नहीं पाता।

"पांचन्ना बीबी भूल गई कि वे विधवा हैं। उनकी देह कलंक है। पहरे और कस गये। घर से निकलना बाप ने बंद कर दिया। पर जवानी के खेल निराले। पहरे

[31] हिन्दी कहानी के सौ वर्ष – डॉ0 वेद प्रकाश – पृष्ठ 135

क्या, कैदें क्या? सात परदों को फाड़कर जगता नगला के मेहताब सिंह से आँखे लड़ा बैठीं। नदिया पार फूटी गढ़ी देखी है न? उसी में जा पहुँची। बाप किसी ब्याह में अपने लड़कों को साथ गए हुये थे– रास्ता साफ था। जाफरा फकीर का बाप सन्नू फकीर कहता था– उसने अपनी आँखें से देखी–मेहताबसिंह के संग ऐसे जुटी थीं, ज्यों जुग–जुग की प्यासी हों। एक–एक बूँद सोखने को उतावली।''[33]

''बड़े लोगों के बडे नियम। बाप का गुस्सा अपनी बेटी पर ही उतरा। नाक से फुफकार छोड़ते हुये बोले, नथिया भंगिन को बुलवाओ, जिसके आने का मतलब सिर्फ दो अर्थों में था– बच्चें की जनत और ..... 'चिमटा आग में दहकाया और उन लाल जलती हुई लोहे की पत्तियों को बड़े सहारे से नथिया भंगिन ने पांचन्ना बीबी की छातियों की काली जगह पर रख दिया – चूचियाँ दाग दी गयीं। सब निश्ंचित हुए, अब न फूटेंगी जवानी की गुद्दियाँ। बहुत फड़कती थी। .... चिंघाड ऐसी उठी थी कि महीनों तक घर काँपता रहा।''[34]

अन्ततः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बाहर से तो ये जमींदार और प्रधानवर्ग की नारियाँ प्रसन्न, सुख और कभी–कभी कठोर दिखलायी देती हैं। ये कपड़े–लत्ते, जेवर तो बहुत पहनती हैं, सजी संवरी होती हैं परन्तु इनके अन्दर झांकने का प्रयास करें तो ये नारियाँ टूटती, बिखरती, परेशान व अपने जीवन से हारती हुयी प्रतीत होती हैं। इनके हृदय में एक पीड़ा है, कसक है जो उन्हें नारी होने की वेदना से प्रताड़ित करती है। जिसके चित्रण में मैत्रेयी पुष्पा जी सफल रही हैं।

४.धार्मिक रूप

समय के हिसाब से तो हम इक्कीसवीं सदी में आ गए हैं। लेकिन धार्मिक भावनायें सदियों से ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। भारतीय समाज में धार्मिक भावना कूट–कूट कर भरी हुयी है। जहाँ तैंतीस करोड़ देवी–देवता निवास करते हों, वहाँ हर रोज पूजन आवश्यक है। वैसे तो हमारा देश धर्म निरपेक्ष राष्ट्र माना गया है। फिर भी हम अलग अलग धर्मो में बंटे हैं। धर्म निरपेक्षता के नीचे हम हिंदू, मुस्लिम,

---

[32] शतरंज के खिलाड़ी (कहानी) – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 25
[33] चाक – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 70
[34] चाक – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 70

सिख, इसाई हैं। अलग–अलग धर्मो के अलग–अलग महंत, पैगम्बर, गुरू और फादर माने गये हैं, जो धर्म की सच्ची परिभाषा प्रस्तुत करते हैं और हमें ईश्वर के करीब लाते हैं।

जब व्यक्ति चहुँ ओर से निराश हो जाता है तब धर्म की शरण में जाकर ईश्वर से अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए प्रार्थना करता है। व्यक्ति महसूस करता है कि समस्त पृथ्वी का संचालन उस परमपिता के हाथों में है वही सब क्रिया कलापों का कर्ताधर्ता है। यह भावना भारतीय समाज में प्रबलतम रूप में दिखलायी देती है। तथा सर्वाधिक धार्मिक स्थल भारत में ही मौजूद हैं जहाँ धर्म को एक ताकत के रूप में देखा जाता है। यह एक ऐसी शक्ति है जिसके खिलाफ किसी भी व्यक्ति की शक्ति काम नहीं करती।

यहाँ तीज त्यौहार भी बहुधा धर्म से जुड़े हैं। चाहे वह दीपों का त्योहार दीपावली हो या रंगो का पर्व होली या करवाचौथ व जन्माष्टमी, सभी में ईश्वर को भजने के अंश मौजूद हैं। हमारे चहुँ ओर ईश्वरीय सत्ता मौजूद है। यहाँ प्रत्येक दिन स्त्रियाँ अपने मनोवांछित फल की प्राप्ति के लिए व्रत व उपवास कर ईश्वर की आराधना करती हैं तो कभी अपने पति की लम्बी उम्र के लिए प्रार्थना करती हैं। जो स्त्रियां धार्मिक वातावरण में पली बढ़ी होती हैं, वे जीवन में धर्म को महत्वपूर्ण स्थान देती हैं।

बुन्देलखण्ड में धार्मिक माहौल अधिक है। इसी से यहाँ नितप्रतिदिन धर्म से जुड़े क्रियाकलाप होते रहते हैं। चूँकि मैत्रेयी ने अपने उपन्यासों का आधार बुन्देलखण्ड का ग्रामीण जीवन बनाया है, इसलिए वहाँ पर धर्म की व्याख्या आवश्यक है। जहाँ समस्त बुन्देलखण्डीय रीतिरिवाजों, परम्पराओं, प्रथाओं का चित्रण हो, वहाँ संस्कृति और धर्म कैसे अछूत रह सकते हैं? अतः मैत्रेयी जी के उपन्यासों में समाज, राजनीति परिवार आदि के साथ–साथ धर्म को भी विशेष स्थान दिया गया है। वैसे तो उनके उपन्यासों में धर्म से जुड़े स्त्री–पुरूष दोनों का समान रूप से जुड़े स्त्री–पुरूष दोनों का दोनों का समान रूप से चित्रण है। किन्तु यहाँ हम शोध के अन्तर्गत सिर्फ नारी रूप की ही व्याख्या कर रहे हैं। इसलिए हम सिर्फ नारी के धार्मिक स्वरूपों की ही विवेचना प्रस्तुत करेंगे।

1. पुजारिन या भक्तिन रूप में

मैत्रेयी पुष्पा जी ने अपने उपन्यासों में नारी और पुरूष दोनों पर साथ ही समाज पर धार्मिक प्रभावों तथा उनके परिणामों का बड़ा ही सफल चित्रण किया है। चूँकि यहाँ हम नारी के विविध रूपों की पड़ताल कर रहे हैं। अतः हम धार्मिकता के अन्तर्गत सबसे पहले पूजा पाठ करने वाली पुजारिनों को लेगें। वैसे भी हमारे भारतीय समाज में धर्म का सबसे ऊँचा स्थान है तथा यहाँ के जन–जन में धार्मिक भावनायें कूट–कूट कर भरीं है। विशेष तौर से भारतीय स्त्री की तो दिनचर्या ही धार्मिक भावना से शुरू होती है। स्त्रियाँ इन भावनाओं के ज्यादा करीब होती हैं। शायद इसका सबसे बड़ा कारण वे हरहाल में अपने परिवार की शुभकामना चाहती हैं और इसका जब कोई प्रत्यक्ष उपाय दिखलायी नहीं देता, तो वे ईश्वर के समक्ष अपना आँचल फैला कर खड़ी हो जाती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा जी ने बुन्देलखण्ड में रची बसी नारी की धार्मिकता का बड़ा सजीव चित्रण किया है। वे दिन की शुरूआत अपने आराध्य देव व तुलसीमाता में जल, दूध और पुष्प अर्पण कर करती हैं, इससे उनके अन्दर एक शुभेच्छा शक्ति जागती है जो उन्हें निरन्तर समृद्ध, संकल्पवान और शक्तिशाली बनाती है।

मैत्रेयी ने नारियों की अपनी इच्छापूर्ति के लिये विविध तरीके से किये गये पूजा–अनुष्ठान की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। उदाहरण के लिये 'झूलानट' में बहू शीलो का पति सुमेर उसे छोड़ चला जाता है, तो पास पड़ोसियों ने विविध धार्मिक अनुष्ठान बताये –

"बहु से महामाई के मंदिर तक और मंदिर से शिवाले तक ब्रह्म बेला में पेड़ भरवाओं (पेट के बल लेट–लेट कर पहुँचना) पाँच गायें, तीन कुत्तों की रोटी नित नियम से निकाली जाएँ। तुलसी का चौरा और पीपल का पेड़ ढारे। घर में सुदंर कांड का पाठ करो। साला सुमेर क्या, सुमेर का बाप चला आयेगा परलोक से। तप की माया, देवी देवता का सिंहासन हिला दे, आदमी की क्या बिसात?"

शुभ काम में देर–अबेर क्या?

पूस माह के दिन। कड़ाके की ठंड। जप–तप का दौर चला। भाभी अंधियारे ही ठंडे पानी से नहाकर तुलसी पीपल ढारतीं। सुंदर कांड का पाठ करके रोटी बनाती और फिर टुकनियाँ लेकर गाय–कुत्तों के पीछे–पीछे डोला करती।

अम्मा नहा धोकर सुमिरनीं जपतीं। दुखशोक मनाने के लिये किसी के पास समय नहीं था। तपस्या पूरण होने के सपने में लीन थी दोनों की दोनों।

भारतीय समाज में धार्मिक भावनाओं और पूजापाठ में स्त्री कुछ क्षण अपने दुःखों को भूल जाती है, लेकिन याद आते ही पुनः पुजारिन का चोला धारण कर ईश्वर के चरणों में लीन हो जाती है यथा–

"इसके बाद व्रत–उपवासों का सिलसिला। सोलह सोमवार। संतोषी माता के शुक्रवार। केला–पूजन के वृहस्पतिवार। शनि ग्रह शांति के शनिवार।

शीलो भाभी की लगन। सारे व्रतों का पार करती हुयी सती–कथाओं में प्रवेश कर गई।

विमली जिज्जी ने ही कथा–कीर्तन कराए। शंख झालर वाली मंडली बुलवाई। अम्मा ने दिल खोल दिया–घी, शक्कर, आटा, प्रसाद–पंचामृत, हवन की सामग्री, पंडित–पुजारियों को जिंवाना–खिलाना, दान–दक्षिणा पाँचों वस्त्र।"[35]

भारतीय समाज में जब कोई संत, महात्मा या महाराज प्रवचन या भोजन हेतु उनके स्थान विशेष पर पधारते हैं, तो उस स्थान की स्त्रियाँ समस्त गृहकार्यों को विस्मृत कर उनके पूजा–अर्चन व स्वागत की तैयारी में जुट जाती हैं। यथा– ऐन एकादशी के दिन आये महाराज। मंदाकिनी ने व्रत रखा है। सोनपुरा वाले अभिभूत हैं। धनभाग जो महाराज पधारे।

बऊ ने बखरी लिपवा दी। सुगना मुँह अंधेरे से ही उठकर आ गयी। उसने लकड़ी की चौकी पर आसन बिछा दिया। ठाकुर द्वारे में नयी गंगाजली, कलशों में पानी, केले के पत्ते आम के पत्ते रख दिये। मन्दाकिनी ने प्रसाद बनाया है।

थाली में घी का दीपक उजियारकर वह महाराज के पास ले आयी। चरण छूकर प्रणाम किया। महाराज के मुख पर मुस्कान को स्थायी भाव है। उन्होनें केश खोले हुये श्वेत वसना मंदाकिनी के सिर पर हाथधर कर आशीर्वाद दिया।

महाराज के दर्शनों को लोग जुटने लगे। स्त्रियाँ घूंघट काढ़े दालान में बिछे खेस पर बैठती जा रही है।[36]

इस प्रकार मैत्रेयी ने पुजारिन व भक्तिन रूप में नारी का बड़ा ही जीवन्त व सफल चित्रण किया है। इस रूप में भारतीय नारी का सही रूप निखरकर सामने आया है। मैत्रेयी जी के उपन्यासों में विभिन्न तीज, त्यौहार गीत, लोकगीत भी धार्मिकता से ही जुड़े हैं जिनके मार्फत नारी का धार्मिक रूप उभर कर सामने आया है।

2. साध्वी या तपस्विन रूप में

जहाँ एक ओर मैत्रेयी जी ने धार्मिकता के अन्तर्गत स्त्री का भक्तिन व पुजारिन रूप दिखलाया है। वहीं वह साध्वी या तपस्विन रूप में भी उनके उपन्यासों में आयी है। यह वह रूप है जो उसे इस सांसारिक मोह माया से परे प्रथक दुनिया में ले जाती है जहाँ न कोई अपना न कोई पराया होता है और न ही किसी प्रकार की पारिवारिक–सामाजिक चिन्ता।

ऐसी साध्वी–संत अपने उपदेशों प्रवचनों से जनमानस को सांसारिक मोह माया के त्याग का संदेश देती है और जन–मानस को कल्याण की ओर उन्मुख करती हैं। उनका उद्देश्य जन–मानस को दुःखों से छुटकारा दिलाना होता है। जहाँ कुछ साध्वीं सिर्फ अपने स्वार्थ पूर्ति के लिये गेरूआ वस्त्र धारण करती हैं तो वहीं कुछ साध्वियाँ वास्तव में मानव कल्याण की भावना रखती हैं, कल्याण की भावना से उपदेश देती हैं। इसी भावना का यथोचित चित्रण मैत्रेयी जी के उपन्यासों में दृष्टिगोचर है यथा–

---

[35] झूलानट – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 43
[36] इदन्नमम् – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 179

गेरूआ वस्त्र पहने माता जी मुक्तानन्द से क्या दीक्षा लाई है? मैत्रेयी को जिज्ञासा हुई।

माता जी और गौरा दोनो दो पीढ़ियों पर विराज गई।

माँ ने पहले दो मिनट के लिये आँखें बन्द की, फिर खोली और बोलने लगीं–

'मैने जोग की दीक्षा ली है। यह उन गृहणियों के खिलाफ है, जो पत्नियाँ बनती हैं ओर समझौते करती हैं। उन ममतामयी माँओं के विरूद्ध है, जो मुँह सीकर दहेज का कोल्हू खींचते हुये बेटियों की भाँवरे डालती रहती है। हम–तुम अपने ही खिलाफ बाजार नहीं लगा देते? वर खरीदें या बेंचे, मर्दों की सहायता ही करते हैं। ऐसा तो जानवर भी नहीं करता। कन्यादान किस पुण्य लाभ के लिये है? विवाह संस्कार में हम अपना सर्वस्व होम कर देते हैं। जो आदमी भारी रकम ऐंठे बिना तुम्हें अपने परिवार की सदस्य नहीं बनाना चाहता, वह तुम्हें अपनी घरवाली तो क्या ही मानेगा? हमारे कुटुम्बों का ऐसा ही विधान है कि लड़की के माता–पिता को लूटकर भी उसे सम्पत्ति में शामिल नहीं करते। समझ रही हो न? मैं क्या कह रही हूँ?'' सम्भवतः यही माता जी का मुख्य लक्ष्य था। फिर गेरूआ वस्त्रों का दबदबा। संसारी मनुष्यों से अलग क्षमता रखने वाली साध्वी रूपा माता। सबने तालियाँ बजाई। सबने सिर झुकाया, सबने बात मानी।[37]

ऐसे उपदेश के माध्यम से वे नारियों को जन जागृति की ओर उन्मुख करना चाहती हैं साथ ही उनका सामाजिक रूढ़ियों परम्पराओं से परिचय कराकर उससे होने वाले कुपरिणामों की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहती हैं ताकि स्त्रियों में चेतना स्वरूप इन रूढ़ियों–परम्पराओं की ओर विद्रोह की भावना जाग सके तथा वे इसका विरोध कर सकें। साथ ही पुरूष की उस लालची, स्वार्थी और अपने तक ही सीमित लाभों की ओर भी संकेतकर स्त्री को सजग और सचेत रहने का संदेश दिया गया है ताकि वह अपने आप को इस पुरूष

[37] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 84

समाज को भेंड़–बकरी की भांति खरीदने या बेचने न दें और नारी अपने जीवन का उद्देश्य विवाह तक ही सीमित न रखे।

ऐसे साध्वी चरित्र के निर्माण का एक कारण यह भी है कि भारतीय नारी या जन सामान्य को कोरे सामाजिक उपदेश अच्छे नहीं लगते लेकिन यदि उन्हीं उपदेशों को धार्मिकता से जोड़ दिया जाये तो वे उसे बड़े ध्यान से सुनती व गुनती हैं। इसी कारण मैत्रेयी पुष्पा जी ने समस्त नारी जाति को उपर्युक्त पाठ पढ़ाने के लिये एक साध्वी को अपना पात्र बनाया। जिससे वे सरलता व सहजता से अपनी बात नारियों तक पहुँचा सकीं।

इस प्रकार हम देखते है कि मैत्रेयी जी ने उपन्यासों में नारी का एक रूप साध्वी, संत या तपस्विन रूप में उभरकर सामने आया है, जो जन कल्याणार्थ रचा गया है। मैत्रेयी जी उसके स्वरूप को व्याखित करने और चित्रांकित करने में सफल रही हैं।

५. लोककल्याणकारी रूप

भारतीय दर्शन में अपनी अर्हता को समाप्त कर 'पर' के लिये समगतः होने की प्रक्रिया ही लोक कल्याण है क्योंकि त्याग तथा सेवा से मानव जीवन में क्षमता और स्वास्थता की ही वृद्धि होती है। वस्तुतः जो आनन्द 'दान' में है वह 'भोग' में नहीं। त्याग व सेवा में एक विशेष आनन्द का भाव विद्यमान होता है। जब हमारे स्नेह की प्रगाढ़ता किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति इतनी अधिक बढ़ जाती है कि हम उसी को अपना उपास्य समझने लगते है तो उसके प्रति त्याग, सेवा और प्रेम की भावना स्वाभाविक होती है। लोककल्याण की भावना द्वारा ही जीवन की चरम उपलब्धि व सुख प्राप्त किया जा सकता है।

मैत्रेयी जी के नारी पात्रों में लोककल्याण की भावना विस्तृत रूप में मिलती है। अधिकांशतः यह भावना अपने प्रेमी, घनिष्ठ मित्र, पति, भाई या अन्य व्यक्ति विशेष के लिये है। इस गुण व रूप से परिचालित नारी पात्र को जीवन में अनेक सम–विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। लेकिन वे अपनी लोककल्याण

की भावना नहीं छोड़ती । इस कारण से वे कभी तो सद्मार्ग की ओर जाती है तो कभी असद्मार्ग की ओर।

मैत्रेयी जी के नारी पात्रों के लोककल्याण–कारी रूप में भी हम निम्न भागों में बांट सकते है–

1. प्रेमिका रूप में

प्रेमिका रूप में मैत्रेयी की नारियाँ तरह–तरह के उत्सर्ग, त्याग करती हुयी कल्याण की ओर उन्मुख होती हैं। वे स्वेच्छा से अपने आप को प्रेमी के लिये न्यौछावर कर देती है और इसी में जीवन की सार्थकता पाती हैं। यहाँ तक कि वे शारीरिक रूप में देहदान को भी अनुचित नहीं मानती। प्रेमिका रूप में नारियाँ विविध रूप में हमारे समक्ष आती हैं। कभी भावनाओं का समर्पण करती हुई तो कभी तन, मन, धन का समर्पण करती हुईं।

पहले केवल पुरूष अभियोक्ता होता था अब नारी भी अभियोक्ता बन रही है। वह जान–बूझकर भी प्रेमिका बन रही है। विवाह के पूर्व भी और विवाह के बाद भी। अविवाहित व्यक्ति से भी और विवाहित व्यक्ति से भी वह विवाह पूर्व या विवाहेत्तर सम्बन्ध स्थापित करने लगी है। पहले वह पुरूष के किसी अन्य नारी से सम्बन्ध की भनक लगने पर उससे ईर्ष्या करने लगती थी। अब वह स्वयं अपने स्वच्छन्द आचरण द्वारा पुरूष को ईर्ष्यालु बना रही है।

मैत्रेयी जी की नायिकायें प्रेम में अशरीरी प्रेम (Plotanic Love) के साथ–साथ शारीरिक प्रेम को भी स्वीकारती है। मैत्रेयी के प्रसिद्ध उपन्यास 'चाक' की नायिका 'सारंग' विवाहित होने के पश्चात् भी मास्टर 'श्रीधर प्रजापति' से प्रेम कर बैठती है तन–मन से न चाहते हुये भी वह जब–जब उनसे मिलती, उनके प्रेम में बह उठती और अपना सब कुछ उन्हें अर्पण कर देती है।

उदाहरण हेतु–

वह हौले से उठी और खाट पर बराबर में आ लेटी। श्रीधर को दुलारती हुई, उनके सिर पर हथेली, फिराती हुई कहती है– 'बस! अब तो खुश।' निहाल हो उठे श्रीधर।

लालटेन की मद्धिम सी लाल रोशनी में चूमती रही वह उनके होंठो ..... श्रीधर कभी ब्लाउज के ऊपर हाथ धरते हैं, तो कभी कनपटी पर चूम लेते हैं। ज्वार उमड़ा तो खुद ही बटन खोल दिए ब्लाउज के। आँखे मूँद ली उसने, और बाँह पर ले लिया श्रीधर का सिर कि उनके होंठ पास, ओर पास आ जाएँ छाती के। पूरे कसाव के साथ सट गई।

न जाने एक क्षण को क्या हुआ उसे। कसावट शिथिल पड़ने लगी।

'ए ऽ ऽ, बेइमानी। प्यास जगाकर, तरसाने–वाला साथी विश्वासघाती होता है।'

कैसे बताए श्रीधर को कि बेईमानी नहीं, पति की दो आँखे उग आई है कोठे में। दीवारों पर, किवाड़ों पर, छत की कड़ियों पर ... वह जानबूझकर मुक्त हुई उन घूरती आँखों से। नजर श्रीधर की नजर में मिला दी। दुगुनी आतुरता से प्यार करने लगी उनको।[38]

इस प्रकार हम देखते है ऐसी प्रेमिकाएँ द्विविधा में फँसी रहती है। जैसे 'इदन्नमम'' उपन्यास की कुसुमा भाभी अपने जेठ 'दाऊजी' से प्यार कर बैठती है और उनके प्रेम में सारी कड़ियाँ तोड़ बैठती है। तो वहीं मैत्रेयी जी ने भावानात्मक प्रेम को भी काफी महत्व दिया, क्योंकि सर्वप्रथम तो नारी भावना से ही जुड़ती है पुरूष से। प्रेमिका रूपी स्त्री को सदैव बेचैनी घेरे रहती है और वह समझ नहीं पाती कि आखिर उसे हुआ क्या है–

रज्जो का दिल कहीं लगता नहीं। चूल्हे के पास बैठी हो तो आँगन में आ जाती हैं। आँगन में खड़ी हो तो दरवाजे की ओर देखती है और जो दरवाजे तक आ जाए तो बाहर निकल जाना चाहती है– उसको यह क्या हो गया है, उसने सोचा।[39]

---

[38] चाक – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 324
[39] कही ईसुरी फाग – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 35

मैत्रेयी जी कहती है – कि 'प्रेम पिरीत में मारी जाती है बैयर !' अर्थात् प्रेम के कारण स्त्री विभिन्न कठिन परिस्थितियों से गुजरती है। सारी सुध बुध खो सिर्फ अपने प्रेमी से नजर मिलाने को बेचैन रहती है। यथा–

आते हैं मकरन्द। जाते हैं मकरन्द। हमेशा आसपास ही रहते हैं मकरन्द। दायें–बायें, आगे पीछे से मकरन्द घेरे रहते हैं। मकरन्द के स्कूल जाने का समय मालूम कर लिया मंदाकिनी ने। वह सबेरे जल्दी से उठ जाती है और उसके बाद – आ खड़ी होती है बाहर चबूतरे की सीढ़ियों से लगकर मिलन की आशा बाँधकर। मकरन्द स्कूल जाने वाले होंगे। मकरन्द निकलने ही वाले होंगे। मकरन्द आने वाले ही होंगे। वह टकटकी लगाये देख रही है।[40]

मैत्रेयी जी ने बड़ा ही भावनामय वर्णन किया है क्योंकि मैत्रेयी प्रेम के इस सफर पर स्वयं गुजर चुकी थी। इसी से उन्होनें अपने प्रेम प्रसगों को बड़ी ही बेबाकी से अपने आत्मकथात्मक उपन्यास 'कस्तूरी कुंडल बसै' में स्वीकारा है। उन्होनें अपना एक नहीं अनेक लड़को को अपना प्रेमी बताया– राघव, शिवदयाल, नंदकिशोर, जानकीशरण, नायब तहसीलदार, मदन मानव आदि। ऐसा भी हो सकता है कि इनसे प्रभावित हो स्वयं मैत्रेयी अपने आपको इन सब की प्रेमिका के रूप में देखती हों। बहुत सम्भव है। चूँकि मैत्रेयी स्वच्छन्द प्रेम की पक्षधर हैं, वे कहती हैं–

"एक कन्या सहस्र वर यानि कि कुँआरी लड़की के लिये सैकड़ों वर देखे जाते हैं। सीता, रूक्मिणी, दमयंती जैसी पौराणिक स्त्रियों के स्वयंवरों में सैकड़ों वर आए। अंततः एक वर के गले में जयमाला डालने का विधान है और निन्यानबें युवकों को उम्मीदवारी से खारिज कर दिया जाता है। वे पर पुरूष हो जाते हैं, जो कभी अपने निजी हो सकते थे। पति परमेश्वर के चलते वे लड़की के दुश्मन होते हैं, क्योंकि लगाव का खतरा लग रहा है। सच मानिए कि मुझे वे दुश्मन भी भुलाए नहीं भूले, जिनके सिर पर मैनें कल्पना में मोरमुकुट संजोए थे। वे प्रेम की निगाह लेकर आये थे, मैनें प्रीतिपूर्वक उन्हें देखा था। सो बस जान लिया कि कोई पत्नी भी अपना पूरा का पूरा प्रेम पति के नाम नहीं कर

[40] इदन्नमम् – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ट – 47

पाती। प्रेमिका भी जिंदगी भर के लिये प्रेमी की दौलत नहीं होना चाहती। मैं अपने प्रेमी के बिना जी नहीं सकती– यह जुमला बेमानी है क्योंकि इसमें प्रेम से ज्याद जिद का बोलबाला है। जो आत्महत्या कर जाते है, वे प्रेमी नहीं, अंहकारी होते हैं। और जो लड़कियाँ भाग जाती हैं, वे प्रेम के जरिए आजादी खोजना चाहती हैं। मैं इन कारगुजारियों में से किसी एक को भी अंजाम नहीं दे पाई। हालांकि एक–दो प्रेमी ऐसे भी मिले जो आज के सिनेमाई गानों की तर्ज पर कहते थे – मुझे गर तू नहीं मिली सनम, मर जायेंगे कसम से हम।

और मैंने माना कि वे अपनी मर्दानगी की पताका फहरा रहे हैं। ऐलान कर रहे है कि उनके सिवा मैं किसी की नहीं।

मुझे यह बात मंजूर न थी। प्रेम के बहाने लड़की आजाद होना चाहती है, ये बंधन डाल रहे हैं, शर्तें लगा रहे हैं। शर्ते ही मंजूर करनी हैं तो विवाह विधान क्या बुरा? मैने समय–समय पर अपने प्रेमियों को बताया कि प्यार में मेरी न कोई जिद है, न हठ, इसलिये ही मैं एक जगह ठहरकर गतिहीन नहीं होना चाहती। इसी धुन में कि अपने भीतर प्रेम को जीवित रखते हुये कि उसे प्रकाशमान दीपक की तरह सिलसिले बनाती गयी। पिछले प्रेमी बिछड़ गए, उनकी खबसूरत यादें ह्रदय में संजो लीं। जब–जब वीरानी से सामना होता है, मेरे हमदम मेरे साथ होते हैं। स्मृतियों अपना कमाल दिखाती है, मेरी नजरें मिलन के नजारों से गुजर जाती हैं। मैंने अपने प्रेम–प्रसंगों को खूबसूरत मोड़ देकर छोड़ा है कि वे दिखते रहते हैं, घर तक चले आते हैं। यहाँ गोपन कुछ नहीं होता। हो भी नहीं सकता। हमारे यहाँ कहा गया है–

खेर खून खाँसी खुसी, बैर प्रीति मद पान।
रहिमन दाबे न दबे, चाहे दाबे सकल जहान।[41]

इस प्रकार हम देखे हैं कि मैत्रेयी के साथ उनकी साहित्यिक नायिकायें भी अपने प्रेम को दबा या छिपा नहीं सकी हैं और उसे स्वीकारती प्रतीत होती हैं। वे प्रेम के रास्ते लोककल्याण की ओर उन्मुख होती है। जहाँ एक ओर 'चाक' की 'सारंग' व 'इदन्नमम' की 'कुसुमा भाभी' अपने प्रेम के द्वारा श्रीधर

---

[41] आउट लुक 'पत्रिका' – प्रेम विशेषांक – 'लगन, जो लत बन गई' – कहानी – मैत्रेयी पुष्पा

और दाऊ जी को नया जीवन देती है वहीं 'मंदा' जैसी प्रेमिका अपने प्रेम की खातिर आजीवन कुँआरी रह लोक कल्याण का व्रत लेती है। वहीं मैत्रेयी अपने प्रेम प्रसंगों के माध्यम से प्रेम के नये मायने तलाश करती हैं, जिसके चलते वे अपनी रचनाओं के द्वारा समाज को प्रेम के नये अर्थ दे रहीं, जिससे समाज के समक्ष प्रेम के नवीन समीकरण खुल रहे हैं। जिसमें कहीं न कहीं नारी कल्याण की भावना निहित है।

2. सखी रूप में

नारी के विविध रूपों के अन्तर्गत मैत्रेयी जी ने सखी रूप में नारी का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। जो नारी के प्रति नारी की सहानुभूतिपूर्ण भावना की ओर संकेत करता है। मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों में, कहानियों में मित्रता के सही मायने व्याखित किये हैं। सखी रूप में एक सहेली सही मायने में सच्ची सखी के रूप में उपस्थित हुयी। वह हर हाल में अपनी सखी के समस्त सुख दुख में शामिल होती है और उसके हर काम के प्रति तत्पर दिखलायी देती है। यथा – 'इदन्नमम्' की मंदा और सुगना पक्की सखी हैं। वे आपस में बहुत प्यार करती हैं। हर वक्त एक दूसरे की सहायता के लिये तैयार रहती हैं। इसी प्रकार 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी और मीरा पक्की सहेलियाँ है वे दोनों जीवन पर्यन्त एक दूसरे के सुख दुःख की भागेदार बनती है। इसी प्रकार 'विजन' की डा. नेहा व डा. आभा दी भी अच्छी सहेलियाँ है जो एक दूसरे की समस्याओं का समाधान करती हैं। कहीं कहीं रिश्तों में भी मित्रता का भाव दिखलायी देता है। जैसे मंदा और कुसुमा भाभी का रिश्ता।

कहा जाता है कि रक्त सम्बन्ध और स्नेह–सम्बन्ध के ताने बाने से मनुष्य के संसार की सृष्टि होती है। प्राकृतिक किन्तु आरोपित रक्त–सम्बन्धों की तुलना में कृत्रिम किन्तु स्वयं वरित स्नेह–सम्बन्ध अधिक स्वाभाविक तथा प्रभावशाली होते हैं। ऐसा ही स्नेह सम्बन्ध सखी है। जो जीवन में नवीन रक्त संचार कर हमें उत्साह की ओर ले जाता है। इस बात को मैत्रेयी जी बखूबी जानती है और यह भी जानती है कि यह रिश्ता समाज, धर्म, जाति किसी का मोहताज नहीं होता, बस दिल से होता है और सब रिश्तों से अलग होता है, महत्वपूर्ण होता है।

६. मानवीय गुणों से परिपूर्ण आदर्शमय रूप

'आदर्शवाद' के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी का मत है कि – "अंधेरी गर्म कोठरी में काम करते करते जब हम थक जाते है, तब इच्छा होती है कि किसी बाग में से निकलकर स्वच्छ वायु का आनन्द उठायें। इसी काम को आदर्शवाद पूरा करता है।"[42] यानि ऐसे चरित्र जो हमें मानसिक शुकून प्रदान करते हैं। जो हमें सद्वृत्तियों की ओर प्रेरित करते हैं। उनमें वे सभी मानवीय गुण होते हैं तो मानव को आदर्श मानव बनाते हैं।

मैत्रेयी जी ने इन्हीं मानवीय एवं आदर्श गुणों से परिपूर्ण नारियों का चित्रण अपने उपन्यासों व कहानियों में किया है। ये वे स्त्रियाँ है, जो सदैव अपने को कष्ट में रख दूसरों को अमरत्व प्रदान करती रहती है। हर मनुष्य में अच्छाई और बुराई दोनों होती हैं। किसी में अच्छाई अधिक होती है, तो किसी में बुराई। अच्छाई अधिक दिखलाने के कारण वह व्यक्ति आदर्शमय हो जाता है वहीं बुराई अधिक दिखलाने के कारण वह व्यक्ति बुरा या दुष्ट कहलाता है। यह सर्वविदित है कि पुरूष की अपेक्षा दया, माया, ममता, त्याग, सेवा–भावना आदि गुण स्त्री में अधिक पाये जाते हैं। इसी से मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों का आधार नारी जीवन को बनाया, वह भी निम्न, ग्रामीण व निर्धन वर्ग की नारी को। जिसमें आदर्श की भावना अधिक होती है। ऐसी आदर्शमय नारियां परिवार के साथ–साथ समाज में भी पायी जाती हैं, जो अपने निस्वार्थ कर्मो से समाज को आदर्श की ओर ले जाती है। ये विभिन्न रूपों में देखी जा सकती हैं।

1. माँ के रूप में

माँ एक ऐसी स्त्री होती है, जो अपने बच्चों के साथ–साथ अन्य बच्चों में भी संस्कार व सभ्यता के आदर्श गुणों को समाहित कर उन्हें एक योग्य नागरिक बनाती है। वह निस्वार्थ भाव से अपने बच्चों के लिये हर सम्भव कोशिश कर उनकी इच्छाओं की पूर्ति करती है, सुख दुख में साथ देती है साथ ही प्रसव जैसी पीड़ा झेलकर उनमें जीवन का संचार करती है तथा आजीवन

[42] हिन्दी साहित्य – डॉ0 सुरेश चन्द्र शर्मा – पृष्ठ 25

अपने बच्चों के उज्जवल भविष्य के लिये ईश्वर से दुआ करती है। शायद इसी कारण से माँ को भारतीय समाज में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। मैत्रेयी ने माँ के ममता से भरे रूप को ही अपनी रचनाओं में विशेष स्थान दिया है।

2. पत्नी रूप में

पत्नी वह स्त्री है जो अपने जन्म स्थान माँ–बाप, भाई–बहन सभी को त्याग एक नये घर में आकर एक अपरिचित व्यक्ति के प्रेम की खातिर उसके घर के समस्त सदस्यों को अपनाकर, गृहकार्य का बोझ उठाकर, अपनी इच्छाओं की तिलांजलि देकर, सभी सदस्यों की सेवाकर, प्रेमभाव अपना कर पति की सहचरी कहलाती है। ऊपरी तौर पर देखने से प्रतीत होता है कि पत्नी वह स्त्री है जो पति और उसके घर को संवारने में अपना जीवन होम कर देती है और एक आदर्श गृह का निर्माण करती है। इसी से परिवार में पत्नी का महत्वपूर्ण स्थान है और कहा भी गया है कि बिन घरनी, घर भूत का डेरा। किन्तु आधुनिकता और जागरूकता के फलस्वरूप पत्नी रूप में भी बदलाव आया है, जिसे मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों में विविध माध्यम से दर्शाया है।

3. बहू रूप में

पत्नी और बहू में काफी हद तक समानतायें हैं जहाँ पत्नी को समस्त जिम्मेदारियाँ निभानी पड़ती है वहीं बहू को इनके साथ–साथ बड़ों व बुजुर्गों के मान–सम्मान का ख्याल भी रखना पड़ता है तथा छोटों को प्यार देने के साथ उन्हें अच्छे बुरे का ज्ञान भी कराना होता है। बहू कभी आदर्श रूप में उभर कर आयी है तो कभी कुटिल रूप में। मैत्रेयी जी ने उसके यथार्थ रूप को प्रस्तुत किया है।

4. डाक्टर रूप में

डाक्टर समाज का महत्वपूर्ण अंग है। वह व्यक्तियों के रोगों को दूर कर उसे नया जीवन देती है। हाँलाकि वह उसका पेशा है फिर भी वह इमरजेंसी में अपने स्वार्थों व सुखों की तिलांजली देकर मरीज को महत्व प्रदान कर उस की देखभाल करती है। कभी–कभी डा. मरीज की व्यक्तिगत समस्याओं का भी

समाधान करती हैं तो कभी उसे मानसिक सांत्वना भी देतीं हैं तथा उसके संग हुये अत्याचार के विरोध में उसका साथ देती है। 'विजन' की डा0 नेहा व डा0 आभा ऐसी ही आदर्शमय डॉक्टर नारियाँ हैं।

5. समाज सेविका रूप में

समाज सेविका वे नारियाँ है जो समाज की सेवा निस्वार्थ भाव से करती हैं वे सिस्टर, अध्यक्ष, जमींदार, मंत्री, नर्स आदि कोई भी हो सकती हैं। इनका उद्‌देश्य सामाजिक व्यवस्था के ढाँचे को बदल आदर्श समाज की स्थापना करना है। इसके लिये जहाँ वे गरीब जनता की सहायता करती हैं तो वहीं समाज के ठेकेदारों व अत्याचार करने वालों का जमकर विरोध करती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानवीय गुणों से परिपूर्ण आदर्शमय रूप में मैत्रेयी जी ने नारी के विविध रूप प्रस्तुत किये हैं और वे इसमें सफल भी रही है।

७. यथार्थ रूप

'यथार्थवाद' की व्याख्या करते हुये मुंशी प्रेमचन्द जी ने लिखा है कि "यथार्थवादी, चरित्रों को पाठक के सामने उसके नग्न रूप में रख देता है। इससे कुछ मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा। उनके चरित्र अपनी कमजोरियाँ या खूबियाँ दिखाते हुये अपनी जीवन यात्रा समाप्त करते हैं। संसार में सदैव नेकी का फल नेक और बदी का फल बदी नहीं होता, बल्कि इसके विपरीत हुआ करता है। यथार्थवादी अनुभव की बेड़ियों से जकड़ा होता है और संसार में बुरे चरित्रों की प्रधानता हैं इसलिये यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं का नग्न चित्र होता है।

मनुष्य का जीवन संघर्षमय है। मनुष्य जीवन न तो यथार्थ पर आधारित होता है और न आदर्श पर। जहाँ पहले साहित्य में आदर्श को अधिक महत्व दिया जाता था, वहीं आज पाश्चात्य साहित्य के प्रभावानुसार यथार्थ चित्रण को भी महत्व दिया जाने लगा है, यथार्थवाद में यही चित्रण आता है जहाँ कि समाज की तुच्छ से तुच्छ मनोवृत्ति की भी झाँकी स्पष्ट रूप से दिखाई जाये। साहित्य समाज का दर्पण

कहलाता है। इस कथन के अनुसार तो यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीन साहित्य भारतीय उज्वलता एवं उन्नतावस्था का ही घोतक है। उसके अन्तर्गत जो मुक्तक काव्यों द्वारा तत्कालीन मनोवृत्ति का थोड़ा बहुत आभास मिलता है वह यथार्थ होकर भी आदर्श की ओर उन्मुख ही विशेष है। परन्तु यथार्थवाद का यह दावा है कि उसके अन्तर्गत मलिन से मलिन और उत्तम से उत्तम सभी मनोदशाओं तथा भावनाओं का चित्रण स्पष्टरूपेण होता है। वर्तमान समय में उपन्यास क्षेत्र में इसने विशेष स्थान ग्रहण किया है।

मैत्रेयी जी ने साहित्य को उपयोगितावादी माना है, जो मनुष्य में संवेदना उत्पन्न कर सके। इसीलिये वे उपन्यासकार के लिये यह आवश्यक मानतीं हैं, वह कथा का विकास इस ढंग से करे कि पात्र बुराई और अच्छाई के समस्त चित्रण के साथ यथार्थ की ओर उन्मुख हो। हर मनुष्य में अच्छाई और बुराई दोनों होती हैं। किसी में अच्छाई अधिक होती है, तो किसी में बुराई। इस अच्छाई और बुराई का संघर्ष मनुष्य के जीवन का शाश्वत संघर्ष है और उसकी बुनियादी प्रवृत्ति है कि वह बुराई से अच्छाई की ओर जाना चाहता है। कोई मनुष्य जन्म से न अच्छा होता है, न बुरा। समाज की परिस्थितियाँ उसमें अच्छे–बुरे विचार और सद्–असद् प्रवृत्तियों को जन्म देती हैं। मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों में यथार्थ और पात्रों के जीवन के वैयक्तिक यथार्थ के चित्रण के द्वारा सामाजिक और वैयक्तिक आदर्श की प्रतिष्ठा की है।

मैत्रेयी पुष्पा जी ने उपन्यासों में कहानियों में सामाजिक यथार्थ की तत्कालीन परिस्थितियों व समस्याओं का बड़ा ही विशद् चित्रण हैं। मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों में बुन्देलखण्ड की परिस्थितियों में रचीबसी नारी का चित्रण प्रमुख रूप से किया है। उनके उपन्यास नारी प्रधान है। अतः वहाँ यथार्थ रूप में नारी के विविध रूप उपलब्ध होते है, जो यहाँ की (बुन्देलखण्ड) नारी की दशा को उजागर करते हैं। निम्न वर्ग को मैत्रेयी ने अपने उपन्यासों का आधार बनाया है। निम्नवर्ग का जीवन निर्धनता, भुखमरी, विद्रूपता और जीवन की सच्चाइयों पर आधारित है। इन्हीं सबको लेकर मैत्रेयी ने अपने उपन्यासों में नारी के विविध रूप दर्शायें है। ये निम्न है:–

१. ग्रामीण और निर्धन रूप में

मैत्रेयी जी ने यथार्थ रूप के अन्तर्गत ग्रामीण और निर्धन स्त्री को लिया है, जिसका जीवन अनेकानेक कठिनाइयों से भरा है। उसकी तमाम उम्र निर्धनता व ग्रामीण समस्याओं को भोगने में ही निकल जाती हैं। इन्हीं सीमाओं से बंधी, इन मरणोन्मुखी स्त्री प्रतिमाओं का स्पंदन सहज रूप से हर जगह अनुभव होता है – लगभग मैत्रेयी जी की हर कहानी में। चाहे 'इंदन्नमम्' की 'बऊ' हो, 'बेतवा–बहती रही' की 'उर्वशी' 'चिन्हार' की 'सरजू' आक्षेप की 'रमिया' या 'ललमनियाँ की माँ 'मौहरो', सब की अपनी–अपनी व्यथाएँ है, अपनी–अपनी सीमाएँ। आज की इतनी प्रगति–सभी क्षेत्र में, किन्तु ग्रामीण और निर्धन स्त्री की दशा में कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। वह आज भी शोषण के उस सतानत घेरे में कैद है। मैत्रेयी जी का 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास ऐसी ही निर्धन और शोषण से भरपूर कबूतरा जाति की स्त्रियों की जीवंत तस्वीर पेश करता है। यथा–

कदमबाई क्या, डेरों की सारी औरतें डेरों में ही छिपी रहीं। मलिया को पुलिस बाँध ले गई। जिस खेत में जमुनी पड़ी थी, उसका मालिक किसान डेरों पर आया। गालियाँ देता रहा। कहता गया कि कबूतरा साले लुगाइयों के संग मौज करते हैं, बच्चे पैदा करते हैं। मरते ही उसकी मिट्टी को पहचानते तक नहीं। सरमना....तू नहीं उठा सकता तो अपनी लुगाई भेज। फसल खराब हो रही है मादरचो.......रपट करूँगा कि तुमने औरत मारकर फेंकी है।

बच्चे गाँव से दूर पड़े घूरों को कुरेद आए। कुछ चिथड़े उखाड़ लाए। उन्होंने वे चिथड़े डेरों के भीतर माँ–काकियों के पास फेंक दिए। नहीं देखा कि वे चीरे गंदगी में लिथड़े हैं, माहवारी के खून में......। फायदा भी क्या था, दूसरा सहारा न था। माँ–काकियों के नंगे बदन रह–रहकर आँखों में छा जाते।

डेरों पर सबसे ज्यादा उम्र की औरत भजनी, जिसे नंगे होते–होते नंगे रहने की आदत पड़ गई थी, उन चिथड़ों को धोने सुखाने लगी। सरमन जान–बूझकर आँखे मींचे पड़ा रहा था।

क्दमबाई कैसी तो डरावनी हँसी हँसी थी – भजनी जिज्जी, हमारे पास न मरों को कफन, न जिंदों को लत्ता। दो घंटे मे ही तबाह हो गये।

चिथड़े–चीर लपेटे हुई औरतों ने काँटेदार सूखी झाड़ियाँ, सूखा गोबर और रोटी के लिए जोड़ा तमाम ईंधन डालकर जमुनी को उसके बेटे के संग फूंक डाला था। कुछ कसर रह गई, खेतों में से मद उखाड़कर चिता पर उड़ेल दिया।[43]

इस तरह की अनेकानेक अमानवीय स्थितियों से गुजरती ग्रामीण व निर्धन वर्ग की स्त्री सतत् संघर्षमय् जीवन जीने को विवश जान पड़ती है इनका जीवन कृषि की देखभाल, पेट पालने की चिन्ता, बेटी जन्म की चिन्ता, तथा ग्रामीण कुप्रथाओं को झेलने करने में निकल जाता है। इस रूप को चित्रित करने में मैत्रेयी जी ने बड़ी सफल अभिव्यक्ति की है। इनके साहित्य को पढ़ने से ज्ञात होता है कि इस वर्ग की स्त्री की दशा समाज व साहित्य में बड़ी शोचनीय है।

२. विधवा व परित्यक्ता रूप में

समाज के यथार्थ रूप के अन्तर्गत मैत्रेयी जी ने विधवा और परित्यक्ता रूप में भी नारी का चित्रण किया है। यह समाज की यथार्थ भूमि पर रहकर तिलतिल जलने को मजबूर व समाजग्रस्त रूप में है तो कहीं समस्त वर्जनाओं और यौन वर्जनाओं को तोड़ती हुयी अपनी अलग ही दुनिया बनाती हैं। जहाँ समाज द्वारा निरन्तर शोषित होने पर व अभिशप्त रहने पर उनका जीवन नरकीय हो जाता है और उसे तरह तरह के ताने सुनने पड़ते हैं। यथा–

"हाय कठकरेज लुगाई।" औरतों ने कहा "कस्तूरी, तुझे दूसरे खसम की सार लगी है तो खसम कर जा, तिरिया चरित्तर क्यों पसार रही है? ...... तूने दोनों कुलबोर दिये।"

"यह रांड क्या हुई, साँड हो गई। न छोरी पर ममता, न बूढे ससुर का रहम। 'पढाई–पढाई' का भजन करती हुई दोनों को रौंद रही है। अरे तू

[43] अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 47–48

डाँव–डाँव डोलेगी तो बच्चा की ऐसी ही गत बनेगी। बनी है महात्मा गाँधी की चोदी।''[44]

कस्तूरी का सिर्फ इतना दोष की पति की मृत्यु के बाद पढ़ाई कर स्वंय अपने पैरों पर खड़ा होना चाहा, तो समाज ने अनेक बंधन डाले। लेकिन कस्तूरी अपना रास्ता तय कर मानी। तो वहीं बेतवा बहती रही की 'उर्वशी' पति सर्वदमन की मृत्यु के बाद सामाजिक शोषण, अपनों के परायेमन से दुखी है–

"आज क्या हुआ घर? उसका कोई घर नहीं। वह घर तो उसके पिता का है। घर उसके पति का था और घर है उसके भाई का। शायद हर औरत झूठे व्यामोह रच लेती है।''[45]

वहीं दूसरी ओर समाज द्वारा निरन्तर शोषित और ताने सुनने के कारण स्त्रियाँ विद्रोहात्मक रूप धारण कर लेती है, वे समाज के बने–बनाये ढर्रे पर चलने से इन्कार कर देती है और विधवा व परित्यक्ता होने के बावजूद अपना अलग संसार रचती है। जैसे– 'चाक' की 'रेशम' एक विधवा होने के बावजूद दिलेरी से ऐलान भी कर देती है– "हाँ मैं पेट से हूँ अम्मा।" उसने तो सिर्फ इतना माना कि पेड़ हरा भरा रहे तो फूल फल क्यों नहीं लगेंगे? ऐसा हो सकता है कि ऋतु आए और वल्लरी लता फूले नहीं? औरत ऋतु मती हो और आग दहके नहीं?''[46]

इसी तरह 'इदन्नमम्' की 'कुसुमा भाभी' अपने पति 'यश पाल' द्वारा ठुकरा देने के कारण 'दाऊ जी' के प्रति आकर्षित हो जाती है और उनसे यौन सम्बन्ध बनाती है, तो वहीं 'चाक' की 'सारंग' पति 'रंजीत' के प्यार के बावजूद मास्टर 'श्रीधर' के प्रति आकृष्ट हो उससे शारीरिक सम्बन्ध बनाती है। इस प्रकार हम देखते है कि मैत्रेयी ने यथार्थ रूप के अन्तर्गत विभिन्न रूप में कभी नारी की दयनीय व शोचनीय स्थिति दर्शायी है तो कभी सामाजिक बन्धनों व मर्यादाओं को तोड़ती स्त्री की तस्वीर भारतीय समाज के समक्ष प्रस्तुत की है।

---

[44] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 32 – 42
[45] बेतवा बहती रही – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 109
[46] 'चाक' – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 18

३. वेश्या और कामुक रूप में

पापी पेट की खातिर स्त्री को कितने रूप धरने पड़ते है। इसका जीवन्त चित्रण मैत्रेयी जी के उपन्यासों में देखने को मिलता हैं। यथार्थ चित्रण। स्त्री के बदलते परिवेश और आवश्यकताओं के चलते मैत्रेयी इस वर्ग की स्त्रियों का बड़ा बोल्ड चित्रण करती है। वह कभी वेश्या रूप में, तो कभी कामातुर रूप में दिखलायी देती है। यथा–

हाय, सदा घाघरा उतारता आता था, आज पहले चोली के बटन खोल रहा है। एकांत में फुरसत पा गया? याद नहीं कि घड़ियाँ गिनी चुनी हैं? कदम ने घाघरा खुद ही नीचे को सरका दिया।[47]

इस वर्ग की महिलायें कभी चोरी छिपे, तो कभी उजागर रूप में हमारे सामने आती हैं। मैत्रेयी की कहानी 'राय प्रवीण' में जहाँ राय प्रवीण नामक खूबसूरत वेश्या का चित्रण है वहीं उसकी मानवीय भावनाओं को तरजीह दी गयी है तो इसी कहानी की नायिका सावित्री गरीबी के चलते अपना 'देहदान' कर अन्न प्राप्त करती है। ''ठीक राय प्रवीण वेश्या की भाँति बाँहों में भींच ली। बिस्तर पर पड़ी है चित्त। पहाड़–सा नंगा बदन ऊपर लद गया। वह भी नंगी है। दो प्रजनन अंग टकराये–काम जारी हो गया।''[48] इसी प्रकार मैत्रेयी जी के उपन्यास 'चाक' की नायिका 'रेशम' व सांरग' तथा पंचन्ना बीबी इसी तरह कामातुर दिखलायी देती है। हाँलाकि वेश्या रूप में मैत्रेयी ने न के बराबर ही नारी का चित्रण किया है लेकिन कामुक महिलाओं का चित्रण बहुतायत से मिलता है। वे (मैत्रेयी जी) कहती हैं– कि पुरूष और स्त्री की इच्छायें एक सी होती है। यदि पुरूष शरीर का भूखा है तो स्त्री भी है। फिर यदि वह अपनी इच्छा जतलाये तो बदमाश करार क्यों दी जाती है? तरह–तरह के इल्जाम क्यों लगाये जाते हैं? पुरूष पर क्यों नहीं? क्योंकि यह सब पुरूष के बनाये नियम कायदे हैं और कुछ नहीं? कि जब वह चाहे, जब उसकी इच्छा हो, तभी स्त्री सिर्फ उसी से संसर्ग करे। मैं कहती हूँ कि क्यों? क्या उसकी इच्छायें और चाहते, समय–असमय की माँग क्यों मायने नहीं रखती? वह भी मानव है, बल्कि

---

[47] अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 22
[48] राय प्रवीण 'कहानी' – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 45

मनुष्य का मूलरूप नारी। फिर वह इस पुरूष व्यवस्था – सामाजिक व्यवस्था में नदारद क्यों है? मैं नहीं मानती। इसी से मेरी नायिकायें पुरूष के समान आगे से आगे शारीरिक इच्छा की माँग करती दिखलायी देती हैं। वास्तव में स्त्री की यह माँग उसके यथार्थ रूप को चित्रित करती है। इसी कारण चाहे 'गोमा हंसती है' कि 'गोमा' हो, 'झूलानट' की 'शीलो' हो या 'कस्तूरी कुंडल बसै, की स्वयं 'मैत्रेयी', सभी कामातुर दिखलायी देती है।

८. आर्थिक विपन्नता से परिपूर्ण

यह समाज का वह वर्ग है जहाँ गरीबी, निराशा और घुटन का साम्राज्य जन्म से मृत्यु तक बना रहता है, जिससे निकलना सम्भव नहीं दिखायी देता। इस वर्ग की स्त्रियाँ झुग्गी, झोपड़ियों और आर्थिक विपन्नता के संसार में पैदा होकर उसी में समाहित हो जाती हैं। मानो यही उनकी नियति बन गयी हो। इस वर्ग की महिलायें अनेक विपत्तियों से घिरी दिखलायी देती है। इनके समक्ष समस्यायें मुँह बाये खड़ी रहती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा ने नारी के इस रूप को उसकी पीड़ा को, आर्थिक मजबूरियों और संघर्षों से मिलाकर देखा है और समाज में इन स्त्रियों की दशा पर चिन्ता व्यक्त की है। आर्थिक विपन्नता से परिपूर्ण स्त्री रूप जहाँ एक ओर नगरीय जीवन में अलग दिखलायी देता है वहीं ग्रामीण जीवन में ये निम्न व गरीब स्त्रियाँ और भी संघर्ष करती दिखलायी देती हैं। तभी तो मैत्रेयी पुष्पा ने नारी जीवन के इस रूप को जहाँ एक ओर बेहद करीब से देखा है वहीं दूसरी ओर बड़ी गहरायी से महसूस किया है। वे 'बेतवा बहती रही' की भूमिका में लिखती है– ''उर्वशी की यह कथा उसी की क्या, किसी भी ग्रामीण कन्या की व्यथा हो सकती है। विपन्नता का अभिशाप–शोषण और सनातन संघर्ष एक विवश यातनामय नारकीय जीवन।''[49]

'बेतवा बहती रही' मैत्रेयी जी का आर्थिक विपन्नता से परिपूर्ण नारी जीवन को सफल ढ़ग से प्रस्तुत करने वाला उत्कृष्ट उपन्यास है। इसमें नारी जीवन की आर्थिक स्थिति का बड़ा ही हृदय स्पर्शी चित्रण किया गया है।

---

[49] बेतवा बहती रही – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 6

इस प्रकार का जीवन यापन करते हुये इस वर्ग की स्त्रियाँ अपना सम्पूर्ण जीवन होम कर देती हैं। मैत्रेयी जी ने नारी के विविध रूपों के माध्यम से उसकी विपन्न स्थिति को उजागर किया है।

१. शोषित रूप में

मैत्रेयी पुष्पा ने आर्थिक विपन्नता से परिपूर्ण नारी का शोषित रूप दर्शाया है। गरीब और विपन्न स्त्रियों का समाज किस प्रकार शोषण करता है, जिसका वास्तविक चित्रण मैत्रेयी जी के उपन्यासों में देखने को मिलता है। एक ओर जहाँ उनके आत्मकथात्मक उपन्यास, 'कस्तूरी कुंडल बसै' में 'कस्तूरी' की माँ आर्थिक विपन्नता के चलते कस्तूरी को आठ सौ कलदार में बेच देती है, वहीं उनके प्रथम उपन्यास 'बेतवा रहती रही' में 'उर्वशी' के भाई 'अजीत' अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए एक बूढ़े व्यक्ति 'बरजोर सिंह' से उर्वशी का जबरन पुनः विवाह कर देते हैं। इस प्रकार हम देखते है कि गरीब महिलायें कभी मजबूरी के चलते कभी विपन्न स्थिति के कारण शोषित होती चली आती हैं।

मैत्रेयी की प्रसिद्ध कहानी 'ललमनियाँ' की नायिका भी ऐसी ही विपन्न और आर्थिक स्थिति की मारी है जो ललमनियाँ (एक तरह का नाच) दिखाकर अपने व अपने बच्चों का पेट पालती है। फिर भी अपने बेटे द्वारा ही मानसिक शोषण की शिकार है।

इस प्रकार मैत्रेयी जी ने आर्थिक तंगी के चलते स्त्री के साथ समाज द्वारा, पुरूषों द्वारा करने वाले व्यवहार को अपने उपन्यासों और कहानियों के द्वारा दिखलाया है कि आर्थिक विपन्नता के चलते कैसे वह कभी पुरूष की जोरजबरदस्ती का शिकार होती है तो कभी कपड़ा–लता को मुंहताज। गरीबी के चलते कैसे अपने ही उससे मुंह मोड़ लेते है इसका बड़ा सजीव चित्रांकन मैत्रेयी जी ने अपनी रचनाओं में किया है।

२. श्रमिक रूप में

निर्धनता के कारण स्त्री को किन–किन परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है, इसका जीवन्त चित्रण मैत्रेयी के उपन्यासों व कहानी में देखने को मिलता है।

पेट भरने की खातिर वह कभी पत्थर तोड़ती है तो कभी अन्य मजूदरी करती है। तभी शायद कहा गया है कि पापी पेट के कारण ही संसार में समस्त व्यापार संचालित हैं। स्त्री इससे अछूती नहीं। वह श्रम कर अपना व अपने परिवार का गुजर बसर करती हैं। मैत्रेयी की कहानी 'रास' की जैयन्ती जब अपने ससुराल जाती है तो ससुर द्वारा उसका शारीरिक शोषण करने की कोशिश की जाती है वह वहाँ से वापिस मायके आ जाती है तो माँ भी उसका साथ नहीं देती ऐसी स्थिति में उसके समक्ष अपने भरण–पोषण की समस्या आन खड़ी होती है तब जैमन्ती सम्पूर्ण गाँव को ही अपना बना, किसी का कुछ न कुछ काम कर अपना खर्चा निकाला करती। यथा–

अब पूरे गाँव की है जैमन्ती। किसान–जिजमानों की टहल ही उसका जीवन है। जन्म, मुंडन, कनछेदन और ब्याह–कारजों के बुलाये–चलायों की खातिर जैमन्ती की पुकार पड़ी रहती है। नई बहुओं के आगमन, बेटियों की विदाई के चलते मेंहदी–महावर, माँग–कंघी, उबटन मालिश, डलिया–बायना बाँटने के लिये जैमन्ती की टेर। पाँत–पंगतों के वास्ते मनों–कुंटलों आटा माँड़ना, नाँद भर–भर बेसन घोलना, साग–सब्जी छीलना काटना और हजारों की तादाद में दोने पत्तल बनाना। बदले में पड़ोसा–त्योहारी, अनाज–कपड़ा।''[50]

इसी प्रकार मैत्रेयी जी के इदन्नमम् उपन्यास में ग्रामीण राउत वर्ग की स्त्रियाँ क्रैशर व पहाड़ में हाड़तोड़ मेहनत करती दिखलायी देती हैं।

३. नौकरानी रूप में

गरीबी की मार के चलते नरकीय जीवन जीने को विवश महिलायें नौकरानी रूप में अपना जीवकोपार्जन ढूंढ़ लेती है। इनका सफल चित्रण मैत्रेयी जी के उपन्यासों व कहानियों में दृष्टिगोचर है। चूँकि ये पढ़ी लिखी नहीं होती। इसी कारण उन्हें अन्य काम नहीं मिल पाता। मजबूरी वश अमीर लोगों के घर में झाड़ू, पोंछा, बर्तन धोना, कपड़े धोना या बच्चों की देखभाल का कार्य करने लगती है, जिसकी एवज में मालिक उन्हें कुछ रूपये देता है।

---

[50] 'रास' (कहानी) – (गोमा हंसती है कहानी संग्रह से) – मैत्रेयी पुष्पा पृष्ठ 129

मैत्रेयी जी ने नौकरानी या महरी रूप में बड़ी ही संवेदनशील नारी का चित्र अपने कथानकों में किया है। यथा–"हाय"। बर्तन पटकर महरी दौड़ी, बच्ची को उठाकर कन्धें से चिपका लिया– "रहन दो करौ बहू जी। पेट में से ईंट पत्थर जने तबहू मोहमाया उपजत है। तुम कौन सी मिट्टी की बनी हो बहू जी। जा कन्या पनमेसुरी ने का बिगारो है तुम्हारौ अरे तुमसे तो हम गरीब गुरबा अच्छे हैं, खाने की रोटी कम सही, पर मोह–मिमता तो भरपूर है। चार छोटी हैं मेरे, गलो नाँय घोंट दियो। मेहनत–मसक्कत करकें पाल रही हूँ, हिय–पिरान से लगाय कैं राखी हैं।"

फिर महरी के सिर मढ़ गई बिन्नी, पापा ने एवज में कुछ रूपये बांध दिये। दिन में नहलाना–धुलाना, दूध–पानी सब उसके जिम्मे था।[51]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मैत्रेयी जी ने उसके कार्यों के साथ–साथ उसके संवेदनात्मक रूप को भी दर्शाया है।

मैत्रेयी जी ने नौकरानी या आया के रूप को जीवन्तता प्रदान करने के लिये उनकी वेशभूषा व बोलचाल का बड़ा गहन अध्ययन किया है। यथा–

पहले दिन सुबह सबेरे झनक–झनक पायल बजाती हमारे कमरे में प्रविष्ट हुई तो मैं और भाई आपस में एक दूसरे को देखकर हंस पड़े वह तनिक सकुचा गयी। माथे पर चमकती टिकुली, हाथ भर–भरकर लाल कामदानी चूड़ियाँ और आँखों में महीन काजल आँजे, पटर–पटर झपकती पलकें। मैंने ऊपर से नीचे तक निहारा तो बुन्देलखण्डी कमनीया नारी की प्रतिमूर्ति लगी थी मुझे। दुबली पतली काया की स्वामिनी सरजू।

खाना बनाने वाली। खाना ऐसा बनाती कि भाई लोग छः की जगह वारह रोटी और पतीली भर दाल का आहार झटककर ही उठते। जितना खाते सरजू उतनी ही प्रसन्नता जताती– "आज तो साँचऊ अच्छी बनी हुइये सब्जी, भइया लोगन ने खूब खाई।"[52]

---

[51] 'तुम किसकी हो बिन्नी' (कहानी) – मैत्रेयी पुष्पा – 139
[52] 'चिन्हार' (कहानी) – मैत्रेयी पुष्पा – 135

इस प्रकार मैत्रेयी जी ने उनके क्रियाकलापों, बातचीत, रहन सहन के द्वारा इस आर्थिक विपन्नता से जूझ रहे रूप को अपने उपन्यासों में जीवन्तता प्रदान की है। मैत्रेयी ने अपने आत्मकथात्मक उपन्यास 'कस्तूरी कुंडल बसै' में भी इस वर्ग की महिलाओं के इस विविध रूपों के प्रति सहानुभूति दर्शायी है।

४. खेतिहर रूप में

मैत्रेयी पुष्पा के समस्त उपन्यास ग्रामीण अंचल को लेकर लिखे गये है यानि कृषक वर्ग को लेकर। फिर तो कृषक महिलाओं का जिक्र होना स्वाभाविक है। वैसे तो मैत्रेयी ने खेतिहर रूप में स्त्रियों का बहुत अधिक चित्रांकन नहीं किया, लेकिन यथास्थान यथोचित वर्णन देखने को मिलता है, जो एक किसान महिला के अथक परिश्रम व संघर्ष को दर्शाता है कि किस प्रकार उनका सम्पूर्ण जीवन खेती पर ही निर्भर है। ऐसी स्त्रियों को मौसम के अनुसार कभी खेत में कम व तो कभी अधिक काम करना पड़ता है।

मैत्रेयी जी ने ऐसी संघर्षशील महिलाओं का चित्रण बड़े ही सहज रूप में किया है। यथा–

भोर की होन में आँख लग गयी। उठे तो माँ खेत पर जा चुकी थीं। कटनई के दिन थे सो माँ को फुरसत ही कहाँ थी–शायद दिन–भर घर न आयें। उर्वशी से पूछा तो उत्तर मिला– ''हम अम्मा की रोटी खेत पै ही लैजैहें।''[53]

इसी प्रकार जब बऊ और मंदा श्यामली गाँव पहुँची तो उन्हें वहाँ कोई न दिखलायी दिया–

मंदाकिनी ने निगाह घुमा–घुमाकर चारों ओर देखा। वीरानी को देखकर पूछने लगी, ''यहाँ तो कोई नहीं है बऊ। तुम तो कहती थीं, पंचमसिंह दादा के घर में बहुत–बहुत सारे लोग हैं।''

[53] 'बेतवा बहती रहीं' – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 24

बऊ ने अपनी धोति का पल्ला अच्छी तरह से कमर में खोंसा, नरम आवाज में बताने लगीं, "खेत कटनई के दिन हैं बेटा, सब जने खेतों, खलिहानों में होगें। घर की जनी–मानसें भी रोटी–पानी लैकें वहीं गयी होंगी।"[54]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मैत्रेयी पुष्पा जी ने अपने उपन्यास साहित्य में नारी के विविध रूप बल्कि समस्त रूपों का निरूपण किया है। ये नारियाँ विभिन्न रूपों के माध्यम से विभिन्न संदेश देती दिखलायी देती हैं। मैत्रेयी जी ने समाज के समक्ष दीनहीन नारी न प्रस्तुत कर 'बोल्ड–नारी' प्रस्तुत की है फिर वह चाहे जिस रूप में क्यों न हो। यही साहित्य व समाज को उनकी नयी देन है। यदि उनके साहित्य व नारी के विविध चित्रण के माध्यम से नारी समाज में कोई नवीन चेतना आ सके या वह उनके पात्रों के समान नारी–शक्ति व आत्मबल धारण कर सके तो मैत्रेयी जी के नारी प्रधान उपन्यासों के लेखन का उद्देश्य कुछ हद तक पूरा हो जायेगा।

इस प्रकार हम कह सकते है कि मैत्रेयी जी ने प्रमुख रूप से दो प्रकार के नारी पात्रों की सर्जना की हैं। एक ओर तो कल्पना से निसृत, सभी आदर्श गुणों से समन्वित नारी चरित्र है तो दूसरी ओर समस्त मानवीय दुर्बलताओं से युक्त नारी चरित्र है। लेकिन जो प्रमुख रूप से उभर कर सामने आया है वह रूप है– अपने नारीत्व व शक्ति की पहचान कराता रूप। प्रायः मैत्रेयी जी ने नारी के इसी प्रमुख रूप को उजागर करने हेतु ही नारी के चरित्रों की कल्पना व सर्जना की है। जिनसे स्वतन्त्र व सशक्त व दृढ़ चरित्र नारी को अधिक महत्व व निखार मिल सके। वास्तव में नारी के ये विविध रूप व्यवहार से, स्वभाव से तथा गुणों से ओतप्रोत हैं।

[54] इदन्नमम् – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 11

पंचम अध्याय

1. मूल तत्वों के आधार पर मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास की समीक्षा।

2. मैत्रेयी पुष्पा की नारी चिंतन में भागेदारी।

3. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास साहित्य में नारी संवेदना।

१.उपन्यास के मूल तत्वों के आधार पर मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की समीक्षा

उपन्यास गद्य–शैली में लिखी हुई साहित्य की वह पाठ्य विधा है, जिसके कथानक से यथार्थ और कल्पना के सहारे मानव–जीवन के संश्लिष्ट चित्र को चित्रित किया जाता है। साथ ही, जिसकी रोचकता और कलात्मकता, युग बोध तथा वातावरण की सजीव और रसात्मक झाँकी पाठक को विभोर किये रहती है। हिन्दी साहित्य की यह विधा आधुनिक युग में ही अत्यधिक पल्लवित और विकसित हुई है।

कहानी इस साहित्यिक विधा की सर्वप्रथम शर्त है। अस्तु, एक ओर कहानी या कथा साहित्य से यह सम्बद्ध है, तो दूसरी ओर अनेक चरित्रों, समाज की घटनाओं और युग–सत्य को निरूपित करने के कारण यह काव्य तथा नाटक के भी निकट है। मैत्रेयी के उपन्यास का रचना संतुलन ऐसा बेजोड़ है कि उसमें अनवरत संघर्ष, करूणा, सहानुभूति और ट्रैजिक अंत के बावजूद कहीं किसी एक के प्रति कड़वाहट नहीं आती अपितु गहरा असंतोष उमड़ता घुमड़ता है, तंत्र के प्रति। मैत्रेयी जी ने मानो सामाजिक व्यवस्था के मूलभूत नियमों–कायदों और अपने अनुभवों को फेंट कर मिलाया हो। ऐसा रचना विधान लेखिका के गहरे रचनात्मक आत्मविश्वास का प्रबल साक्ष्य है। अन्य समकालीन उपन्यासकारों की अपेक्षा मैत्रेयी के उपन्यास भारतीय संस्कृति के जीते–जागते प्रमाण है। पुनर्जागरण से आरम्भ हुई सांस्कृतिक टकराहट की यह श्रेष्ठतम उपलब्धि और निष्पत्ति है।

उन्यासकार के रूप में मैत्रेयी जी की बड़ी सफलता इस बात में भी है कि उन्होंने अच्छी किस्सागोई को व्यापक रचना दृष्टि के साथ जोड़ा है। "किस्सा और दृष्टि को जोड़ने वाला तत्व उपन्यास में उनकी चरित्र–दृष्टि है। कहीं–कहीं मुखर हो जाने के बावजूद मैत्रेयी की चरित्र सृष्टि ऐसी है कि उसमें लेखकीय सहानुभूति का बंटवारा नहीं किया जा सकता। उनके यहाँ बुराई और अच्छाई है, बुरे और अच्छे चरित्र नहीं।"[1] यही तत्व मैत्रेजी जी के उपन्यासों में भरपूर है। वे सफल उपन्यासकार हैं। उन्होंने उपन्यास के वे सभी तत्व अपने उपन्यासों में पिरोये हैं, जो उपन्यास के आवश्यक अंग हैं। उपन्यास नाटक के करीब की विधा है। अतः किंचित हेरफेर से इस विधा के भी सामान्यतः वे ही विविध तत्व हैं, जो कहानी तथा नाटक के होते हैं। ये

---

[1] हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास–श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी

विविध तत्व परस्पर इस प्रकार घुले–मिले रहते है। कि इन्हें एक दूसरे से अलग करके इस विधा का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। अतः हम उपन्यासों के मूल भूत तत्वों के आधार पर मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की समीक्षा करेंगे। ये मूलभूत तत्व निम्नलिखित हैः–

1. कथानक अथवा कथावस्तु
2. पात्र एवं चरित्र चित्रण
3. कथोपकथन अथवा संवाद
4. देशकाल एवं वातावरण
5. भाषा–शैली
6. उद्देश्य

अंत में निष्कर्ष अथवा समीक्षा प्रस्तुत की जाती है। मैत्रेयी जी के उपन्यासों की उपर्युक्त तत्वों के आधार पर समीक्षा

१. कथावस्तु अथवा कथानक

यह उपन्यास का प्राण–तत्व है और इसका समग्र रूप इसी के सहारे विकसित होता है। अतः कथानक के चयन में ही उपन्यासकार की कला के दर्शन होते हैं। इसके लिए जीवन का परिपूर्ण ज्ञान उपन्यासकार के लिए अपेक्षित है। साथ ही, इसके विन्यास के लिए क्रम तथा कार्य–कारण श्रृंखला को बनाये रखना भी आवश्यक है। जीवन और जगत का प्रत्यक्ष अनुभव जिस उपन्यासकार का जितना अधिक और व्यापक होगा, उसके कथानक में उतनी ही सजीवता और सप्राणता होगी। उपन्यास के कथानक में सत्यता, मौलिकता, नवीनता तथा उसकी घटनाओ के नियोजन में क्रमिक संगठन एवं रोचकता आदि गुणों का होना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त उसमें जीवन की विविध समस्याओं की व्याख्या एवं अवस्थाओं और पक्षों का मूल्यांकन होना चाहिए।

स्रोत की दृष्टि से कथानक इतिहास प्रसिद्ध या लोक–प्रचलित हो सकता है। इसे 'प्रख्यात कथानक' कहते हैं अथवा उपन्यासकार की नितान्त कल्पना पर आधारित होने पर भी यथार्थ जीवन के मेल में हो सकता है। इसे 'उत्पाद्य कथानक' कहते हैं, अथवा इन दोनों का मिश्रित रूप हो सकता है। इसे 'मिश्र–कथानक' कहते हैं।

कथानक की वह मूल कथा जो उपन्यास में आद्यन्त विद्यमान रहती है, उसे 'आधिकारिक–कथावस्तु' कहते हैं। लेकिन वे कथाएँ, जो आद्यन्त विद्यमान रहती है उसे आधिकारिक कथावस्तु कहते हैं लेकिन वे कथाएँ, जो आद्यन्त विद्यमान रहती, पर फिर भी प्रधान नायक की फल प्राप्ति से सम्बद्ध नहीं होती अथवा बीच में आकर बीच में ही समाप्त हो जाती है या अन्त में जाकर समाप्त नहीं होती हैं। लेकिन हर स्थिति में ये मूल–कथा को गति देती हैं। इन्हें 'प्रासंगिक कथावस्तु' कहते हैं।

इसके दो भेद हैं – 1. पताका, यह प्रासंगिक कथा, मूलकथा के साथ अन्त तक विद्यमान रहती है। 2. प्रकरी, यह कहीं बीच में उत्पन्न होकर बीच में ही कुछ दूर चलकर समाप्त हो जाती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में भाषागत बिम्बों और दृश्यों को सजीव कर देने की अपनी अद्भुत क्षमता के साथ वे जिस कथानक की रचना करती हैं, उसे पढ़ना कथा–रस के एक विलक्षण अनुभव से गुजरना है। उन्होंने हिन्दी कथा–धारा को वापस गांव की ओर मोड़ा और हमें कई अविस्मरणीय चित्र दिये। इन कथानकों ने शहरी मध्यवर्ग को उस देश की याद दिलाई जो धीरे–धीरे शब्द की दुनिया से गायब हो चला है। यानि जय जवान और जय किसान वाला देश। कहते हैं, सम्पूर्ण राष्ट्र की सम्पदा का भार किसान के कंधो पर होता है, फिर हम उसे कैसे भूल सकते हैं पर भूल गये थे, इस शहरी चकाचौंध में और इसी चकाचौंध को बना डाला अपने साहित्य का लेखन। लेकिन अचानक नब्बे के दशक में मैत्रेयी के पदार्पण ने पुनः हमें उस मिट्टी की खुशबू से परिचित कराया, जिससे देश की 80 प्रतिशत जनता दारोमदार रखती है।

इदन्नमम, विजन, चाक, अल्मा कबूतरी, झूलानट के कथानक बेहद सुसगठित हैं, जिन्हें मैत्रेयी पुष्पा जी ने अपनी समर्थ दृश्यात्मक भाषा और गहरे जुड़ाव के साथ आकार दिया है।

यहाँ प्रस्तुत कथानकों में मैत्रेयी जी ने अपनी सशक्त रचनात्मक क्षमता का भरपूर प्रयोग किया है। इनके कथानक गहरे मानवीय भावों के कारण पाठक के मन में गहरे उतर जाते हैं, और यह चीज लेखिका की भाषा सामर्थ्य और गहरे चरित्र–बोध को सिद्ध करती है।

शहरी मध्यवर्ग के सीमित उपन्यास व कथा–संसार में मैत्रेयी पुष्प के कथानक उन लोगों को लेकर आये है जिन्हें आज समाजशास्त्री 'हाशिए के लोग' कहते हैं। ऐसे ही लोगों को अपने कथानकों का आधार बनाकर मैत्रेयी जी ने हिन्दी साहित्य के उपन्यास क्षेत्र में हलचल मचा दी। उन पर आरोप लगे कि वे भुज–गंवारों को लेकर कहानियाँ रचनायें करती है, पर मैत्रेयी जी के अनुसार "क्या वे देश का हिस्सा नहीं? क्या उनमें भावनाएँ नहीं? वे भले भुज–गंवार हो लेकिन भारत देश की सही और सच्चा रूप वहीं उजागर करते हैं। वे हमारी संस्कृति और सभ्यता का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी में मैनें उन्हें अपने कथानकों का आधार माना, फिर मैं भी उनमें से एक हूँ।" इसी से उनके कथानक यथार्थ को प्रस्तुत करते हुये मानव–जीवन की सच्चाइयों को उजागर करते हैं। सामाजिक रीतिरिवजों, कुप्रथाओं, आडम्बरों, धार्मिक कर्मकाण्डों आदि के कारण नारी को कितना यातनापूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ता है, उसी का जीवन्त वर्णन मैत्रेयी जी के उपन्यासों में दिग्दर्शन है, हृदय को स्पर्श कर लेने वाली सच्चाई यहाँ मौजूद है।

एक उपन्यास के कथानक में मौलिकता, रोचकता, स्वाभाविकता, विश्वसनीयता, सम्बद्धता, संगठनात्मकता, मार्मिकता और प्रवाहमयता सभी गुण होने चाहिए। मैत्रेयी जी के उपन्यास के कथानकों में उपयुर्क्त समस्त गुण मौजूद हैं। उनके उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ की तत्कालीन और वर्तमान परिस्थितियों और समस्याओं का बड़ा ही विशद् चित्रण है। निम्नवर्ग और ग्रामीण जीवन को केन्द्र बनाकर मध्यवर्गीय सामाजिक–पारिवारिक समस्याओं का बड़ा ही सजीव आदर्शोन्मुख चित्रण लेखिका ने किया है। ग्रामीण वर्ग का जीवन छल प्रपंच से रहित किन्तु अनेकानेक बिडम्बनाओं से रंजित जीवन है। जिसका सफल चित्रण मैत्रेयी जी ने दिखावे से परे किया है। उनके कथानक आंचलिकता से सराबोर हैं। किसी अंचल विशेष को प्रमुख आधार बनाकर कथानक लिखे गये हैं, साथ ही अनेक छोटे–छोटे गांवो–कस्बों की सामाजिक, आर्थिक धार्मिक, राजनैतिक परिस्थितियों का अवलोकन भी किया गया है।

सफल, आंचलिक उपन्यासकार के लिए कथानक में निम्न विशेषताओं की योजना करनी पड़ती है–

1. कथानक ग्रामीण अंचल से सम्बन्धित हो।
2. कथानक की घटनाएं सुश्रृंखलित हों।

3. उपन्यास की कला में तीव्र वेग हो।
4. आरम्भ से अन्त तक उत्सुकता का निर्वाह हो।

मैत्रेयी जी ने अपने कौशल से इधर–उधर बिखरी हुई सामग्री को इस प्रकार संजोया है कि उसमें कथानक के सभी गुणों का सन्निवेश हो गया है यथा–

१. मौलिकता–

मैत्रेयी पुष्पा जी के कथानक की प्रमुख विशेषता है उसका सर्वथा मौलिक होना। वे कहीं से चुराये अथवा नकल किये हुये नहीं हैं। मौलिकता का कारण स्वयं उनका अपने निजी अनुभवों को पाठकों के समक्ष कथानक के रूप में बांटना है। मौलिक इसलिए भी, क्योंकि अभी तक हिन्दी उपन्सास साहित्य संसार में ग्रामीण परिवेश को आधार बनाकर बहुत कम लिखा गया है, खासकर बुन्देलखण्डी परिवेश, यहां का रहन सहन, धार्मिकता, समाजिकता, राजनैतिकता, कर्मकाण्ड, रीति रिवाज, प्रथाओं, विडम्बनायें, संस्कृति पर बहुत कम लेखकों व लेखिकओं ने दृष्टिपात किया है। मैत्रेयी जी ने यहाँ के निम्न, मध्यम व ग्रामीण लोगों के जीवन का लेखाजोखा प्रस्तुत कर साहित्य में एक नवीन व मौलिक धारा को जन्म दिया।

२. सुगठितता–

मैत्रेयी जी के उपन्यास सुगठित और सुदृढ़ है वे अनावश्यक रूप से बिखरे हुये नही हैं। कई बार उपन्यासकार विस्तृतता के फेर में कथानक से भटक जाता है और अलग ही प्रसंग छेड़ उठता है और उसी को गति देने में ही अनावश्यक विस्तृतता दे डालता है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में यह दोष नहीं दिखलाई देता, वे जो कथानक लेकर चलती हैं, वहीं कथानक अन्त तक अपनी पैठ बनाये रखता हैं। यह अलग बात है, कि बीच–बीच में अन्य छुट–मुट प्रसंग या कहानियाँ साथ–साथ चलती रहती हों, लेकिन उनका भी अपना महत्व होता है और वे प्रमुख कथानक को सुदृढ़ता प्रदान करती हुयी आगे बढ़ती चलती हैं, जिससे पाठक को प्रमुख कथानक को समझने में दिक्कत का सामना नहीं करना पड़ता।

३. रोचकता-

मैत्रेयी जी के उपन्यासों का एक प्रमुख गुण उसका रोचक होना भी है। जब तक कथानक में रोचकता न हो, उसे पढ़ने में उत्कण्ठा नहीं जागती। रोचकता एक ऐसा गुण हैं, जो पाठक को अपनी ओर आकर्षित कर उसे सम्पूर्ण कथानक पढ़ने पर मजबूर कर देता है। रोचकता का समावेश करने के लिए उपन्यासकार अपने कथानक में विविध घटनाओं, मनोंरजक वार्तालाप, विविध कर्मकाण्डों का अलग ढ़ंग से वर्णन करता हैं, जिसे पाठक रूचि पूर्वक पढ़ता है। मैत्रेयी जी ने अपनी रचनाओं में विविध घटनाचक्रो मानवीय भावों, क्रियाकलापों तथा अपने व्यक्तिगत अनुभवों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर उसमें रोचकता का गुण बरकरार रखा है। वे पाठकों की नब्ज पकड़ने में सफल व सिद्ध उपन्यासकारा है। उन्हें यह पता होता है कि किस वर्ग का व्यक्ति क्या सोचता व पसन्द करता है। अतः वे उसे 'बोल्ड' व उन्मुक्त ढ़ंग से पाठक के समक्ष रखती हैं। आधुनिकता, उन्मुक्तता व 'बोल्डनेस' आज के समय की पहली मांग है। जिसमें मैत्रेयी जी खरी उतरती है।

४. स्वाभाविकता-

स्वाभाविकता एक ऐसा गुण है जो हर वर्ग के व्यक्ति को सहज रूप से अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। चाहे, व्यक्ति हो या उपन्यास यदि उसमें, स्वाभाविकता नहीं, तो लोग उसमें रूचि नहीं लेते, बल्कि हेय या उपेक्षित समझते हैं, क्योंकि वह उन्हें अपने जैसे, अपने आस पास के माहौल से सर्वथा प्रथक दिखलायी देते है जो सहज व सरल रूप से उनके गले नहीं उतरते। अतः उपन्यासकार को चाहिए कि वह अपने कथानक में स्वाभाविकता बनाये रखे तथा वही प्रसंग व वार्तालाप का चित्रांकन करे जो परिस्थिति के अनुसार स्वाभाविक हों। मैत्रेयी जी के उपन्यास स्वाभाविकता के गुण से लबरेज हैं। वे इतने स्वाभाविक हैं कि ऐसा लगता है कि वे हमारे आस पास घटित हो रहे है व उनके पात्र हमारे जीवन का हिस्सा हों तथा उनकी भाषा हमारे जीवन के बेहद करीब है, जो हमें उनके और करीब लाती है। पात्रों के भाव बेहद स्वाभाविक व हृदयस्पर्शी हैं। कथानक ज्यो-ज्यों आगे बढ़ता है हम सहज अनुमान लगाते हैं कि अब आगे क्या होने वाला हैं? जो स्वाभाविक है।

५. विश्वसनीयता–

ऐतिहासिक, आंचलिक और आत्मकथात्मक उपन्यासों के कथानकों का आधार उसकी विश्वसनीयता है। विश्वसनीयता के आधार पर ही ऐसे उपन्यासों का मूल्यांकन किया जाता है। मैत्रेयी जी के समस्त उपन्यासों का आधार बुन्देलखण्डी जमीं में बसे छोटे गांव व कस्बे हैं। जगहों व व्यक्ति के नाम सत्य हैं व घटनाक्रम भी सच्चाई से ओतप्रोत है। अतः अविश्वसनीयता का तो सवाल ही नहीं उठता। जगहों के नाम (जैसे– झाँसी, ऊरई, कोंच, कालपी, जालौन, जखनवारा, देवगढ़, ओरछा, बरूआसागर, मोंठ, एरच, एट इत्यादि) तो सत्य हैं ही, साथ जिन ही व्यक्ति विशेष के नामों का उल्लेख है, वे वर्तमान समय में मौजूद हैं। मैत्रेयी के कथानकों की विश्वसनीता का सबसे बड़ा कारण बुन्देलखण्ड में बिखरी पड़ी निम्न जातियों का विद्रूपताओं से भरा जीवन, यहां का नारी जीवन, उसकी समस्यायें, जिससे हम बुन्देलखण्डवासी नित्य रूबरू होते हैं, भोगते हैं और उस सच्चाई को अपनी आंखो देखते भी हैं। ये उपन्यास व कथानक तो उन लोगों के लिए हैं जिन्होनें इन हाशिये के लोगों के जीवन से अपनी आँखे मींच रखी हैं। अपने स्वाभाविक कथानक से ही मैत्रेयी उन अलग थलग पड़े लोगों से समाज का सामना कराना चाहती हैं।

६. सम्बद्धता–

मैत्रेयी जी के कथानक घटनाओं, वार्तालापों, तीजत्योहारों आदि से सम्बद्धता रखते हैं। वे सही मौके पर सही घटना का वर्णन करती हैं। असमबद्धता कथानक को बोझिल बनाती है। पाठक भटक जाता है। अतः उपन्यासकार को चाहिए कि वह कथानक को हर घटनाचक्र व क्रियाकलाप से सम्बन्धित रखे। एक उपन्यास में प्रमुख कथानक के साथ अन्य छोटे मोटे कथानक भी साथ–साथ चला करते हैं। उन्हें मुख्य कथानक से सम्बन्धित होना चाहिए। मैत्रेयी जी के उपन्यासों की समस्त घटनायें, क्रियाकलाप कहीं न कहीं जाकर मुख्य कथा से जुड़ते हैं।, जो कथानक की पहली शर्त हैं। मैत्रेयी अनेक छोटे–छोटे प्रसंगों व पात्रों को लेकर अपनी कथावस्तु रचती हैं, लेकिन वे अप्रसांगिक नहीं होते। वे मुख्य कहानी से सम्बन्धित हो उसकी रोचकता व विस्तृतता को बनाये रखते हैं। जो उपन्यास के प्रमुख तत्व हैं।

७. मार्मिकता-

कथानक में मार्मिकता का भी समावेश होना चाहिए। मार्मिक प्रसंग के माध्यम से उपन्यासकार पाठक में रूचि का समावेश कर सकता है। मार्मिकता एक ऐसा तत्व है, जो मानव हृदय को तीव्रता से स्पर्श करता है तथा उसे पात्र या व्यक्ति विशेष के बेहद करीब ले आता है। उपन्यासकार मार्मिक प्रसंगों के माध्यम से कथानक में प्रभाव ला सकता है। मैत्रेयी जी ने अपने कथानकों में यथास्थान मार्मिक व हृदयस्पर्शी प्रसंगो से एक विशेष प्रभाव छोड़ा है फिर चाहे मैत्रेयी का पहला उपन्यास 'बेतवा बहती रही' हो या आखरी उपन्यास 'कही ईसुरी फाग' हो। उन्होंने उचित समय कथानक में वास्तविकता से लबरेज मार्मिक प्रसंगों को छेड़ पाठक के हृदय में पात्र विशेष के प्रति सहानुभूति भर दी है। हमारा मन व हृदय विद्रोह कर उठता है उस व्यवस्था व सभ्यता के प्रति, जो मानवीय मूल्यों का हनन करती आयी हैं। और हम मन ही मन एक निर्णय ले उठते हैं इस व्यवस्था से टकराने का, इसे सुधारने का और यह सब सम्भव हो पाता है वास्तविक मार्मिक प्रसंगों से।

८. तीव्रता-

तीव्रता कथानक का आवश्यक गुण है। इसके अभाव में कथानक में बोझिलता व एकरसता आने लगती है। अतः उपन्यासकार को चाहिए कि वे अपने कथानक में विविध घटनाचक्रों के माध्यम से तीव्रता या गतिशीलता बनाये रखे। गति के अभाव में मानव व जीव जन्तु मरणासन्न माने जाते हैं। कहते हैं गतिहीनता जीवन थाम लेती है और जीवन थमना नहीं चाहिए जीवन तो चलते रहने का नाम है और जीवन साहित्य का अंग है, वह थमेगा तो साहित्य थमेगा, साहित्य थमेगा तो जीवन। अतः गतिशीलता जीवन व साहित्य दोनों का अनिवार्य अंग हैं मैत्रेयी जी इस बात को बखूबी जानती हैं तभी तो विविध रोचक घटनाक्रमों के माध्यमों से कथा को गतिशीलता प्रदान करती हैं। उनके कथानक हर गद्यांश के बाद तीव्र गति से नया मोड़ लेते दिखलायी देते हैं, जिससे पाठक में नवीन शक्ति व रोचकता जागृत होती है और वह कथानक की तीव्रता को भी बढ़ा देता है। मैत्रेयी जी के कथानकों में एकरसता व बोझिलता के प्रसंग बिल्कुल देखने को नहीं मिलते,

क्योंकि वे आम व्यक्ति के जीवन की समस्याओं से लबरेज है और हमारे हृदय को छूते हैं—तीव्रता से।

९. संभवता-

मानवीय क्रियाकलापों और घटनाक्रमों के माध्यम से जो कुछ संभव होने वाला हो, उसका चित्रांकन उपन्यास व कथानक को सफल बनाता है। इस मामले में मैत्रेयी सिद्ध और प्रसिद्ध कथाकार हैं। वे उन सभी सम्भावित घटनाओं को कथानक में समेट लेती हैं, जो हो सकती है और होने वाली होती हैं। वे सभी संभव परिस्थितियों का अवलोकन कर कथानक को अंजाम देती हैं। कब कौन सी परिस्थिति या कब कौन सा व्यक्ति क्या उपस्थित कर सकता है, इसका गुणा—भाग मैत्रेयी जी पहले ही लगा लेती हैं और उसका यथायोग चित्रण भी कर देती हैं, जिससे पाठक की मानसिक शक्ति सुदृढ़ होती है और वह स्वयं संभाव्य परिस्थितियों का अवलोकन करने लगता है। मैत्रेयी जी अपने कई कथानकों का अन्त पाठक पर छोड़ देती हैं, विभिन्न परिस्थितियाँ व संभावनाये लाकर। अब पाठक को स्वतः संभावना के बल पर अनुमान लगाना होता है कि आगे क्या होगा? यह पाठक के मानसिक विकास का क्रम है और उसके समझने—सोचने की परीक्षा।

१०. आंचलिकता-

मैत्रेयी जी के उपन्यासों का आवश्यक गुण है आंचलिकता। आंचलिकता का तात्पर्य है किसी अंचल विशेष की समस्त सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक व सांसकृतिक गतिविधियों का कथानक की मांग के अनुसार सफल चित्र, साथ ही वहाँ की संस्कृति—सभ्यता, लोगों के रहन—सहन, वेशभूषा, रीतिरिवाजों, प्रथाओं, मान्यताओं आदि का सुन्दर चित्रांकन। मैत्रेयी जी ने अपने समस्त उपन्यास व कथानक बुन्देलखण्ड की जमीं में रचे बसे गांवों व कस्बों को लेकर रचे हैं। प्रमुख कथानक किसी विशेष अंचल को लेकर चलता है बाकी कथानक अन्य कस्बों व गांवों से भी सम्बन्धित होता है, जो वहां की संस्कृति से हमें परिचित कराता है। मैत्रेयी जी के उपन्यास आंचलिकता के आधार पर बेहद सफल हैं। बुन्देलखण्ड को उसके आंचलिक वैशिष्ट्य में प्रस्तुत करने के लिए मैत्रेयी जी ने बुन्देलखण्डी इतिहास, भूगोल, गढ़ी, किला, मंदिर, ग्राम, नगर, खण्डहर, नदी—नाले, बुन्देलखण्डी

आचार व्यवहार एवं उत्सव–त्यौहार और बुन्देलखण्डी लोकगीतों का आश्रय लिया है। इनके उपन्यासों में बुन्देलखण्ड का समग्र चित्रांकन मौजूद है।

इस प्रकार हम देखते है कि मैत्रेयी जी के कथानक श्रेष्ठ सामाजिक कथानक हैं। वास्तव में इनके कथानक नारी चरित्र प्रधान समस्या मूलक उपन्यास हैं। इनके कथानक ज्यों–ज्यों आगे बढ़ते है, पाठक के साथ संवेदनात्मक तादाम्य स्थापित करते चलते हैं।

२. पात्र एवं चरित्र चित्रण

पात्रों का निर्माण और उनका चरित्र यथार्थ के बहुस्तरीय रूपों को ध्यान में रखने के साथ ही मानव की सहज गुणात्मकता और ईर्ष्या, और कमजोरी आदि की स्थितियों की वास्तविकता के संदर्भ में ही विकसित और पर्यवसित होता है।

प्रत्येक पात्र मैत्रेयी के इस अनुभव को ही सिद्ध करते हैं कि 'सत्य की सदैव हत्या हुई है'। आदर्श नैतिकता, चारित्रिकता आदि आस्था के सम्बलों की यथार्थ जीवन में निरर्थकता तथा धन तथा पद के कारण पैदा होने वाली टूट और हताशा का स्तर भी पात्रों के द्वारा उद्‌घाटित और प्रत्यक्ष होता है। पात्रों के चरित्र प्रतिरोधात्मक होते हुये भी मानवीय एवं सहज हैं। चरित्र को दृश्य की भांति प्रस्तुत ही नहीं किया गया है, उसे तादात्म्य के स्तर पर एक व्यक्ति के रूप में प्रस्तावित करके अनुभूति की प्रामाणिकता का आधार बनाया गया है।

प्रत्येक पात्र की व्यक्तिमयता और औपन्यासिक महत्ता उपन्यास की संरचना की दृष्टि से अक्षुण्ण होती है, इसलिए न तो कोई पात्र विशिष्ट होता है और न ही सामान्य। क्योंकि प्रत्येक पात्र एक अवयव के रूप में पूर्ण है और प्रत्येक अवयव मिलकर एक अवयवी का निर्माण करते हैं जिसे उपन्यास कहा जाता है। इस अर्थ में उपन्यास एक कथा न होकर मात्र एक अनुभव या प्रतीति होता है। अनुभव जितना ही विस्तृत और गहरा तथा मानवीय होता है उतना ही वह उपन्यास उत्तम होता है। यथार्थ जितना ही विस्तृत और कई स्तरों वाला होता है, उतना ही वह अनुभव को गहराई और मानवीयता प्रदान करता है। मैत्रेयी जी के समस्त उपन्यास अनुभवजन्य और गहरे यथार्थ से जुड़े संवेदनात्मक उपन्यास हैं।

पात्रों के समग्र व्यक्तित्व को उसकी मानसिक रूचि और इच्छा के साथ अभिव्यक्त करना यानि पात्र को व्यक्तित्व प्रदान कर देना एक कला है और इस कला में मैत्रेयी जी लगता है कुछ गुणों के कारण सिद्ध हस्त हैं। 'चुप रहना' तो बहुत बड़ी कला है और इस साधना की परिणति है 'झूलानट' का बालकिसन, 'विजन' की नेहा, 'इदन्नमम' की कुसुमा, 'कही ईसुरी फाग' की ऋतु, 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी, 'चाक' की सारंग, तथा 'कस्तूरी कुंडल बसै' की मैत्रेयी आदि, जिनके अन्तर और वाह्य को पुष्पा जी ने अन्तरद्वन्द्व और कुछ सिसकियों और आहों में ही उत्कीर्ण कर दिया है। ये पात्र प्रसंगवश अपेक्षाकृत कम बोलते हैं लेकिन प्रभाव अधिक जमाते हैं–

"मैत्रेयी न वक्तव्य देती है, न भाषण। वह पात्रों को उठाकर उनके जीवन और परिवेश को पूरी नाटकीयता में 'देखती' हैं। संबंधों के बीहड़ों में धीरे–धीरे उतना उन्हें बेहद पठनीय बनाता है।"[2] उनके उपन्यासों में संकेतो, ध्वनियों, आकृतियों और भंगिमाओं से भावना और विचार को सम्प्रेषित करने की कला के कारण पात्रों को मानवीयता और सजीवता मिल सकी है।

पात्रों के चरित्र चित्रण की दो प्रमुख विधियां है– एक प्रत्यक्ष और दूसरी अप्रत्यक्ष। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों के पात्रों का चरित्र उभारने के लिए दोनों ही विधियों का आश्रय लिया है। प्रत्यक्ष विधि के अनुसार उपन्यासकार पात्रों के विषय में स्वयं आवश्यक जानकारी देता है। अप्रत्यक्ष विधि के चरित्र चित्रण में पात्रों के संवाद और घटनाओं के द्वारा पाठक को स्वयं पात्रों के चरित्र का आंकलन करने की स्वतन्त्रता दी जाती है। मैत्रेयी जी ने पात्रों के संवाद और घटनाओं के साथ–साथ आवश्यक टिप्पणियां स्थान–स्थान पर दी हैं। पात्र चाहे प्रमुख रहा हो, चाहे गौण, प्रत्येक की विश्वसनीता और जीवन्तता को मैत्रेयी जी ने विशेष स्थान दिया है। पात्रों के बाहरी क्रियाकलापों के अतिरिक्त मैत्रेयी जी ने उनके अन्तर्द्वन्द्व की ओर भी पूरा ध्यान दिया है। बिना इसके पात्र का पूरा व्यक्तित्व नहीं उभर पाता, क्योंकि वास्तविक जीवन में कोई भी व्यक्ति वहीं नहीं होता, जो कुछ वह करता है। वह जो कुछ और जैसा कुछ सोचता है, उसका भी उसके व्यक्तित्व की पहचान में प्रमुख अंश होता है। सामान्य तौर पर सभी पात्रों में और विशेष रूप से 'इदन्नमम' की मंदा व बऊ, 'झूलानट' का बालकिसन, 'कस्तूरी कुंडल बसै' की पुष्पा व कस्तूरी, 'विजन' की डा0

[2] 'झूलनाट' की भूमिका से – राजेन्द्र यादव – पृष्ठ 05

नेहा, 'चाक' की सारंग आदि के चरित्र चित्रण पर मनोविश्लेषण का पुट दिया गया है। यथा– 'झूलानट' का बालकिसन' अन्तर्मुखी पात्र है, उसके भीतर सदैव द्वन्द्व चलता रहता है कभी माँ को लेकर, तो कभी पत्नी शीलो को लेकर। जिस कारण उसके सोच विचार और क्रियाकलाप में समानता नहीं बैठ पाती। सास और बहू के झगड़े में वह निर्णय ही नहीं कर पाता कि कौन सही है–

एक अति भद्दी गाली अम्मा ने शीलो के नाम जड़ दी, तो वह भीतर ही भीतर कराह कर रह गया – आय डुकरों, तें कब मरेगी।

दो पल बाद ही पछताता–औरत के कारण देवी जैसी माँ के लिए कुभाखा! नरक में ठौर न मिलेगा उसे, पापी।

माँ और पत्नी के चलते सदैव अपने को कसूरवार मानता है– कोठे में भरे अंधियारे में लिपटा पड़ा रहा कलजुगी बेटा। पापी पुत्र। धिक्कारता रहा खुद को और माफी मांगता रहा मन ही मन – पांवो में ताकत आते ही तेरी मढ़िया ढारूँगा।

कुछ देर बाद सोचता–"कलह की असल जड़ अम्मा.....होश में आओ। पेशाब की हाजत के चलते पनारे पर जाने की सोच रहा था, मगर नहीं जाना अब। मंशा तक नहीं जतानी। माँ सोचेगी, "बेटा उस औरत के डर से बहाना गढ़ रहा है।" हारी–बीमारी के चलते भी वह माँ का लाया दूध–दलिया तुरन्त खा लेता है और इसके एक क्षण पश्चात ही पत्नी शीलो भी दूध दलिया ले आती है, कहती है – "चमची से कहाँ तक खाओगे। चलो, पी लो जल्दी जल्दी।"

अब क्या हो? कड़ा जी करके, पीने नहीं, सूँतने लगा दलिया–दूध। बेला एकदम खाली। बालकिसन ने गर्दन घुमाकर शीलो को देखा, जैसे शाबासी लेना चाहता हो। बचपन से ही बालकिसन अन्तर्मुखी बालक था। चाहकर भी वह कभी अपनी रूचि–अरूचि के बारे में नहीं बता पाया। जो उसके साथ होता गया। वह उसे अपनी नियति मानता गया।[3]

'बेतबा बहती रही' की उर्वशी एक ऐसा पात्र है जो दरिद्रता और सामाजिक बंधनों से अभिशप्त है। एक ऐसा पात्र जो ताउम्र कष्टों को भोगकर दूसरों को जीवन दान देती है।

---

[3] 'झूलनाट' – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 12

इसी प्रकार 'चाक' उपन्यास की सारंग और रेशम एक सशक्त पात्र हैं, जो समाज का ठेका लेने वालों के मुख पर एक तमाचा हैं। जो सामाजिक बंधनों और रूढ़ियों को मानने से इंकार कर देती है और सत्य और न्याय का पक्ष लेती हैं। लेकिन अन्याय के प्रति समाज के गूंगे लोगों का मुख देखकर उसका ह्रदय चीत्कार कर उठता है–

मेरे ससुर गजाधर सिंह, चचिया ससुर खूबाराम, ग्राम प्रधान फत्ते सिंह, पुराने जमींदार नबरदार, ग्राम सेठ भवानी दास, पंडित चरन सिंह से लेकर ऊँची नीची कौमों के तमाम बूढ़े–बड़े गुमसुम क्यों रह गए? इनकी जिहवा क्यों लकड़ा गई? ये पुरूष–महापुरूष शाबाशी के पात्र हैं या धिक्कार के? इनकी लाज–लिहाज हम क्यों करते हैं? हम सारी अवस्था शीश झुकाकर काट देते हैं, इनके सम्मान में, क्यों? आज मुझसे भी कोई उत्तर नहीं बन पा रहा है, तो ये भी क्या बताएंगे कि ये लोग हमारी हत्याओं के गवाह नहीं, तमाशबीन बनकर क्यों रह जाते हैं? अन्याय के नाम पर ये गूँगे हो जोने वाले संरक्षक........

अत्याचार ढोर भी सहन करना नहीं चाहता, सींग हिलाकर अपना विरोध दर्ज करता है वह भी। इन नरपुंगवो को किस योनि में शामिल किया जाए?[4] इन्हीं अनेकानेक सवालों से घिरी सारंग अंततः स्वयं न्याय व सत्य का साथ देने की ठान लेती है।

'अल्मा कबूतरी' की पात्र 'अल्मा' एक ऐसी पात्र है– जो जिंदगी के कठोर अनुभवों को झेलकर आगे बढ़ती जाती है वही उसका प्रेमी राणा स्वप्नलोक में विचरने वाला युवक है।

'अगनपाखी' उपन्यास की प्रमुख पात्र भुवनमोहिनी एक ऐसी पात्र है जो सम्पत्ति के लिए सदियों से चले आ रहे हत्या, अनुष्ठानों में झोंक दी जाती है और फिर शुरू होते हैं सामंती दांवपेंच।

'विजन' की प्रमुख पात्र 'डा0 नेहा' दयालुता, सत्य और न्याय से परिपूर्ण पात्र हैं, जो निरन्तर अन्तर्द्वन्द्व में रहने के पश्चात् अन्ततः सत्य की ओर अग्रसर होती है।

---

[4] 'चाक' – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 46

'कस्तूरी कुंडल बसै' उपन्यास की दो प्रमुख पात्र कस्तूरी और मैत्रेयी ऐसी पात्र हैं, जहाँ कस्तूरी एक विधवा स्त्री होने के बाद समाज से लोहा लेकर अपनी अलग साख बनाती है और सामाजिक रूढ़ियों, बंधनों और कुव्यवस्थाओं को मानने से इंकार कर देती है और निरन्तर कठिनतम् परिस्थितियों से गुजरते हुये एक आदर्श जीवन यापन करती है, वहीं उसी की बेटी मैत्रेयी एक ऐसी पात्र है जो युवावर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, जो समाज और माँ के बनाये नियम–कानूनों को धता बता अपनी अलग ही दुनिया रचती बसती है। हिन्दी साहित्य क्षेत्र में ये दो पात्र अपना अलग ही महत्व रखते हैं।

अनुकूलता, स्वाभाविकता , प्राणवत्ता, मौलिकता और मानव–जन्य संवेदना का होना, ये पात्र के चरित्रांकन के आवश्यक गुण माने गये हैं। मैत्रेयी पुष्प के उपन्यासों के पात्रों में ये समस्त आवश्यक गुण पाये जाते हैं।

मैत्रेयी जी के कुछ उपन्यासों में पात्रों की संख्या बहुत है, पर इतने पात्रों को स्थान दिये बिना वे प्रमुख पात्र जैसे मंदा, कस्तूरी, मैत्रेयी, सारंग, उर्वशी, अल्मा आदि का विस्तृत जीवन साकार नहीं कर सकती थीं। मैत्रेयी ने पात्रों के चरित्र चित्रण में प्रेम को विशेष स्थान दिया है।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर हम कह सकते हैं कि मैत्रेयी जी ने पात्रों के चरित्र चित्रण में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है।

३. कथोपकथन अथवा संवाद योजना

किसी उपन्यास के कथोपकथन व संवादों के द्वारा उस कृति की कथावस्तु का विस्तार होता है, उसमें रोचकता, स्वाभाविकता आती है और चरित्रों का विकास होता है। मैत्रेयी पुष्पा द्वारा इन दोनों ही कर्मों, कथावस्तु का प्रसार व चरित्रों के विकास को अचूक कलात्मकता के साथ साधा गया है।

कथावस्तु के प्रसार में कथोपकथन व संवादों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। संवादों के बिना कथावस्तु बोझिल, प्रवाह हीन व अपनी स्वाभाविकता से अलग हो जाती है और फिर मैत्रेयी जी के समस्त उपन्यास ग्रामीण पात्रों से रचे बसे हैं, वहाँ तो

सम्पूर्ण कथा का विकास ही संवादों, क्रियाओं प्रतिक्रियाओं और मनोविश्लेषण के सहारे होता है। ऐसे में कथोपकथनों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि साहित्य में चरित्र के अन्तर्मन में होने वाले चेतना के प्रवाह की सूक्ष्म व संवेदनात्मक अभिव्यक्ति तो संवादों, स्वागत भाषण, आत्मविश्लेषण, क्रिया–प्रतिक्रिया, हाव–भाव, के सहारे ही होती है।

मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में, घटनाएँ वाह्य नहीं चरित्रों के मानसपटल में घटित हैं और सृजनकर्ता अपनी शब्द साधना से, चेतना के सघन प्रवाह को, अभिव्यक्ति देकर कथा को गति प्रदान करता है व उसे मुखरित करता है। वाह्य जगत की घटनाएं तो ऐसे उपन्यासों में प्रायः गौण ही होती है और प्रमुख घटनाएं जो कि चरित्र के अंदर घटित होती है, को मात्र प्रस्फुटित करने वाली ही होती हैं। यदि ऐसी घटनाओं को, रचनाकार चरित्रों के माध्यम से ही न व्यक्त कर, उनका विवरण देने लगता है तो न केवल चरित्र व कृति, अस्वाभाविकता के शिकार हो जाते हैं बल्कि रचनाकार की कृति की कथा, चरित्रों व उनके व्यक्तित्व, मनः स्थितियों में अनुचित हस्तक्षेप ही कहा जाएगा।

किसी भी व्यक्ति के गुणों व अवगुणों का बहुत कुछ आभास उसकी वाणी से लग जाता है। अपने अथवा दूसरों के विषय में बहुत कुछ कहने सुनने की प्रवृत्ति, मनुष्य की स्वाभाविक व संस्कारगत प्रवृत्ति है। कथोपकथनों के द्वारा चरित्र अपने व्यक्तित्व का उद्घाटन ही नहीं करता बल्कि दूसरों की भी अनेक चारित्रिक दुर्बलताओं व विशेषताओं को जाने अनजाने उद्घाटित करता है। किसी उपन्यास का कथोपकथन, उसके पात्रों की मानसिकता परिवेश सामाजिक, आर्थिक स्थिति, व्यवहार, सोच–विचार और समझ का द्योतक होता है। सफल व प्रभावकारी कथोपकथन संयोजना वही है, जो स्वाभाविक तथा पात्र की मनः स्थिति के अनुकूल हो तथा उपयुक्त शब्दों के चयन से सम्पृक्त हो। सदा शब्दों के माध्यम से ही संवाद हो, ऐसा आवश्यक नहीं है। कभी कभी कहने के तरीके स्वर बलाघात या मौन तक संवाद सम्प्रेषण के अधिक प्रभावकारी माध्यम साबित होते हैं। संवाद कहने के भी अनेक रूप, रूदन, सहज वाक्य, भावभंगिमा, उपदेश, सुभाग, निदेश, आदेश व इशारा आदि हो सकते हैं।

मैत्रेयी कृत 'इदन्नमम' और 'झूलानट' उपरोक्त सभी तरह के संवाद प्राविधियों से रचे बसे हैं। संवादों में अहसजता न आए, उनकी स्वाभाविकता बनी रहें, जो उसे बोले या प्रदर्षित करे उसके चरित्र, व्यक्तित्व, मनःस्थिति, व परिवेश से उसके कथन व क्रियायें मेल खाएं, इसे मैत्रेयी जी ने बड़ी ही अचूक कलात्मकता से साधा है। जहाँ भी संवाद हैं वहाँ कहीं तो सपाट बयानी है, तो कहीं दो टूकता। ज्यादातर ग्रामीण भाषा व शब्दों का प्रयोग। चमकदार, परिष्कृत व पालिश किये हुये वाक्य मैत्रेयी जी के उपन्यासों में देखने को नहीं मिलते। वहाँ तो स्वाभाविक बयानी है। सीधे–सरल व सपाट शब्दों में। न बनावट है न जोड़तोड़। अधिकतर संवाद शैली सीधी–सीधी सरल शब्दों वाली है, परन्तु कहीं–कहीं सीधी भाषा में ही अतितीक्ष्म वक्रता है और कहीं कहीं सीधी सहज भाषा में कहा गया वाक्य, संपूर्ण दर्शन बन गया है।

"मैत्रेयी जानती हैं कि उपन्यास फिल्म की तरह एक कंपोजिट विधा है। नाटकीयता से उसका आकर्षण भी बढ़ता है और चरित्र भी खुलते हैं–बिना किसी आयास के। बेला फूले आधी रात की तरह। मैत्रेयी नाजुक प्रसंगो के अवसर पर उपन्यास लेखिका की तरह झीने पर्दे की ओर चली जाती हैं और ठेलकर पात्र को पर्दे के बाहर ढकेल देती है।। जो कहना उन्हें कठिन लगता है उसे वे संवादों को सौंप देतीं हैं, जितने और जैसे पात्र, उतने और वैसे संवाद। इसलिए उनके संवादों में न तो एकरसता है न ही बोझिलता।"[5] यथा–

कहानी 'केतकी' की नायिका केतकी अपने साथ हुये बलात्कार का खुलासा भरे पंचायत में करती है तो सब स्तब्ध रह जाते है – यथा –

"आप रेशमिया से पहले मुझे बता दो.....मैं किसका हाथ पकड़ लूँ" पुत्र सरीखे बालक का या पिता समान ससुर का......? प्रधान जी, आप ही बताओ.......किसका?
"मुझे तो आपका ही हाथ पकड़ना चाहिए।"

कह उसने गन्धर्व सिंह को ऊँचे आसन से बलपूर्वक नीचे खींच लिया।

"आपका अंश मेरे गर्भ में है।" वह बोली तो प्रधान का चेहरा रक्तविहीन, विवर्ण हो उठा।

---

[5] कान्ति कुमार जैन – पृष्ठ 47

......बहू–बहू मत कहिय। बहू–बहू यह रिश्ता आपके मुख से उच्चारना शोभा नहीं देता। अब सब यह सुन लीजिए कि जो मैं कहती हूँ वह झूठ नहीं है।''[6]

जुगुप्सा में भी घनघोर संवेदना भरने के कारण मैत्रेयी के संवाद व कथोपकथन गहरे मानवीय सरोकारों से लबरेज हो जाते हैं, यह संवाद देखिये–

''यहाँ औरतें हीं आती हैं बिन्ना''

क्यों

उनके आदमी लाते हैं

क्यों

नौकरी पाते हैं

कैसे

उनकी करिहाई के दम पर क्लीनर बनते हैं, कंडक्टर बनते हैं।

जब न तब इस कोठे से चीखें उठती हैं

मैत्रेयी चुप हैं।''

यह संवाद हमें सोचने पर मजबूर करता है कि पुरूष अपनी नीचता की कितनी गर्त में गिर सकता है और नारी जीवन भर तिल–तिल जलकर गलकर, भस्म होकर अपने पति की सहचरी बनी रहती है।

'झूलानट' का यह कथन–

''बछिया''–होगी।''

''न। बछिया–मछिया कुछ नहीं।''

''ऐं।''

''नहीं। बिल्कुल नहीं।''

''हाय गजब। गांव समाज को क्या मुँह दिखांएगें?''

''मुँह दिखने को किसी की गाय मारी है क्या?''

''अजस गठरिया मत बांधे मेरे सिर, हाँ।''

शीलो ने समझाया– ''तन मन का ब्याह। तीसरा कौन होता है हमारे बीच?[7]

उपरोक्त संवाद रीति रिवाज और कुप्रथाओं को मानने से इंकार करता है।

'बारहवीं रात' कहानी का तो सम्पूर्ण कथानक ही संवाद या कथोपकथन पर ही आधारित है। जिसमें आपसी बातचीत के माध्यम से बड़े ही सुन्दर ढंग से कहानी को

---

[6] 'चिन्हार – कहानी संग्रह – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 131 कहानी 'केतकी'

[7] 'झूलानट' – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 46

अंजाम दिया है कहानी का प्रारम्भ भी संवाद से है, और अन्त भी। इसी प्रकार कहानी 'बेटी' में मुन्नी का यह कथन– ''अम्मा, तुम मेरे साथ जो कर रही हो, वह कुछ अच्छा नहीं कर रहीं। तुम पाँच–2 लड़कों को पढ़ा सकती हो, लेकिन मेरे लिए तुम्हारे घर अकाल है.....मेरी किताब–कापी के पैसे तुम्हें भारी है अम्मा।''
''चुप होती है कि नहीं? बहुत जबान चल गयी है तेरी। तू लड़कों की बराबरी करती है। बेटे तो बुढ़ापे की लाठी है हमारी, हमें सहारा देंगे। तू पराए घर का दलिद्दर। तेरी कमाई नहीं खानी हमें........कह दिया, कान खोलकर सुन ले।'' यह सिर्फ मुन्नी या उसकी माँ का ही कथन नहीं 80 प्रतिशत भारतीय ग्रामीण बालिका जीवन का आईना है–

उपन्यास मानव जीवन का चित्रण होता है। मानव जीवन पारस्परिक मेल–जोल, संघात–संघर्ष और सम्मेलन पर आधारित है क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में एक–दूसरे के साथ आदान–प्रदान का अनिवार्य माध्यम है पारस्परिक वार्तालाप। इस बातचीत अथवा कथोपकथन अथवा संवाद के द्वारा ही मनुष्य अपने भावों और विचारों को एक दूसरे मनुष्य पर प्रकट करता है। अतः कथोपकथन या संवाद उपन्यास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनके अभाव में उपन्यास में जीवन में गतिशीलता और संघर्ष चित्रित नहीं हो सकते।

उपन्यास में कथोपकथन की उपयोगिता–

उपन्यास में कथोपकथन में निम्नांकित उपयोगताएं है–

1. कथोपकथन कथानक के विकास में सहायक होते हैं। ये जन–जीवन और घटनाओं के विषय में प्रकाश डालते हैं, वर्तमान का विश्लेषण करते हैं और भविष्य की घटनाओं का संकेत देते हैं। मन्दा और कुसुमा की बातचीत दोनों के विगत जीवन पर प्रकाश डालती है। बातचीत के माध्यम से ही पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का परिचय मिलता है। 'इदन्नमम' की मंदा, 'अल्मा कबूतरी' की अल्मा, 'चाक' की सारंग, 'झूलानट' का बालकिशन व शीलो आदि के कथन के माध्यम से ही आगे की घटनाओं का संकेत मिलता हैं।

2. संवाद पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं और आन्तरिक मनोभावों का उद्घाटन करते हैं। सारंग, मंदा, कस्तूरी आदि के संवाद उनकी सामाजिक और राजनीतिक रूचि

की ओर संकेत करते हैं, कुसुमा भाभी, शीलो, उर्वशी, ऋतु आदि के संवाद उनके प्रेमिका होने का संकेत देते हैं तो वहीं डॉ0 नेहा के कथन– मरीजों के प्रति कर्त्तव्य परायणता का संकेत देते हैं। संवाद व कथोपकथन पात्रों और नारी की सम–विषम परिस्थितियों व रूचियों पर भी प्रकाश डालते हैं।

3. संवाद या कथोपकथन समस्याओं को, कथा के मर्म और उद्देश्य को उभारते हैं। 'बेतवा बहती रही' में उर्वशी के दादा व भाई अजीत के बीच संवाद दहेज समस्या व कन्या जन्म समस्या, डॉ0 नेहा का अन्तार्लाप, भ्रष्टाचार की समस्या, 'रिजक' में शूद्र व चमारों का संवाद अश्पृश्यता की समस्या और समस्त नारी पात्रों का कथन व संवाद बुन्देलखण्ड की जमीं पर फैली अनेकानेक नारी जाति के जुड़ी समस्याओं को उजागर करता है। उपन्यास के मुख्य पात्रों के संवाद उपन्यासों की मुख्य समस्याओं और उद्देश्य को स्पष्ट करते हैं। पात्रों के साथ–साथ पाठक वर्ग के मनोभावात्मक तादात्म्य की स्थापना में सहायक। मैत्रेयी जी की कथायें ज्यों–ज्यों अग्रसर होती हैं, वह पाठकों के साथ संवादो के माध्यम से तादाम्य स्थापित करती जाती है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों के संवादों की विशेषताएं निम्नलिखित है–

१. पात्रानुकूलता–

मैत्रेयी के उपन्यासों के संवाद पात्रानुकूल हैं। इनके सभी पात्र प्रायः ग्रामीण वर्ग से सम्बन्धित है। उनकी भाषा व भाव सब ठेठ बुन्देलखण्डी व ग्रामयत्व से भरपूर हैं। तो कहीं पात्र के अनुसार अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। जैसा पात्र, जैसा वातावरण–परिवेश, वैसी ही भाषा। अतः उनके संवादों में बोलचाल के शब्दों का प्रयोग है–

➢ "मंदा!"
"हाँ बऊ'।'
"सोई नहीं बेटा?"
"नींद नहीं आ रही थी।"
"बऊ, तुम भी तो नहीं सोती।"

"बेटा, हमें तो भिरम, सा होने लगा है। झूठे को भी झपकी लगे तो चौंक कर जाग जाते हैं। लगता है, मन्दा रो रही है। स्याह अंधेरे में सिसकियां कानों के परदों से चमगादड़ की तरह टकराती हैं। रो तो नहीं रही हो बेटा?
"नहीं।"[8]

➢ दो बच्चों का आपसी संवाद देखिये– बाल सुलभ तोतलापन–
"गोलू, तेले पापा तुझे लेने क्यों नहीं आते?
"डाट्टर हैं मेरे पापा। छुई लगा देंगे।"
"मम्मी?"
"मम्मी कलब जाती हैं। तू जानता है अच्छय, कलब? बहौत बरा होता है।"
गोलू ने फिर छोटे–छोटे हाथ हवा में लहरा दिए,
"इत्ता बरा। इत्ता बरा........।" आँखे भी उसी हिसाब से फैलाती रहीं।
"तूने देखा है कलब?"
"बच्चे नहीं जाते वहाँ।" गोलू पुरखों की तरह समझाने की मुद्रा में।[9]

➢ इसी प्रकार दो लेडी डाक्टर आपस में बाते करती हैं–
"नेहा सुन रही हो डियर? कम से कम तीन को प्रोग्राम बनाना होगा। अपने फादर इन लॉ से कह दो, अर्जेण्ट काम से जाना है देहली और तुरन्त चली आओ।.........वेरी सून।"
"क्या काम है आभा दी। प्लीज बताइये।"
"वही, फॉरेन बॉडी ऑपरेशन। कॉम्पीकेटेड केस है। याद है तुम्हें, जब तुमने 'लाल–गुलाब' की सर्जरी की थी। आधा सेंटीमीटर लम्बा लोहे का टुकड़ा...... याद है न? वही हालत समझ लो। यहाँ डॉक्टर्स ने हाथ खड़े कर दिये हैं।"
"हाँ, हाँ आभा दी, मैं आने की कोशिश करूँगी। आय विल ट्राय माय बेस्ट।"[10] मैत्रेयी जी ने पात्रों के हिसाब से ही संवाद रचे हैं, जो अत्यन्त स्वाभाविक व बोलचाल के हैं।

---
[8] इदन्नमम–मैत्रेयी पुष्पा
[9] ललमनियाँ–कहानी संग्रह–कहानी 'बोझ'–मैत्रेय पुष्पा–पृष्ठ 49
[10] विजन–मैत्रेयी पुष्पा पृष्ठ–28

२. नाटकीयता-

मैत्रेयी जी के कथानकों में, संवादों में नाटकीयता भी है। संवाद अप्रत्याशित रूप से कथा में एक मोड़ पैदा कर देते है। उदाहरण के लिए–
बूढ़े झुर्री–भरे हाथ फेंक रहीं अम्मा–, " जगाए देती हूँ खसम को। बैरी पूत नींद–सुख ले रहा है और वह बाघिन छोड़ राखी है यहाँ...... "
"अरे, खूब जगा दो शेर सिंह को, देखे हमें खा जाए? और फिर भी आतमा सीरी न हों, तो उस लुखरा पुलसिया को भी ले आ, सूली चढा दे हमें......."
शीलो पूरी पूरी ताकत लगाकर गड़गड़ाई।
अम्मा कमर पर हाथ धरकर प्रकट हो पड़ी उसी दम, बालकिशन उठकर बैठ गया।" मुँह दे ले उस सीलो मतारी के आँचर में।".........
पता नहीं, शीलो देख ली क्या अम्मा ने, उसका स्वर नरम हो आया, " बेटा, तेरे रहते मुझ बूढ़ी की ऐसी दुरगत......."
"भट्टी औरत।"
मेरी बूढ़ी माँ के लिए ताल पट्ठे ठोक रही हैं? आज कर ही डालूँ, हिसाब भले मूर्च्छा आ जाए।
एकाएक शीलो की बीन बजी–अपनेपन से लबालब। "सुन रहे हो? सठिया गई अम्मा जी। हमें तुम्हारी मंतारी बना रही हैं, तुम्हारे पिता की जोरू, इनके खसम की लुगाई। मति भिरट हो गई बूढ़ी की........." शीलों की आंखो में आंसू!.........
बालकिशन के भीतर फुँफकार मारने वाला नाग फन हिलाकर नाचने लगा। कतई बेध्यान है अम्मा से। ध्यान भी आया, तो इतना कि अम्मा भी कम नहीं। अपनी औरत के मान की रक्षा न कर पाए, उस मर्द को 'नामर्द' मानता है वह। पुरूष होकर नपुंसको के से खेल....."[11]

कहानी संग्रह 'चिन्हार' की कहानी भंवर में आये बदलाब ह्रदय को स्पर्श कर एक स्त्री की पीड़ा को दर्शाते हैं। एक ऐसी जिसके बच्चे न होने के कारण उसका पति केशव दूसरी शादी सुमन से कर लेता है और जब वह जबाव मांगने पति के घर जाती है–
"इतने में सुमन बाहर निकल आई। सीधी आकर विरमा के पाँवों पर झुक गई।

[11] झूलानट–मैत्रेयी पुष्पा पृष्ठ–9,10

"जीजी, आज से यह तुम्हारा.......।" बेटे को बिरमा की गोद में नवजात शिशु डालकर निश्चित भाव से बैठ गई।
विरमा अचम्भित, विस्मित शिशु को गोदी में डाले बैठी थी, कभी देख नहीं, जान–चिन्हार नहीं, फिर अचानक, यों ही'.........नेह की धार में भिगोती यह–सुमन।........
पति ने शरीर के किसी अंग को स्पर्श नहीं किया, केवल पांव पकडे – 'विरमा...ऽऽ मा, यह गलती ....माफी देनी होगी।"
सम्मोहन में घिर गई विरमा, ममता के हाथों बिक गई। रात दिन सबकी टहल करती रहती। अचानक एक दिन विरमा की तबियत बिगड़ी और बिगड़े सबके चेहरे–
"अब पड़े–पड़े खाओगी तो हमसे तो बनेगा नहीं। कौन करे तुम्हारी टहल–चाकरी। चाहे मायके जाओ, चाहे कहीं और।" सुमन ने दो टूक सुना दी।......
"बड़ी अम्मा बनी हुई है, जैसे नौ महीने पेट में लादकर इसी ने जने जों। ऐसी धौंस चलाती है बच्चों पर।"
केशव को अकेले पाकर उसने बोला था – "दवा गोली के पैसे–टके का ध्यान धरते हो? जब तक हाड़ खटाती रही तब तक ठीक.....। यह क्या रोज–रोज कहने की बात है।"
सुमन केशव के जाते ही बरसी थी – " रोज–रोज कलेश ही कलेश। बिना खाए उठ गए। काम में खटते रहेंगे दिन भर। तुझे क्या? खूब खा और तोड़ चारपाई।".........
केशव बीच में आ गया। बीच–बचाव तो किया मगर पीछै से विरमा पर झपट पड़ा। चोटी पकड़ ली।
"साली। कमबख्त। मर जा कहीं जाकर। रोज–रोज कोई न कोई बखेड़ा।...... चैन नहीं लेने देती। मौत नहीं है इस हरामजादी को।" कहकर धक्के के साथ उसे छोड़ दिया। बालों के उखड़ आने की मर्मान्तक पीड़ा से वह कराह उठी।[12]

[12] 'चिन्हार' कहानी संग्रह–'कहानी भंवर'– मैत्रेयी – पृष्ठ 16

इसी प्रकार के अनेकानेक नाटकीय संवादों के माध्यम मैत्रयी जी ने कथानक को एक नया मोड़ दिया है। उनके संवाद पात्रों को नया जीवन व नया मोड़ देते हैं।

३. संक्षिप्तता, सजीवता, प्रभावात्मकता और प्रवाहपूर्ण शीलता–

मैत्रेयी पुष्पा के समस्त पात्रों के संवाद संक्षिप्त और प्रभावपूर्ण हैं। कहते हैं वाक्य जितना संक्षिप्त हो प्रभाव उतना ही अधिक पड़ता है। उनके छोटे–छोटे वाक्य कथा को सजीवता और गतिशीलता प्रदान करते हैं। प्रवाह के साथ बोले गये संवाद ग्रामीणों की मनोस्थिति को प्रकट करते हैं। संक्षिप्त वाक्य का प्रभाव पाठक पर जल्दी और असरदार ढंग से पड़ता है। वे पाठक के रूचि को जाग्रतकर सम्पूर्ण कथानक पढ़ने पर मजबूर कर देते हैं। मैत्रेयी जी के उपन्यासों में संवाद बेहद सटीकता के साथ ऊपर कर आये हैं।
यथा–

➢ "बालकिशन घबराकर चिल्लाया, "मैं क्या करूँ? क्या हुआ......"
"करो कुछ नहीं। यह करो कि अपनी मतारी को बड़ी बूढ़ी की तरह रहना सिखा दो।"
"कैसे रहती हैं बड़ी–बूढ़ी?" "पौर में खटुलिया डालकर। कान–आंख–जीभ–जुबान पर अंकुश लगाकर।"[13]

➢ "बहादुल! ओ बहादुल! "
"अरे! अच्छय बाबा।"
"बहादुल, तुम काँ जा लये हो?"
"बजार, अच्छय बाबा! हम सांब के लिए सिगरेट लेने जा रहे हैं।"
"मैं आऊ तुम्हारे साथ?"
"आओ बाबा! मगर इतनी दूर चलोगे कैसे? अच्छा, आ जाओ, हम तुम्हें गोद में उठाकर लें जायेंगे।"[14]

[13] झूलानट – मैत्रेयी पुष्पा – 144
[14] ललमनियां (कहानी संग्रह) कहानी 'बोक्ष'–मैत्रेयी – पृष्ठ 51

➢ "कहाँ चली गई गुलकंदी?" सारंग ने प्रसंग बदल दिया।
"जहाँ बिसुनदेवा गया होगा। राम के संग सीता। नल के साथ दमयन्ती।" वे हंसे।
"तुम्हें सच में नहीं मालूम? और हंस रहे हों?"
"मैं इस बारे में एक भी शब्द नहीं बोलूँगा।"
"मुझसे भी नहीं?"
"दीवारों के कान बताए गए हैं।"
"अच्छा, नहीं पूछती।"
"हाँ नहीं पूछो तो अच्छा रहेगा।[15]

इस प्रकार के सुन्दर शब्दों की अभिव्यंजना के माध्यम से मैत्रेयी ने अपने उपन्यासों में जीवन्तता ला दी है। ऐसा लगता है यह कथानक न होकर हमारे आस पास घट रही घटनायें हैं, जिनकी ओर हम चिहुँककर देख लेते हैं और जीवन इन्हीं के क्रियाकलापों से गतिशील है।

४. भावानुकूलता-

मैत्रेयी जी के पात्रों के संवाद भावानुकूल हैं। जैसा भाव वैसा संवाद। संवाद में परिस्थिति भी सहायक होती है और परिस्थिति के अनुसार व्यक्ति विशेष आचरण करता है और उसके आचरण क्रियाकलाप संवाद का कारण बनते हैं। यथा–

➢ "कका जू गरजे, " साले डबला, निकल यहाँ से, हम तेरा मुख नहीं देखना चाहते। इसी बखत भाग।"
डबल ने जमीन में थूक दिया। जाते–जाते बोले, " गोविन्द सिंह, इस घर का पानी भी नहीं पीना चाहते हम। मानसों की ऐसी बेकदरी, इतनी बेइज्जती। हमने अपने डकैत जीवन में भी नहीं देखीं।"[16] कथन से स्पष्ट है कि पात्रों के बीच क्रोध का भाव उपजा है।

---

[15] चाक मैत्रेयी – पुष्पा पृष्ठ 269

[16] इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा जी – पृष्ठ 142

- नरेन्द्र मरियल आवाज में पश्चाताप करने लगें" काश, उसी दिन अपनी जुबान पर अंकुश रखा होता। सौदान रिश्तेदारी के चलते ही तो हमारा भाई है। पद–प्रतिष्ठा में हमारी उसकी क्या बराबर? संसद सदस्य है वह! पिछली सरकार में मंत्री भी रहा है। और हम। जूनियर हाई स्कूल के अदना से मास्टर जी।"[17] प्रेम भाई एण्ड पार्टी के नरेन्द्र के इस कथोपकथन में हर ओर से लाचारी और पश्चाताप का स्वर व भाव मुखरित है। और यह संवाद देखिये–

- "अजीत भइया, इत्ती सबेरे?"
  अजीत अन्दर आ चुके थें।
  "इतनी भोर ही। सब ठीक तो है भइया?"
  "ठीक कहाँ।"
  "का भओ"
  "तुम्हारी भाभी.....
  "का भाभी की तबीयत......"[18] जैसे संवादो में चिन्ता का भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मैत्रेयी जी भावाकूल संवादों को गढ़ती हैं। वह व्यक्ति विशेष की मनः स्थिति का बड़ा सूक्ष्म अवलोकन कर उसके संवादों को अंजाम देती हैं।

पात्रों के चरित्र चित्रण और कथा विकास में कथोपकथनों का महत्वपूर्ण हाथ रहा है। कथोपकथन की दृष्टि से मैत्रेयी के उपन्यास बेहद सफल हैं। उनके संवाद या कथोपकथन व्यक्ति की मनः स्थिति और वातावरण बनाने में सहायक हैं जिससे कथागति प्रेरित है। ये संवाद पात्रो के मनोभावों को व्यक्त करने में सफल और समर्थ हैं, पात्रानुकूल, सजीव और भावानुकूल हैं। वे प्रायः संक्षिप्त और प्रसंगानुकूल भी हैं। संवादो की सफलता के लिए उपयुक्तता, स्वाभाविकता,

---
[17] गोमा हँसती हैं (कहानी संग्रह) मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 57
[18] बेतवा बहती रहीं – मैत्रेयी पुष्पा – 104

संक्षिप्तता, मनोवैज्ञानिकता, भावात्मकता तथा उद्देश्यपूर्णता के गुणों का समावेश किया गया है।

४. देशकाल एवं वातावरण

उपन्यास के कथानक का सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार के देशकाल और वातावरण से होता है। देशकाल और वातावरण से तात्पर्य सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा ऐतिहासिक आदि परिस्थितियों से है। कथा की पृष्ठभूमि के रूप में इस तत्व का प्रयोग होता है। कथानक की स्पष्टता के लिए इस तत्व का निर्वाह आवश्यक है। इसके चित्रण में उपन्यासकार को कुछ निश्चित सांकेतिक आधार और गुणों का ध्यान रखना चाहिए। आशय यह है कि उपन्यास के कथानक का सम्बन्ध जिस युग एवं काल से हो, तदनुरूप वस्तुओं, पात्रों की वेश–भूषा, प्रयोग में आने वाली वस्तुओं आदि सभी उपकरणों का विधान होना चाहिए। उसे देशकाल स्थानीय रंग (Local Colour) से भी अनुरंजित होना चाहिए। इससे जहाँ स्वाभाविकता आती है, वहाँ प्रभावात्मकता का भी समावेश होता है। यह स्थानीय रंग विशेषतः ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, और आंचलिक उपन्यासों में अधिक महत्व रखता है।

उपन्यास में वातावरण की सृष्टि आवश्यक होती है, अन्यथा वह वास्तविकता का स्पर्श नहीं कर पाता। उपन्यास पढ़ते समय पाठक को यह अनुभूति होनी चाहिए कि वह उपन्यास के चर्चित वातावरण में पहुंच गया हैं, तभी उपन्यास की वर्णित कथा वास्तविक बनकर पाठक को आनन्द विभोर करती है। इसके लिए उपन्यासकार को यह भी बताना पड़ता है कि सम्बन्धित घटनाओं का देश और काल क्या है?

मैत्रेयी पुष्पा जी के समस्त उपन्यासों (विजन को छोड़कर) में बुन्देलखण्डी प्रदेश का स्थानीय चित्रण देखने को मिलता है। वातावरण को साकार करने में मैत्रेयी जी ने कहीं भी कोताही नहीं बरती। स्थानों के वर्णन में उनके नाम और लोगों के नाम सहायक सिद्ध हुए हैं। लोगों की भाषा ने भी वातावरण बनाने में सहायता की है। वातावरण के सन्तुलित चित्रण से पाठक के समक्ष सजीव चित्र उपस्थित हो जाता है।

मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों का कथानक सदियों से चली आ रही बुन्देलखण्डी परम्पराओं को बनाया है। इनका कथा क्षेत्र बुन्देलखण्ड के छोटे छोटे गांव–कस्बे हैं। जिसके इतिहास, वातावरण और कण–कण से वे पूर्णतया परिचित हैं, क्योंकि मैत्रेयी

स्वयं इसी जमीं पर जन्मी और पली बढ़ी हैं, फिर वे उससे अछूती कैसे रह सकती हैं? उनके उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक दशा सजीव हो उठी है। बुन्देलखण्ड अनेक छोटे–बड़े गांवों–कस्बो का केन्द्र हैं। उनकी सामाजिक–सांस्कृतिक दशाओं का चित्रण विविधतापूर्ण है। धार्मिक अनुष्ठान, अंधविश्वास, सामाजिक रीति–रिवाज, उत्सव, परम्पराओं, प्रथाओं आदि का चित्रण लेखिका ने बड़ी यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया है।

शादी –ब्याह में किये जाने वाले प्रबंध के वर्णन से वातावरण सजीव हो उठा–

शामियाने में वर–वधू के लिए दो महाराजा कुर्सियां लाल मखमल से जड़ी हुई, सुनहरी हत्थों वाली, सिंहासन की तरह डाल दी गई। सामने कतारबद्ध कुर्सियां ही कुर्सियां। बगल वाले शामियाने में खाने का प्रबन्ध होगा। डोंगा–प्लेटों का असबाब। विभिन्न मसालों की उठती महक से गांव गमक उठा।''[19]

वातावरण का एक सुन्दर छोटा सा नमूना–''बरगद का जो पेड़ बाहर है, वहीं मरीजों का बसेरा हुआ। भीड़–भाड़ में कोई कहाँ जगह कर लेता हैं, डाक्टर का करिश्मा था। ज्योति पर्व का यह समायोजन अखण्ड हो जैसे। धूप–ताप, ठण्ड बरसात से बचने के लिए शामियाना लगा रहता। बातों और गप्पों के समुद्र में डुबकी लगाते रोगी कब उपचार के पहाड़ पर चढ़ जाते और अपने जैसे अनेक ज्योतिहीन आँखों वालों को पुकार लेते।''[20]

प्रस्तुत वातावरण डॉ0 आर.पी. शरण की आंख के ऑपरेशन की सफलता और प्रसिद्धता को दर्शाता है।

वातावरण को सजीव करने में मैत्रेयी सिद्ध हस्त हैं। यह पाठक के समक्ष ऐसा चित्र खींचती हैं कि वह सजीव हो उठता है–

''छत की कड़ियों के बीच पंखा चक्र की तरह घूम रहा है। जाजिम के ऊपर सफेद चादरें, छोटी बड़ी गद्दियां रंग–बिरंगी। फोम के तकियों और गद्दियों, शीशे के कटावदार गिलास, डिजाइनदार ट्रे देखकर लगता नहीं कि यह कुंवरपाल की बैठक है...

---

[19] लालमनियां–कहानी संग्रह–''पगला गई है भगवती?'' – मैत्रेयी – पृष्ठ 29
[20] 'विजन' –मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 12

विभिन्न सब्जियों के पकौड़े, नमकीन, कई किस्म के स्टील की छोटी–छोटी थालियों में शोभायमान हैं।"[21] स्पष्ट है कि यहाँ शराब की महफिल जमने वाली है।

मैत्रेयी स्थान विशेष, परिस्थिति और पात्र के अनुसार ही देशकाल और वातावरण अपनाती हैं।उपन्यास 'इदन्नमम' में बुन्देलखण्ड के झाँसी, सोनपुरा, श्यामली गांव, उरई, गोंती, बांदा, कोंच, खिल्ली, आदि कस्बों को लिया गया है। वहाँ की सामाजिक और सांस्कृतिक दशाओं का चित्रण मैत्रेयी जी ने बखूबी किया है।–

➢ "तीन ईटों को लम्बाई–चौड़ाई में सटा–बिठाकर चूल्हा निर्मित कर लिया है। अपने सोनपुर में जब लोगड़िया आते थे, वे गांव के बाहर अपनी गाड़ियों के पास इसी तरह के चूल्हें बना लेते थे। वहीं लोहा तपा–पीटकर औजार ढालते थे।"[22]

➢ "सवेरा हुआ। पांखी जागे, जिनावर जागे। पेड़, रूख और पात–फूल जागे। गढ़ी की बसावट में जगार पड़ गयी।
नीचा घूंघट किये एक औरत दीवार से लगी खड़ी है।
गिनती बोलते हुये बच्चों का स्वर सहसा थम गया।
घर के बालकों ने गौर से देखा।
कु...सु....मा काकी। कुसुमा भाभी।
वे कक्षा छोड़कर चटपट दौड़े। सड़क पर आ गये और झोला–गठरी उठाकर घर की ओर भाग चले।
कुसुमा पर्दानशीन बहू की अभिजात्य चाल से चलने लगी। मंदाकिनी जिसे कमजोरी की वजह से नीम के नीचे बिठा दिया था, हाथ पकड़कर उठा ली और अपने आगे कर ली, "बिन्नू चलो अगांई।"[23]

मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यास में छोटे छोटे तीज–पर्व अनुष्ठान के माध्यम से रंगीन वातावरण उपस्थित कर दिया है–

➢ "सुआटा (मिट्‌टी का बना बिजूका) के गीतों से मंदाकिनी की आँख खुल गयी।
आश्विन मास का शुक्ल पक्ष है।

---

[21] 'चाक' – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 431
[22] 'इदन्नमम' – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 57
[23] वहीं पृष्ठ 96

तारों की छांव में सप्त ऋषिमंडल चमक रहा है। पंक्ति बनाये तीन तारे झिलमिला रहे हैं। सब बिटियाँ तो कब की सुआटा पर पहुंच गयीं। बऊ ने हमें जगाया ही नहीं। गानों में फिर गूँजा, "तीन फूल तिनही के दाने।"

वह उठ खड़ी हुई । मुंह धोया, बाल संवारे।

साड़ी ठीक से बांधी।

"बऊ, हम जा रहे हैं सुआटा खेलने।" कहकर वह तेज चाल चलती हुई जा पहुंची कुम्हार कक्का के चबूतरे पर।

दीवार पर सुआटा बना है। मिट्‌टी की देह, कौड़ियों की आँख। टूटी चूड़ियों के होंठ, भौंहे। नन्हीं लकड़ी की नाक। दरपन के टूटे टुकड़ों से बनायी गयी जड़ाऊ पोषाक।"

वह बालिकाओं के बीच जा बैठी। गीत सुनती रही, फिर गवाने लगी, और नये सिरे से गाने लगी अपना गीत,

कि नारे जिजी के घर पर फरीं तुरइयां,

को टोरे को खाय।

कि नारे जिजी के घर पै मेले लिबउआ,

लाये महोबिया पान।

कि नारे होंठिया रची हैं, जिभिया रची है, रचे बत्तीसो दांत।

बूढ़ी कुम्हार काकी अपनी देहरी पर बैठी सुनती रहीं। टूटे हुये दांतों के कारण मुख पर हाथ रखकर हंस पड़ी।

"ऐन गवनारी हो मंदा। पर जे बताओ कि सुआटा बिटियां खेलतीं हैं कि बहुएं?"

वह लजा गयी, "काकी, हम क्या बिटिया नहीं है?"

"सगाई हो गयी है। अब तो बहू भयीं जा गांव की"

बालिकाएं समवेत स्वर में हंसने लगी। मन्दा को चिढ़ाने लगी।

कोई एक बोली मंदा जिज्जी, घूँघट घाल लो।

मन्दाकिनी के सिर पर ओढ़ी हुई धोती नीचे सरका दी किसी बच्ची ने। घूँघट नाक तक खिंच आया।

वह तुनक पड़ी, "अच्छा, हटो तो। तुम न घाल लो। तुम्हें ज्यादा सौक है दुलइया बनने का। सो बन जाओ बहू।"[24]

---

[24] इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 116–117

प्रस्तुत वार्तालाप से बुन्देलखण्डी ग्रामीण जीवन की हंसी–ठिठोली का सजीव वातावरण उपस्थित हो गया है।

देशकाल वातावरण का एक और उत्कृष्ट दृश्य दृष्टिगोचर है–

➢ "दीपावली आ गयी। चारो ओर जगमग है। लिपे–पुते धरों में प्रसन्न और उतावले बच्चें पॉपलीन की कमीज, पाजामा में सजे–बजे। छोटी–छोटी गुड़िया–सी बिटियां रंग–बिरंगे फ्रॉक पहने हुये। छिंगुली, उँगली–सी पतली चोटी में रंग–बिरंगा रिबन। रंगीन पिन बालों में सितारों की तरह चमक रहे हैं। फ्रॉक की झोली में खीलें, बताशे। लोग प्रमुदित और आनन्दित। घरों में, गलियों, धरती पर, आकाश में, सोनपुरा की दसों दिशाओं में दीपावली जगमगा उठी है, दिन के उजियारे में ही।
और – ढम ढम। ढोल बजा।
टिन टिना टिन। मंजीरे बोले।
टूऊँ टूऊँ टूऊँ । रमतूला बोला।
तुरही और मृदंग की मिली–जुली लय! सुर! ताल!
झूम रहे है लोग। गा रहे हैं गवइंया और नाच रहे है नचइया।
" दिवरिया आ गए।"
"सच्ची जिज्जी, दिवरिया आ गये।" मंदाकिनी को खबर देने छोटे–छोटे बच्चे प्रतियोगी की तरह भागे। कोई गिरा, कोई फिसला, किसी के नये कपड़े सन गये धूल माटी में। किसी की कोहनी में खुर्सटा लग गयी। होंठ बिचकाकर उठ बैठा धरती पर गिरकर, और भागते भागते सब पहुंचे मन्दाकिनी के पास।
"सच्ची?" वह खिल उठी।
सबसे छोटा नन्हा, जिसके कपड़े धूल में सन गये थे, गोद में उठा लिया उसने। नन्हा दूधिया दांत चमकाकर बोला, "जिज्जी, दिबलिया।"
घूँघट से झाँकती बहुएं कंदेला घालें बिटियां, बूढ़े, जवान सब घिर आये दिबरियों के इर्द–गिर्द।
गहरा रंग दिबरियों का। संख्या में लगभग सोलह। विन्ध्याचल में बसी जनजातियों के लोग सुदूर गांवों से आये है नाचने के लिए। सिर पर लाल–हरी पन्नी का

मुकुट, सबसे ऊपर मोरपंख, गले में हरे–नीले मनकों की कई मालायें, कमर में कौड़ियों की करधनी।

सफेद धोती के फेंटे में आम के पत्ते खोंस रखे हैं।

बैलों की सुरीली घंटियों का पट्टा करधनी के नीचे बंधा हैं। पांवों में घुँघरू। साँवले चिकने, नंगे दमदार बदन। नाच रहे हैं। थिरक रहे हैं।

हो ऽऽ......! हो ऽऽ......! हो ऽऽ.......! हो ऽऽ.......!

"कान पर हाथ धरकर क्यों गा रहे हैं जिज्जी?"

राजुल पूछने लगा।

"गले और कान का संबंध होता है आपस में।"

मंदाकिनी ने बताया।

दिबारी माय। लक्ष्मी.... माय।

हो मोरे गनपंत महारा........ज...

प्रधान जी और भइया जी खड़े देख रहें।

दिबरियों ने उन्हें प्रणाम किया। सिर टेका चरणों में।

नाच जमने लगा। मोरपंख हिल रहे हैं। लोग डूबे हुए है रंग में। एक दिबरिया भागता हुआ आया और जा मिला थिरकते समूह में। अरे औरत। जनी। सब अचम्भे में देखने लगे। दिवरियों में जनी नहीं नाचती, मगर नाच रही है। अरे, यह जनी नहीं, आदमी ही है। बऊ थाली में खील–बताशा–गुड़ धरकर ले आयीं। "बऊ, अब ही से कर दोगी विदा! " आसपास से शोर उठा।

"नचने दो। नचने दो।" आवाजें आयीं।

"अरे, गोड़े पिरा जायेगे इनके। सबके द्वार नाचना है इन्हें। जिसके दरवाजे नहीं नाचेंगे वही नाराज। चलने दो आगे। चलो ठाकुर द्वारे में शीश टेक लो।" बऊ ने ठाकुर द्वार के पास खड़े होकर उनकी झोली में दक्षिणा डाल दी।

"जै हो मोरी दिवारी मइया। ऐसे ही आओ, भरी–पूरी डोलो सोनपुरा के गली–कूँचन में। गोंती–डिकौली में, झवरा–झखनवारा में, नरसिंह गढ़–गोपालपुरा में, डुडीखमा में।" बऊ ने गावों के लिए ऋद्धि–सिद्धि मांगी। सुख–शान्ति मांगी। धन–वैभव मांगा।

उधर भंडारे की दावत बैठ गयी। लुचई सिंकने की महक उठ रही है, फैल रही है चारो ओर। साग–सब्जियों के छौंक–बघार महक रहें है, भोर से। पत्तलें बिछी हैं। बोरो पर पंक्तिबद्ध लोग बैठे हैं। पानी के छींटे मारकर पत्तलों को शुद्ध कर रहे हैं। परसइया आ गये। गांव नवयुवकों ने सागदान, रायतेदान संभाल लिए। पप्पू के पास पूरियों की छबुलिया है। छोटे लड़कों को खाने का सामान नहीं दिया परसने के लिए। वे केवल पानी परस सकते हैं। राजुल ने गंगासगार लेकर पानी परसना चालू कर दिया। एक बच्चा घर से जग ले आया और पानी परोसने लगा।

द्वारिका कक्का दौड़े, " अरे नहीं रे। जग, मगों से नहीं परोसी जाती पंगते। पानी बगराओंगे पातरां के ऊपर? गंगासागर से धार बांधकर कुल्हड़ों में पानी भरो।"

आलू की रसेदार सब्जी की मांग उठ रही है, ज्यादा करके। अरई का साग तो पत्तल पर ठहरता ही नहीं। पानी की तरह बह रहा है। "कहाँ के मिठिया हलवाई ले आये हैं, द्वारिका कक्का।"

किसी ने बोला, "कोंच के।"

कोंच के आदमी ऐसी ही साग–सब्जी खाते हैं, क्या? तभी कोंच वाली भौजी रोटी–तिरकारी नहीं बना पातीं स्वादिष्ट।"

सब हो–हो करके हँस पड़े।

"बैंगन का साग थोक में बन गया लगता है। उसका परसइया बिना मांगे ही हर बार चमचा दो चमचा गिरा जाता है पत्तल पर।"

"हाँ, थोक में ही बना है। गोंती का काछी बैंगन लाया था, उसने अपनी बैंगन की बारी कल ही उजाड़ी है। तमाम बैंगन निकले, तो दे गया पुन्न खाते में।"

बूँदी के लड्डू गहने–जेवर की तरह सुरक्षित हैं। द्वारिका कक्का कुंडली मारे बैठे हैं वहाँ। हर पत्तल पर दो लड्डू के हिसाब से दे रहे हैं। बेईमानी का कोई काम नहीं। रामरतन घरों और आदमियों की लिस्ट बनाये हुए है। बड़ा हिसाबची है रामरतन। घरवाली के खाये बेरों की गुठलियों का भी हिसाब रखता है। राउत–राउतिने अंडी बच्चा समेट आये हैं पंगत में।"[25]

उपर्युक्त वर्णन से बुन्देलखण्ड के ग्रामीण इलाकों में होने वाले सामाजिक और सांस्कृतिक पर्व की झलक स्पष्ट दिखलायी दे रही है। जो हमारी बुन्देलखण्ड की जमीं का सदियों से हिस्सा बनी हुयी है। दीवाली के मौके पर ग्रामीणों को सहज सुलभ

[25] इदन्नमम– मैत्रेयी पुष्पा – पृ0 311 से 313

क्रियाओं, क्रीड़ाओं और बातचीत का सफल चित्रांकन कर मैत्रेयी एक खुशनुमा वातावरण उपस्थित करने में सफल रहीं हैं।

मैत्रेयी जी के उपन्यासों का आधार बुन्देलखण्ड हैं, जहाँ तक काल का सवाल है तो मैत्रेयी का साहित्य में आगमन नब्बे के दशक में हुआ था। तभी से लेकर अभी तक वे प्राचीन रीति रिवाजों से लेकर वर्तमान समय तक के समस्त धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अनुष्ठानों को तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार चित्रांकित करती आयी हैं। चूँकि मैत्रेयी के उपन्यासों का आधार ग्रामीण क्षेत्र परिवेश हैं, इसलिए उन्हें किसी कालावधि विशेष में नहीं बांधा जा सकता, क्योंकि गांवों के क्रियाकलाप प्राचीन समय से लेकर अब तक लगभग एक से हैं, एक ही मिट्टी से रचे बसे हैं।

मैत्रेयी पुष्पा ने तत्कालीन युग और वातावरण को पूर्णतया साकार कर दिया है। तत्कालीन चित्रकारों , संगीतज्ञों, कवियों, अभिनेता–अभिनेत्रियों, वेद पुराणों, ऋषि–मुनियों, अधिकारियों, अध्यापको, पंचो आदि के नाम प्रमाणिक हैं तथा उनके क्रिया–कलापों द्वारा उस युग का व वर्तमान युग का यथार्थ चित्र हमारी आँखों के आगे प्रस्तुत हो जाता है। आर्थिक दृष्टि से मजदूर–किसान वर्ग, सामान्य जनता, सामन्तों, सैनिकों और उगती जमींदारी प्रथा तक का परिचय दिया गया है। मिटती पंचायत व्यवस्था, बदलती हुई न्याय व्यवस्था का वर्णन आलोचनात्मक यथार्थ के धरातर पर हुआ है। उत्सव–त्यौहार, हिन्दू–मुस्लिम तथा ग्रामीण जनता की धार्मिक धारणाओं, शूद्र–चमारों के आन्दोलन, नारियों के परम्परागत आचारों, दहेज प्रथा, सती प्रथा, बछिया प्रथा, विधवा, परित्यक्ता की समाज में स्थिति का भी बड़ा सजीव चित्रण यहाँ मौजूद है।

तीज–त्यौहारों के वर्णन ने तो समस्त बुन्देलखण्ड के ग्रामीण इलाकों का तत्कालीन वातावरण प्रत्यक्ष कर दिया है। अनेक उत्सवों ने यहाँ के आनन्दोत्सवों को साकार कर दिया है। अपनी कटुक्तियों और अनुभवों को मैत्रेयी जी ने सामाजिक वातावरण को यथार्थ के रूप में चित्रांकित करने के लिये ज्यों का त्यों चित्रित कर दिया है। इस तरह जहाँ तक वातावरण और देशकाल का प्रश्न है, उसके चित्रण में मैत्रेयी जी पूर्ण सफल रहीं हैं।

५. भाषा-शैली

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी में जो उल्लेखनीय उपन्यास लिखे गये, वे संकर हिन्दी में लिखे गये। संकरत्व में ऊर्जा भी होती है और जीवट भी। ताजगी भी। रेणु के ''मैला आँचल'' में से मैथिली की रंगो–बू निकाल दीजिये, वह बेरौनक हो जायेगा। राही के ''आधा गांव'' का यथार्थ गंगौली के बुनकरों की बोली से ही संभव हुआ है। अमृत लाल नागर अपनी कथा से नहीं, अपनी भाषा से भी ''बूँद और समुद्र'' में लखनऊ के चौक की सैर कराते हैं, मनोहर श्याम जोशी 'कसप' में पहाड़ों के घुमावदार रास्तों पर हमें वहीं की 'भिसूड़ी' बोली बानी में जो 'चौक–चापड' नहीं कही जा सकती, गाइड करते हैं। कृष्णा सोबती 'दिलोदानिश' में देहलवी हिन्दी से चटखारे पैदा करती हैं। जगदम्बा प्रसाद, जगदीश चन्द्र जैसे अनेक उपन्यासकार है जो अपने उपन्यासों में हिन्दी के बेसन में कभी प्याज के, कभी आलू के, कभी भटे या गोभी के कतरे फेंटकर कुरकुरे, सौंधे पकौड़ों का खजाना पेश करते हैं। हिन्दी के साथ स्थानीय अंचलों की छौंक भाषा को नया स्वाद देती है और नया विस्तार भी। यह हिन्दी का नया लोकतांत्रिक रूप है। जैसे लोकतंत्र में अब एकल दलों का वर्चस्व नहीं रहा, गठबंधन की सरकारों का युग आ गया है, वैसे ही हिन्दी के उपन्यास तंत्र में साझा भाषा भी अपना स्थान बना चुकी है। मैत्रेयी की कई कहानियां और उपन्यास इसी साझा भाषा के नव्यतम उदाहरण हैं। प्रेमचन्द्र अपने उपन्यासों में आमफहम हिन्दुस्तानी का, जैनेन्द्र बोलचाल की पछांह का, अज्ञेय सच्चरित्र हिन्दी का, हजारी प्रसाद द्विवेदी संस्कारित हिन्दी का दोहन कर चुके थे। हिन्दी के स्वतंत्रता परवर्त्ती उपन्यासकार जिस जनपद से आये, अपने उपन्यासों में वहाँ की अभिव्यक्ति शैली भी लाये। वे उस मिट्‌टी को नहीं भूल पाये, जहाँ उनका बचपन बीता था। न वहाँ की उस बोली को जिसमें अन्न, प्राशन के समय बढ़ी–बूढ़ियों ने उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया था। हिन्दी की बोलियों में विशिष्ट जीवनानुभवों का जो रस है, उनमें कहने–सुनने की जो अद्वितीय सामर्थ्य है, वह परिनिष्ठित कही जाने वाली हिन्दी में नहीं है।

परिनिष्ठित कहीं जाने वाली हिन्दी का कोई मैदानी क्षेत्र है ही नहीं, वह एक अर्जित भाषा है, छठी के दूध के साथ मिली भाषा न होकर पाठशालाओं में गुरू जी की छड़ी के साथ सीखी साधुभाषा। इसलिए उनमें न तो उर्दू की तरह जीवंतता आती है, न ही बोलियों का कर्रापन। प्रेमचंद की सफलता का एक रहस्य उनका नबाबराय होना

भी है। मैत्रेयी जी के उपन्यास केवल शालीन और सावधान जीवन प्रसंगों को ही चित्रित नहीं करते, वे भदेस, ग्रामीण, कुत्सित, भ्रष्ट के बखान का भी हौंसला रखते हैं। इस हौंसले को रचना बनाने के लिए जैसी कथा वैसी ही कहन भी। यदि आप मैत्रेयी के उपन्यासों को अज्ञेय या निर्मल वर्मा या शिवानी की भाषा में रूपान्तरित कर दें तो उसमें से ग्रामीण अंचलों की मिट्‌टी की सोंधी खुशबू उड़ जायेगी। जैसा देश, वैसा भेष। जैसी कथा, वैसी भाषा।

परन्तु बार–बार हर बार मैत्रेयी पर 'अनगढ़' भाषा के प्रयोग का आरोप लगाया जाता है कि वे अपने उपन्यासों का मॉडरेशन नहीं करतीं लिखनी–अन लिखिनी सब लिख डालती हैं, ठीक परिस्थित और पात्र के अनुसार, और उसे पुस्तक में भी जाने देती हैं। उनकी भाषा शैली देख साहित्य के बड़े–बड़े दिग्गज घबरा उठे, उनकी सभ्रान्त भाषा से सजा साहित्य का आंगन मैत्रेयी की भाषा से फूहड़ व ऊबड़ खाबड़ हो गया। वे चिल्ला उठे। पर मैत्रेयी को परवाह नहीं। वे कहती हैं – "वास्तविकता तो हर हाल में सामने आयेगी ही और अपने ही बाने में। जाहिर है।, जिस बोली से परिचित हूँ वह जुवां से कम हावभाव में ज्यादा दिखती हैं।" वे ग्रामयत्व को अपना दोष नहीं, अपना गुण मानती हैं। समस्त उलाहनों और दबाबों से प्रथक वे अपनी भाषा को सच्चाई की ओर ले जाती हैं। वे कहती हैं– " कि स्त्री जीवन के अनुभव उन्हें दबाब झेलने की शक्ति प्रदान करते हैं।"

चहुँ ओर धमाचौकड़ी मची है कि जैनेन्द्र अज्ञेय, प्रेमचन्द्र, प्रसाद, शिवानी जैसा कुछ नहीं लिखा जा रहा। अचानक यह गंवारू भाषा की लेखिका का आगमन, अनगढ़ साहित्य, भदेष भाषा, कुलीन संस्कृति का नाश करने वाली मैत्रेयी। इस सम्बन्ध में कान्तिकुमार जैन का यह कथन दृष्यव्य है– " अज्ञेय कृत शेखर, एक जीवनी, पहली बार पढ़ने के बाद अमृतराय ने तब के 'हंस' में लिखा था कि शेखर, एक जीवनी अपनी कथा के अलावा हिन्दी भाषा के सौन्दर्य के लिए भी पढ़ी जानी चाहिए। मैत्रेयी के उपन्यासों को पढ़ने के बाद मैं कहना चाहूँगा कि मैत्रेयी की यह कथायें उनकी नायिकाओं की वर्जनाओं, कुंठाओं और प्रवंचनाओं और मैत्रेयी के स्वयं के आप्लावनकारी साहस के अतिरिक्त हिन्दी भाषा के सामर्थ्य के लिए भी पढ़ी जानी चाहिए। "शेखर एक जीवनी" की भाषा स्त्रीत्व से भरी हुई शालीन, सुष्ठु और शोभामयी है। मैत्रेयी की भाषा साहसिक, साझा और परूष है। बेचारा गांव का आदमी जैसे बोलता है वैसा ही

तो बोलेगा। बहनचोद, ठठरी के बंधे वाली भाषा। मैत्रेयी ने स्वीकार किया है कि उसके भीतर से जाटनियों, अहीरिनियों की बंधक आत्मा बोलती हैं– उन्हीं की बोली में।

मैत्रेयी ने अपनी हिन्दी भाषा में चतुरता से ब्रज और बुन्देली का तालमेल बैठाया है जिससे उनकी भाषा और परूष हो गयी है और वे अपनी उस परूष भाषा से वह सब कहलवा लेतीं हैं, जो उन्हें कहना होता है – यथा –

"बिन्नू यह जल निरमल है या मैला? पवित्तर है या पाप का? इमरत है कि बिस?नहीं जानते हम। तुम्हारी रामायन में लिखा होगा तो लिखने वाला नहीं जानता कि आदमी जब प्यासा होता है, प्यास से मर रहा होता है, तो कहाँ देखता हैं, कहाँ सोचता है, कहाँ करता है कोई भेद? कोई अन्तर?"

"अकेले थे हम मंदा। निपट अकेले। झुलस–झुलसकर मर रहे थे। प्यासे तड़प रहे थे। सीतल झरना बहने लगे। उजाड़ जिन्दगानी के टूटे फूटे मंदिर दाऊ में ज्यों पिरभू देवता का रूप धरकर खड़े हो गये हो। बस.......सोई हम उनकी सरन में जा गिरे जोगिन–तपसिन की तरह।"

"बिन्नू, सौ बातों की एक बात है, नाते सम्बन्ध का नाम बतायें, गढ़े सो बेकार है। सांचा नाता तो प्यास और पानी का है।"

"हमारी देह प्यासी थी कि दाऊ का मन अतिरपित था, सो बस......कारन जरूर अलग–अलग थे। दादा ने अतिके दुलार में रख दिया दाऊ जू को बिरमचारी। देह रूगैलू थी सो दादा ने सोचा कि इच्छाएं भी बीमार होंगी, पर होता है कहीं ऐसा। ऐन थे बीमार, पर थे तो भरे पूरे पुरिख।"

"बिन्नू, हमें एक बात समझाओं, अरथाओं कि ये रिस्ते–नाते, सम्बन्ध और मरजाद किसने बनाई? किसने सिर जी है बंधनों की रीत?जो नाम लेती हो उनने? मनु–व्यास ने? रिसियों–मुनियों ने? देवताओं ने कि राच्छसो ने?"

भाभी, ये रीति–रिवाज तो उन्होंने ही बनाए है, जिनने ये किताबे लिखी हैं, जिनके ऊपर ये किताबे लिखी गयी हैं।"

"गलत बनायी है मंदा। एकदम पच्छपात से रची हैं। "

"बताओ तो अगिन साच्छी धर के गांठ बांधने का क्या मतलब?"
"पति और पत्नी को साथी सहचर कहें तो विरथा है कि नहीं?"
"कितेक उलटा है बिन्नू, बेअरथ। यह सम्बन्ध बड़ा थोथा है।
"लो, एक तो खूँट बांधा पांगुर, दूसरा सरग में उड़ता पंछी।
"ढोर और पंछी सहचार नहीं हो सकते मन्दा........."
"हाँ, हम भी मानते हैं यह बात" मन्दा बोली।"[26]

"चाक" उपन्यास की रेशम "देह" से ही स्वाधीनता की पहल करती है वह अपने दिवंगत पति के घर में ही अवैध संतान पैदा करना चाहती है। अजन्मे शिशु के पिता का नाम गुमनाम रखते हुए, उसका विचार है–"कि पेड़ हरा भरा रहे तो फूल फल क्यों नहीं लगेंगे? ऐसा हो सकता है कि ऋतु आये और बल्लरी न फूले? औरत ऋतुमती हो और आग दहके नहीं?"

तभी तो उसने गर्भ धारण किया और दिलेरी से ऐलान किया – "हाँ मै पेट से हूँ अम्माँ।"
सबने कहा – चोरी और सीना जोरी, दोहरा अपराध।
स्त्री जीवन में पतिव्रत धर्म को तोड़ने वाली औरत के लिए दण्ड विधान........
"क्यों दोगे सजा? पाप मैने किया है कि पाप तुम करोगे।"
सास मिसमिसाई, " रंडी, मेरे पूत की चिता तो सीरी हो जाने देती।
रेशम भोल भाव बोली – " अम्माँ, तुम विरथा ही दाँत किटकिटा रहीं हो। तुम्हारे पूत की चिता ठंडी हो जाने से क्या मेरी देह की आग बुझ जाती? जीतो–मरतों का भेद भी भूल गई तुम? बेटा के संग मैं भी मरी मान ली?".........
"मइया–तुम मेरे पीछे क्यों पड़ी हो।
विरथा ही छानबीन करने में लगी हो।
आज को तुम्हारा बेटा होता तो पूँछती कि तू किसके संग सोया था? अब उसकी बांह गह ले। मेरे मरे पीछे तेरहीं तक का भी सबर न करता और ले आता दूसरी। तुम खुश हो रही होतीं कि पूत की उजड़ी जिंदगी बस गई। पर मेरा फजीता कराने पर तुली हो।"[27]

---

[26] इदन्नमम् – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 81 से 83
[27] चाक – मैत्रेयी पुष्पा पृष्ठ 18, 19

इस प्रकार अनेक सामाजिक सच्चाइयों विद्रूपताओं और असमानताओं को मैत्रेयी जी ने अपने कथन–कहन और भाषा के माध्यम से सहज रूप में हमारे सामने रखा है। उनके उपन्यास की भाषा शैली जहाँ एक ओर सरस और सरल हैं, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण भाषा से अलंकृत। सहज–स्वाभाविक, सरल लोगों की भाषा। भाषा को सजाने के हेर फेर में वे कतई नहीं पड़ती। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में स्वाभाविक ग्रामीण भाषा के दर्शन होते है। कृत्रिमता से वे कोसों दूर हैं। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग मैत्रेयी जी की अन्यतम विशेषता है। हिन्दू पात्र शुद्ध सरल हिन्दी का प्रयोग करते हैं तो ग्रामीण पात्र स्थानीय बुन्देलखण्डी शब्दों, का और मुसलमान पात्र उर्दू–फारसी मिश्रित शब्दों का।

"चाक" के पात्र श्रीधर मास्टर शुद्ध हिन्दी का प्रयोग करते हुये सारंग से कहते हैं– " रोना नहीं सारंग। यह बात समझती हो न, कि प्रेम और संबंध दो अलग चीजें हैं। तुम्हारा संबंध रंजीत से है। घर वालो से है। अपने भाई–भाभी, माता–पिता से है। अगर इन सबसे तुम्हारा सम्बन्ध न होता तो प्रेम भी न होता। पर मुझसे तुम्हारा प्रेम है, केवल प्रेम। यही मेरा खजाना है।"[28]

वहीं "इदन्नमम्" में ग्रामीण पात्र "दादा और कक्को" का यह कथन ग्रामीण व्यक्ति की सहज चिन्ता को दर्शाता है।"

"विनास काले विपरीत बुद्धि" यह कहकर दादा पछताते थे कि हमारी बुद्धि भिरस्ट न होती तो क्या डकैत के हवाले कर देते मोंडी को? मन्दा की जिम्मेदारी डबल पर डाल देते? बऊ के रहने की विवस्था, वाविवस्था– विरोधी से करवाते।

"कक्को और दादा की आँखें तो जैसे गली दरबज्जे से जुड़ गयी। जुड़ गयी कि पिराने लगीं, बाट हेरते हेरते।"

"दादा ने तिबारा–चौबारा पूछा कि अब तो लो आठ दिना भये जाते हैं, उस मंगल को गये थे और लो फिर मंगलबार। डबला लौटकर नहीं आया।
कक्को ने हौसला दिया, "नहीं आया तो न आने दो। होगा तो उनके संग ही। तुम काहे पींजरा में परे प्यासे सुआ से छटपटा रहे हो? धीरज राखो।"[29]

---

[28] चिन्हार (कहानी संग्रह) मैत्रेयी पुष्पा पृष्ठ 73
[29] इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 62, 63

वहीं "गोंमा हंसती है" कहानी संग्रह में "राय प्रवीण" कहानी के अन्तर्गत खजुराहो के गाइड की भाषा – " ओरछा कुच नहीं सर। एकदम डर्टी, बोगस। जाड़ा में भी लू–लपट। गर्मी में फायर का गोला। रेनी सीजन में मड की मड.....टूरिस्ट लोग इल हो गया था। डॉक्टर भी नहीं। नो मैडीसिन........।[30]

तो कहीं पात्र और कहानी की मांग के अनुसार शुद्ध अंग्रेजी भाषा–

"मिस्टर विशाल नाथ, यू आर ट्रांसफर्ड टू दैट लोनली विलेज। यू सी डेवलपमेंट इज मस्ट फॉर ऑल विलेजेज।[31]

सभी भाषाओं के प्रयोग के बावजूद मैत्रेयी जी ने ग्रामीण भाषा को तबज्जो दी है, क्योंकि उनके उपन्यासों और कहानी संग्रहों का आधार ही गांव में रचे बसे नारी पुरूष है, फिर भाषा कैसे अलग हो सकती है? ठेठ बुन्देलखण्डी भाषा, और शैली भी वही बुन्देलखण्डी।

मैत्रेयी जी ने पात्र और परिस्थिति के अनुसार कभी वर्णनात्मक, तो कभी विचारात्मक, तो कभी व्याख्यात्मक शैली को अधिक प्रश्रय दिया है। उनकी सजीवता, रोचकता और धारा प्रवाहिकता देखते ही बनती है। भाषा–शैली का एक और उदाहरण देखिये– " पढ़ी–लिखी। हओ, काये की पढ़ी–लिखी? मूरख इतना नहीं समझ पाई कि हमारे घर की माली हालियत क्या है? तुम कहते हो कि हमने उसे घरू मामलों में सामिल नहीं किया। बताओ, कैसे करते? और सुन लो कि न हमने मोंडा के कान भरे कभी । अरे, जो हम सुरेन्द्र को भड़काते तो कभी कहा–सुनी न होती खसम–लुगाई में? ऐसे खोटे काम नहीं करते हम। हमारे बाप–मताई ने टुच्चपन नहीं सिखाया।"[32]

भाषा उपन्यास ही नहीं, किसी भी रचना का अनिवार्य तत्व है। भाषा के माध्यम से ही रचनाकार की निराकार भावनाएं आकार ग्रहण करती हैं। मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यास में उन्होंने तत्सम प्रधान बुन्देलखण्डी का प्रांजल और परिष्कृत रूप प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपनी भाषा में ग्रामीण–सुलभ गालियों का भी भरपूर प्रयोग किया है। उन्होंने पात्रों की स्थिति और योग्यता के अनुसार भाषा–शैली को अपनाया है। जहाँ

---

[30] गोमा हंसती है (कहानी संग्रह) मैत्रेयी पुष्पा पृष्ठ 30
[31] चिन्हार (कहानी संग्रह) मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 73

कहीं लेखिका ने अपने शब्दों में कथा का वर्णन सुन्दर मनोवृत्ति और परिस्थिति के आधार पर किया है, वहाँ भी भाषा सुगठित, सुन्दर, सरल व प्रवाहमयी है, जो सहज रूप में आम भारतीय पाठक को अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

उपन्यास की भाषा–शैली में रोचकता का गुण बहुत अपेक्षित है। इसके लिए उसमें सरलता, मधुरता विषय की अनुरूपता तथा गतिशीलता आदि गुणों का समावेश होना चाहिए। साथ ही उसमें लोक प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भी अपेक्षित है जिससे लोक जीवन के इस संसर्ग द्वारा देशकाल और वातावरण की रक्षा सम्भव हो सकें। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास इन समस्त विशेषताओं में खरे उतरते हैं।

६. उद्देश्य

इस तत्व का सम्बन्ध उपन्यासकार की वैयक्तिक विचारधारा से हैं। उपन्यास रचने के पीछे उसका कोई न कोई उद्‌देश्य या ध्येय होता है। यह बहुत कुछ युगीन जीवन पर भी निर्भर करता है। निदान, साहित्यकार, चाहे वह उपन्यासकार हो या नाटककार युगीन प्रवृत्तियों का शिकार वह अवश्य ही होता है। कभी इसके पीछे उपदेशात्मक प्रवृत्ति प्रधान तो कभी मनोरंजवादी मनोवृत्ति मुखर पायी जाती है। आज मानव–जीवन की विविध गुत्थियों और विविध सामाजिक समस्याओं को खोलना तथा उसका मनोविश्लेषण करना ही युग की अपनी प्रधानता है। यही उसका उद्‌देश्य भी है। यह युगीन जीवन के प्रति निश्चित दृष्टिकोण उपस्थित करता है। अनेक समस्याओं को उभारकर उनका समाधान जुटाता है।

मैत्रेयी पुष्पा ग्रामीण जीवन से जुड़ी कथाकार हैं। उनकी समस्त रचनाये सोद्‌देश्य रची गयी हैं। उनके मूल में कोई न कोई उद्‌देश्य छिपा हुआ है। उन्होंने भारतीय सामाजिक जीवन व नारी जीवन की कुछ ऐसी समस्याओं को उजागर करने की दृष्टि से अपने उपन्यासों की रचना की जिससे भारतीय समाज को एक नवीन विचारधारा मिल सके। मैत्रेयी जी के उपन्यास बुन्देलखण्ड में रची बसी विभिन्न स्तर की नारियों के जीवनयापन तथा यहाँ की समस्याओं को भोगती नारियों को लेकर लिखे गये हैं। उपन्यास में व्याप्त समस्याएं स्वयं ही स्पष्ट होती जाती हैं। और इसके लिए मैत्रेयी जी को कोई विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता। उपन्यास के शुरू में ही

---

[32] ललमनियां–(कहानीं संग्रह) की कहानी "बारहवीं–रात – मैत्रेयी पुष्पा– पृष्ठ संख्या 83

समस्यायें उजागर होने लगती हैं। वास्तव में मैत्रेयी जी "कला–कला के लिए " का समर्थन न कर "कला–जीवन के लिए " का समर्थन करने वाली लेखिका हैं। इसलिए उनकी रचनाओं में जीवनापयोगी बातों का समावेश किया गया है।

मैत्रेयी जी वैसे तो अपनी समस्त रचनाओं में नारी की समाज में स्थिति, रहन सहन अधिकार की सामाजिक स्तर पर गहन पड़ताल करती दिखलाई देती हैं, लेकिन उनकी केन्द्रिय दृष्टि नारी के मूल भूत अधिकारों की ओर है, उन्हें बचाने की ओर है। मैत्रेयी जी के उपन्यासों का उद्देश्य सदियों से चली आ रही उपेक्षित नारी दशा का व्यक्तित्वान्तरण करना है, जिससे नारी अपने वास्तविक रूप से परिचित हो सके तथा अपनी शक्ति से समाज को भी परिचित करा सके।

हिन्दी उपन्यास साहित्य संसार में यदि एक–आध महिला उपन्यासकार को प्रथक कर दिया जाये तो एक भी मैत्रेयी जी के समान नहीं, जिन्होंने नारी जीवन के कटु सत्य को अपनी स्वतन्त्र टिप्पणियों और उपदेशात्मक वाक्यों से उघाड़कर समाज के मुंह पर तमाचा मारा हो। उनके उपन्यास नारी जीवन की समस्याओं व विविध पहलुओं पर गहन विचार व पड़ताल करते दिखलाई देते हैं।

सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक समस्याओं के साथ–साथ समाज में छूत के रोग के समान फैली अनेकानेक समस्यायें जैसे– दहेज प्रथा, बाल विवाह, निर्धनता, अश्पृश्यता, छुआछूत, सती प्रथा आदि का भी सफल चित्रांकन किया गया है, उनका सफल निराकरण भी प्रस्तुत है, जो समाज को एक नयी दिशा देता है। उन्होंने कठिन से कठिन समस्या का बड़े सहज रूप में उपाय खोज निकाला है, जिसे पढ़ ऐसा प्रतीत ही नहीं होता कि मैत्रेयी उस युग की महिला हैं जिस युग में ऐसा सोचना–विचारना भी अपराध की श्रेणी में आता था। यह उनकी 'बोल्डनेस' का ही परिचायक है कि उनकी 'बेबाक टिप्पणियां' सोये हुये समाज पर कुठाराघात हैं।

उनके उपन्यास की नारियाँ ग्रामीण परिवेश में रची बसी अवश्य हैं, किन्तु वहां के दकियानूसी विचारो, रीति रिवाजों, प्रथाओं व आडम्बरों का खण्डन जोरदार ढंग से करती हैं और एक सीमा तक ही वहां के नियम कानूनों को मानती है, बाकी कुरीतियों को वे धता बता अपनी एक अलग ही दुनिया रचती बसती है, जो ग्रामीण स्त्रियों की दशा में सुधार का एक सार्थक व सफल उपाय है।

गहन परिस्थितियों से टकराकर उनकी नारियां एक महाशक्ति के रूप में उभरकर सामने आयी हैं। जोरदार समस्याओं से रूबरू होकर उनके व्यक्तित्व का परिवर्तन होता है और वे समाज से लोहा लेने को तैयार हो जाती हैं और अपने स्त्रीत्व और शक्ति के बल पर वे सफल भी होती हैं। सफल इसलिए क्योंकि मैत्रेयी ने स्वयं नारी जीवन की त्रासदी को भोगा व परखा है। उन्होंने मानव जीवन के ठोस, यथार्थ को अपने तीखे–मीठे अनुभवों से समेट कर परखा–जांचा हैं, तब जाकर उसका सफलता के साथ चित्रांकन किया है। उनकी गहन जिजीविषा और जीवटता उभर कर सामने आयी है, जो हर नारी के लिए एक संदेश बनकर उभरी है।

वैसे मैत्रेयी जी का उद्देश्य अपने उपन्यासों के माध्यम से बुन्देलखण्ड के नगरीय एवं ग्रामीण परिवेश में बसे लोगो के जीवन का चित्रांकन करना है, साथ ही वहाँ की समस्याओं, विद्रूपताओं, कुरीतियों, परम्पराओं, अधंविश्वासों, विश्वासों, प्रथाओं आदि से भी परिचत कराना है, साथ ही साथ यह भी बतलाना है कि नारी अब अबला नहीं सबला हो चुकी है उसी का सम्पूर्ण आधार लेकर पुरूष समाज निरन्तर आगे की ओर बढ़ रहा है यदि वह अपना पड़ला खींच ले, तो समस्त प्रगति रूक जायेगी। अतः समाज को चाहिए कि उसकी दया, ममता व प्रेम को उसकी कमजोरी न समझ शक्ति समझे, क्योंकि ये वे शक्तियां हैं जिनके माध्यम से समस्त संसार बंधा है व गतिमान है, स्त्री चाहे तो उसकी दृढ़ता व समझदारी उसे उस मुकाम तक ले जा सकती है जिसकी समाज ने कभी कल्पना भी न की हो।

उद्देश्यपरकता उपन्यास का वह तत्व है जो किसी उपन्यास के कथानक को श्रेष्ठता प्रदान करता है। उसके अकथनीय, अनछुये व अतरंग प्रसंग पाठक के समक्ष नवीन उद्देश्य रखते हैं, जिससे अभिभूत पाठक नवीन समाज का निर्माण करता है। मैत्रेयी जी के उपन्यासों में यह तत्व भरपूर मात्रा में है तभी तो कान्तिकुमार का यह कथन–''मैत्रेयी के उपन्यास समाज को शिक्षा व कान्ता सम्मत उपदेश देने वाले उपन्यास हैं'', सार्थक प्रतीत होता है।

उनके उपन्यासों में नारी का दृढ़ निश्चयात्मक स्वर उभर सामने आया है। यह दृढ़ निश्चयात्मक स्वर कभी उसे समाज की ठोकरों से, तो कभी अपने अनुभवों से प्राप्त होता है, इसके माध्यम से वह समाज को अपने दुर्गा स्वरूप से परिचित कराती है। महान साहित्यकार व प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचन्द्र का यह कथन– '' कि जिस

उपन्यास को समाप्त करने के बाद पाठक अपने अंदर उत्कर्ष का अनुभव करें, उसके सद्भाव जागृत हो जायें, वहीं सफल उपन्यासकार है।" मैत्रेयी जी के उपन्यास वास्तव में पाठक के अंदर एक उत्कर्ष व उत्कृष्टता का समावेश कर उसे सद्भाव की ओर प्रेरित करते हैं। इस दृष्टि से वे सफल हैं। मैत्रेयी जीवन की यथार्थता को पूर्णतया में रखकर देखती हैं। पात्रों के निजी स्वार्थ भी आगे चलकर एक स्वतन्त्र आदर्श का निर्माण करते हैं। जिन्हें पढ़ हम रोमांचित और पुलकित हो उठते हैं।

नारी पुरूषत्व का आधार। उसके अभाव में मानव जीवन में रिक्तता आ जाती है। इसी रिक्तता का बेहद सफलतम चित्रण मैत्रेयी जी ने अपनी उपन्यासों में किया है। यानि पुरूष समाज को यह बतलाना कि जिस नारी का अपमान व असम्मान तुम सदियों से करते चले आ रहे हो, वहीं नारी के अभाव में तुम शून्यता को प्राप्त होते हो। सदियों से साहित्य जिस घिसीपिटी धारणा को अपनी रचनाओं में चित्रित करता आ रहा है उस धारणा को तोड़ मैत्रेयी नारी अवधारणा को जन्म देती हैं। जो नारी के प्रति एक नयी संरचना व विचारधारा को विस्तार देना है।

वर्तमान समय में चारों ओर आधुनिकता व नगरीय जीवन की भागमभाग के बीच मैत्रेयी के आंचलिक उपन्यास पाठक गण को एक शान्ति व सुकून भरा वातावरण प्रदान करते हैं। यह मैत्रेयी जी की महत्वपूर्ण देन है। ग्रामीण मिट्टी की सोंधी महक पाठक के तनबदन में बस जाती है, वह अनुभव करता है कि वह नगरीय जीवन की चकाचौंध से भागकर मानों गांव में आ अपनी दादी–नानी की पल्लों की छांव में आ बैठा हो। वह हर्षित होता है, आनन्दित होता है। कहा भी गया है कि–

> "सिर्फ मनोरंजन ही न कवि का कर्म होना चाहिए,
> उसमें उचित उपेदश का भी मर्म होना चाहिए।"

अर्थात सिर्फ मनोरंजन या स्वन्तः सुखाय के लिए ही कोई रचना नहीं लिखी जानी चाहिए उसमें पर निहितार्थ की भावना का भी समावेश होना चाहिए, तभी वह साहित्य उत्कृष्टता को प्राप्त कर सकता है। मैत्रेयी ने इस उत्कृष्टता को सहजता से ही प्राप्त कर लिया है, उनके उपन्यास स्वयं के लिए नहीं, दूसरों के लिए है, दूसरों के सुख के लिए हैं।

स्त्री–पुरूष सामाजिक सम्बन्ध, यौन सम्बन्ध और प्रेम का सफलतम् चित्रण मैत्रेयी जी के उपन्यासों की प्रमुख विशेषता है। यहाँ नारी इन सम्बन्धों की एवज में कोई समझौता करती नहीं प्रतीत होती है, बल्कि अपनी इच्छा व स्वेच्छा से इन सम्बन्धों को तरजीह देती आयी है, जो एक नवीन विचार है। वह यहाँ खुलकर यौन सम्बन्धों की मांग करती है, अपने प्रेम का इज़हार करती है और बधें बंधाये सामाजिक बंधनों को तोड़ने पर भी उसे कोई गुरेज नहीं। यह नारी जीवन व विचारों पर ढकी–तुपी मानसिकता का खण्डन है और नारी को स्वतन्त्र जीवन यापन करने हेतु प्रेरित करना है। वह भी मानव है, उसकी भी पुरूष के समान इच्छायें, अनिच्छायें, रूचियां, अभिरूचियां, जरूरते व मांगे हैं फिर सिर्फ पुरूष ही उसका हकदार क्यों? वे क्यों नहीं? इसी लिए वे आगे से आगे बढ़ इन्हीं जरूरतों, मांगो और इच्छाओं का इज़हार समाज के समक्ष करती हैं और समाज को उनकी जायज मांगो को स्वीकारना ही पड़ता है, झुकना ही पड़ता है जहाँ सदियों से भारतीय समाज नारी की रोने–पीटने वाली छवि को गुनता चला आया है, वहीं मैत्रेयी ने उस छवि को नकार नयी 'बोल्ड' छवि को उजागर किया है।

मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों व कहानी संग्रहों व स्त्री विमर्श सम्बन्धी पुस्तक "खुली खिड़कियां" में अनेकानेक समस्याओं को उठाया है तथा समस्याग्रस्त भारतीय समाज की एक जीवन्त तस्वीर प्रस्तुत की है। लेखिका का उद्देश्य इन समस्याओं को प्रकाशित कर उनकी ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना रहा है। इन समस्याओं की गणना हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से कर सकते हैं–

1. नारी की सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक स्थिति की समस्यायें।
2. अनमेल विवाह की समस्यायें।
3. पुलिस अत्याचारों का चित्रण।
4. नेताओं के ढ़ोंग की समस्या।
5. पंचायती राज की समस्या।
6. धर्मात्माओं के ढ़ोंग की समस्या।
7. रिश्वतखोरी की समस्या।
8. स्त्री पुरूष के खोखले सम्बन्धों की समस्या।
9. दहेज, अश्पृश्यता, निर्धनता, बेकारी आदि की समस्यायें।
10. पुरूष अत्याचार व नारी जीवन की त्रासदी की समस्या।

इन समस्याओं के अतिरिक्त अन्य समस्याऐं भी उपन्यास में वर्णित हैं। जैसे शिक्षा की समस्या, इलाज की समस्या, ऋण–ग्रस्तता की समस्या, झूठी गवाही देने की समस्या आदि। तात्पर्य यह है कि मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से बुन्देलखण्डी भारतीय समाज की समस्याओं को प्रकाशित किया है। इस प्रकार ये उपन्यास समस्याआं व उनके उचित निराकरण से परिपूर्ण हैं। वास्तव में, उपन्यास का उद्देश्य ही समस्याओं को दिखाना रहा है। इन उपन्यासों की जो समस्यायें हैं, वे ही इन उपन्यासों के उद्देश्य को स्पष्ट करने में सहायक बनी हैं।

निष्कर्ष अथवा समीक्षा

निष्कर्ष यह है कि उपन्यासकार मैत्रेयी पुष्पा जी इन 'छः' तत्वों के प्रति पूर्णतया सतर्क है और सफल भी। उनके ये छः तत्व आपस में पूर्णतयः आवश्यक अंग की, भांति घुले–मिले हैं। इन्हें आपस में अलग नहीं किया जा सकता। एक के अभाव में दूसरा अपना महत्व खो देता है, और न ही उस रूप में उपन्यास के महत्व का मूल्यांकन ही हो सकता है।

समीक्षात्मक दृष्टि से कहा जा सकता है कि मैत्रेयी के उपन्यासों में एक उपन्यास के तत्व भरपूर मात्रा में निहित है और वे इन तत्वों का सफल चित्रांकन करने में सफल हैं।

२. मैत्रेयी पुष्पा की नारी चिंतन में भागीदारी

ाधुनिक युग में प्रबलतम बनी मानव मात्र की समानता और स्वतन्त्रता की भावना ने समाज को नारी की समानता और स्वतन्त्रता के लिए उद्वेलित किया और उसके लिए आवश्यकता समझी गयी नारी को शिक्षित करने एवं स्वावलम्बी बनाने की। इस भावना ने समाज की प्राचीन अवधारणा को बदला और पुरूष प्रधान समाज में जो साहित्य कल्पना और आदर्श को लेकर चल रहा था उसका स्थान यथार्थ और वास्तविकता ने ले लिया, आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिकता की प्रधानता हो गयी। साहित्य भी केवल पुरूष को प्रधानता एवं प्रमुखता देने, वाला नहीं रह गया। उसके लिए आवश्यक एवं अपरिहार्य हो गया कि वह नारी भावनाओं को भी समुचित महत्व दे।

ऐसी परिस्थितियों ने साहित्य की अनेक विधाओं के महत्व पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया और साहित्य की काव्य–परक और कल्पनापरक रचनाओं का महत्व घट गया। उसके स्थान पर गद्य का और यथार्थ परक रचनाओं का महत्व बढ़ गया। परिणाम स्वरूप महाकाव्यों एवं काव्यों का स्थान निबन्धों, उपन्यासों तथा कहानियों ने ले लिया।

इस प्रकार साहित्य की अनेक विधाओं में भी नूतनता आयी और वर्ण्य–वस्तु में भी। इनमें सबसे सशक्त साहित्य विधा उपन्यास सिद्ध हुयी और उसमे नारी–पुरूष सम्बन्ध प्रधान वर्ण्य–वस्तु बन गये। हिन्दी साहित्य के साठोत्तर काल में न केवल कहानियाँ प्रभूत मात्रा में लिखी गयीं, बल्कि उनके लिखने वाले उपन्यासकार अधिकाधिक संख्या में बढ़े। पुरूष उपन्यासकार और महिला उपन्यासकार, दोनों ने नारी को अपने उपन्यास का वर्ण्य विषय बनाया और नारी अन्तर्मन के सभी द्वारों को खोलने का प्रयास किया। इस कार्य में भी नारी उपन्यासकार अधिक सफल सिद्ध हुयीं इसमें मैत्रेयी पुष्पा जी अग्रणीं उपन्यासकारा हैं जिन्होंने नारी मन के अनेकानेक अनछुये पहलुओं को अपने उपन्यासों में अधिकाधिक स्थान दिया है।

मैत्रेयी पुष्पा जी नारी की समाज में उपस्थित भूमिका को लेकर हर स्तर पर चिंतन करती हुयी दिखलायी देतीं हैं। पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, हर क्षेत्र में मैत्रेयी जी ने अपने नारी पात्रों की सफल उपस्थिति दर्ज करायी है। उनके नारी पात्र अपने आत्मसम्मान की रक्षा करते हुये सामाजिक कुव्यवस्था का प्रबल विरोध करते हैं। आत्मसम्मान की भावना सर्वोपरि है, इस भाव को मैत्रेयी जी ने बखूबी गुना और चुना है। इस सम्बन्ध में महान उपन्यासकार उषा देवी मित्रा के उपन्यास "पिया" का कथन दृष्टव्य है। "पिया" – "मेरे विचार से तो 'सेल्फ रेस्पेक्ट' नारी मात्र को रहना चाहिए। उसके बिना जो जीवन है, वह तो है पशु जीवन।"[33]

"नारी की सदा से, अपनी सत्ता महत्ता रहीं है। नारी केवल मांस पिण्ड की संज्ञा नहीं है। आदिम काल से आज तक विकास पथ पर पुरूष का साथ देकर उसकी यात्रा को सरल बनाकर उसके अभिशापों का अंत कर और अपने वरदानों से जीवन में

---

[33] 'पिया'–लेखिका– उषा देवी मित्रा

अक्षयशील भरकर मानवी ने जिस व्यक्ति चेतना और हृदय का विकास किया है, उसी का पयार्य नारी है।"[34]

नारी के निजी अस्तित्व के अद्यतन स्वरूप पर विचार करते हुए मैत्रेयी पुष्पा जी ने स्वावलम्बन, समानता एवं शिक्षा के बढ़ते प्रभाव के कारण नारी को घर से बाहर निकलकर जीवन वृत्ति या जीविकोपार्जन में चाहे–अनचाहे लगने पर परिवार, पति एवं पुत्रों के साथ तथा समाज के साथ किस प्रकार के दुश्चक्रों, मुश्किलों का तथा नयी–नयी समस्याओं का सामना करना पड़ा है, इसका विवेचन किया गया है। इसी क्रम में किस प्रकार शारीरिक, मानसिक एवं भावात्मक सभी प्रकार से टूट जानानारी की नियति बन गयी है या बनते देर नहीं लगती। इसका भी विवेचन किया गया है। नारी को पग–पग पर बाधाएं, बाध्यताएं झेलनी पड़ जाती हैं। किस प्रकार स्वावलम्बन, समानता और शिक्षा के प्रसार ने नारी की नव मानसिकता को प्रभावित एवं प्रेरित किया है। स्त्री–पुरूष के सम्बन्धों के बीच किस प्रकार बदलाव आ रहा है। विवाह के सम्बन्ध में पति के प्रति प्राचीन धारणा के सम्बन्ध में, परिवार के सम्बन्ध में, रिश्ते–नातों के सम्बन्ध में, प्रेम और पर–पुरूष या पर–पत्नी के सम्बन्ध में जो क्रान्तिकारी बदलाव आया है या आता जा रहा है उस पर भी मैत्रेयी पुष्पा जी ने बखूबी विचार किया है।

नारी की सामाजिक चेतना के वास्तविक स्वरूप की विवेचना करते हुये, मैत्रेयी पुष्पा जी ने अपने समस्त उपन्यासों में उसके स्वरूप का निरूपण किया है। इसकी विवेचना जिन–तीन प्रमुख संदर्भो में की गयी है। वे हैं–

1. ग्रामीण परिवेश और नारी की महत्वपूर्ण भूमिका तथा मूल्यों में परिवर्तन।
2. परिवार में बढ़ता हुआ पीढ़ियों का अन्तर और पीढ़ियों के बीच संघर्ष।
3. पुराने मूल्यों से कटाव या पलायन, और नये मूल्यों की तलाश।

हिन्दी की कहानियों में इस बदलाव का स्वर, बदला परिवेश, बदली परिस्थितियों का चित्रण सन् 1990 के बाद के उपन्यासों में ही मिलने लगा था किन्तु इसका खुला रूप साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में ही देखने को मिलता है। जब बड़ी संख्या में नारी उपन्यासकारों ने अपनी कलम चलायीं। ममता कालिया का 'बेघर', उषा प्रियम्बदा का 'पचपन खम्बे लाल दीवार', मन्नू भण्डारी का 'आपका बण्टी' शिवानी का 'कृष्णकली',

[34] महादेवी वर्मा–दीपशिखा–भूमिका से

रजिया कसीह सिद्दकी का 'पैरों में छाले', कृष्ण सोबती का 'सूरज मुखी अंधेरे में, मित्रों मरजानी और यारों के यार आदि में यह बदलाव अत्यन्त मुखर है। मैत्रेयी पुष्पा जी ने अपने नारी प्रधान उपन्यासों में इस बदलाव को और प्रखरता प्रदान की है। उनके प्रमुख नारी चरित्र नारी की एक स्वतन्त्र अस्मिता और विभिन्न व्यवस्थाओं के जाल में फंसकर भी अपने नारीत्व की स्वतन्त्र पहचान बनाये हुये हैं।

मैत्रेयी जी के नारी पात्र जिन दो क्षेत्रो में क्रान्तिकारी कदम उठाते मिलते है वे हैं 'स्वावलम्बन तथा काम सम्बन्धों और सामाजिक वर्जनाओं को तोड़ना।'

नारी का अर्थ प्राप्ति की गतिविधियों में लिप्त होना, उसके परालम्बी न रहने की प्रबल इच्छा के कारण अथवा विवशता के कारण ही मुख्य रूप से पाया जाता हैं। जीविका के लिए अर्थोपार्जन में संलग्न नारियों की श्रेणी में कुमारी कन्याएं भी है, विवाहिता भी और विधवा या परित्यक्ता भी। इन सभी को अपने परावलम्बी न बनने के लिए भी अनेक प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक उलझनों से जूझना पड़ता है। मैत्रेयी जी का चिंतन इन्हीं उलझनों का चित्रण करता व समाधान ढूढ़ता दिखलायी देता है।

बुन्देलखण्डी ग्रामीण परिवेश से रंजित इन उपन्यासों में पुरूष और नारी पात्रों के बीच कशमकश, टकराहट, वर्चस्व की लालसा, स्वतन्त्र–जीवन की कामना, परम्परागत नियमों एवं व्यवस्थाओं को तोड़ना या उनसे उन्मुक्त होने की उत्कट कामना आदि का चित्रण पूरे विस्तार से दिखाया गया है। इसलिए मैत्रेयी जी के उपन्यासों के सम्बन्ध में यह कहना समुचित प्रतीत होता है कि उनके समस्त उपन्यासों का आधार नारी ही है, उनके इर्द–गिर्द ही अनेकानेक चरित्र, घटनाओं पर परिस्थितियाँ बुनी गयी हैं, जो उसकी भूमिका को दृढ़ता व सशक्तता प्रदान करती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यासों में सामाजिक चेतना के फलस्वरूप नारी का विद्रोहिणी रूप हमारे समक्ष आता है फिर चाहे वह मंदा हो, सारंग हो, शीलो हो, कस्तूरी हो या अल्मा कबूतरी या स्वयं मैत्रेयी पुष्पा जी ही क्यों न हों, सभी का कहीं न कहीं विद्रोही रूप देखने को मिलता है। पर ऐसा नहीं कि वह सदैव विद्रोहिणी ही बनी रहती है वह परिस्थितियों से समझौता भी करना चाहती है किन्तु अक्सर समस्त सौदे घाटे के सिद्ध होते हैं क्योंकि पुरूष उसका भी सौदागर बनना चाहता है, उस पर छा जाना चाहता है, स्वयं मैत्रेयी ने अपने आत्मकथात्मक उपन्यास "कस्तूरी कुंडल बसै" में

एक घटना विशेष का उल्लेख करते हुये बताया कि किस प्रकार मोठ कॉलेज के प्रिंसीपल ने "एकस्ट्रा क्लास" के एवज में उससे दुराचार का प्रयास किया, जिसका मैत्रेयी ने मुहंतोड़ जबाब दिया। माँ कस्तूरी का यह कथन– "कि यह बात गांठ बांध ले कि मर्द की जात से होशियार रहकर चलना होता है, भले वह साठ साल का बूढ़ा हो।"[35] इस कथन से स्पष्ट है कि नारी कहीं भी सुरक्षित नहीं इसलिये नारी स्वतन्त्र निर्णय लेती दिखलायी पड़ती है, वह पति और आर्थिक स्वावलम्बन में से एक छोड़ने की परिस्थिति उत्पन्न होने पर पति को छोड़ने में भी हिचकती नहीं दिखायी देती।

हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप चित्रित किये गये हैं। सर्वप्रथम नारी के पारस्परिक और कदाचित अनिवार्य रूप गृहिणी से नारी रूपों की चर्चा का प्रारम्भ किया जाता है। लेकिन मैत्रेयी जी ने नारी के संदर्भ को बदला है। परिस्थितियों से अविरल जूझते हुये वह विजयिनी होने के लिए सतत् प्रयत्नशील है। वस्तुस्थिति के यथार्थ को समझते हुये उसमें आत्मान्वेषण की प्रवृत्ति है।, जो एक व्यापक सामाजिक संदर्भ से उसे जोडती है तो दूसरी ओर उसे आत्म स्वीकृति का साहस भी देती है। आज की नारी के लिए अपनी निजता एवं आन्तरिक वैयक्तिकता, अत्यन्त महत्वपूर्ण है वहीं सामाजिक समस्यायें भी अनिवार्य हैं क्योंकि वे उसकी अभिनव अर्थवक्ता की व्यापक परिणति के साथ सम्बद्ध होती है। अतः नारी के वाह्य आचरण एवं उसके अंतः संघर्ष को व्यापक पृष्ठ अनुभूति के धरातल पर परखने की चेष्टा हिन्दी उपन्यासों में पायी जाती है।

समुदाय के स्थान पर व्यक्ति तथा परम्परागत आदर्शों के स्थान पर विद्रोह को ही स्वर देने की चेष्टा मैत्रेयी जी के उपन्यासों में मिलती है। साम्प्रतिक द्वान्द्वात्मकता व्यक्ति के विघटन का प्रमुख कारण है, " आधुनिकता की एक विडम्बना यह है कि हमें दोहरा व्यकित्व दे दिया गया। घर पर हम घोर धार्मिक, परम्परावादी, नैतिकवादी और रूढ़ होते हैं। पर घर के बाहर हम प्रगतिशील होनें, नारी की स्वतन्त्रता का पक्षपाती होने और अछूतों के साथ समानता स्थापित करने की हवाई बातें करते हैं।"[36]

यही साम्प्रतिक द्वान्द्वात्मकता मैत्रेयी जी के बहुचर्चित उपन्यास "विजन" और "कस्तूरी कुंडल बंसै" में देखने को मिलती है। जहाँ एक तरफ "विजन" की नायिका "डॉ0 नेहा" को बाहरी जगत में अनेकानेक उपाधियों व सम्मानों से स्वयं उसके ससुर

[35] कस्तूरी कुंडल बसै–मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 53
[36] डॉ0 सुरेश सिन्हा–हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ संख्या 125

व पति महिमामण्डित करते हैं वहीं घर पर उसकी मानसिक स्थिति दयनीय है। "कस्तूरी कुंडल बसै" की नायिका कस्तूरी अपनी बेटी पुष्पा को अनेकानेक सशक्त ठोस व कठोर यथार्थ से जागरूक रहने के लिए कहती है तथा परम्परागत रूढ़ियों परम्पराओं, सामाजिक वर्जनाओं को तोड़ने का पाठ पढ़ाती है तो वहीं विपरीत परिस्थितियों में फंसी मैत्रेयी से समझौता करने को भी कहती है, जो उनकी दोहरी मानसिकता व दोहरे व्यक्तित्व को हमारे समक्ष लाती है। यही अन्तर विरोध, कृत्रिमता और द्वन्द्व अन्ततः मूल्यहीनता, विघटन, संत्रास, एवं निरर्थकता के बोध को जन्म देता है।

नारी की इन्हीं उलझनों का चित्रण करते हुये एक के बाद एक लगातार नारी प्रधान उपन्यासों का लेखन इस बात को सिद्ध करता है कि मैत्रेयी जी की नारी चिंतन में स्पष्ट भागेदारी रही है और उसके आगे बढ़ते रहने की सम्भावना है।

३. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास साहित्य में नारी-संवेदना

"नारी, नर की सहचरी, गृह लक्ष्मी कहलाए,
रक्षक बन वह धर्म की, देव ध्वजा फहराए।
देव ध्वजा फहराए, यदि गुणगान हो तिरिया,
संयम, शील, विवेक से, करे सभी वह क्रिया।
इंदु, सीता, अनुसूया सी, आदर्श अवतारी,
बन महान माँ पालती, हर बच्चे को नारी।"[37]

नारी प्रकृति की अद्भुत रचना है। नारी के स्वरूप ने जहाँ पुरूष को सदैव आकृष्ट किया, वहीं उसके अन्तस की शक्तियों ने उसे आक्रान्त भी किया है। पुरूष ने नारी को विविध रूपों में बांधने का प्रयास किया। कभी तो उसने नारी को आदि शक्ति, मातुरूप, जगदम्बा देवी आदि विशेषणों से अभिहित किया तो कभी उसे "नरक का द्वार", "पतन का कारण" तथा "ताड़न की अधिकारिणी" बताकर हेय तथा त्याज्य माना। दोनों ही रूपों में नारी को सामान्य मानवी के रूप में प्रतिष्ठित नहीं होने दिया। नारी के सम्बन्ध में पुरूष की यह दोमुखी प्रवृत्ति आज तक विद्यमान है।

[37] अमर उजाला के 'पत्र स्तम्भ' से – रामेश्वर प्रसाद

नारी प्रेम, श्रद्धा, भक्ति और समर्पण की साक्षात प्रतिमा है। प्रारम्भ से लेकर आज तक यदि नारी में जो कमियां और दोष उत्पन्न हुये उसके लिये वह स्वयं उत्तरदायी नहीं, बल्कि हमारा समाज ही जिम्मेदार रहा है। उसका स्वतन्त्र अस्तित्व तो कहीं दिखलायी नहीं देता। "उसके लिए बचपन में पिता, यौवन में पति और बुढ़ापे में पुत्र उसकी रक्षा करें।"[38] "जबकि स्वतन्त्र रूप से नारी प्रेम, दया, वात्सल्य, सहृदयता, क्षमा, कोमलता, त्याग तथा श्रद्धा आदि सभी उच्च भावनाओं का सम्मिश्रण है।"[39] प्रारम्भिक उपन्यासकारों से लेकर वर्तमान उपन्यासकारों ने नारी को विविध रूपों में प्रतिबिम्बित किया है।

हिन्दी का उपन्यास साहित्य प्रारम्भ से ही नारी के प्रति अनुदार ही रहा है। जब भी उपन्यास के माध्यम से नारी के सम्मानित रूप को उभारने की चेष्टा की गई तभी हिन्दू धर्म ग्रन्थों की नारी विरोधी उक्तियाँ उपन्यासकारों की श्रद्धा कम करती रहीं।

निःसंदेह उपन्यास मानवीय संवेदनाओं की आधार भित्ति पर ही टिकी हुई आज की सशक्तम विधा है। हिन्दी उपन्यास मानव जीवन को ही चित्रांकित करता है। 'डॉ0 सुरेश सिन्हा' ने कहा है, "उपन्यास विराट चित्रफलक पर यथार्थ परिवेश में मानव जीवन की अभिव्यक्ति है। वह मनुष्य की आन्तरिकता का अन्वेषण है और मानवीयता की प्रतिष्ठा तथा मानव मूल्य की मर्यादा निश्चित करता है। वह मनुष्य की अन्तर्निहित सामर्थ्य की पहचान है। वह मानव जीवन के जटिल परिवेश के सूक्ष्म से सूक्ष्म सूत्रों को स्पष्ट करता है तथा विभिन्न सामाजिक संदर्भो को नये आयाम देता है।"

आज का हिन्दी उपन्यास संघर्षोन्मुख हो चुका है। वर्तमान मध्यमवर्गीय जीवन के संघर्ष की स्पष्ट छाया उसमें प्रतिबिम्बित हो उठी है। इधर बहुत सारी नारी लेखिकाओं ने भी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में कदम रखा है। मैत्रेयी पुष्पा वर्तमान समय की चर्चित उपन्यास लेखिकाओं में अग्रगण्य हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में नारी की प्रथक–2 परिस्थितियों का चित्रण किया है। मात्र इतना ही नहीं अपितु पुष्पा जी के उपन्यासों में पुरूष पात्रों की रचना होती तो है परन्तु कहानी नायिका के जीवन पर ही आधारित होती है। कहने का तात्पर्य है कि आपके उपन्यास नारी प्रधान होते हैं।

---

[38] मनुस्मृति 'इन्दु' – 15 अप्रैल सन् 2000
[39] प्रेमचन्द्र का नारी चित्रण–डॉ0 गीतालाल पृष्ठ 188

भारतीय समाज में पति को परमेश्वर माना जाता है परिणाम स्वरूप नारी की स्थिति शोचनीय हो गयी है। परन्तु युग के अनुरूप आज की नारी में बौद्धिक जागृति अधिक है। वह भी जीवन को खुली दृष्टि से देखती है। जब तक वह किसी बात से पूर्णता संतुष्ट नहीं होती तब तक वह उसे स्वीकार नहीं करती। मानव समाज की वास्तविक उन्नति नारी व पुरूष दोनों की सर्वांग प्रगति पर है। नारी की प्रगति और जागृति के सबसे बड़े पोषक गांधी जी थे। उनका मानना था कि "स्त्री पुरूष की गुलाम नहीं है, वह अर्द्धांगिनी है, सहगामिनी है, उसको मित्र समझना चाहिये।

इसके पश्चात् भी पुरूष नारी को अपनी सहगामिनी या मित्र न समझकर स्वयं को उसका स्वामी समझता है। यह पुरूष का नारी के प्रति सबसे बड़ा अन्याय है और इन्हीं अन्यायों के प्रति मैत्रेयी जी ने अपनी लेखनी चलायी है। मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यास अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के हैं। नारी जीवन की संवेदनाओं को मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों में वरीयता प्रदान की है। आपके उपन्यासों मे नारी समस्याओं, जिज्ञासाओं, आकांक्षाओं एवं कल्पना का मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है।

यदि नारी संवेदना का विश्लेषण किया जाये तो उसका कोई भी रूप इससे वंचित नहीं। वह चाहे मां हो, बेटी हो, बहिन हो, पत्नी हो, बहू हो या प्रेमिका। पुरूष समाज कहीं भी उसे अपमानित या शोषित करने का अवसर छोड़ना नहीं चाहता। यद्यपि नारी प्राचीन काल से हीं स्तुत्य समझी गयी है– तथापि सदैव ही पुरूषों द्वारा शोषित रही है। पुरूष शक्ति सम्पन्न है परिणाम स्वरूप अपने पौरूष का प्रदर्शन करते हुये सदैव ही नारी का शोषण करता है। इतिहास भी इस बात का साक्षी है। अपनी कुशल लेखनी के द्वारा मैत्रेयी जी ने पुरूषों के द्वारा शोषित नारी का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है उन्होंने अपने उपन्यासों में जहाँ एक ओर नारी पर होने वाले अत्याचारों का चित्रण किया है। वहीं दूसरी ओर उन्होंने शोषित और पीड़ित नारी को आत्मचेतस एवं नारी अस्मिता से भी जुड़ते हुये दिखाया है। मैत्रेयी जी ऐसी किसी भी बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं जिसका कोई तर्क संगत प्रमाण नहीं है। यही कारण है कि उनके साहित्य के पात्र कल्पनाओं के द्वारा ही प्रसूत नहीं अपितु वे इस धरती के मानव हैं, ग्रामीण परिवेश में रचे–बसे मानव, जिन्हें उन्होंने उसकी समस्त अच्छाइयों और बुराइयों के साथ प्रस्तुत किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मैत्रीयी जी ने नारी जीवन का गहन अध्ययन किया है और फिर चाहे वह ग्रामीण समाज हो या नगरीय,

उन्होंने जहाँ नारी हृदय को अपमानित, शोषित व अधिकार से वंचित देखा उनका हृदय क्रन्दन कर उठा और उनका यही करूण क्रन्दन विद्रोह को जन्म देता है।

जब नारी का हृदय आहत होता है तो उसका प्रतिशोध कोई नहीं रोक सकता। सत्य भी है, प्राचीन काल में नारी के जो गुण बताये गये हैं वे सारे गुण तो एक गधे में भी होते हैं यदि यही गुण श्रेष्ठ हैं तो श्रेष्ठता के आधार पर गधे को ही वन का राजा क्यों नहीं माना जाता। सिंह जो कि हिंसा से परिपूर्ण अत्याचार करने वाला होता है तो भी वन का राजा होता है, फिर यदि नारी भी विद्रोह करे, अत्याचारों का बदला लेने के लिए हिंसा का अवलम्ब ले या सामाजिक परम्पराओं का विरोध करे तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? और जब इन्हीं विषम परिस्थितियों के वशीभूत हो नारी जब समाज में कहीं–कहीं सामाजिक वर्जनाओं को तोड़ती हुयी दिखलायी देती है, स्वतन्त्र्य है। मैत्रेयी जी की नारी देह के भोग–उपभोग व इसकी स्वाधीनता की पहल करती दिखलायी देती है। इसलिये "चाक" की विधवा रेशम देह से ही स्वाधीनता की पहल करती है। विचार के अनुकूल ही उसकी क्रियाशीलता है। सामाजिक व्यवस्था को पूर्णतया अंगूठा दिखाते हुये अजन्में बच्चे को अपना नाम देना चाहती है, लेकिन उसकी इच्छा को "स्वेच्छाचारिता" करार दे उसे "मृत्युदंड" दिया जाता है। विधवा गर्भिणी रेशम की हत्या से ही "चाक" का प्रारम्भ होता है। इस प्रसंग से ही औपन्यायिक विषय वस्तु "स्त्री–विमर्श" का मुद्दा रेखांकित होता है। अपने अवैध संतान को अपना नाम देने की उसकी ख्वाहिश देह के साथ नष्ट हो जाती है।

"कहना न होगा क मैत्रेयी पुष्पा 'बोल्ड कैरेक्टर' रचती है। मैत्रेयी की नारियाँ अपनी पूरी शारीरिकता के साथ जीने के संकल्प को अपना कथ्य बनाती हैं। उनकी गोमा, शीलो, सारंग, नारी जिजीविषा की ऐसी दबंग अभिव्यक्तियाँ हैं, जहाँ शील–अश्लील, नैतिक–अनैतिक की धारणाएं सहज ही केंचुली की तरह उतर जाती है।"[2]

नारी को अपमानित शोषित और वंचित करने वाली धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक एवं पारम्परिक परिस्थितियों का मैत्रेयी जी ने सफलता पूर्वक चित्रण किया है एवं उनके तथ्यों को भी उकेरा है जिनके चलते इदन्नमम की मंदा, झूलानट की शीलो, अल्मा कबूतरी की अल्मा, चाक की सारंग आदि

[2] राजेन्द्र यादव, हंस जुलाई 1998

की रचना करते समय रचनाकार का हृदय उनकी पीड़ाओं व संवेदनाओ की अनुभूति कर चीत्कार कर उठा है।

ज्ञातव्य है कि चन्दन स्वभाव से शीतल होता है फिर भी यदि उसे आवश्यकता से अधिक रगड़ा जाये तो चन्दन के अन्दर की अग्नि प्रज्जवलित हो जाती है। इसी प्रकार यदि सदैव तिरस्कार और उपेक्षा ही प्राप्त होती है तो नारी के हृदय में भी समाज के प्रति घृणा एवं विद्रोह का प्रादुर्भाव स्वाभाविक मानना चाहिए। नारी की इस प्रतिशोधात्मक वृत्ति का वर्णन पुष्पा जी ने अपने उपन्यासो में बड़ी कोमलता के साथ किया है। मैत्रेयी जी ने अपनी लेखनी से सिद्ध कर दिया है कि नारी हृदय में समाज के प्रति विद्रोह की भावना आकस्मिक नहीं। "असन्तोष, दुख और असफलता का स्रोत कहाँ होकर फूटे, कौन जानता है? जीवन का यह मूल्य पर्याप्त नहीं। सारी जिन्दगी घुला–गलाकर जो मिला, वह कितना है।[40] समाज अपने कुकृत्यों से क्रमशः नारी के हृदय में इस भावना को उत्पन्न करता है। प्रेम, त्याग, विश्वास, ममता इतयादि के प्रति दान में जब छल, प्रपन्च एवं उपेक्षा प्राप्त होती है तो नारी विद्रोह कर उठती है, यदि समाज में नारी एक बार उपेक्षित होती है तो उसकी उपेक्षा का क्रम सा बन जाता है, ससुराल हो या मायका, परिजन हो या सम्बन्धी, मित्र हों या शुभचिन्तक, सब उससे बचने का प्रयास करते हैं। ऐसे में अनेकानेक अन्तर्द्वन्द्व से घिरी नारी – "मैंने ब्याह नहीं करना चाहा भी, किसी ने सुनी मेरी बात? मैं भाई के ब्याह के लिए बदले में किसी बूढ़े के साथ नहीं जाना चाहती थी, बस चुपके से बेंच दिया मुझे। आज विधवा हो गई, मेरे साथ कौन हैं? चिन्ता है किसी को? ....मैं दर्द से तड़प रहीं हूँ, जिस मायके की आन रख रही हूँ, जिस ससुराल की मर्यादा मान रही हूँ, वहाँ कौन कितने दिन साथ देगा? देगा तो मुझे लज्जाशील मानेंगे लोग?"[41] ऐसी उपेक्षा की शिकार नारी समाज के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण कैसे बना सकती है? वर्षो से समाज के प्रति बनी सोच विस्तृत हुयी– "सोचते वह इतनी तल्ख हो उठी कि सब कुछ काबू से बाहर होने लगा। यह आग, जो वह सालों से बुझाने की चेष्टा करती आ रही है, किस हवा के झोंके से भड़क उठती हैं? ये बातें, जो कपाल में हैं, निस्संदेह किसी सामान्य साधारण लड़की के लिए मुसीबत की जड़ हैं।

---

[40] कस्तूरी कुंडल बसै–मैत्रेयी पुष्पा– पृष्ठ 62
[41] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 31

आशाएँ धकेलती रहीं, सपने द्वार खोलकर सामने खड़े थे। दुविधाओं में अब क्या सार? मगज में लगी सुई घेरे में अटककर एक ही स्वर पर लग गई है – आओ, आओ, आगे बढ़ो।

फैसला अपना था, फैसला लिया।"[42] और फिर समाज से लोहा लेने और सामना करने के लिए नारी ने कमर कस ली। समाज की परवाह न करते हुये सर्वप्रथम शिक्षा को अपना शस्त्र बनाया। – " स्कूल जाने वाली झोला लटकाए औरत को भौंचक होकर सबने देखा।........ठोकर लगी, मुँह के बल गिरी।

झेंपती हुयी स्त्री चोट और दर्द भूलकर चुपके से उठती, धूल झाड़कर धीमे से खड़ी होती। आसपास तमाशगीर होते। हँसतें–मुस्कराते बूढ़े, जवान और बच्चे। औरते घूँघट में कैसा चेहरा लिये रहती, पता न चलता।

बस इतना पता चला कि उसे लोगों ने पागल मान लिया है।[43] और यही पागलपन जब हद से आगे बढ़ा तो स्त्री ने शपथ ली। "मैं अपनी विद्या को अकारथ नहीं जाने दूंगीं......पढ़ लिखकर आदमी ज्ञान की उस दुनिया में पहुंच सकता है, जहाँ वह अपने आपको देख सके कि माहौल में उसकी तस्वीर क्या है? बिना पढ़े मनुष्य का गधे जैसा जीवन........ ।"[44]

उपन्यास आधुनिक युग का विशिष्ट साहित्यांग है। जीवन की नाना समस्याओं का उद्घाटन तथा उनका हल, यद्यपि हल सदैव अपेक्षित नहीं होता, आज के उपन्यास का प्रधान काम हैं।"[45] उपन्यासकार एक सामाजिक प्राणी होता है और तभी वह जीवन की विविध समस्याओं और परिस्थितियों से प्रभावित होता है। अपनी रचनाओं में वह उस प्रभाव को उद्घाटित भी करता है। आज का युग विषम जैसे–जैसे परिस्थितियों में परिवर्तन हो रहा है, वैसे–वैसे विभिन्न समस्यायें हमारे समाज के समक्ष उपस्थित हो रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की दशा दयनीय है वहाँ परिवर्तन भी न के बराबर है और समस्यायें दिन दूनी रात चौगनी बढ़ती ही जा रहीं हैं। नारी समाज भी इन समस्याओं से अछूता नहीं। समस्यायें अधिकाशतः सामाजिक क्षेत्र में जन्म लेती हैं। जिनका सम्बन्ध अधिकतर नारी जाति से होता है। बहुत सी ऐसी समस्यायें है जिन्होंने नारी की समाज

[42] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 31–32
[43] कस्तुरी कुंडल बसे – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 32
[44] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 30

में दयनीय स्थिति बना दी है। वर्षों से चली आ रही नारी के प्रति समाज की लचर सोंच, इन समस्याओं को और अधिक जटिल बना देती है।

हिन्दी का उपन्यास नारी समाज के महत्वपूर्ण प्रश्नों को लेकर समाज के समक्ष आया है। नारी से जुड़ी इन विभिन्न समस्याओं पर मैत्रेयी पुष्पा जी ने अपनी कुशल लेखनी के माध्यम से प्रकाश डाला है। समाज में नारी का कोई भी रूप ऐसा नहीं, जो पुरूष समाज के द्वारा शोषित और प्रताड़ित न हो। मर्यादाओं का उल्लघंन पाप समझा जाता है– "कस्तूरी, लड़कियों से ऐसे दुस्साहस की उम्मीद कौन कर सकता है? वे तो माँ–बाप के सामने सिर उठाकर बात तक नहीं कर सकती, मरने का शाप हंस–हंस कर झेलतीं हैं और गालियाँ चुपचाप सहन करती हुई अपने शील का परिचय देती हैं।"[46] शायद यही नारी जीवन का सम्पूर्ण सत्य है। नारी जीवन के विविध पहलुओं से रूबरू कराने हेतु साहित्कार के पास तो अभिव्यक्ति का वैसे ही उत्कृष्ट साधन होता है और फिर मैत्रेयी पुष्पा जी तो स्वयं भी नारी हैं अतएवं नारी की दारूण दशा का उन्होंने हर रूप में अनुभव किया है एवं अपने उपन्यासों में अपने अनुभवों को उद्‌घाटित किया है। नारी विविध रूपों में किन–किन समस्याओं से जूझती है और किस प्रकार स्वयं अपना रास्ता तय करती है, इन सबका चित्रण मैत्रेयी जी ने बखूबी अपने उपन्यासों में किया है। अतएवं अपेक्षित है कि उनके द्वारा प्रणीत उपन्यासों में नारी संवेदना का विस्तृत अध्ययन किया जाए – जो विविध संवदेनात्मक रूपों मं प्रथक–प्रथक प्रस्तुत है–

१. मातृ रूप में नारी संवेदना

नारी के विभिन्न रूपों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पद मातृत्व है। वेदों में माता को पृथ्वी स्वरूप कहा गया है। पृथ्वी के समान ही वह सन्तान धारण करती है, उसका पालन पोषण करती है और आजीवन उसके सुख की कामना करती है। "स्त्री के विकास की चरम सीमा उसके मातृत्व में ही हो सकती है।"[47] मातृत्व के भीतर ही नारी जीवन सफल माना गया है। " माँ को पृथ्वी रूपा और पिता से भी

---

[45] उपन्यास संदेश – निबंध, समस्या मूलक उपन्यास लेखक – प्रो0 महेन्द्र भटनागर
[46] महादेवी वर्मा – श्रृंखला की कड़िया – पृष्ठ 16
[47] बिन्दु अग्रवाल – हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण पृष्ठ संख्या 296

बड़ा माना गया है। माता के स्वभाव में एक ओर धैर्य, त्याग, ममता, स्नेह का परम उत्कर्ष देखते हैं तो दूसरी ओर पुत्रवती होने को भी अनिवार्य मानते हैं। माँ शब्द नारी की पूर्णता, त्याग, ममता, प्रेम, करूणा का द्योतक है। यह एक ऐसा बन्धन है जो किसी भी नारी को आल्हादित करता है। प्रत्येक नारी माँ का सम्बोधन सुनना चाहती है। अपने बच्चे के लिए अपने जीवन के समस्त सुखों का त्याग कर सकती है। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपनी आवश्यकताओं को काट सकती है। माँ अनादि काल से ही ऐसी है। मैत्रेयी पुष्पा जी ने माँ की इन संवेदनाओं को बखूबी अपने नारी चरित्रों में समेटा है। ''झूलानट'' में बालकिशन की माँ को देखिये– ''बालू ओ मेरे बेटा...........अये दो घूँट दूध। मेरी तो सांस में सांस रहेगी, तब तक पोसूगी अपने लाल को।..........माँ आ गई। मैले आँचल में काँसे का कटोरा छिपाए हुये। रोम–रोम से झरती हुयी ममता। आँखों में मोह की नजर। बालकिशन का गला भर आया।''[48]

हिन्दी उपन्यास संसार में माता के शाश्वत रूप के सभी पक्षों का सविस्तार वर्णन किया गया है। संतान चाहे अयोग्य हो, कर्त्तव्यच्युत हो, परन्तु माँ का वात्सल्य भरा आंचल सदा उस पर छाया रहता है। सदैव से उसकी दृष्टि पुत्र व पुत्रियों की खुशियों को तलाशती चली आ रहीं है। यह दृष्टिकोण सदियों से चला आ रहा है। बदला है तो सिर्फ माँ के प्रति आधुनिक पीढ़ी का दृष्टिकोण। परन्तु माँ की अनुभव से पकी जिन्दगी सदैव अपने बच्चों का भला चाहती है। तभी तो ''कस्तूरी कुंडल बसै'' की नायिका कस्तूरी अपनी बेटी से कहती है – '' जो तुझे आज बुरा लग रहा है मैत्रेयी, वहीं से तेरा भला होने वाला है। स्त्री के लिए बाल श्रृंगार बताये गये हैं, मगर श्रृंगार ही उसका जंजाल है, यह तू अभी नहीं समझेगी, क्योंकि जी से जंजाल चिपटाने वाली औरतों की संगत में रहती है। चोटी काटने की तरह इस दकियानूसी संगत को काटना भी कितना जरूरी है। यह बात मैं जानती हूँ।''[49]

माँ की भावमयी संवेदना हरहाल में अपने बच्चों का भला चाहती है। माँ के सम्बन्ध में ''रामधारी सिंह 'दिनकर' की यह कविता कितनी सार्थकता लिये हुये है–

''पर रम्भें क्या बात कभी यह भी मन में आती है,
माँ बनते ही त्रिया कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है?

[48] झूलानट – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 13
[49] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा पृष्ठ 49

गलती है हिमशिला सत्य है, गठन देह की होकर,

पर हो जाती है वह असीम कितनी पयस्विनी होकर।"[50]

तभी तो मैत्रेयी जी नारी संवेदना व अनुभूति को पुरूष संवेदना से सर्वथा प्रथक मानती हैं। माँ की छवि एक त्यागमयी निश्छल प्रेम से सराबोर महिला की है जो अपनी सन्तान के लिये हमेशा अच्छा सोचती है। हर अच्छे बुरे समय में हमेशा अपनी सन्तान की सुख सुविधा का ध्यान रखती है। शैशवास्था में अंगुली पकड़कर चलना सिखाने वाली माँ के लिये सन्तान क्या महत्व रखती है। इसे नापने का कोई पैमाना नहीं है। कारण सादगी और सेवा की प्रतिमूर्ति एक माँ अपने जीवन के सबसे बड़े सुख को भी शब्दों में व्यक्त करने में असंमर्थ पाती है। प्रेम से परिपूर्ण इस माँ की असहाय अवस्था का इससे बढ़कर प्रमाण क्या होगा कि वृद्धावस्था में माँ बेटों के लिए बोझ हो जाती है। जिसे उतारकर फेंका भी नहीं जा सकता, तभी तो "झूलानट" के नायक बालकिशन को अपनी माँ अपने व शीलो के सुनहरे जीवन के बीच बोझ सी दिखलायी देती है और उसके मुख से अनायास निकलता है, "आय डुकरों, तें कब मरेगी"........जब देखो, डुकरों काँटो के झाड़ पर चढ़ी रहती है.. ...मति भिरस्ट हो गई बूढ़ी की।".........पर माँ तो माँ है माँ देवी है। क्षम शीला है। त्याग की प्रतिमूर्ति है, ऐसा वृक्ष है, जो अपने आश्रितों को ताप से बचाकर स्वयं गर्मी में झुलसता है। मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यासों का सूक्ष्म अध्ययन करने के उपरान्त माँ का ऐसा ही गौरवशाली व्यक्तित्व हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता हैं। भले ही उसके बच्चे उसकी उपेक्षा कर दें। परन्तु वह फिर भी उनके लिये ही जीती मरती है। बेटे के जरा सा बीमार होने पर सब भूल भागी भागी आयी है, "अम्मा का हृदय आसमान सा निर्मल है। भरपूर ममता उड़ेल दी दोनों बच्चों पर।.....वह माँ ही थी जो पहले पहल आयी थी। गरम दूध और अजवाइन लेकर।"

सच ही कहा गया है –

"कुपुत्रों जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति"

माँ पुत्र के चरित्र का निर्माण कर राष्ट्र का निर्माण करती है। नेपोलियन ने कहा था।

"Give me Good Mother's I will give you a good nation"

---

[50] 'उर्वशी' – रामधारी सिंह –दिनकर'

ऐसी दिव्य ज्योति माँ का अनादर ईश्वर का अनादर है। माँ पूज्य है, वन्दनीय है, प्रातः स्मरणीय है। फिर यह उपेक्षा क्यों?

माँ का ह्रदय क्या सोचता है उसकी संवेदना क्या है, इस बात का अनुभव उसकी संतान नहीं कर पाती परन्तु माँ समझ नहीं पाती कि आखिर उसका क्या दोष हैं?" "जिस बेटे को उन्होंने ओखली में खा–खाकर, टोने–टोटकों को पूरा करके जन्मा वही दिन रात गाली देता, क्योंकि वे भेदभाव न बरत पाती थीं। सक्का गड़रिया–कुम्हार–खटीकों के यहाँ भी नाच आती।..........भाई ने पीटा अम्मा को, बोला, " तू माँ है या हत्यारी दुसमन, नीच–कमीनों के द्वार–दरवाजे नाच रही है। बिरादरी वालों का भी खौफ नहीं? जातिनी होकर नटिनी बनी फिरती है, कोई ऐसी डाइन माँ होगी जो बेटे का घर बसता न......।"[51] कथन माँ की ह्रदयगत संवेदना को कितना कष्ट पहुंचाते होगें, क्योंकि माँ तो जीवन पर्यन्त अपनी संतान के सुखमय पालन पोषण में अपने सुखों को स्वाहा कर देती है।

एक माँ के द्वारा मैत्रेयी पुष्पा जी के द्वारा कहलाये कुछ शब्द हमारे अंतस को झिंझोडने के लिए पर्याप्त हैं। यदि हम मानव है। सम्बन्धों के महत्व को समझने वाले हैं तो ये शब्द हमारी पलकों के कोरों की अश्रुपूर्ति अवश्य करेंगे। निम्न पंक्तियां दृष्टव्य हैं–

जिस दिन पिता मरे थे बुरी घड़ी थी। अम्मा की आँखों में आँसुओं से ज्यादा भूख से बिलखते अपने छोटे–छोटे बच्चों को देखकर लाचारी बरस रही थी। उन्हें याद था कि आज के दिन ललमनियां दिखाने जाना था, सिमरधरी गाँव में। लेकिन घर में लाश धरी हो तो आने जाने वालों के सामने बच्चों के पेट में कुलबुलाती आंतो को मसककर शोक दरशाना जरूरी है। अम्मा इस रूढ़ि–रिवाज को नहीं तोड़ पाई। बेटी के कान में बोली, " बेटी तू चुपके से ललमनियां कर आ। परोसा मिलेगा सो उसी परसाद के संग कई दिनों कि पानी पीते रहेंगे। हमारे यहाँ रोज–रोज खाना भी कौन धरने आएगा?"

---

[51] ललमनियां – मैत्रेयी पुष्पा – पृ – 67

लौटकर आई तो बापू का दाह करके लौट चुके थे लोग। अम्मा औरतों के बीच मुंह लाल किये बैठी थीं। चिन्ता से घायल आँखे उसकी ओर फेंरी और बोली, '' कठौती के नीचे दाब दे पर......''

उसने उसी लय में बताया, '' नहीं दिया अम्मा। घर की मालकिन ने बोला ब्याह के घर का परोसा मौत के घर में नहीं जाता। तू आई क्यों बेटा?''

अम्मा की सूखी आँखों में से पानी की धारा फूट पड़ी। वे दहाड़ मारकर रोने लगीं। यह बात आज तक समझ में नहीं आई कि अम्मा किस बात पर रोई थी? अपने बच्चों की भूख पर? बापू की मौत पर? या ललमनियां (एक प्रकार बुन्देलखण्डी नृत्य, जो विवाह के अवसर पर घाघरा चोली पहनकर नाचा जाता है) की बिन भोग आराधना पर?''[52]

माँ के इन दुःखों का कब अंत है? शायद कभी नहीं। अपने कर्त्तव्यों की चक्की में पिसती माँ के प्रति अन्य किसी का शायद कोई कर्त्तव्य नहीं? कोई संवेदना नहीं?

एक माँ के ह्रदय से कोई पूछे कि उसके इकलौते बेटे का विछोह उसके दिल के लिए क्या है? मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यास ''चाक'' में ''सारंग'' के माध्यम से माँ के ह्रदय की उस पीड़ा को उकेरा है। किसी मुसीबत के चलते सारंग को अपना बेटा चन्दन शहर में जेठ–जेठानी के पास भेजना पड़ता है। वह चाहकर भी उसे अपने पास नहीं बुलापाती और न ही उससे मिल पाती बस दूसरे बच्चों को देख देखकर अपनी ममता मारती रहती है। इसके बाबत वह अपने पति रंजीत से कई बार बात कर चुकी है और उनकी अवहेलना व व्यंग्य सहन कर चुकी है, ऐसा नहीं है कि रंजीत अपने बेटे से प्यार नहीं करते किन्तु उसकी भलाई के लिए वे उसे बाहर ही रखना चाहते हैं किन्तु माँ की ममता बस से बाहर है और शायद रंजीत पुरूष होने के नाते माँ के ह्रदय को उतनी गम्भीरता से नहीं समझ पाते जितना की एक स्त्री। अपने पुत्र स्नेह के कारण ही वह परपुरूष श्रीधर के करीब आ जाती है और सामाजिक अवहेलना और अपमान सहन करती है। लेकिन उसकी संवेदना के करीब कोई नहीं और जब उसकी संवेदना अत्यधिक बढ़ जाती है तो वह अपने पुत्र चंदन को अपने पास रखने का साहसिक निर्णय दुनिया के समक्ष लेती है।

---

[52] ललमनियाँ – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 65–66

इस प्रकार हम देखते है कि मैत्रेयी पुष्पा ने माँ के रूप में अपनी कहानियों व उपन्यास के कथानकों में बड़ी मर्मस्पर्शी संवेदना व्यक्त की है। जो किसी भी पाठक के हृदय को अभिभूत कर एक माँ के विषय में सोचने पर मजबूर कर सकती है।

"अपना–अपना आकाश" बेटी, ललमनियाँ, बारहवीं रात, चिन्हार, बहेलिये, प्रेम भाई एण्ड पार्टी, उज्रदारी, रास, साँप–सीढ़ी, पगला गई है भगवती आदि कहानियों मे मैत्रेयी पुष्पा ने एक माँ के हृदय की गम्भीर संवेदना को सफलता पूर्वक चित्रांकित किया है।

२. पत्नी के रूप में नारी संवेदना-

" इस अर्पण में कुछ और नहीं, केवल उत्सर्ग छलकता है।
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ, इतना ही सरल झलकता है।"[53]

मानव सभ्यता के आदिकाल से ही पत्नी के धर्म और मर्यादा का महत्व स्वीकार किया गया है। स्त्री तथा पुरूष मिलकर समाज के पूर्ण विकास में सहायक होते हैं। एक के बिना दूसरे की कल्पना सम्भव नहीं है। नारी जब पत्नी रूप में पहुंच जाती है तो वह श्रद्धा, प्रेम, क्षमा एवं शील की उच्च्य भावनाओं के अलावा बलिदान की साक्षात प्रतिमा बनकर प्रस्तुत होती है। सामाजिक व्यवस्था के अनुसार पत्नी नारी का वह रूप है, जिसके बिना वह माँ नहीं बन सकती और मातृत्व नारी की सर्वश्रेष्ठ परिणति है।

एक पत्नी ही ऐसी होती है जो घर में सब कुछ करने को तैयार रहती है। पत्नी नारी का एक ऐसा रूप है जिसमें अपने समस्त अरमानों को तिलांजलि देते हुये अपने दैवीय गुणों से आसक्त हो जीवन निर्वाह करना पड़ता है। यह नारी के इस रूप की नियति है और यही रूप सदैव से पूज्यनीय रहा और रहेगा। रात दिन जूझते रहने के बाद वह जब जीवन के अवसान की ओर पहुंच बिखर जाती है। तभी जयशंकर प्रसाद ने नारी सम्बन्ध में कहा है –

"आँसू से भीगे आंचल पर, मन का सब कुछ रखना होगा।
तुमको अपनी स्मित रेखा से, यह संधिपत्र लिखना होगा।"[2]

मैत्रेयी पुष्पा जी एक बौद्धिक चेतना से सम्पन्न साहित्यकार हैं एक तरह से देखा जाये तो मैत्रेयी पुष्पा जी का साहित्य भावों और बौद्धिकता का अपूर्व संगम है। परिणाम स्वरूप उनके पात्रों की संवेदनायें तर्क युक्त हैं। दाम्पत्य वैमनस्यता आज की एक जटिल समस्या है, जिसका दुष्परिणाम स्त्री को ही भोगना पड़ता है। मैत्रेयी पुष्पा जी ने इस समस्या का बारीकी से अध्ययन किया है, एवं उपन्यासों के माध्यम से नारी स्वतन्त्रता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

चाहे झूलानट हो, विजन हो, चाक हो, इदन्नमम हो, सभी उपन्यासों में पत्नी की समस्याओं को मैत्रेयी पुष्पा जी ने हमारे बुद्धिजीवी कहे जाने वाले वर्ग के मध्य रखा है। वैदिक काल से ही नारी पतिव्रत धर्म के लिये प्रचण्ड अग्नि की ज्वालाओं में आत्माहूति देती आयी है। चाहे पति के मरणोपरान्त अपने सतीत्व का प्रमाण देना हो या फिर स्वंय को पतिव्रता सिद्ध करने की बात हो, दोनो ही रूपों में पत्नी स्वयं को अग्नि की ज्वालाओं में समर्पित कर देती है। 'झूलानट' की शीलो के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा जी ने भारतीय नारी के इसी स्वरूप को बखूबी दर्शाया है, ऐसे पति का इन्तजार करती स्त्री, जो उसे छोड़, उसका तिरस्कार कर शहर जा दूसरी स्त्री ब्याह बैठा। उसके लिए तिल तिल जलती शीलो नामक स्त्री, "शीलो भाभी अशोक वाटिका में बैठी सीता जी। सांवला रंग पीला पड़ने लगा। मिलन की लालसा में आंखे कुम्हलाने लगीं। प्रतीक्षा कर रही हैं, वनवासी राम की तरह शहरवासी सुमेर नाथ की। "शीलो भाभी अपने प्रीतम की मीराबाई बन गयी थी। मोहल्ले की रधिया के ब्याह में ढोलक पर उन्होंने तड़पते हुये गाया था–

"दिल है, बेकरार तुम्हारे बिना
राजा देखो हमारी अंखियां,
हुई रो–रो के लाल तुम्हारे बिना,
राजा देखो हमारा कलेजा,
हुआ जल–जल के राख तुम्हारे बिना,
राजा देखो हमारी जवानी,
कोई थामे न हाथ तुम्हारे बिना।"[54]

---

[53] कामायनी – जय शंकर प्रसाद (लज्जा सर्ग से) पृष्ठ 53

[54] झूलनाट – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 43–44

ऐसी पतिपरायण पत्नी के प्रति पति सुमेर की धारणा– "ढाई सौ साल भी हो जाएं, मैं क्या कर सकता हूँ.......मैं जानबूझकर दूर रहता हूँ। तुम्हारी छः उंगलियों वाली कल्लू बहू मेरे दोस्त की रोटी परोसने ही आ जाती, तो वह कल के दिन मुझे बोलने न देता। काले गोरे दो रंग........पर तुम्हारी बहू तो नीली है, बैंगनी।"[55]

अर्थात नारी का अस्तित्व, संवेदना सब नारी के शारीरिक सौन्दर्य तक ही सीमित है छठी ऊँगली मानो उसके जीवन का सबसे बड़ा दोष। और तभी तो उसने एक दिन अपनी छठी ऊँगली को काटकर फेंक दिया और अपना भाग्य बदल डाला, किन्तु लोगो के तानो का अन्त नहीं।"[56] तभी तो लोग चकित रह गये। औरत की इतनी हिम्मत........रद्द की हुई औरत अब बिरादरी से रद्द। चुड़ैल, राक्षसी, बदकार, कमाल है, शीलो को परवाह नहीं। "निंदा" का अर्थ क्या है? उसने सोचना छोड़ दिया हैं, क्योंकि शाबासियों ने उसकी जिंदगी तबाह कर दी।" ऐसे संवेदना विहीन लोगों के लिए तभी मैत्रेयी पुष्पा जी कहती हैं "जिनमें ममता नहीं, प्यार नहीं, उनकी हमदर्दी का इन्तजार करे सो मूरख।"[57]

"Friality thy name is woman"[58]

यह एक ऐसी युक्ति है जो आम तौर पर स्त्री को अबला सिद्ध कर भारतीय समाज मे नारी की विचारणीय स्थिति को उद्घाटित करती है। आज हमने वैज्ञानिक औद्योगिक तकनीकि प्रगति कर अपने भौतिक स्तर को बहुत ऊँचा उठा लिया है परन्तु स्त्रियों के संदर्भ में हम अपनी मानसिकता अभी नहीं बदल पायें हैं। यद्यपि आज के वैज्ञानिक युग में नारी की स्थिति पर्याप्त रूप से बदली है। वह अपने अधिकारों के प्रति सजग है। तथापि पुरूष उस पर शासन ही करना चाहता है। नारी स्वतन्त्रता के लिये आंदोलन छेड़े जाते हैं। उसकी प्रगति की दुहाई दी जाती है, किन्तु नारी पौराणिक काल से अब तक पुरूष के लिए शासित ही बनी रही। टेनीसन के शब्दों में –

"Man is the hunter waman is his game.
The seek and shining Creabures of chase.
We hunt them for the beauty of their skins.

[55] झूलनाट – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 36–37
[56] झूलानट – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 84
[57] अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 62
[58] Hamlet – william shakespeare

They love us for it and we ride them down.
Whulding and siding with them"

कहा जाता है कि ईश्वर ने औरत को कोई सत्ता नहीं दी, इसलिए उसकी सत्ता पुरूष है। पुरूषों ने जो तय किया वहीं उसके जीवन का कानून है। कानून आज तक कायम है, क्योंकि पुरूष वर्चस्व बकायदा है।

नर और नारी एक ही आत्मा के दो रूप हैं। महाकवि जायसी ने कहा है –

"स्त्री और पुरूष विश्वरूपी अंकुर के दो पत्ते हैं।"

विश्वास और सम्मान का खाद पानी पाकर ही यह स्नेहमयी अमृतलता बढ़ती, पल्लवित, पुष्पित और फलित होती हैं। अवज्ञा उपेक्षा से वह लाजवन्ती कुम्हला जाती है।

आज के युग में नारी को पुरूष स्वयं से भिन्न मानता है। उसका मानना है कि नारी अबला है और मात्र गृह की शोभा है। नारी जागरण आन्दोलनों के कारण भारतीय नारी अपनी स्थिति में विषय के जागरूक हुई है तो परिणाम यह है कि उनके दाम्पत्य जीवन पर खतरे के बादल मंडराने लगे हैं। वैदिक युग से इतर अब पत्नी पति के लिए भोग विलास की वस्तु मात्र है। पत्नी का संवेदनशील होना उसकी स्थिति को और अधिक संवेदनशील व दयनीय बनाना है।

मैत्रेयी पुष्पा जी ने स्त्री जीवन की अनेकानेक समस्याओं का बारीकी से अध्ययन किया है, खास कर पत्नी रूप में एवं अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी स्वतन्त्रता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। उनके उपन्यासों में नारी खुलकर हमारे समक्ष आती है। उसकी संवेदना संकुचित दायरे को तोड़ समाज के रूबरू है। उसकी संवेदनशीलता बने बनाये ढर्रे पर चलने से इन्कार करती है। तब उसे शर्म और सभ्यता का जामा पहनाने की कोशिश की जाती है लेकिन वह इन समस्त दायरों का अतिक्रमण कर चुकी है।

मैत्रेयी पुष्पा जी के पात्र चाहे नगरीय हों या ग्रामीण। अपनी बात कहने का साहस खूब रखते हैं। "विजन" की डॉ0 नेहा, जो अब तक पति व ससुर का मानसिक विद्रोह सहन करती आयी है पर अब उसके मस्तिष्क के द्वार खुल गये हैं,

"अजय, कहूँ या न कहूँ? न कहूँगी तो छटपटाहट बढ़ेगी, कहूँगी तो गुस्ताखी होगी। तुम अपने पापा से मेरी यह बात अपनी जुबानी कहना कि मरीजों को ठगने का यह तरीका घिस–पिट गया है। ठगाई की दुनिया में कुछ नया ईजाद हुआ ही होगा, करें कोशिश, अपनाने की। ही इज अ सर्जन ऑर आ बूचर?

"प्लीज नेहा। ज्यादा फजीहत मत करो। एकदम ही सारा लिहाज उतार दिया। सच अ मैनर। मुझे तुम से ऐसी उम्मीद नहीं थी। शेम नेहा, शेम टू बोथ ऑफ अस (ऐसा ढंग, शर्म नेहा, शर्म हम दोनों के लिए)।"

नेहा ने मिममिसाकर, स्वर भींचकर आपने आप को संयमित किया और संकल्प लिया अजय, अब स्त्रियों के स्वभाव वाले कुछ लक्षण मुझे त्यागने होंगे। जब तुम लोगों के क्षेत्र में दखल दे रही हूँ तो व्यवहार में भी ताकतवरी होनी ही चाहिए, वही मुझे तुम लोगों से आगे ले जा सकती है, जबकि अब तक के स्वभावगत गुणों ने मुझे बराबरी पर भी नहीं आने दिया।"[59]

"कहते हैं कि आपस में सात फेरे लेकर ऐसा चमत्कार घटित होता है कि इनसान अगला–पिछला सब भूल जाता है। अग्नि के होमकुंड से पुरानी यादें जल जाती हैं। सारी पाप शुद्धि का नाम, ब्याह का अनुष्ठान है। वरण करते ही यादें जल जाती हैं, जिसकी लीला पुरूष–स्त्री पक्ष का संसार रचती है। मगर यह क्या हुआ, मैत्रेयी के मामले में सारा कुछ उलट गया। न यादें जलीं, न अगला–पिछला भूला गया। शुद्धि छीज गई और जिसे पाप कहते है, वह रह गया। लगता है कि पाप ही जीवन है, दोष ही जिन्दगी.......पुण्य और गुण तो छलना है, कहने भर के शब्द। नहीं तो नैतिक, धार्मिक जैसी मान्यताओं का रहस्य खुलता क्यों नहीं? बस रोड़े सा अटक जाता है, आदमी को पीछे ठेलने के लिए अलंघ्य शिला सी रूकावटें. .....शरीर पर नहीं, मन के आगे लग जाती हैं। यहाँ पौरूष का पहाड़ पत्नी रूपी स्त्री के सहचारी भाव को लील गया। तभी विवाह आपसी मेल–मिलाप से ज्यादा पवित्रता का सवाल बना हुआ है।"[60]

स्त्री जीवन भी जीवन है। पुरूष तो गए हुये प्राणों को यमराज से पत्नी के जरिये लौटाना चाहते हैं, पर आज की औरत समर्पण से मुंह मोड़ने लगी है। अपनी

---

[59] विजन – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 46–47
[60] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 294

कामनाओं (वासनाओं) की पूर्ति आजाद होकर करना चाहती है। पांच हजार साल के सांस्कृतिक और सामाजिक सफर को तय करते हुये आज वह टेक्नीलॉजी के युग के समक्ष खड़ी है। यात्रा बड़ी लम्बी। साथ बदलता दौर, जिसमें स्त्री के बदलते तेवरों की भागीदारी तार्किक और विश्वसनीय है। सच मानिए, उसका इरादा परम्पराएं तोड़ने का न था। वह तो सिर्फ अपना हक मांग रही है।

"चाक" की "सारंग" व "रेशम" इन्हीं संवेदनाओं से लबरेज स्त्रियाँ है। सारंग अपने पति रंजीत से अपनी संवेदनाओं को व्यक्त नहीं कर पाती और अंदर ही अंदर घुटती रहती है उसे लगता है कि पति रंजीत पता नहीं उसकी वेदना व भावनाओं को समझ पायेगें या नहीं। इसी के चलते वह मास्टर श्रीधर के करीब पहुंच जाती है। जो उसकी संवेदना को गहनता से समझता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मैत्रेयी पुष्पा जी ने पत्नी रूप में नारी संवेदना को गहनता से समझा, परखा व चित्रित किया है। इसी से वे अपने आत्मकथात्मक उपन्यास "कस्तूरी कुंडल बसै" में स्वयं एक पत्नी की संवेदना को गहरायी से व्यक्त कर पायी हैं। यथा–

औरत गृहस्थ हो जाये तो क्या अपना विवेक खो दे? भली बुरी, सब माने? जो कहा जाए, वही करे? अपना मन कभी न खोले? ऐसा तो कारागार होता है। कारावास में कौन किस को प्रेम कर सकता है? कौन किसका विश्वास कर सकता हैं? कौन किसकी साख पर टिक सकता है"[61] और इसी के साथ मैत्रेयी अपनी माँ के समक्ष एक पत्नी के दर्द को उकेल देती है। शादी चन्द महीनों तक उसकी एक पत्नी के रूप में बेहद कोमल संवेदनायें थीं – पति से मिलन की कामना, पति से सुख दुख बांटने की भावना, प्यार करने की भावना, पति से बिछुड़ने पर दुख की भावना आदि किन्तु जल्द ही–

"प्राण पुरूष ने बातों ही बातों मे यह जता दिया कि यदि तुमने लड़की का जन्म लिया है तो लड़की के उसी साँचे में ढलकर आना था, जिसे एक पुरूष और पुरूष समाज सराहता है। रूप और गुण (लज्जा, सहनशीलता और त्याग) तुम्हारे जीवन

[61] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 294

की अनिवार्य शर्त हैं। उसी से किसी आदमी का घर सजता है। इज्जत होती है, स्तर बनता है।"[62]

और फिर पति की पत्नी के प्रति उक्तियाँ–

- "अच्छा! वह कौन था, जो विदा के समय बस से सटकर रो रहा था। खिड़की से तुम कुछ कह रहीं थीं।"
- मैं कह रहा हूँ मत छुओ मुझे, इर्रिटेशन होता है।
- यह नन्दकिसोर कौन है?
- तुम्हारा फेसकट अच्छा नहीं है।
- तुम को गली के लोग बदसूरत मान रहे हैं और मेरा मखौल बना रहे हैं।
- मैं कह रहा हूँ, सो जाओ परेशान न करो।
- बिना ब्रा, बिना ब्लाउज, खाली धोती पहने हुए दालान और आँगन में घूमने की हिम्मत? झीने आँचाल में ब्रेस्ट हिलाते हुए निर्लज्ज की तरह चलने की हिम्मत? सुनो, मैंने किसी आदिवासी लड़की से शादी करने के मंसूबे नहीं बांधे थे।
- अच्छी मुसीबत हो तुम। कायदे से, तमीज से नहीं रह सकतीं तो अपने यहाँ चली जाओ। चिड़ियाघर का जानवर शहर में कैसे रहे?[63]

इसके बावजूद भी वह प्रयासरत रहती कि वह अपने पति की अच्छी पत्नी बनी रहे, किन्तु तमाम कोशिशें के बावजूद भी वह अपने स्वच्छन्द विचार व व्यवहार को नहीं त्याग पाती और भारतीय आदर्श पत्नी के विपरीत अपनी एक अलग छवि बनाती है। जिसमें उसकी संवेदनाओं को प्रमुखतः से स्थान प्राप्त होता और वह अक्सर सोचती है कि क्या इस आदमी (पति) में संवेदना की कमी है? तभी तो मेरी संवेदनाओं की उपेक्षा करता है।

ऐसी स्थिति में पत्नियाँ अपने अस्तित्व को ही ढूँढती रहती है जिसकी सफल विवेचना मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों व कृतज्ञ, सहचर, रिजक, बारहवीं रात, केतकी, मन नाहिं दस–बीस, भंवर, ललमनियां आदि कहानियों में की है।

---

[62] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 262
[63] वही " " पृष्ठ 263, 64

३. प्रेमिका रूप में नारी संवेदना

मैत्रेयी पुष्पा जी जहाँ एक ओर विद्रोही भावनाओं में आकर समाज और विशेषकर पुरूष पक्ष के विरूद्ध अपनी आवाज को बुलन्द करती हैं, वही दूसरी ओर कोमल भावनाओं का भी बड़ी कुशलता पूर्वक अतिक्रमण करके भावनात्मक कवियों को भी पीछे छोड़ देती हैं। मैत्रेयी पुष्पा जी अशरीरी प्रेम (Platonic Love) को स्वीकार नहीं करतीं। उनकी नायिकायें, अपने सम्पूर्ण तन–मन के साथ प्रेम में समर्पण करती दिखलायी देती है–

"रोए हुये गालों से नरम होंठ आ जुड़े.........भाभी के पुचकार भरे हमले जारी थे... ...बार बार चूमा चाटी.......देह के जोड़ खुलने लगे। ....शीलो भाभी गुनी औरत है, उसे चिपटाती जा रही। गरम सीने में बरसों का जुड़ा ताप, बालकिशन का रोम–रोम झन्ना उठा।"[64]

मैत्रेयी पुष्पा जी अविरल और विशुद्ध प्रेम को इस तरह संवेगों में लपेटकर प्रस्तुत करती हैं कि पाषाण ह्रदय मानव भी उसे पढ़कर द्रवीभूत हो जायें। नारी के असीमित प्रेम और बहकने के अंदाज इतने निराले हैं कि बरबस ही कोई पाठक प्रशंसा से मुखरित हो उठेगा। नारी का प्रेम कितनी सीमाओं को तोड़ सकता है, मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यासों में दृष्टिगोचर होता है, मैत्रेयी जी की नायिका जब किसी से प्रेम करती है तो समस्त वर्जनायें तोड़ देती है, "अल्मा प्यार की यात्रा में आगे ही आगे भाग रहीं थी......अल्मा न जितनी कुशलता पिता की बातें छिपाने में दिखाई, उतनी खुलकर राणा को प्यार करने लगी। मैत्रेयी जी के उपन्यासों में सर्वत्र प्रेम की उन्मुक्तता के दर्शन होते हैं यथा–

"गजब, अल्मा ने कुर्ती उतार दी। रजाई में राणा समेत सब कुछ छिपा लिया।.... मगर छूना परसना.......हाथों में गेहूँ के आटे की रंगत लिये ठोस अमियों के आकार, दूधों पर नाचती हुई फालसई फिरकियाँ। राणा की हथेलियों में नटखट जुगनू छिपे हैं।"

[64] झूलानट – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 72

क्षण भर में ही हथेलियों ने वह आनन्द होंठो को दे दिया। अल्मा ने उसके मुंह से छाती भिड़ा दी। दबाब ऐसा बनाया कि राणा के होंठ खुल गए। होंठ और जुगनुओं का खेल। चमकती नजरें कौतुक–सा देखती हैं। वह मासूम बच्चे–सा चिपका हुआ।"[65]

जहाँ एक ओर मैत्रेयी जी ने शरीरी प्रेम को महत्व प्रदान किया है, वहीं दूसरी ओर मन की कोमल भावनाओं से ओतप्रोत प्रेम को बखूबी स्थान दिया है और उन भावनाओं को पुरातन संगीतों से लयबद्ध किया है–

चलो सजनी, राम आ गये बगीचा,
जब से परी राम की छँइयाँ,
नैन भये बेचैन री गुइयाँ
छोड़े भवन, हमें भा गये बगीचा।
चलो सजनी........।"[66]

ये पुरातन पंक्तियाँ प्रत्येक नारी के मन में प्रेम रूपी तरंगे ले कर बस गई। किसी के आने का इन्तजार कितना मीठा होता है। यह केवल एक प्रेमी मन ही जान सकता है।........"साइकिल की घंटी बजी। चौकन्नी हो गयी मन्दा। उसने तनिक तिरछे होकर देखा, हाँ मकरन्द आ रहे हैं वे बाहर निकले कि मन्दाकिनी की आँखे मुस्कारने लगीं।

आँखे मिलाते ही मुस्करा पड़े मकरन्द।
सीने में तेज धुकधुकी जोर–जोर से बज रही हैं, नगाड़े की तरह।........
प्यार और शरारत भरी निगाहों से देखते हुए न जाने किस अर्थ भरी मुस्कराहट में खिल आये मकरन्द.......।
वे जाने लगे। उनकी पीठ पर चिपके चले जा रहे हैं बेचैन पगलाये से दो नयन।
पुलकित हो उठा रोम–रोम। मुस्कराने लगा है भीतर समाया सब कुछ।
सारा दिन खोई–खोई सी फिरती रही। साँझ की प्रतीक्षा में बौरानी–सी, कमरे, बरामदे और चबूतरे पर, पौर, गली और कुएं पर डोलती रही मन्दाकिनी।"[67]

---

[65] अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 182
[66] इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 82
[67] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 313

नारी मन की ऐसी गहन पड़ताल मैत्रेयी पुष्पा जैसी उत्कृष्ट साहित्यकारा के ही बस की बात है। प्रेम के वशीभूत नारी अपने प्रेम के साथ कितने सपनों का ताना बाना बुनती है, एक एक तिनके को इकट्ठा कर घरौंदा बनाती है। किन्तु उसका यह स्वप्न महल रेत का बना होता है और जब पुरूष रूपी लहर की उपेक्षा उससे टकराती है तो यह प्रेम का घरौदा विखर जाता है। तभी तो मैत्रेयी जी कहती हैं–

"प्यार–पिरीत में मारी जाती है बैयर। कहते हैं न कि जनी प्यार के पीछे और आदमी पैसे के पीछे पागिल हो जाता है।"[68]

और ये भी मैत्रेयी स्वीकार करती है कि " सूली पर टंगकर ज्ञान हुआ कि प्रेम की सहज क्रिया को पुरूष अपने संदर्भ में मनमाने ढंग से लेता है।"[69] सदियों से पुरूष प्रेम की भूखी। पुरूष की बाहें देख सब कुछ भूल क्षण में उसके गले आ लगती है। यथा–

"पगली हो गयी मन्दा। एकदम सिर्रिन।

लपककर द्वारा रोक लिया। बाहें फैला दी...

"नहीं जाने दूँगी। अब नहीं जाने दूँगी।

मकरन्द।

मकरन्द ने उसकी बाँह कसकर पकड़ी और जा पहुंचा ढोर वाली बखरी में जहाँ कोई न था। जहाँ अंधेरा था। जहाँ वे एक दूसरे को देख तक न पा रहे थे।

"हाथ छोड़ो"

"नहीं"

एकाएक मकरन्द ने अपनी बाँहों के घेरे में ले लिया उसे।

वह चौंक गयी।

कसम खाने लगी।

"रह ली हमारे बिना?" अपनी छाती से उसे चिपकाकर पूछ रहे थे मकरन्द।

वह मछली की तरह छिटककर दूर हो गयी।

वे पुनः बाहों में समेटते हुए बोले, "हमारी दी हुई चीजों की कीमत लौटाई मन्दा...? वापिस कर दिया हमारा प्यार।"

---

[68] इदन्नमम् – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 127

[69] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेय पुष्पा – पृष्ठ 313

उत्तर में फिर से मकरन्द के सीने पर सिर टिका दिया मन्दाकिनी ने।"[70]

हर बार हर बार स्त्री यही करती है चाहे पुरूष उसे छोड़ कर चला जाए, विश्वासघात करे, मारे–पीटे पर बस प्यार के दो बोल उसे पूर्णतया पुरूष के अंक में समर्पित कर देते हैं। यह सम्पूर्ण भारतीय स्त्रियों की मूल समस्या हैं और इन समस्याओं का बखूबी चित्रांकन मैत्रेयी जी ने अपनी नायिकाओं में किया है लेकिन यदि मैत्रेयी जी की नारियों की संवेदना कहीं इतनी कोमल और भावुक है तो वहीं कुछ स्थलों पर उनकी संवेदना समस्त सामाजिक वर्जनाओं को तोड़कर उभर कर सामने आयी है। जो मैत्रेयी जी की स्वयं की मौलिक व नवीन संवेदना है।

प्रेम का एक ओर तो काम से अविछिन्न सम्बन्ध माना गया है तो दूसरी ओर उसका उन्नयन भक्ति की ऊँचाइयों तक किया गया है। प्रेम जीवन का सर्वश्रेष्ठ सुख माना गया है। जीवन यदि फूल है तो प्रेम शहद के समान मीठा अनुभव है। महिला लेखिकाओं ने बदले संदर्भ में प्रेम के विविध रूपों, विविध रंगो, तथा विविध ढंगों को रूपायित किया है। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि विभिन्न स्त्री व पुरूषों के साथ प्रेमानुभूतियां भी भिन्न होती हैं। प्रेम पात्र के बदलते ही मानव प्रेम की एकरसता समाप्त हो जाती है और नया अनुभव नवीन सुख की पुष्टि करने लगता है। ये उपन्यास वासनाजन्य प्रेम को भी दर्शाते हैं। कहीं कहीं प्रेम के क्षेत्र में उदारता के भी दर्शन होते हैं।

दूसरे के गर्भ को अपना नाम देने वाले पुरूष चरित्र भी सृजित हुए हैं। आज की नारी प्रेम के क्षेत्र में पूर्व युगीन नारी से कहीं आगे निकल चुकी है। आज वह प्रिय द्वारा उपेक्षित होकर आंसू नहीं बहाती, प्रत्युत् किसी अन्य से प्रेम कर विश्वासघाती प्रेमी को ईंट का, जबाव पत्थर से देती है। यौन सम्बन्धों के क्षेत्र में भी मैत्रेयी पुष्पा जी की नारियाँ पूर्व के सम्बन्धों को नकार अपनी यौन अतृप्ति की बात पति से कहने में नहीं झिझकती। "इदन्नमम" की कुसुमा भाभी अपने पति यशपाल समेट सभी के समक्ष इस बात को स्वीकारती है कि उसकी कोख में पल रहा बच्चा दाऊ जी का है और वे उनसे बहुत प्रेम करते है यथा–

"जाने साली किसका पाप......"कहकर यशपाल ने थूक दिया।

---

[70] इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 55

लाज–लिहाज त्यागकर चीख पड़ी वह "ओ नकीले।
ख़ैर मना कि बच्चा दाऊ जू का है। नहीं तो यह किसी का भी होता, जात का, आनजात का। गैल चलते आदमी का।"[71]

यानि मैत्रेयी की नायिकायें अपने प्रेम को उन्मुक्तता के साथ स्वीकार करती दिखलायी देती हैं। "चाक" की सारंग अपने ही गांव के मास्टर श्रीधर से प्रेम करने लगती है साथ ही वह अपने पति रंजीत से भी बहुत प्रेम करती है, लेकिन पति के समक्ष भी वह श्रीधर से अपने प्रेम को अस्वीकार नहीं कर पाती और सोचती है – "मेरे दिलो–दिमाग पर क्यों छा गया है वह आदमी? उसका आस–पास होना ही मेरे लिए सर्वसुख है। श्रीधर का बोलना, चलना, देखना ही इस गांव की उदासी में खुशियों की लहरें भर देता है। मैं कैसे कहूँ रंजीत से कि मेरी जिंदगी सूनी थी, घायल थी, लाचार थी, वे आए तो लगा घुटन भरे आसमान को फोड़कर हवा का कोई ताजा झोंका आया, जो मेरे भीतर नई सांसे.......घावों पर शीतल मरहम और सुनसान में मेले! तुम इसे कोई नाम दो ज्ञान ध्यान प्यार प्रीत।"[72] श्रीधर के प्रेम के चलते इतनी संवेदनशील हो जाती है कि उसकी जरा सी बीमारी के चलते बेहद बेचैन हो जाती है और सब कार्य छोड़ श्रीधर के पास चली जाती है। एक बार श्रीधर के चोटिल हो जाने पर वह इतनी व्याकुल हो जाती है कि प्रेमातिरेक में उससे शारीरिक सम्बन्ध बना डालती है। उसे इसके लिए कोई पश्चाताप भी नहीं। वह समाज व रंजीत की परवाह किये बगैर श्रीधर से अपने प्रेम सम्बन्ध बनाये रखती है। अपने मन का खुलासा वह सिर्फ श्रीधर के समक्ष ही कर पाती है।

"अल्मा कबूतरी" की कदमबाई मंसाराम से प्रेम के चलते जहाँ अपने पति जंगलिया की मौत भूल जाती है वहीं अनेक तकलीफों का सामना करते हुये मंसाराम से प्रेम करती रहती है। हर पल उसकी आँखे मंसाराम का पथ हेरा करती हैं। वहीं इसी उपन्यास की अन्य नायिका अल्मा भी राणा नामक युवक से शिद्दत से प्रेम करती है और उसके छोड़कर चले जाने पर भी उससे प्रेम करती रहती है।

मैत्रेयी पुष्पा ने इस प्रकार विभिन्न नायिकाओं के माध्यम से प्रेम की व्यंजना की हैं। वे मानसिक व शारीरिक दोनों ही प्रेम को प्रेम का आवश्यक अंग मानती हैं। उन्होंने प्रेमिका की संवेदना को अपने उपन्यास में विशिष्ट स्थान दिया है।

---

[71] इदन्नमम– मैत्रेयी पुष्पा पृष्ठ 124
[72] चाक – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 210

४. विधवा के रूप में नारी संवेदना

भारतीय समाज में विधवा की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। विधवा होने के साथ स्त्री के सभी सुख छीन लिये जाते हैं और उसे घुटघुट कर जीने के लिए विवश कर दिया जाता है। उसे अशुभ मान उसका चेहरा देखना भी पसन्द नहीं किया जाता है और यदि विधवा वृद्ध है तो उसकी दशा हृदय विदारक हो जाती है। एक तो वह वृद्धावस्था के कारण पहले ही अपने बच्चों के लिए मुसीबत होती है और उसी में उसका विधवा होना उसे आर्थिक रूप से भी परतन्त्र कर देता है।

मैत्रेयी पुष्पा जी स्वयं एक नारी हैं इसलिए नारी हृदय को अच्छी तरह पढ़ सकती हैं। उनका उद्‌देश्य समाज में नारियों की हीन स्थिति को सुधारना है। अतएव आपने अपने साहित्य में विधवा समस्या को भी उठाया है।

मैत्रेयी पुष्पा के आत्मकथात्मक उपन्यास "कस्तूरी कुंडल बसै" में स्वयं उनकी माँ कस्तूरी विधवा जीवन की समस्याओं से रूबरू होती है और यदि वे परम्परा तोड़ना चाहती है तो समाज के कटु वचनों का भाजन बनना पड़ता है साथ अपने ही लोग नरकीय जीवन जीने को विवश करते है–

कस्तूरी इस गांव में ऐसी पहली औरत है, जिसने पति की मौत पर रूदन नहीं किया। "हाय कठकरेज लुगाई।" औरतों ने कहा और मर्दो ने च् च् च् च् करके आश्चर्य जताया।

मायके खबर पहुँची तो माँ आ गई। बेटी कैसा अनर्थ कर रही है दुनिया क्या कहेगी? बूढ़ी ने सबेरे–शोक में रोने की रस्म अपने सिर ले ली और कोई मिलने भेंटने आता तो अपने और बेटी के बदले का रोकर दिखाती। कस्तूरी को टहोकती कि साथ दे।"[73]

परन्तु कस्तूरी के लिए यह सब दिखावे मायने नहीं रखते। माना वह विधवा है, लेकिन साथ–साथ माँ भी तो है और आगे विशाल जीवन यात्रा। दिखावे से पेट नहीं भरता, बच्चे नहीं पलते, लेकिन दुनिया के लोग हर हाल में एक विधवा को एक बेचारी

[73] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा जी – पृष्ठ 26

स्त्री के रूप में देखना चाहते हैं। कस्तूरी इस बेचारी वाली छवि से बाहर आना चाहती है, वह स्पष्ट कहती है–

" यह मेरे बस का नही चाची, क्योंकि अब मैं अपनी जिन्दगी और बेटी की नन्ही जान को लेकर ही सोच पाती हूँ। मुझे लोग धिक्कार रहे है, जानती हूँ। धिक्कार किसे अच्छी लगती है? पर कैसे समझाऊँ कि मेरे सामने आने वाले दिन बाघ की तरह मुँह फाड़े खड़े हैं। मैं आने वाली घड़ियों से छुटकारा पाकर बच जाऊँगी? हर हाल में सामना करना होगा......."

उसके बाद अनादि काल से चलता आया शोक – नाटक चलता रहा। वह कितनी ही बातें सहेजती, कितनी विसर्जित कर डाली। कई विधुर पुरूष याद आए, कैसे बन्धनहीन जिन्दगी मिलती है उन्हे ब्याह करे न करे। घर रहे, कहीं भी चले जाएं। सन्तान पैदा करना उनका काम है, पालने की बाध्यता नहीं।"[74]

इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा जी बच्चे के लालन पालन सम्बन्धी गम्भीर समस्या को लेकर विधवाओं के जीवन पर दृष्टिपात करती हैं। आर्थिक समस्या अलग मुंह बाये खड़ी है। पति के मरते ही मानो समस्त रिश्ते बेगाने हो जाते हैं, सपने में भी नहीं सोचा था ससुर इस तरह पेश आएंगे।

"माँ भाइयों की नीयत का इशारा कर गई थी, यहाँ ससुर–बहू का किस्सा उठ खड़ा हुआ। बेटे के सामने बहू को शीश पर उठाकर रखने वाले बूढ़े, बेटे के जाते ही बेगाने हो उठे। पैंतीस साल का जवान बेटा मरा है, दुख भूल गए, जबकि जानलेवा शोक तो उन्हीं के लिए था। बहू का दुःख भी उसी दुख में रिला–मिला......इहकाल परकाल सारे गडमड हुए एक पुरूष के बिछोह में...

कस्तूरी के सामने पिता समान पिता का चेहरा बदल गया। चोकर छान–छानकर यथा शक्ति आटा निकालती, बुजुर्ग का पेट भूखा नहीं रहने देती और खुद अपने पेट में घुटने देकर पड़ी रहती। तीन–चार दिन कभी आलू नसीब हुए, तो दिन–दो–दिन में शकरकन्दी का टुकड़ा मिला तो पेट में डाल लिये। नहीं तो भूखे रहने की आदत ही पेट से पड़ी रही। आधे पेट खाया और इस घर बार की खातिर माँ से भी नाता तोड़

---

[74] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा – 26

लिया। यही था एक औरत की जिन्दगी का मकसद? या यही कर्त्तव्य उसके हिस्से में आया।"[75]

विधवा होते ही भारतीय समाज में मानों नारी के सुखों को अन्त हो जाता है। उसका जीवन रंगविहीन, नीरस बना दिया जाता है। उसे अपने श्रृंगार को त्याग सफेद परिधान धारण करने पड़ते हैं। वहीं विधवा का जीवन पति की मृत्यु के पश्चात अपने परिजनों पर आश्रित हो जाता है। उसे विवश जान उसके परिजन उसके द्वारा संचित धन को हथियाने में भी पीछे नहीं रहते। मैत्रेयी पुष्पा जी ने इस विषम स्थिति को अपने उपन्यासों मे बखूबी समेटा है। कस्तूरी का भाई हेतराम कस्तूरी के पति हीरालाल की मृत्यु के पश्चात उसके घर आकर खेती का एकमात्र अस्त्र हल चुराकर भाग जाता है, "वरन कस्तूरी के भाई को वे उठाईगिरा के इल्जाम में नहीं फंसाते, आखिर अपना रिश्तेदार था।"

युवावस्था में ही विधवा हो जाना तो और भी दुसत्य हो जाता है। उसके सामने उसका पूरा जीवन पड़ा होता है। रूढ़ियों के कारण हमारे समाज में विधवाओं पर कई प्रतिबंध लगा दिये जाते हैं। उनकी इच्छा–अनिच्छा दबाने का प्रयास किया जाता है। किन्तु यदि उनके बच्चे छोटे–छोटे है तो उनके पालन पोषण का उत्तरदायित्व माँ पर ही आता है। ऐसी स्थिति में विधवा का घर से बाहर निकलना, शिक्षा प्राप्त करना अनुचित हो सकता है। इसलिए मैत्रेयी पुष्पा जी ने विधवा पर प्रतिबंध अनुचित माना और उसे अपनी जिम्मेदारी निभाने के लिए प्रेरित किया है, मैत्रेयी जी की नायिका "कस्तूरी अन्य विधवाओं की तरह दीन–हीन जीवन जीने को विवश नहीं, वह अपने फैसले स्वयं लेती है, वह बन्धक जिन्दगी से मुक्त होना चाहती है। पढ़ने लिखने की आंकाक्षा जोर पकड़ने लगी। औरत के मन में बन्द गांठे खुलने लगी। पढ़–लिखकर आदमी ज्ञान की उस दुनिया में पहुंच सकता है, जहाँ वह अपने आपको देख सके।"[76] साथ ही बहू ने ससुर का पर्दा त्याग दिया।

कस्तूरी के अनुसार पर्दे में बहुत सी बाते ढ़की दबी रह जाती है। आत्मविश्वास के साथ ससुर से कहती है, "मेरा भरोसा करो दादा जी। मैं अपनी बेटी को

---

[75] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा पृष्ट 27
[76] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा पृष्ठ 30

पढ़ा–लिखाकर बड़ा करूँगी कि मेरे तुम्हारे बाद वह अपने दुश्मनों का मुकाबला करे।"[77]

फिर क्या था, पांव खोल दिये कस्तूरी ने। कस्तूरी के स्त्री जीवन ने करवट लिया, लेकिन रूढ़िवान समाज के चलते अनेकानेक आशंकाओं से घिरा मन – "गांव के लोग क्या कहेंगे बिना घूंघट की बहू, हाथ में किताब–कापी भरा झोला। कैसा लगेगा........दूसरी विधवायें हैं, वे कुछ ऐसा सोचती है, जिस पर गांव ऊँगली उठाए और घर के लोग शर्मसार हों? अगर अपनी ऐसी–वैसी इच्छा को नहीं दबा पाती तो कुआं पोखर में डूब मरती हैं। विधवा का इतिहास तो इतना ही है, फिर नए भविष्य का ऊटपटांग माना जाने वाला रवैया क्यों जोड़ने जा रही हैं? अपनी जिदें, अपना पागलपन अब तक भरसक छिपाया, मगर क्या कुछ ढका–छिपा रह सका? आज जब अपनी गृहस्थी समेटकर पीहर और ससुराल की मर्यादा का पालन करते हुए, "विधवा के कर्त्तव्य"जैसी किताब (जो ममिया ससुर लाए है) पढ़नी चाहिए और परपुरूषों से बचकर रहना चाहिए, में पांव बाहर निकाल देना चाहती हूँ, जहाँ रास्ते और कस्बे में पर पुरूषों से ही वास्ता पड़ेगा। थू–थू तो बहुत होगी.........आज विधवा हो गई, मेरे साथ कौन है? चिन्ता है किसी को?"[78]

समाज ने उस विधवा को पागल, उद्दण्ड, दुश्चरित्रा माना, यहाँ तक कि उसकी माँ ने संदेशा भेजा–"कस्तूरी, तुझे दूसरे खसम की सार लगी है तो खसम कर जा, तिरिया चरित्तर क्यों पसार रही है? दूसेरे ब्याह पर लोग चार दिन निन्दा बदनामी कर लेंगे, फिर तू अपने खूँटे बंधेगी। यह रोज–रोज का झोला लेकर मीराबाई बने फिरना.........क्या चाह रही है, लुगाई की जिन्दगी पाकर? तूने दोनों कुल बार दिये।"[79]

विधवा स्त्री के बच्चे पिता के न होने से आहत हो उठते हैं। उनका बाल बन नहीं समझ पाता कि उनके पिता कहाँ है? और अपने प्रश्न के उत्तर के लिये वह माँ से ही अनेकानेक प्रश्न करते हैं, जिनके उत्तर माँ क्या दे......."कस्तूरी अपने पति का नाम बच्ची के सामने कभी नहीं लेती। जबकि वह सखी–सहेलियों के पिताओं को देखकर अपने बाप के बारे में अक्सर पूंछती है।..........इतना छोटा बच्चा उस लोक को केवल

---

[77] वही पृष्ठ 28
[78] वही पृष्ठ 30,31
[79] कस्तूरी कुंडल बसै– मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 32

सुनकर जानेगा भी कैसे? फिर भी वह पिता के गीत गाया करती है। अफसोस भरी बाल सुलभ कड़िया– सरला के पिता जी हैं, मेरे हैं ही नहीं। उसके पिता जी गुड़िया लाते हैं, मेरे लाते नहीं...... ।"[80]

एक विधवा स्त्री को अपने बच्चों के विवाह के लिए किन–किन समस्याओं और आलोचनाओं का सामना समाज से करना पड़ता है, इस ओर मैत्रेयी पुष्पा जी ने अपनी पैनी दृष्टि डाली है। लड़के वाला कहता है "उस रॉडी की क्या साख?...........हमारे लड़के के लिए तो न साले न ससुराल, नाठ हैं।"[81]

यह है उसका समाज। जिसके चलते वह मनुष्य तो क्या औरत भी नहीं सिर्फ रांड हैं, विधवा बस। ऊपर से निपूती। "पुरूषों जैसे काम करने से पुरूष जैसी नहीं मान ली जाती स्त्री। सामाजिक कामों के चलते उसे किसी पुरूष की जरूरत होती है, भले वह पांच या दो साल का हो। पति और बेटा कहाँ से लाए कस्तूरी? कांपते कलेजे को पुरूषों के आतंक ने कस लिया......"मैं स्त्री नहीं, माँ नहीं, रांड हूँ।"[82]

हिन्दू समाज में विधवा स्त्री की समस्या आज भी उतनी ही पेचीदा है जितनी पहले थी। यह समस्या किस प्रकार पैदा हुई और आज तक कैसे चली आई यह एक लम्बा इतिहास है।

आरम्भ में पुरोहित वर्ग ने अपने को ज्यों –ज्यों परमात्मा का दलाल बनाना शुरू किया त्यों–त्यों वह मानवता से हटता गया। अपने को पवित्र एवं दूसरों से प्रथक बनाये रखने के लिये उसने कई प्रयास किये जिनमें सर्वप्रमुख अपने ही वर्ग में विवाह करना था। चूंकि पुरोहित को हिन्दू समाज में पवित्र और श्रेष्ठ माना जाता था, अतः दूसरे व्यक्तियों ने भी इस वर्ग का अनुकरण करना आरम्भ कर दिया।

मात्र अपने ही वर्ग में विवाह करने के कारण ही विधवा की समस्या उत्पन्न हुयी। प्रत्येक वर्ग में स्त्री और पुरूष का अनुपात सामान्यतः बराबर होता है, इसलिए एक स्त्री एक बार ही अपने वर्ग में विवाह कर सकती थी। दुर्भाग्य वश यदि किसी स्त्री का पति पहले मृत हो जाता है तो वह स्त्री समाज के लिये व्यर्थ हो जाती थी। इस प्रकार उस व्यर्थ स्त्री का बंदोवस्त सती के रूप में किया जाता। उसे कई प्रकार के

---

[80] कस्तूरी कुंडल बसै– मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 34
[81] कस्तूरी कुंडल बसै– मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 72
[82] कस्तूरी कुंडल बसै–मैत्रेयी पुष्पा पृष्ठ 72

परलोक सम्बन्धी प्रलोभन दिये जाते और पति की चिता के साथ जीवित ही जला दिया जाता। वेदों में यह बात स्पष्ट है–

"हे मर्त्य मनुष्य। पतिलोक को चाहने वाली यह स्त्री प्राचीन धर्म का पालन करती हुयी आप के समीप होती है। इसकी प्रजा, संतान और द्रव्य की रक्षा करें।"[83]

जो स्त्री इन प्रलोभनों में नहीं आती थी या पति की मृत्यु के समय गर्भवती होती थी, उन्हें "जीवित मृत्यु" की सजा दी जाती थी।

भले ही आज जमाना कितना आगे बढ़ गया हो, पर आज भी विधवाओं के सजने संवरने पर वैसी ही रोक–टोक है, जैसी सदियों पहले थी। हमारे समाज में सही सोचा जाता है कि पत्नी की सारी खुशियां तभी तक हैं जब तक उसका पति है। विधवा का व्युत्पत्तिपरक अर्थ ही है जो धवा–शोभा विहीन हो। अतएवं पति के मरने पर हिन्दू पत्नी की मांग का सिन्दूर पोंछकर उसके हाथों की चूड़ियां फोड़कर उसे स्वेत वस्त्र पहनने को बाध्य कर उसे शोभा विहीन करने की परम्परा है। पति की मौत के साथ ही पत्नी से सजने – सबरने, हंसने बोलने के सारे अधिकार छिन जाते हैं। सूनी कलाइयाँ, सूनी मांग, सूना माथा विधवा के जीवन में सूनापन भर देते हैं।
यथा–

"वह सारे दिन कोठे में छिपी रही। फिर समय के अन्तराल ने बता दिया कि वह विधवा हो गई। तब से आज तक उसका तन, उसका मन, सम्पूर्ण अस्तित्व विधवा है। होंस–उमंग, पहनना–ओढ़ना, सजना–संवरना, उसके लिये वर्जित हैं। औरते उसे सगुन–सात–मंगल कार्यों से बचाती हैं। सुबह–सबेरे उसका किसी के आगे पड़ जाना अशुभ है। यह बात 'भागो' जानती है वह स्वयं भी देख–बचकर निकलती है। "अठैन" कर देने से सामने वाले के साथ उसका अपना मन भी दुखी हो जाता है।"[84] सूनी मांग और सूनी कलाई और सादे वस्त्र पहने माँ अपने बच्चों को और भी भावना शून्य दिखलायी देती हैं।

पति की मृत्यु के बाद उसकी विधवा कितने कष्ट सहकर बच्चों का पालन पोषण करती है, इस बात को मैत्रेयी पुष्पा की कहानी "ललमनियां" और आत्मकथात्मक

---

[83] इयं नारी पति लोक वृणाना, निपद्यत उपत्वा मर्त्य प्रेतम। धर्म पुराणमनुपालयंति, तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि।।(अथर्व वेद 18/3/3 और कृष्ण यर्जुवेद तैत्ति 06/1/13)
[84] 'ललमनियाँ' कहानी संग्रह की कहानी 'पगला गई है भागवती' – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 24

उपन्यास "कस्तूरी कुंडल बसै" के माध्यम से अच्छी प्रकार जाना जा सकता है। कितने दुर्भाग्य की बात है कि उन्हीं बच्चों के विवाह आदि के अवसर पर अमंगल की कामना से उसे वहां आने नहीं दिया जाता तथा समाज का कोप भाजन बनना पड़ता है–"बाबरी, रंडापा, काटते–काटते रूखी–सूखी हो गई है।' कान के पर्दा कागज की तरह फटने लगते हैं। आंखों की पुतलियां गिरी पड़ती हैं। "रस सूख गया तो आधार कैसे बने? अकेली रही, सो जात–बिरादरी भूल गई। मर्द मानस ऊपर नहीं सो लुगाई का ब्यौहार याद नहीं रहा।"[85] आदि ताने सुन सुन कर विधवा का मन छिन्न–भिन्न हो जाता है। शायद स्त्रियां भूल जाती है कि वह भी एक स्त्री है। विधवा के रूप में मैत्रेयी जी ने बड़ी हृदयस्पर्शी संवेदना व्यक्ति की है।

५. भाभी रूप में नारी-संवेदना

भाभी मैत्रेयी पुष्पा का नारी रूप में प्रिय रूप है, उन्होंने लगभग अपने प्रत्येक उपन्यास में इस रूप को लिया है तथा उसके जीवन की गहन पड़ताल की है। भाभी वह रूप है जो ससुराल में छोटों के प्रति ममता का व्यवहार रखती है और बड़ों के प्रति आदर का साथ ही उनके सुख दुख में सहभागी बनती है, किन्तु भाभी रूप में भी एक नारी को किन–किन समस्याओं से दो चार होना पड़ता है। इसका बड़ा ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मैत्रेयी जी ने अपने कथानकों में किया हैं।

उपन्यास "इदन्नमम" में कुसुमा भाभी का चरित्र विशिष्ट स्थान रखता है, वह पति यशपाल द्वारा उपेक्षित है। मंदा उसके बेहद करीब है। मास्टर कैलाश द्वारा मंदाकिनी का बलात्कार किये जाने पर मंदा डर से सहमी है, दुखी है, ऐसे में कुसुमा भाभी ही उसे सहारा देते हुये कहती हैं–

"इतना दुख काहे को मंदा? हमने तुम्हें कितना समझाया है, पर लाल तुमने तो रो–रो कर बुरा हाल कर लिया है। आँखे गुड़हल हो गयी। ज्यों रकत भरा हो कोयों में। जो तुमने किया ही नहीं उसका दोस अपने ऊपर क्यों ले रही हो?

"अपराधी तो वह है, जिसने यह अजस........छल बल से कुकरम........छुतैला और अपवित्तर भी वहीं हुआ.....कुढ़िया कैलाश मास्टर। और उसकी जात हुई मैली, जो हम पर धोखे से करती है हमला? "ऐसे मरदों को माफ तो हम नहीं करेंगे बिन्नू! वे कौन

---
[85] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा 224

होते हैं इस अनहोनी का फैसला करने वाले, हमको नीची निगाह से हेरने वाले?'' ''तुम पाथर न बनो। नोने हँसो–खेलो! हौसला राखो, हिम्मत से जियो। वैसे ही, जैसे अब तक रही हो। अपनी जिन्दगानी के सही–गलत का निरनय तो हमें ही लेना है बिन्नू। काट फेंको जीवन से इस कुघड़ी को। तुम अच्छत हो मन्दा।''[86]

किन्तु स्वयं अपनी संवेदना पर काबू नहीं पा पाती और दाऊ जी की मौत पर जार जार रो उठती। तब मंदा एक ननद के रूप में उन्हें सांत्वना देती है।

'बेतवा बहती रही' की उर्वशी भाभी अपने पति सर्वदमन की मौत के बाद नितान्त अकेली रह जाती है और अपनी संवेदना किसी से व्यक्त नहीं कर पाती। बैरागी उनसे मिलकर आते हैं, तो बताते है– ''उर्वशी भाभी को तो न जाने कया हो गया है, डरी सहमी सी रहती हैं। बड़ी उदास–उदास। पता नहीं क्या बात है यार। बड़ी भौजी कह रही थीं कि चन्दनपुर से आयी है, तभी से न बोलती है, न बतियाती है। गुम हुई बैठी रहती हैं।''[87]

''झूलानट'' एक ऐसी भाभी शीलो और देवर बालकिशन की संवेदनाओं की कहानी है, जो अलग अलग परिस्थितियों के कारण दुखी तथा एक दूसरे से जुड़े हैं। शीलो अपने पति सुमेर की उपेक्षा की शिकार है लेकिन एक दिन जब वह घर आता है तो शीलो भाभी खिल उठती है और...........

भाभी की अदा एकदम बदली हुई.......ठिठोली का जबाव बड़े संजीदा तरीके से दिया, ''बालू ऊपर के कोठे में से अपनी किताब–मिताब उठा लेना। तुम्हारे भइया वहीं... .....समझे, बिस्तर पर एक तिनका भी न रहे।''[88]

किन्तु सुमेर उसकी संवेदनाओं का तिरस्कार कर उसका मखौल उड़ा वापस चला जाता है और वह अकेली रह जाती है। ऐसे उसका देवर अपनी भाभी की वेदना को समझ उसके करीब आ जाता है। दोनों अपनी–अपनी संवेदनायें व प्यार एक दूसरे से बांटने लगते है–

---

[86] इदन्नमम–मैत्रेयी पुष्पा – 94–95
[87] बेतवा बहती रही – मैत्रेयी पुष्पा – 103
[88] झूलानट – मैत्रेयी पुष्पा – 35

"पीपल के पेड़ तले बैठकर एक बेला में से दही खाया था। अपने हाथों से एक दूसरे को खिलाया था" – खेतों का सूनापन, कौन देखता है यहाँ। आजाद थे तन–मन से। उस दिल फरेब घड़ी में गांव की रीति, आड़ मर्यादा, उतार कर परे फेक दी थी दोनों ने।"[89]

विजन की डॉ0 आभा एक डाक्टर होने के साथ साथ किसी की भाभी भी है किन्तु डॉक्टरी पेशे के चलते उसकी कुछ मजबूरियाँ व जिम्मेदारियाँ है जिससे वह एक डॉक्टर व मानव होने के नाते मुख नहीं मोड़ सकती। अतः जब उसकी ननद का विवाह आता है और उसे ससुराल में जबरन जिम्मेदारियों के बोझ तले बांधा जाता है तो वह स्पष्ट रूप से अपनी संवेदना व्यक्त करते हुये कहती है–

"इस बार मैं नहीं रूक पाऊँगी, आपका बेटा रूकेगा।"

ऐसा सुन जहाँ ननद उसे उपेक्षा से देखती है वहीं ससुराली जन उसके प्रति कटु रवैया अपना लेते हैं।

कहानी "कृतज्ञ" की वसुधा को मुरली अपनी सगी भाभी समान मानता है और एक विषम स्थिति में उनके घर मदद मांगने पहुंच जाता है। वसुधा एक भाभी के कर्त्तव्यों की भांति जब उस देवर की मदद के लिए आगे बढ़ती है तो उसे अपने पति से तिरस्कार मिलता है, और वे क्रोध में उस पर चिल्ला उठते है–

- "ऐसा करो तुम, उठाओ सामान, जाओ यहाँ से। आई से–गेट आउट। गेट आउट फ्राम हियर! दिस इज माई हाउस.....अण्डर स्टैण्ड।
- "उन्हीं चमारों में बैठो जाकर। पकड़ लाओ मथुरा से......आगरा से ....तमाम कंगले आ जाऐंगे, कोढ़ी दरिद्री......करवाओ सबका इलाज। उस गन्दी गली में पैदा होकर क्या सारे मोहल्ले का ठेका लिया है मैंने?
- "बड़ी इंसानियत की पैरोकार बनी फिर रही है–घर में क्या हो गया है, बच्चे क्या कर रहें, कुछ पता नहीं। जा, वहीं बैठ फुटपाथ पर! उन्हीं के साथ। सा..... ।"[90]

अपनी भाभी का ऐसा अपमान देख व सुन मुरली वहाँ से बिना मदद लिये चला गया ओर वसुधा काफी देर तक रोती रही। इसलिए नहीं कि उसे पति के क्रोध का

---

[89] झूलानट – मैत्रेयी पुष्पा – 86
[90] कहानी कृतज्ञ – मैत्रेयी पुष्पा – 91

भाजन होना पड़ा, वरन् इसलिए कि वह उस मुरली की मदद नहीं कर सकी, जिसने उनकी अनेक मुसीबतों में साथ दिया था। उसकी संवेदना को पति ने एक झटके में कुचल दिया और उसको अस्तित्व विहीन कर दिया। उसके बाद जब भी मुरली आता–

"मुरली, तुम चलो, हम आते है।" वसुधा पति के कहने से पहले ही बोल पड़ी। अपनी वज्र देहरी से उसे हटा देने की चेष्टा में थी वह। "ऐसी नरम स्थिति में पाषाण शिला पर माथा पटकने का क्या अर्थ?"[91] और जब मुरली के पिता उनकी मद्द के अभाव में मर जाते है तो–

"अक–बक अवसन्न वह खड़ी रही देर तक......बौराई बावरी सी.....फटी आंखे कफन में गाड़े.....फिर भारी बोझिल कदम घर की ओर धरने लगी। आज न दांये देखा न बांये, न जाने कैसे सड़क पार करती चली आयी। कुछ तुड़े–मुड़े नोट हथेली के बीच दबे पसीजते रहे।"[92] अततः उसकी संवेदना शून्य हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते है कि मैत्रेयी पुष्पा ने भाभी में रूप नारी के कई रूप प्रस्तुत किये उसकी संवेदना भी अलग–अलग तरह की है। जो हमें नारी के इस रूप पर विचार करने पर विवश करती हैं।

६. सास रूप में नारी संवेदना

भारतीय समाज में सास रूप नारी का बेहद विकटतम रूप माना जाता है। सास शब्द से ही ऐसा महसूस होता है कि बहू को समस्त बंधनों में जकड़कर रखने वाली औरत। किन्तु वर्तमान समय में नारी के इस रूप में काफी परिवर्तन आया और वह अब अपनी बहुओं को अपनी बेटियों के समान दर्जा व प्यार देने लगी। जिससे समाज में उसका मान सम्मान बढ़ा है।

मैत्रेयी पुष्पा जी ने सास रूप में नारी की संवेदना का बड़ा ही रोचक चित्रांकन अपने उपन्यासों में किया है, जिसे पढ़ पाठक सास के वास्तविक व यथार्थ पूर्ण रूप से परिचित होता है। उन्होंने सास का प्रचलित सामाजिक रूप ही। ज्यादा लिया है,

[91] कहानी कृतज्ञ – मैत्रेयी पुष्पा 94
[92] कहानी कृतज्ञ – मैत्रेयी पुष्पा 95

क्योंकि एक सास यह कदापि नहीं भूल पाती कि वह बहू के पति की माँ है, तो वहीं बहू उस बेटे को सिर्फ अपना पति मानकर ज्यादा हक जताती है और सास को उपेक्षित करती है। बस यहीं सामजस्य गड़बड़ा जाता है और दोनों एक दूसरे को ताने देती हैं–

माँ के जाते ही शीलो आ गयी, बालकिशन को भूखा जान–

" माताराम गोदी में धरकर बैठना चाहती है, यह नहीं ख्याल किया कि पूत भूखा–प्यासा.....चबाव चुगली से फुर्सत मिले, तब न।"

यह क्या सास ने सुन लिया–

हमारा घर, हम अपने पूत को दस बेर खबाएं कि लाँधिन (भूखे) राखें, तू कौन?"......भूल गई, कल तक तेरे घूँघट पर सेर भर मक्खी भिनकती थीं?"

शीलो नागिन की तरह जहरीली हंसी छोड़ने लगी "बूढ़ियों के घर हुए, तो मरघट किसी बाट हेरेंगा।"[93]

शीलो की सास कराह कर रह गई। वह कुछ कहना चाहती थी लेकिन उनका कमजोर स्वर डूबता चला गया। उनकी नजर चीख पड़ना चाहती थी, क्योंकि शीलो उनकी छाती में कील ठोंककर गई थी, परंतु–

जब सास बहू से नहीं जीत पाती, तो वह बेटे की ओर उन्मुख होती है किन्तु बेटा भी जब अनसुनी सी कर दे, तो–

"अरे बालू, तू सो के बता रहा है हमें, कि बेटा भिरमा रहा है मतारी को? समझ रहा है कि आंखे मूंदे पीछे दुनिया में अंधेरा हो जाएगा। सुन तो रहा होगा लुगाई के बोल और समझ भी रहे होंगे लला कि किसके दम पर?"

शीलो – "जब देखो, डुकरो कांटों के झाड़ पर चढ़ी रहती हैं। दें अबकी बेर गाली........?"

"हाँ–हाँ, तेरे बाप की धौंस में रहूँ और घी–गुड़ की बात करूँ ठगिनी।

[93] झूलानट – मैत्रेयी पुष्पा – 14–15

हाँ–हाँ खूब दिखाओं चैहत्तर। बुढ़ापे में ज्वानी के साके........"[94]

सुन सास की संवेदना जार–जार हो उठती है और उन दिनों को याद करती है जब शीलो उनके बड़े बेटे सुमेर की बहू बनकर घर आयी थी और जब उसके हाथ की छटी ऊँगली को देखकर उनका छोटा बेटा बालकिशन व मोहल्ला पड़ासी की औरतों ने बहू को उपेक्षा से देखा तो सास ने बालकिशन को बरजा–

"तू सदा का मूरख। ऐसे बमका, ज्यों पांव के नीचे सांप आ गया हो।"
और इकट्ठा औरतों को भी–

"अरी, यह क्या कोई तमासा है? हम कहते हैं, तुम धजी का सांप क्यों बना रही हो। हाड़–मांस की नुगरिया। बताओ, ऐसे देख रही हो, ज्यों छिपकली हो।"

गांव की औरते भूल गई कि छठी उँगली लटकते मांस के रूप में है भी या नहीं? क्योंकि अम्मा जिस तरह निंदामूलक बातें उखाड़ लेती हैं, उसी तरह स्तुति की जलधारा भी बहा सकती हैं। हर देहरी पर शीलो भाभी की तारीफों के झरने। मुहल्ला सराबोर–

चांद सी बहू। कायदा–करीने से सुपात्रा, इफरात बरकत से लक्ष्मी रूपा। बहुओं में एक बहू शीलो। सास–बहू एक थाली में खाना खातीं फिर। तृप्ति–भरी डकार लेती अम्मा। "मोरे ठाकुर मेहर तुम्हारी कहकर अम्मा महादेव का नहीं, शीलो भाभी का गुणगान करती। और जब सुमेर बहु छोड़कर शहर चला गया, तो सास ने बहू की संवेदना को गहरायी से समझ हर वक्त तसल्ली दी, समझाया, सुमेर को हजार गालियां दी और बहू को रोता देख बालकिशन से कहती–

"नई ब्याही है, मायके की याद में हींड़ती है। तू पूँछगछ रखा कर, देवर नहीं है?" और आज वही शीलो ने सास की संवेदना का मजाक बना डाला। सास का कसूर सिर्फ इतना था कि सुमेर जब उपेक्षा से शीलो को छोड़ गया तो शीलो अपने देवर बालकिशन से शारीरिक सम्बन्ध बना प्यार पाने लगी और जब सास ने बहू से उस रिश्ते को पति पत्नी का दर्जा देने की बात कही, तो शीलो ने इंकार कर दिया और मनमाना व्यवहार कर सास को मान–मर्यादा व परम्पराओं के झूठे ढकोसलों को

[94] झूलानट – मैत्रेयी पुष्पा – 9–8

निभाने के लिए अकेला छोड़ उन्हें उपेक्षित करने लगी। सास बेचारी अकेली क्या करे? अपनी वेदना किससे कहे? क्योंकि उसे समाज में नित नये सवालों का सामना करना पड़ता, ताने उलाहने सहन करने पड़ते।

"अपना–अपना आकाश" कहानी में मैत्रेयी ने एक सास के हृदय की बड़ी मार्मिक व्यंजना प्रस्तुत की है। कहने को तो तीन–तीन बहुएं हैं उनकी। किन्तु कोई भी उनकी संवेदना के करीब नहीं। तीनों को वे भार के समान जान पड़ती हैं और तीनों ने चार–चार महीने उन्हें अपने घर रखनें का नियम बना लिया है और–

उनकी अपनी पुत्रवधू थी जो खाने की प्लेट किसी तरह नौकरानी से उनके ही कमरे में पटकवा देती थीं, क्योंकि उनमें टेबल–मैनर्स नहीं थे।

और अक्सर.............

" अम्मा जी, आज तो बच्चे चायनीज खाने की जिद कर रहें हैं सो उसी में से आया आपको भी दे देगी, खा लेना।" कहकर बहू पर्स झुलाती हुई घर से बाहर निकल गई। कैसे–कैसे खा पाई थी उस अजब से भरछत भोजन को। नोन–मिर्च की सिवई तो उन्होंने कभी सुनी ही नहीं। इतने बड़े जीवन में सिवईयों को उन्होंने हमेशा घी–बूरे के साथ परोसा था। नूडल्ल पेट में डाल तो लिए लेकिन खाते ही पेट फुंक गया था। सिरका और मिर्च के जोड़ ने बूढ़ी आँतों को जला डाला था। अगले दो दिन तक मरोड़ और दस्तों से पीड़ित रही थीं। दोनों बहुयें फुसफुसा उठी थीं – "देखती नहीं कितना पचा पाएंगी, बस खाए सिद्ध।"

दोनों बहुए जहाँ उनकी बूढ़ी काया की सामर्थ्य–असामर्थ्य से अनजान थी, वहीं वे उनके मन की वेदना को भी समझने में असमर्थ थी। बेचारी सास–

सारा दिन बैठी ऊबती थीं, उबासियां लेती रहतीं, सोचती रहतीं.......गांव में मरा दिन भी कैसी कुलांचे भरते हिरन सा भागता आता और आंखों से ओझल हो जाता। यहाँ तो पहाड़–सा दिन, जुग–सी रात, कोई क्या करे? कैसे काटे.....? ड्राइंगरूम में टी0वी0, बी0डी0ओ0 चलता रहता तो वहाँ जा बैठतीं। पहले तो कुछ पल्ले ही नहीं पड़ता था। लेकिन यदि हिन्दी में कुछ आ रहा हो तो थोड़ा–थोड़ा समझने की कोशिश करतीं। बीच में टोका–टाकी भी कर देतीं – पूछ लेतीं। सबको नागवार गुजरता, पर बच्चों और बहू के भृकुटि–वक्र को क्या वे समझ पातीं, वे तो जिज्ञासु बनी पूछती ही

चली जातीं। ऊपर से मिलने जुलने वाले। बहू चिड़चिड़ा कर बोली– अम्मा जी, कोई आ जायें तब तो अपने कमरे में उठ जाया करो। गांव में क्या टी0वी0 ही देखती थीं? कुछ आपके लायक आएगा तो बुला लेंगे।"

वे मर्माहत हुई आने कमरे में चली गयीं थी। उनकी बहू क्या जाने कि गांव में क्या था– उनका स्वनिर्मित स्वर्ग। (जहां की समस्त जमीन और घर बार बेंचकर बहू बेटों ने अपने नाम कर लिया था और उन्हें यहां ला जबरन झेल रहे थे) यदि यह टी0वी0 गांव में होता तो बहू देखती कि इसके सामने पांच सौ आदमी बैठे होते बे–रोकटोक हर्षित......उल्लसित। खैर, वे अपने कमरे में कैद हो गयीं। न कहीं निकलती न किसी से बोलतीं। भोजन जैसा भी मिल जाए, जब भी मिल जाए स्वीकार्य था– देर से मिले तो खाली पेट की आंतो की ऐंठन और ऊलजलूल हो तो पेट में हुए अफारे को चुपचाप झेल जाना उन्होंने सीख लिया था। पल पल टीसने वाले घाव अन्दर ही अन्दर बहने को अपने अन्तर में कहीं गहरे गाड़ दिये थे।"[95]

अंततः सास को व्यर्थ चीज जान तीनों बहुएं उन्हें बंगलौर के आश्रम में भेजने का निर्णय ले लेती हैं और–

रात को बहू ने सास के बंगलौर जाने की पूरी तैयारी कर दी। जरूरत की हर चीज– घंटी, सुमिरनी माला, ठाकुर जी, उनकी पोशाक और वांछित सब वस्तुएं।

भेजने को तो उन्हें वृन्दावन भी भेज सकते थे, लेकिन वृन्दावन पास है। वे लौट सकती थीं। इसी कारण सबने मिलकर बंगलौर का चुनाव किया था। कोई पूछेगा तो कह सकेंगे। उनका मन भगवद–भक्ति में रम गया था सो गृहस्थ का मोह त्याग गयीं। कितना आसान तरीका......मुक्ति का, उनकी और परिवार की.......दोनों की।"[96]

इस प्रकार वे उनकी तरफ से बिल्कुल निसफिकर हो जाती है और अपनी गृहस्थी में रम जाती है।

मैत्रेयी का कबूतरा जीवन को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास "अल्मा कबूतरी" भी एक सास के हृदय की मर्म स्पर्शी संवेदना व्यक्ति करता है। कदमबाई का

---

[95] 'चिन्हार' कहानी सग्रह की कहानी – अपना अपना आकाश मैत्रेयी पुष्पा – 17
[96] वहीं

बेटा राणा जब अल्मा को छोड़ वापस बस्ती आ जाता है, तो कदमबाई अपनी बहू के लिए चिन्तित हो उठती है, वह राणा से पूछती है–

"राणा, अल्मा का क्या हाल है?" कदम बाई तह में जाना चाहती है। पिछली बार राणा बता रहा था, वह दुखी रहती है। रोती है। जब कि रोने का कोई कारण नहीं। अल्मा के बारे में सोचकर कदमबाई को ऐसा लगता रहा है, जैसे अपने बारे में सोच रही हो।

कदमबाई इतनी दूर बैठी अल्मा के दुख के मरम क्या समझे? पर इतना जरूर समझती है कि मर्द किसी औरत के रोने का मतलब नहीं समझ सकते। उनके चलते औरत का रोना कुत्ते के रोटी उठा ले जाने पर रोने जैसा होता है। तभी तो राणा उसे छोड़ आया, वह भी तो मर्द ही है, मेरा बेटा हो तो क्या?"[97]

इस प्रकार मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों व कहानियों में सास को कभी खुद के प्रति संवेदनशील दिखाया है तो कभी बहू के प्रति। उसका प्रयत्न अपने अस्तित्व को बचाने में दिखलायी देता है, जिसके लिए वह कभी लड़ती झगड़ती है, तो कभी बहू के समक्ष हाथ जोड़ती दिखलायी देती है। मैत्रेयी का 'झूलानट' एक सास के हृदय के समस्त उद्गारो को प्रकट करता उपन्यास है।

७. बहू रूप में नारी संवेदना

नारी का एक और अन्य रूप बहू है। यह नारी का बेहद विशिष्ट रूप है। प्रत्येक युवती के हृदय में अपने जीवन साथी एवं उसके परिजनों के लिए कुछ सुकोमल कल्पनायें होती हैं ससुराल में उसके लिये सब कुछ अपरिचित होता है। बहू बनने के बाद उसके कंधों पर अपने ससुराल के उत्तरदायित्वों व जिम्मेदारियों के फलस्वरूप ही बहू का आंकलन किया जाता है। वह कहीं सफल होती है तो कहीं असफल। अन्य रूपों की भांति बहू की सोच के भी दो पक्ष होते है सकारात्मक व नकारात्मक। जिनके माध्यम से वह अपना रूप गढ़ती है। मैत्रेयी पुष्पा जी ने बहू रूप में नारी के विविध रंगों को दर्शाया है।

---

[97] अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा – 205

मैत्रेयी जी के प्रथम उपन्यास "बेतवा बहती रही" की नायिका उर्वशी सर्वप्रथम जब सर्वदमन से शादी कर चन्दनपुर बहू बनकर आयी, तो सभी ने उसके सद्व्यवहार के कारण उसे सिर आंखों रखा। किन्तु सर्वदमन की मृत्यु के पश्चात उसका विवाह उसके पिता बराबर उम्र के व्यक्ति से कर दिया जाता है तो वह बहू रूप में सामंजस्य नहीं बैठा पाती और संवेदनाशून्य हो जाती है।

मैत्रेयी जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'इदन्नमम' की कुसुमा एक अच्छी बहू होने के नाते तमाम तरह के उलाहने सास द्वारा सुनती है–

"हमारे मोंडा के मेल की नहीं बहू! हिजड़ा–खसिया की सी बनगत है वाकी। बाल–बच्चा की आस नहीं है माधोपुरावारी से। निरबंसिया रह जायेगा यशपाल, और न घर हमारी हैसियत का। पाहुनों के लाने ढंग के बासन बिलिया तक नहीं हैं माधोंपुरावारों के।"[98]

ऐसे वचन सुनकर एक बहू पर क्या गुजरती है, इस पर ससुराल पक्ष के लोगों का ध्यान नहीं जाता है और वह अन्दर ही अन्दर घुटती रहती है और अपनी संवेदना किसी से नहीं बांट पाती। घर परिवार आस पड़ोस में अक्सर उसे लेकर चर्चायें होती रहतीं–

"देवगढ़ वारी, कद–काठी से लम्बी, इकहरे बदन की बहू। गेहूँआ रंगत है, काली–सांवरी भी नहीं। नैन–नकस भी बुरे नहीं बताता कोई। फिर गोविन्द सिंह के मोंडा यशपाल के मन काहे नहीं भरी? काहे को त्याग दिया कुसुमा को? "तुम कहती हो कि रूप कारन नहीं, धन माया के लोभ में त्यागा है। कोई कमी थी हमारे यहाँ खाने–पीने की? ठीक है, गरीब की बिटिया थी, तो क्या ठुकरा देते हैं?"[99]

सुन सुन कुसुमा तंग आ जाती है और पति की उपेक्षा के चलते उदास उदास रहने लगती है। कुछ हद तक उसकी मार्मिक संवेदना को मंदा व बऊ समझती हैं। किन्तु वे भी निरूपाय हैं। लेकिन जब बहू जवानी में विधवा हो जाये तो उसकी अदम्य कामनायें किधर जायें, ऐसे में यदि बहू भटक जाये या अपनी काम भावनाओं की पूर्ति

---

[98] इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 69
[99] इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा – 68–69

किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से करें , तो क्या समाज व परिवार उसे क्षमा कर देगा और तब जब स्वयं एक बहू इस बात को बड़े ही साहस के साथ स्वीकार ले–

"हाँ मैं पेट से हूँ, अम्माँ, सुनकर बूढ़ी की आंखे फटी रह गई। बोल बंद हो गया। सांस रूक सकती होती तो उसी दम रूक जाती "कुलच्छिनी बहू ने अपने पाप की कटार हुकमकौर के सीने चला दी। कौड़ी सी आंखे निकालकर देखती रह गई– मेरे बेटा की मौत से दगा करने वाली हरजाई बदकार। तेरा मुंह देखने से नरक मिलेगा, खेती जलेगी, अकाल पड़ेगा। गंगा में सौ अस्नान करो, तो भी यह महापाप छूटना नहीं।"

"रंडी मेरे पूत की चिता तो सीरी हो जाने देती।"[100]

आदि हृदय को चीर देने वाले वाक्य सुनकर "चाक" की रेशम अपमान के घूँट पीकर और समाज से मोर्चा लेते हुये अपना अलग संसार रचने की कोशिश करती है किन्तु अंततः ससुराली जन उसे मौत के घाट उतार देते है। हाँलाकि उससे पहले उसका विवाह पगला जेठ से करने की कोशिश की जाती है तब वह कहती है– "डोरिया के बिछिया पहन भी लूँ तब क्या मेरा मन बदल जायेगा?"

और जब औरतें सास की कटूक्तियों पर कुछ कहती, तो वह कहती–"डुकरिया की क्या खता? वह कौन सी अपने मन से ऐसा अजस करती है। एक दिना मुझे छाती से चिपकाकर हूकरी देकर रोने लगी और सुबक–सुबक बोली रेसनियाँ, मेरा बस चले तो मैं तुझे अपनी पलकों में छिपा लूँ, पर मर्दों को क्या जबाव दूँगी री.........."[101] इस प्रकार एक बहू और नारी हृदय की संवेदना का बड़ा ही मार्मिक व यथार्थ चित्रण मैत्रेयी जी ने यहाँ प्रस्तुत किया है।

"अगनपाखी" में एक ऐसी बहू की कहानी है जिसका विवाह एक अमीर अधपगले युवक से कर दिया जाता है उसे भुवन से शादी के बाद पागल खाने भर्ती कर दिया जाता है और वहाँ मिलीभगत से उसे मृत घोषित कर दिया जाता है और फिर शुरू होता है सम्पत्ति के लिए सामन्ती दांवपेच। जेठ–जिठानी व सास बहू भुवन

---

[100] चाक – मैत्रेयी पुष्पा – 18–19
[101] चाक – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 21

को सती होने के लिए विवश करते है और जब वह सती होने से इंकार कर देती है तो उसे एक कोठरी में बंद कर सास समझाने लगती है–

"समझ से काम ले बहू। सती होना मामूली खेल नहीं। हमारी फजीहत न करा। हम तो तुझसे डर रहें हैं।"

वह पत्थर की मूर्ति सी हो गयी। कपड़े उठाते हाथ थम गए। सांस भी गले में अटक गयी।

जिठानी ने हाथों में कंगन पहना दिए। पांव में नए बिछिए चांप दिये। चूड़ियां लालटेन के उजाले में बदली गयीं वह सातों सिंगार में मगन हो गयी कि चारों ओर से घेर ली गयी? पूरी तरह तैयार हो गयी थी।

जिठानी बीच–बीच में सिसक सी पड़ती थी। सदा की दुश्मन जिठानी क्या सोचकर रो रही होगी? बहू जैसी बहू भुवन......अंत ऐसा होना था। ऐसा होता है?

जब सास ने पूछा – " मायके से किसी को बुला दें? तो भुवन की हिचकियाँ बंध गयीं। रोते–रोते क्या बोले, क्या बताए? सब बातें सुनने की गुनहगार हुई, " कौन होती है सती? आज क्या सतजुग धरे? कलजुग में सती?"[102]

और भुवन बहू को जिंदा जलाने की पूरी तैयारियां कर ली जाती हैं किन्तु उससे पहले बहू अपनी जान बचा भाग निकलती है किन्तु उसके बावजूद सम्पूर्ण गांव में खबर फैला दी जाती है कि वह सती हो गयी। यह उस बहू की खुद की इच्छा थी। हमारी बहू देवी दुर्गा का रूप थी। सती होना था, सती हुयी। हमारी बहू अमर हो गयी।' इस प्रकार उसे मरा मान उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति पर ससुराली जन कब्जा करने की चेष्टा करते हैं।

इस प्रकार वर्षो से बहुओं की संवेदनाओं को ताक पर रखकर उन्हें चिता के हवाले किया जा रहा है।

" अल्मा कबूतरी" की अल्मा एक ऐसी अनब्याही बहू है, जिसकी सगाई राणा से तो हो गयी किन्तु परिस्थितिवश वे अलग–अलग हो गये। किन्तु विषम परिस्थितियों स

---

[102] 'अगनपाखी – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 178

गुजरते हुये भी अल्मा अपने को राणा के घर की बहू मानती है और सपने में देखती है कि उसकी सास राणा के बीमार होने पर उसे पुकार रही हैं –

"बिटिया तुझसे कितने दिन छिपाया कि बताना न पड़े सो अपने आपको छिपाएं रही। ऐसा नहीं कि मैं तुझसे प्यार नहीं करती। अच्छा किया कि बुरा मेरा दोष मेरे माथे। हाँ इतना जानती हूँ कि यह खबर पाते ही मेरी बहू......

"मेरी बहू" शब्द का बिच्छू अल्मा के कान में रेंग रहा है। डस–डसकर घाव बना दिए। दर्द से सुन्न होती गई पूरी देह। और अंत में ऐसा हुआ कि यही एक शब्द याद रह गया।"[103]

और वह संवेदना में अश्रु बहाने लगती है लेकिन वहाँ उसे महसूस करने वाला कोई नहीं। लेकिन वह महसूसती है – वह अपने ससुराल गयी है राणा की माँ उसे बाहों में भर रो उठी हैं, औरतें उसे बरज रही हैं – अरी क्या री.....बहू आई सात सगुन ......तू गाने की वेला में रोती है नादान।

बेटा, पांव आगे कर – कहकर भजनी कटोरी में घोला हुआ महावर लगाती है। अंगूठा उँगलियां कांपते हाथों से रचाने लगी। पांव के किनारे पर गुलाबी कोरे और पंजे के बीचों–बीच रंगभरा चंदा सजा दिया। हाथ थर्राता है बूढ़ी का ....चंदा टेढ़ा हो गया।

माथे पर टिपकी लगायी है धनसिंह की बहू ने। रूपसिंह भीखम की दुल्हन मांग भर रही है। दूलन की औरत चांद किरन सी लाल बंधेजी चूनर डालने लगी। लछमन की बहू मुट्ठी में बिछिया दबाए हुए, आगे बढ़ आई। गोरी गुलाबी उँगलियों में चांदी की सफेद फूल से बिछिया पहना दिए।

"सोने की चूरी नहीं बेटा, सुहाग की चूरिया कांच की होती हैं। मछला पहना देगी।" सरमन की औरत ने मंगल गीत उठाया। फलने फूलने, वंश–बेल बढ़ाने का आशीर्वाद गीत......राणा की सारी माँएँ......। अल्मा सिर झुकाए बैठी है। अनदेखे अन पहचाने तीरों से जख्मी माताएं.......वह पांव छू–छूकर घावों को सहलाती है, शीतल मरहम देने की कोशिश में झुकी घूँघट डाले हुए......।

[103] अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 376

कहीं काजल, कही लाली, सिंर से पांव तलक.....कहीं महावर कहीं बिछुआ..... रूनक झुनक करती घर में घुसती है।"[104]

ऐसा सोच अल्मा अपनी संवेदनाओं को रंग देने लगती है।

वहीं "झूलानट" की बहू शीलो अपने पति सुमेर की उपेक्षा के साथ–साथ सास व समाज के ताने सहन करने के लिए विवश है। ताउम्र वह अपनी संवेदनाओं को कुचल घर को जीवनदान देती रही और जब उसने जमीन जायदाद के ऊपर अपना हिस्सा जताया तो सबकी भृकुटियां टेढ़ी हो गयीं–

सास बोली – "हाय मै सिर्रिन नहीं जानती थी कि सांपिन को दूध पिलाकर बिस भर रहीं हूँ बेटों की जिंदगानी में.......एक दिन यही डँस लेगी।

पति चिल्लाया – यह औरत इतनी सीधी नहीं जितना तुम समझ रही हो।

बालकिशन – "छली औरत, तुझसे यही उम्मीद कर रहा था?

लेकिन एक बहू के साथ होते अन्याय को किसी ने शिद्दत से महसूस नहीं किया। इसी से उस बहू ने अपनी संवेदनाओं पर काबू पा साहस के साथ समाज व सामाजिक परम्पराओं व मान्यताओं से लोहा ले उस घर में अपना बहू का दर्जा एवं हक हासिल कर ही लिया।

जब एक बहू प्रोफेशनल लाइन से जुड़ी हो तो उसे ससुराल व अपने जीवन में कैसी–कैसी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है, इसका सफल चित्रण मैत्रेयी जी ने अपने सर्वथा प्रथक उपन्यास 'विजन' की बहू डा0 आभा के माध्यम से किया है। जो एक एम0बी0बी0एस0 डाक्टर है और शादी के बाद उसे बार बार अपने मायके अपनी प्रेक्टिस के लिए जाना पड़ता है। इसी पेशे से जुड़े होने के बावजूद उसके पति डॉ0 मुकुल उसकी भावनाओं को नहीं समझ पाते और परिवारीजन के साथ–साथ बार–बार उस पर ससुराल में रहने का दबाव बनाते हैं। चूंकि आभा आज के समय की लड़की थी, अतः वह अपनी संवेदनाओं पर काबू न पा सकी और विरोधकर वापस आ गयी। लेकिन अंततः –

---

[104] अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 378–379

"मूल बात यह रही कि उसके व्यवहार में आदर की, सम्मान की और आत्मीयता की बाढ़ सी आ गयी। गुणवंती बहू बनकर मौकें तलाशने लगी कि कब बरेली पहुंचा जाए। सास–ससुर की महिमा गाना उसका कर्त्तव्य है। सभ्यता की सामाजिक रूचि का ध्वंस करती हुई रेल में बस में सफर दर सफर चलता रहा।"[105]

और वह पुनः ससुराल पहुंच एक अच्छी बहू के समस्त कर्त्तव्यों की पूर्ति करने लगी, लेकिन एक अन्तर्द्वन्द्व बराबर चलता रहा और जब यूनिट से बुलाब आया तो उसने डा0 चक्रवती को अपनी मजबूरी बताते पत्र लिखा–

"मैं स्वस्थ तो हूँ लेकिन ऐसे लोगों के बीच हूँ, जो रिश्तों को लेकर बीमार से रहते है, साथ ही बहू के काम को नहीं, बस बहू को समझते हैं।"

लेकिन निरन्तर अन्तरविरोध के कारण वह अपनी संवेदनाओं पर काबू पा एक निर्णय पर पहुंचती है और –

" मैं भी जाऊँगी। मुझे जाना होगा। मेरे पेशेंट्स........"[106] कह वह एक बहू के समस्त बंधनों को तोड़ आजाद पंछी की भांति वहां से उड़ जाती है।

इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा जी ने एक बहू के समस्त मनोभावों व समस्याओं का चित्रण विविध माध्यम से अपने उपन्यासों में किया है। वे एक बहू की संवेदना के काफी करीब दिखलायी देती है और यह देख व पढ़ मैं एक सुखद आश्चर्य में हूँ कि वे नारी के प्रत्येक रूप का इतना सजीव व सफल चित्रण कर पायीं हैं चूंकि मैं खुद एक बहू हूँ, और बहू जीवन को इन समस्याओं व संवेदनाओं से यदाकदा दो चार होती रहती हूँ, जिन्हें मैत्रेयी जी ने अपने कागजों पर उतार दिया है।

---

[105] विजन – मैत्रेयी पुष्पा – 103
[106] वही 106

८. बेटी रूप में नारी संवेदना

हमारे समाज में बेटे का जन्म बेटी के जन्म से श्रेष्ठ माना जाता है। यद्यपि हमने पर्याप्त प्रगति कर ली है फिर भी बेटी की जन्म को लेकर स्थापित पुरानी मान्यतायें अभी तक नहीं बदल पाई हैं। जन्म से लेकर विवाह तक बेटी परिवार पर बोझ ही बनी रहती है। हम आधुनिक होने का कितना ही दावा कर लें परन्तु बेटी के संदर्भ में हमारी आधुनिकता धरी की धरी रह जाती है एक दो अपवाद छोड़कर बेटियों पर लगी पाबंदियां अभी तक हट नहीं पायी है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो नारी शिक्षा को महत्वपूर्ण माना ही नहीं जाता। परिणामतः अधिकांश महिलायें अशिक्षित ही रह जाती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा जी नारी जागरण की पक्षधर रही हैं, अतः उनका उद्देश्य रहा है कि वे अपने उपन्यासों के माध्यम से सुसुप्त नारी वर्ग को उद्वेलित करें। अतः आपने अपने उपन्यासों में भारतीय समाज में बेटी की दीन हीन स्थिति का चित्रण किया है। कहीं–कहीं उनकी बेटी मौन होकर सब कुछ सहती है किन्तु कहीं–कहीं पर विद्रोह भी करती है। बेटा–बेटी के इस भेद को मैत्रयी ने इस तरह व्यक्त किया है – "उरवसी बेटी जात हती सो जी गयी, लरका होतो तौ न बचतौ।" इस प्रकार लड़की को सख्त जान माना जाता है। और उसकी हारी–बीमारी पर ज्यादा तवज्जो नहीं दी जाती और न ही उसकी सुख सुविधा का ध्यान। उसे पढ़ाने लिखाने में भी माँ–बाप धन की बर्बादी समझते हैं – यथा –

"अम्मा, तुम मेरे साथ जो कर रही हो, वह कुछ अच्छा नहीं कर रहीं । तुम पाँच–2 लड़कों को पढ़ा सकती हो, लेकिन मेरे लिए तुम्हार घर अकाल हैं........ किताब–कॉपी के पैसे तुम्हें भारी हैं अम्मा।"

"चुप होती है – कि नहीं? बहुत जबान चल गयी है तेरी। तू लड़कों की बराबरी करती है। बेटे तो बुढ़ापे की लाठी हैं हमारी, हमें सहारा देंगे। तू पराए घर का दलिद्दर।"[107] आदि कहकर उसे शान्त करा दिया जाता है। एक तरफ बेटी माँ के द्वारा किये गये भेदभाव पूर्ण व्यवहार से आहत होती है दूसरी तरफ वृद्धावस्था में माँ की दुर्गति देख उसी बेटी का हृदय रोता है। भले ही माँ ने भाइयों को श्रेष्ठ समझा हो

[107] बेटी कहानी – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 21

परन्तु इस वृद्धावस्था में बेटी ही माँ की संवेदनाओं की अनुभूति करती है। वह उसके प्रति किये गये उपेक्षापूर्ण व्यवहार से आहत होती है – और अंततः अपनी माँ का सहारा बनती है।

इसी प्रकार मैत्रयी को प्रसिद्ध कहानी चिन्हार की बेटी कनक भी अंततः अपनी माँ की संवेदना को पहचान–जान जार जार रो पड़ती है और दौड़कर उससे लिपट जाती है। इसी प्रकार कहानी 'तुम किसकी हो बिन्नी' की बिन्नी बेटी हर वक्त माँ की तीमारदारी में लगी रहती फिर भी उसे जन्म से ही माँ की उपेक्षा ही मिलती रहती है। जरा सी गल्तियों पर ही मार पीट शुरू हो जाती–"ढीठ कहीं की। कंजरिया!" थप्पड़ों की दर्दीली बौछार! मम्मी कें हाथ जब चोट से झनझना उठे तो बिन्नी की नरम बांह पर उन्होंने मांस काटकर ले जाने वाली चिकोटी गाढ़ दी.......चीखों भरा रूदन घर में फैल गया।"[108]

बिन्नी का कसूर सिर्फ इतना था कि दो बेटियों के पश्चात बेटे की आरजू लिए माँ की गोद में बिन्नी आ गयी। बस! इतनी उपेक्षा व मारपीट की शिकार होने के बावजूद बिन्नी अपनी माँ की संवेदना के सबसे निकट थी और थोड़ी सी ही बीमारी पर चक्कर घिन्नी की तरह नाचती रहती।

इसी प्रकार पुरूष प्रधान समाज में पुरूष स्वच्छन्द आचरण कर सकते हैं उन पर कोई आंच नहीं आती लेकिन लड़की के चरित्र पर लगा धब्बा कभी मिट नहीं पाता। ऐसी मान्यता को ढोने वाले परिवारों में बेटी का जीवन कई अनचाही बन्दिशों में बन्द हो जाता है। उसे तरह–तरह के ताने, गालियां व उलाहना दी जाती हैं–और एक माँ ही अपनी बेटी की भावनाओं को नहीं समझ पाती –

"छिनाल, बेहया.....बन संवरकर निकलती है, गली कूचों मे। मैं इसे खूब जानती हूँ। बता, किस यार की करतूत है?"

"बोल, बोलती क्यों नहीं?" माँ बेटी को फिर पीटने लगी। भोली पिटती रही, कराहती रही पर बोली कुछ नहीं। कैसे बोलतीं उसने कहा तो था कि किसी को बताया तो बापू को गुण्डों से पिटवाएगा, खलिहान में आग.........

---

[108] 'तुम किसकी हो बिन्नी – कहानी – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 133

"आज आने दे तेरे बाप को। एक महीना ब्याह का नहीं रहा और तू यह अजस.. ...कहाँ ढोकर ले जाएगी नकटी, कहीं का नहीं छोड़ा तूने हमें।" माँ चिघाड़ रहीं थी।

"अभी आती हूँ खलिहान से लौटकर तब देखूँगी इसे।" कहकर माँ जाने लगी तो भोली मिची हिचकियों के बीच इतना ही बोल पायी थी– " अब मैं मिलूँगी नहीं अम्मा तुम्हें।"[109] और सचमुच जब तक माँ लौटकर आयी बेटी ने स्वयं को आग लगाकर भस्म कर लिया और सदैव से जलती और जलायी जाती रही एक और बेटी का अन्त हो गया। मैत्रेयी जी ने बड़ी मार्मिक संवेदना का चित्रण इस कहानी में प्रस्तुत किया है।

इकलौती होकर भी बेटी लाड़ली नहीं हो पाती। उसे वह लाड दुलार नहीं मिलता जिसकी वह अपेक्षा करती है। उसे वहीं रोटी पानी करना पड़ता है जो बेटियां सदैव से अपने भाइयों–बापों के लिए करती आयी है।

इसी प्रकार मैत्रेयी जी के आत्मकथात्मक उपन्यास "कस्तूरी कुंडल बसै" में स्वयं मैत्रेयी अपनी माँ कस्तूरी की इकलौती संतान होने के बाद भी प्रेमाभाव से वंचित रहती है। वह अनेक अवसरों पर माँ की कमी महसूस करती है। यथा–

रोना आता है माँ के बिना, जैसे माँ छोड़ नहीं गई, मर गई है पिता की तरह। कब आएगी, कि कभी नहीं आएगी?

कुशल मंगल की बात कि माता जी का पोस्टकार्ड, बस माता जी ही हैं। आज्ञा देने वाली माँ, वहीं बैठे बेटी को भूखे मार रही हैं, गंदे कपड़ों में रख रही हैं, बस चल रहा हैं, उसकी गर्दन तोड़ रही हैं। इससे ज्यादा माँ और कर ही क्या रहीं हैं? जानती हैं कि यह हॉस्टल नहीं, तभी कायदे समझा रहीं है। यहाँ आकर देखें तो समझ में आ जाएगा कि बच्चे के लिए पराया घर ही स्वयं एक कठोर कायदा होता है।

उस घर के ब्योरे में संकटों के सिवा मैत्रेयी के लिए और क्या है? संकटों को कोई कहाँ तक सुनेगा? माँ भी नहीं सुनना चाहेगी। तब क्या वह घनघोर विपत्ति भी छुपा ली जाए, जो हर रात जानलेवा विषघर की तरह बदन पर सरकती आती है।

---

[109] बहेलिये – चिन्हार कहानी संग्रह – मैत्रेयी पुष्पा पृष्ठ 39

माँ, यहाँ एक आदमी है। इस घर का सबसे छोटा बेटा, जिसका ब्याह हो गया है। वह अपनी पत्नी के पीछे दीवाना नहीं, यही उसकी तारीफ है।

माता जी, वह मुझे रात–भर सोने नहीं देता। मैं यहाँ नहीं रहूँगी। गांव भाग जाऊँगी। शहर के लोग कैसे हैं, रात में पेट पर हाथ धरते हैं। छाती नोचते बकोटते हैं और कच्छी.........."[110]

इसी प्रकार की अनेक वेदना व संवेदनापूर्ण बातों को सहन व वहन करते हुये वह (मैत्रेयी) अपना जीवन यापन कर रही थी। माँ मैत्रेयी के जीवन के प्रति सचेत तो थी किन्तु इतनी कड़वी सच्चाई से अनजान।

इसी प्रकार "अल्मा कबूतरी" की रामसिंह की बेटी अल्मा माँ के अभाव में अपनी वेदना को किसी के समक्ष कह नहीं पाती और संवेदनाओं से जूझते हुये जीवन की कटुतम सच्चाईयों का सामना करती है।

"बेतवा बहती रही" की उर्वशी अपने माँ–बाप की माली हालत जान व लड़के वालों की दहेज की मांग सुन वेदना से कराह उठती है, और अपनी सखी से कह उठती है– "मीरा भगवान काहे के लाने बिटिया कों जनम देत हैं? वो नहीं जानत कि लड़की पैदा होकें कित्तो को विपदा में डार देगी। देख रही मीरा तुम.......हम न होते तो इत्ती कलेस मचती?"

"विजन की डॉ0 आभा को उसके माँ–बाप उसके पति से जबरदस्ती समझौते को बाध्य करते हैं, तो वह भीतर ही भीतर कराह उठती है–

"माँ तुम्हारी बेटी न तो निर्दयी है और न अनरीजनेविल। संवेदना शून्य आभा कब थी? और आदमी देखता रह जाता है, माँ तुमने जैसी गृहस्थी निभाई, जरूरी तो नहीं कि ऐसी ही सरल गृहस्थी मुझे मिलती।"[111]

इसी प्रकार की समस्या से दो चार होती विजन की डॉ0 नेहा जिसका विवाह डोनेशन देकर डाक्टर की डिग्री हासिल करने वाले डॉ0 अजय से तय कर दिया जाता

---

[110] कस्तूरी कुंडल बसे– मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 51
[111] विजन – मैत्रेयी पुष्पा – 118

है, जो अपने अमीर माँ–बाप का इकलौता बेटा है। बेटी नेहा असमंजस की स्थिति में हैं। संवेदना जब हद से गुजरने लगी तो वह माँ से बाली–

"मम्मी मैं सोने के महल में कैद होने नहीं जा सकूंगी।"

"यह तुझे फिर कुछ हुआ?" माँ की गुस्से भरी आंखो में हलचल मच उठी थी।

"नेहा, खिलवाड़ मत कर। तुझसे मैं ऐसी उम्मीद नहीं रखती बेटा......।"

"मत करो मुझसे कोई आशा। मैं सब समझती हूँ। वे चालाक लोग हैं। अपने चंगुल में लेना चाहते हैं। नहीं तो उनके बेटे की लिए एक मामूली घर की लड़की, वह भी दूसरे शहर की......मरवाने या बहकाने की अनेक तरकीबें हैं। मैं तरकीबों में नहीं फसूँगी। मम्मी, वे पैसे की चमक दिखाकर मुझे और मेरे माता–पिता को हिप्नोटाइज करना चाहते हैं।"

"उन्हें क्या फायदा तुझे ब्याह कर? तू क्या संग सोने की सिल्ली ले जायेगी?"

"तब क्या उन्हें पालग कुत्ते ने काटा है, जो तुम्हारे दरवाजे भागे चले आये?"

"तो बताती क्यों नहीं, क्यों भागे चले आये? तुझ में सुर्खाब के पर लगे हैं?"

"यह बात तुम नहीं जानतीं, मै भी नहीं जानती, सिर्फ वे ही जानते हैं।"

मम्मी नेहा की बात को नादान लड़की की बात मान रहीं थीं, बस समझाना ही उनका जीवन पर्यन्त कर्त्तव्य रहेगा, जीवन की इति यही है। बोलने लगीं–

"तू क्या कह रही है, यह समझती है? पढ़ लिखकर यही सीखा है? अपने बड़ो पर भरोंसे के बदले शक संदेह करो, तुझे पेट काटकर पढ़ाया और यह बदला पाया। नेहा.......सोचा था कि कभी अच्छे दिन........पर तू आजकल के बच्चों से अलग कैसे हो जायेगी? माँ–बाप के गले में रस्सा डालो और मनमाने तौर पर खींचो।"[112]

थकहार कर, ऐसी बातें सुनकर डॉ0 नेहा ने हर बेटी की भांति अपनी संवेदनाओं को दरकिनार कर आखिर न चाहते हुये डॉ0 अजय से शादी के लिए हामी भर दी।

[112] विजन – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 75

हाँलाकि शादी के बाद मानसिक रूप से संतुष्ट नहीं हो पायी। किन्तु फिर भी सदा से बेटियों की विदाई पर यह गीत गया जाता है—

बिटिया भली जो अपने घर की,
सुख—दुख पेट पचाए भले जू,
असुअन असुअन विदा करी थी,
हंस हंस लौंट के आए भले जू।

इसी गीत के अनुसार ''अगनपाखी'' की भुवनमोहिनी का विवाह उसकी भावनाओं के विपरीत एक मानसिक रोगी विजय सिंह से कर दिया जाता है, फिर भी वह जब मायके आती, तो अपनी संवेदना को दबा सबके समक्ष हंसमुख व्यवहार रखती।

''कहीं ईसुरी फाग'' की ऋतु अपनी माँ की ऐसी बेटी है, जिसके पिता ने उसकी माँ पर चरित्रहीनता का आरोप लगाकर उसे घर से निकाल दिया था। इसी से ऋतु अपनी माँ की संवेदना के बेहद करीब हैं और माँ भी ऋतु की। ऋतु ऐसी बेटी है, जो पी0एच0डी0 शोध हेतु कहीं भी हो, परन्तु माँ की बीमारी की खबर सुन, तुरन्त दौड़ी चली आती है।

इस प्रकार मैत्रेयी जी ने बेटी रूप में नारी की संवेदना को सफलता व संघर्ष पूर्णता में चित्रांकित किया हैं।

९. बहिन रूप में नारी संवेदना

भारतीय समाज में बहिन को एक सम्मान जनक दर्जा प्राप्त है। यह नारी का वह रूप है, जो अनेक कष्टों को सहनकर भी अपने भाई—बहनों के हितार्थ में ही जीवन अर्पण कर देता है। बहिन भाई के पवित्र रिश्ते की मर्यादाओं, जिम्मेदारियों और कर्त्तव्यों की ओर ध्यान दिलाने के लिए ही भारतीय समाज में हर वर्ष रक्षाबंधन त्योहार मनाया जाता है। जहाँ बहने दिलोजान से अपने भाई को चाहती है, वहीं जान पर खेलकर भाई भी बहनों की रक्षा किया करते हैं। किन्तु आधुनिक समय, स्वतन्त्रता व समाज ने इस पवित्र रिश्ते की गरिमा को पथभ्रष्ट किया है।

वर्तमान समय में हमारे समाज ने पर्याप्त प्रगति कर ली है। फिर भी पुत्र जन्म श्रेष्ठ ओर पुत्री जन्म कष्टकारी होता है। अपने लालन पालन में बरते गये भेदभावपूर्ण व्यवहार से लड़की का हृदय विद्रोह भावना से भर जाता है। पुरूष प्रधान समाज में नारी को सर्वत्र पुरूष के अधीन रखा गया है। पुरूष अपने इस अधिकार का प्रयोग तो खुलकर करते है परन्तु अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं करते। भाई और बहिन के मध्य बनती खाईयों का एक प्रमुख कारण यही हैं कि भाई आनी बहिन पर अधिकार तो दिखाना चाहता है परन्तु उसके लिए उपेक्षित कर्त्तव्यों की पूर्ति नहीं करता।

मैत्रेयी पुष्पा के प्रथम उपन्यास "बेतवा बहती रही" में ऐसे ही एक भाई अजीत और बहन उर्वशी की कहानी है, जो बहिन पर सम्पूर्ण अधिकार तो जमाता है, पर उसकी संवेदनाओं को समझने में अक्षम था। जब उसके विवाह की बात चली तो–

"वे चाहते थे कि कोई ऐसा रईस मिले जो अपना खाकर उर्वशी को ब्याह ले जाये और आगे भी काम आने की गुंजाइश रखता हो। रिश्तदारी से सौ मदद लेनी पड़ जाती है।"[113]

ऐसे ही स्वार्थ में लिपटे भाई ने "दुहेजू वर तलाश लिया। चार बच्चों का पिता उर्वशी को प्रसन्नतापूर्वक ब्याहने को तैयार था। अजीत की कौड़ी भी खर्च नहीं होती। बहन प्रेम में पड़कर किसी हानि को सहन करना उन्हें गवारा नहीं था।"[114]

उर्वशी उदास उदास रहने लगी। उसकी वेदना समझने वाला कोई न था। वह दिनभर कोठे में दरी बिछा पड़ी रहती और सोचती कि–भगवान बिटिया को जनम क्यों देता है। लेकिन जब नाना ने उर्वशी के लिए दूसरा वर तलाश लिया , तो अजीत गरजे– "तुम दोनों सादी कर रहे हो, सो ऐन करौ। पइसा कौ इन्तजाम भी कर लो। हमारे भरोसे न रहियो। हम एक नई पाई खर्च नहीं करिहैं।[115]

ऐसे स्वार्थी और भ्रष्ट भाई के "सस्पेंड" होने का जब उर्वशी को पता चलता है तो वह बेचैन हो उठती है और उन्हें निर्दोष मानती हुये उनके निहितार्थ ईश्वर से प्रार्थना करती हैं। राजी खुशी की कामना करती है।

---

[113] बेतवा बहती रही – मैत्रेयी पुष्प – 27
[114] बेतवा बहती रही – मैत्रेयी पुष्पा – 26
[115] बेतवा बहती रही – मैत्रेयी पुष्पा – 32

जबकि यह कलजुगी भाई बहिन के पति सर्वदमन की मौत के बाद बहिन उर्वशी को उसी की सखी मीरा के पिता से चंद रूपयों की एवज में शादी (बेच दिया) कर देता है।

बहिन उर्वशी अपनी संवेदनाओं को अपने तक सीमित रख भाई की खुशी की खातिर जहर पीती रहती है और ऐसे ही कलजुगी भाई की आर्थिक कामनाओं को पूरा करते–करते अंततः प्राण त्याग देती हैं। मैत्रेयी जी ने उर्वशी के माध्यम से एक बहिन के हृदय की बेहद मार्मिक व्यंजना प्रस्तुत कर पाठक को झकझोर दिया है कि किस प्रकार कलजुगी भाई अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए बहिन की आहूति देने से भी नहीं चूकते।

"चाक" की सारंग अपनी बहिन रेशम की हत्या पर विकल बेचैन है–

"मै छटपटाकर खतम हो जाऊँगी रेशम। तू अपनी बहन की व्यथा इतनी न बढ़ा। सारे दुख दर्द सोखकर जूझने वाली तू.......मुझे अपनी तरह मजबूत समझ रही है। ना री मैं। निरी कमजोर औरत........जी पा रही, न मर ही सकी।"[116]

बहिन रेशम, जो गर्भवती थी, की संवेदना के बहुत करीब थी, सारंग, तभी तो उसके पति कमरवीर की मौत के बाद जब रेशम को ससुरालीजन सताने लगे तो वह उसके पास जाकर बोली–

"रेशम, तू यहाँ चली आ बहन। मुझे डर लगता है। तुझे सूली चढ़ा देंगे तो मैं इस गांव में कैसे जीऊँगी? बुआ–फूफा को कैसे मुँह दिखाऊँगी? मेरे रहते तेरे प्राणों के लाले......... मेरे घर आ जा तू। मुझे सबर तो रहेगा।"

लेकिन रेशम अपनी वेदना को किसी के संग नहीं बांटना चाहती। बहिन को सांत्वना देकर वापस भेज देती है और बेहद साहस के साथ अपने जीवन का सामना करती है, किन्तु बहन "सारंग के मन में तरह–तरह के विचार उठते थे। लगता था कि

---

[116] चाक – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 8

कहे कि मेरी भोली बहन, अकेली औरत खाली हौसले के दम पर पूरी जंग लड़ ले, इस पर मुझे शक होता है।"[117]

और सचमुच एक दिन उसे मौत के घाट उतार दिया जाता है। यहीं खत्म हो जाती है उस बहन की संवेदना, और शुरू होती है दूसरी बहन सारंग की वेदना।

इसी प्रकार मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी कहानियों में भी बहिन रूप में नारी की मनोदशा का सफल चित्रांकन किया है। कहानी "बेटी" में एक ऐसी बहन की संवेदना का चित्रण है जिसके पांच भाई हैं लेकिन न तो भाइयों को उसकी परवाह है और न ही माँ–बाप को। उसके छोटे–छोट अरमान भाइयों की हसरतों के नीचे दम तोड़ देते हैं।

कहानी "भंवर" की नायिका विरमा अपने भाई भाभी के यहाँ रहती है। जब उसे पता चलता है कि उसके पति ने दूसरी शादी कर ली, तो वह कराह उठती है, किन्तु ऐसी विषम परिस्थिति और बहिन की करूण संवेदना को भांप भाई उसका पूरा सहयोग कर उसे उसके ससुराल में उसका हक दिलवाता है।

किन्तु कुछ भाई बहिन के विवाह के पश्चात अपने कर्त्तव्य को पूरा समझ लेते हैं। बहिन उनसे प्यार और स्नेह चाहती है और भाई अपने में मस्त अपनी प्रसन्नता में बहिन को सम्मिलित भी नहीं करते। बहिन का हृदय अपरिचित पीड़ा की अनुभूति करता है। जो भाई कभी बहिन के ससुराल न जाये वह अचानक अपने आप जाने लगे तो बहन क्या समझे–

"सर्वदमन की मृत्यु के बाद अजीत ने उर्वशी के पास तेजी से आना जाना आरम्भ कर दिया। भाई की आवाजाही पर वह स्वयं विस्मित थी।

पति के रहते कभी खबर नहीं ली, परव त्यौहार बुलाया नहीं, पर विधवा होते ही ऐसा टूटकर गिरने वाला स्नेह। अचानक कहाँ से उमड़ा ऐसा नेह?........

उर्वशी के मन में हजार तरह की आशंकायें उठती कभी तो अपनी बिगड़ी में भाई का प्यार दुलार खरे सोने–सा चमकदार लगने लगता, मन में अंकुलाये संदेह

[117] चाक – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 22

मुरझाकर गिरने लगते। कभी ऐसी ही तरह–तरह की बे–अर्थ सी बातें धुआं की लकीर सी अकारण घुमड़ने लगतीं।"[118]

कहानी "सिस्टर" में एक ऐसी नारी की कहानी जिसमें एक नर्स को एक मरीज अपनी धर्म बहन बना लेता है और वह बहन (सिस्टर डिसूजा) भी अतिरिक्त भावावेश में उसे अपने सगेंभाई से भी ज्यादा अपनापन देती है किन्तु जब उसी भाई के लड़के की शादी पर उसे (सिस्टर) बुआ की तरफ से होने वाले नेगचारों से वंचित रखा जाता है, तो उस बहन की संवेदना जार–जार हो उठती है।

"तुम किसकी हो बिन्नी" एक ऐसी बहिन की कहानी है जिसकी दो बहनों को तो समस्त सांसारिक सुख प्राप्त है किन्तु बिन्नी को नहीं। उसका कसूर इतना है कि लगातार तीसरी बार भी माँ की कोख से उसने लड़की रूप में जन्म लिया हैं। किन्तु धीरे–धीरे उसकी दोनों बहने उससे सहानुभूति रखनें लगी–

परीक्षा में नम्बर अच्छे नहीं आये थे बिन्नी के। बहनों ने एक–दूसरे के कान में खुसर–फुसर की, फिर आपस में मुस्करा उठीं। बिन्नी बस्ता नीचे ही धरकर अनमनी सी बैठ गई, काश – दादी होतीं.........। धीरे–धीरे रो उठी। गुड़िया को तरस आ गया, तुरन्त बिन्नी के पास बैठी, "दिखा रिर्पोट, रो मत।" बहन ने पीठ पर हाथ फेरा तो बिन्नी फफकर रो पड़ी, घुटनों में मुँह दे दिया। अंजू भी पास आ बैठी। क्या किया जाए, देर तक मशवरा चलता रहा।

"मम्मी को मत दिखाना रिपोर्ट। शाम को पापा को दिखाना।" गुड़िया ने समझदारों की तरह बिन्नी को सावधान किया।

"अंजू, तू मम्मी से कुछ न कहना.....हाँ।" गुड़िया ने समझाया।

उस दिन गुड़िया कितनी अच्छी लगी थी बिन्नी को.....बिल्कुल दादी की तरह। वह गुड़िया के अनेक काम बे बात ही करने को आतुर हो उठी, और उसी दिन से गुड़िया को दीदी कहना शुरू कर दिया उसने।"[119]

---

[118] बेतवा बहती रही – मैत्रेयी पुष्पा – 68–69
[119] ललमनियां 'कहानी संग्रह' की कहानी 'तुम किसकी हो बिन्नी' –मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 136

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक बहन रूप में मैत्रेयी जी ने नारी हृदय की बड़ी मार्मिक झाँकी प्रस्तुत की है। जहाँ बहिन भाई के बीच संवेदनाओं का विस्तार है तो वहीं बहिन–बहिन के बीच की संवेदनाओं को भी मैत्रेयी जी ने बड़ी कुशलता से चित्रांकित किया है।

१०. परित्यक्ता रूप में नारी संवेदना

परित्यक्ता शब्द उस नारी की ओर इंगित करता है जिसे उसके पति द्वारा छोड़ दिया गया हो। परित्यक्ता नारी को समाज में अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता है। वह सबकी दृष्टि में हे्य हो जाती है। उसका दोष न होते हुये भी उसको दोषी ठहराया जाता है। वह समाज की दृष्टि में चरित्रहीन हो जाती है। समाज के व्यंग्य व ताने उसे सुख से जीने भी नहीं देते।

इस देश में परित्यक्ता स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं, ऐसा प्रतीत होता है कि उनका जीवन दु:ख भोगने के लिए ही है। परित्यक्ता नारी होना मानो आज की नारी के लिए अभिशाप है। जबकि प्रारम्भ से ही नारी बेहद संवेदनशील प्राणी है। वह भावनात्मक रूप से किसी से जुड़ने के पश्चात् उससे अलग होने के विषय में सोच भी नहीं सकती, परन्तु समय परिवर्तन क साथ नारी अपनी स्थिति के प्रति सचेत हुयी है।

कभी–कभी विषय परिस्थितियों के कारण यदि नारी भी पुरूष का परित्याग करती है तो समाज में कोई भी यह जानने का प्रयास नहीं करता कि ऐसा क्यों हुआ? बल्कि सारा दोष नारी के सिर पर ही डाल दिया जाता है। परित्यक्ता नारी को समाज में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। एक तरफ तो पुरूष उन्हें फुसलाने के लिये तैयार रहते है और दूसरी तरफ समाज उसे संदेह की दृष्टि से देखता है।

मैत्रेयी पुष्पा ने एक परित्यक्ता नारी के अनुभवों का सफल चित्रांकन अपने उपन्यासों में किया है। उनकी बहुत सी नायिकायें पति द्वारा प्रताड़ित व त्याज्य हैं। तो कहीं–कहीं स्वयं नारी पति का त्याग करती दिखलायी देती है। वे कहीं अपने दुखों से दुखी हैं, तो कहीं अपने यथार्थ से लड़ती कर्मशीला।

मैत्रेयी का सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्सास "इदन्नमम" में भी परित्यक्ता नारी का चित्रण देखने को मिलता है। जगेसर कक्का जहाँ अहिल्या से प्रेम के चलते अपनी पत्नी का परित्याग कर देते है वहीं अहिल्या से मिले शारीरिक रोग के कारण उससे भी बेजार हो उठे– "एक दिन अचानक, एकदम से चिल्लाने लगे वे। गंदी, भद्दी गालियों की बौछार कर डाली और बालों से घसीट लिया अहिल्या को– "साली, हराम की औलाद! देख हमारी बाहें। हमारे हाथ। हमारे होंठ। जे बीमारी कितै से आयी? कौन से यार ने दिया है जे रोग? तेरे कित्ते खसम......दूध पियतन ही सीख लिया सब कुछ..." अहिल्या रोना भूल गयी। आंसू भरी आंखे अपलक। उनकी बाहों पर लाल–लाल चकत्ते। होठों पर छालें।

"ओ दइया।" काँप गयी वह।

थरथराती हुयी, " पहले दिन ही रोका था। ठेकेदार कि देह को हाथ मत..... जानती थी कि रोग न जाने कब फूट पड़े। कब लग जाय।

.......पर कहाँ माने? उलटा अहिल्या को ही बरज दिया, "रोको मत, जनम जनम का पियासा हूँ।"

विरोध–प्रतिरोध का स्वर रोज–रोज निरस्त होता रहा।

वे पुनः चिंघाड़ उठे, "बोलती नहीं अब। पाथर बनी बैंठी है। नखराती तो ऐसी थी, जैसे अखेल कुंआरी हो। अनछुई के से ढ़ोंग भरती थी छछूँदर।"

उन पर जनून चढ़ा था पीटने का। खिचड़ने जोग भी नहीं छोड़ेगा क्या? जहाँ मन आया वहीं करते रहे आघात। रांउतों की बस्ती से दूर बनी टपरिया मे कोई बचाने छुड़ाने भी नहीं आ पाया। जब खुद ही थक गये तो लात का भरपूर भारी प्रहार करके अलग हो गये, "रंडी जात। निकर यहाँ सें।"

अहिल्या अधूरी रह गयी। वे टपरिया से बाहर हो गये। पहाड़िया से सारे नाते रिश्ते तोड़ दिये।"[120]

---

[120] इदन्नमम् – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 241

इस तरह वे पत्नी और प्रेमिका दोनों की संवेदनाओं को कुचलते हुये उनका परित्याग कर उन्हें बिलखता छोड़ गये। तो वहीं इसी उपन्यास की एक और नायिका कुसुमा अपने पति यशपाल के प्रेम से वंचित व उसकी नपुंसकता के चलते उसे त्याग दाऊ जू का वरण करती है और अनेक ताने व उलाहने सहन करते हुये भी उनसे शारीरिक सम्बन्ध बना एक पुत्र को जन्म देती है।

वहीं "झूलानट" की शीलो पति सुमेर द्वारा मात्र रूपरंग के कारण त्याग दिये जाने के बावजूद अपना साहस नहीं खोती और अलग संसार रचती है, किन्तु जब उसे उसके मायके वापस भेजा जाने लगता है तो उसकी संवेदना कराह उठती है–

"अपने चरणों से अलग न करना, अम्मा। इस घर में पड़ी रहने दो, मैं खेत की घास.......बुरी घड़ी में जनमी, तुम्हारी चाकरनी बनकर रहूँगी। बालू (देवर) की दुल्हन की टहल करूँगी। उनके बच्चे पालूँगी रूखी–सूखी खाकर घड़ी काट लूँगी। मायके में क्या सवाल जवाब नहीं होंगे? दिन–रात की सूली........."[121]

कष्टों को सहन करते–करते व लोगों व सास के ताने उलाहने सुन सुन कर आखिरकार वह संवेदना शून्य होकर अपने हाथ की छठी ऊँगली को नस्तर से काट अपना भाग्य बदल डालती हैं।

"अल्मा कबूतरी" के उप नायक मंसाराम, कबूतरी कदमबाई के प्रेम मे पड़कर अपनी पत्नी आनंदी का परित्याग कर देते हैं। चूंकि आनंदी ने ताउम्र मंसाराम की आदर्श पत्नी का धर्म निभाया था, अतः वह इस बात को सहन नहीं कर पाती और विभिन्न तरीके से मंसाराम और उसकी प्रेमिका को सता उनसे बदला लिया करती हैं। किन्तु कभी कभी संवेदनशील हो भावना में बह वह उनके कुशल मंगल की कामना करती और अपने आप को ही दोषी मानती और अंततः अपने ऊपर मिट्टी का तेल डाल आग लगा लेती–पति का सम्पूर्ण प्यार पाने के लिए।

"विजन" उपन्यास की डॉ0 आभा के पति मुकुल अपने अहम, सामाजिक मर्यादाओं, घर परिवार के तानों और आभा की बड़े डाक्टर बनने की महात्वकांक्षा के चलते उसका त्याग कर देते हैं। आभा बैचेन–

---

[121] झूलानट मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 57

हालत यहाँ तक आ जाती कि सोचती, वापस चली जाए, खुद ही पहुँच जाए।

..मगर मुकुल का अहंकार न टूटा तो?'' फिर से अपना ईगो जाग पड़ता। ईगो, अहंकार, अहं......आभा के वजूद पर छाए हुए शब्द............कि दोहरा तनाव......अपना भी, मुकुल का भी। पुरूष से घृणा सी होने लगी। आदि शक्ति स्त्री है, इसकी जननी, इसकी माता, इसकी पालनहार........यह एक कायर कमजोर डरपोक कीड़ा......आभा का दिमाग बजबजा जाता।

वह करवट लेती, आगे पलंग पर सूना तकिया.......मुकुल की छवि पीछा नहीं छोड़ती उनसे जुड़े अदृश्य रेशे खिंचते, वह दुखद आश्चर्य में डूब जाती। सब कुछ टूटने के बाद कितना कुछ बच जाता है कि संभाले नहीं संभलता। वे सम्बन्ध, वे प्यार के तन्तु जुड़ते ही क्यों हैं, जिन्हें टूटना होता है। लकड़ी लोहा आदमी से अच्छा टूटता है तो टूटता है, जुड़ता तो जुड़ता है। उखड़कर अटका हुआ नहीं रह जाता।........आदमी ही सबसे ज्यादा दुर्भाग्य ढोने वाला जीव है, नाखून भी आधा टूटा रह जाए तो कितना दुख पाता है।

मुकुल क्या यही, ऐसा ही सोचते होंगे? नहीं, पुरूष मन स्त्री के मन से अलग बनावट का होता है। अपने आप सम्बन्ध काट लिया तो खोज खबर तक नहीं, कोई दूसरा प्रगाढ़ता बढ़ाता, (या स्वयं आभा दी किसी के प्रति आकर्षित हो मुकुल का परित्याग करती) मुकुल से आभा नाम की स्त्री को दूर ले जाना लगता तो वे उसका खून कर देते, अपनी स्त्री वापस लेकर मानते। कैसा विरोधाभाव है, कैसा अन्तर्विरोध...... आभा पागल हो चली।

''टेप'' चालू कर एक ही गाना दिन रात सुनती–

''वो मोड़ अब तक यों ही पड़े है, हम अपने पावों में जाने कितने भंवर लपेटे वहीं खड़े हैं......''

धड़कन भयानक रूप से बढ़ जाती। मुकुल से एकदम छिटक आई थी, लेकिन वह चेहरा, वह शरीर, वह वजूद, सोते जागते, हरदम आठो याम साथ चिपका रहता। अजीब अवस्था है यह भी, जिसको छोड़ा, जिसने छोड़ा, उसी के साथ रहो, सोओ और उसी के ख्यालों का पछतावा करों।''[122]

---

[122] विजन – मैत्रेयी पुष्पा – 112–113

इस प्रकार मैत्रेयी जी ने डॉ0 आभा के माध्यम से प्रत्येक परित्यक्ता नारी के मन की मनोभावनाओं व संवेदनाओं का सफल चित्रण किया है।

इसी प्रकार मैत्रेयी जी के नवीनतम उपन्यास ''कही ईसुरी फाग'' में शोध छाया ऋतु के पिता भी उसकी माँ पर चरित्रहीनता का आरोप लगाकर उसे घर से निकाल देते हैं, माँ बेटी को बताती है–

किस्सा यों था कि विमलेश (माँ) नाम की लड़की जब इण्टर में पढ़ती थी तो एम0एम0 में पढ़ने वाले विकल उनसे प्रेम करने लगे। उनके द्वारा प्रेम में पढ़ी कवितायें विमलेश की नींद उड़ाने लगी और वे विकल के प्रेम में पागल हो उठी। जल्द ही माँ बाप को इस प्रेम की भनक लगी और उसका विवाह भारी दहेज देकर एक अन्य युवक से कर दिया, पर क्या पता था कि मामूली लड़के को गैरमामूली चीजें दोगे तो बात अपने आप जाहिर हो जायेगी। बाहर वालों की आंखे फटने लगीं और नाते–रिश्तेदारों के पेट में शंकाओं के सांप लहराने लगे।

ऊपर से विदा का नजारा भी गड़बड़ हो गया। हम कभी तुलसी के विरवे से लिपटें तो कभी उस नीम के पेड़ को बांहों में भरे, जहाँ विकल मिलते थे। सब तरह से ससुराल से विद्रोह करें। मुंह से एकाध–बार विकल विकल निकल गया, क्योंकि हम तो उसी के बिछोह में रो रहे थे।

एक बार अपने रास्ते पड़ जाओ तो फिर लोगों का बताया रास्ता मिलता नहीं। ऐसे ही ब्याह के बाद पिछले लगाव टूटते नहीं, दूरियां उन्हें ज्यादा बजबूत कर देती हैं सब जानते हैं कि बेटी ब्याह के बाद मायके को कितना चाहने लगती है। भाई–बहनों के लिए तड़पती है। विकल तो फिर.........

और फिर वही........निकले जाने के बाद विमलेश नाम की लड़की प्रेम के पीछे–पीछे उस जंगल में पहुंच गई, जहाँ खो जाने पर समाज का रास्ता नहीं मिलता क्योंकि बदचलनी का सबूत उसके शरीर पर टंगा होता है। ऐसे में माता–पिता भी शरण नहीं देते।

ऐसे में उसकी संवेदना को समझ आसरा दिया उसकी विधवा मौसी ने यह कहकर–विमला मेरे पास रह। यहाँ पति और बेटा जैसे मर्दो की मालिकी नहीं। नाक–मोंछ की मर्यादा के झमेले नहीं।''[123]

इसी प्रकार मैत्रेयी पुष्पा जी ने अपनी कहानियों में भी परित्यक्ता नारी की संवेदना का बड़ा ही सफल चित्रण प्रस्तुत किया है जिसका सबसे बड़ा उदाहरण उनकी प्रसिद्ध कहानी ललमनियां है जिसकी नायिका मौहरो का पति उसे त्याग जाता है। वह ललमनियां नृत्य कर बजर गुसर करती है। एक शादी में नृत्य करते समय अपने पति को दूल्हा बना देख उसकी संवेदना जार–जार हो उठती है और वह एक आदिम नृत्य करती है।

कहानी ''केतकी'' में भी केतकी के पति श्रीकान्त दूर रहकर गुरूकुल में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, जिसका लाभ उठाकर उनके पिता के परम मित्र गन्धर्व सिंह ही केतकी का बलात्कार करते हैं। चहुँ ओर से असहाय व प्रताड़ित केतकी पति के आने का इन्तजार करती है और जब पति आता है तो सब परिस्थितियों को जानकर भी निर्दोष केतकी को अपनाने से इंकार कर उसे त्याग वापिस चला जाता है।

सदियों से पति रूपी पुरूष निर्दोष पत्नियों का त्यागकर अपना मनमाना संसार रचते हैं और पीछे छोड़ जाते हैं उस लाचार और मजबूर पत्नी को, समाज व घर परिवार के लोगों को ताने उलाहने सुनने के लिए। और यहीं से शुरू होती है उनकी मार्मिक संवेदना व कभी न खत्म होने वाले कष्टों का प्रारम्भ।

किन्तु मैत्रेयी पुष्पा जी की परित्यक्ता नायिकायें बैठ आँसू नहीं बहातीं, वरन् अपनी विशद स्थिति से जूझने का प्रयत्न करती है और अपने आत्म विश्वास, लगन, धैर्य, सहनशीलता व कर्म के बल पर समाज की परित्यक्ता स्त्रियों को आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा भी देती हैं।

११. सखी रूप में नारी संवेदना

यह नारी का वह रूप है जो भारतीय समाज में विशिष्ट स्थान प्राप्त किये है। सखी का तात्पर्य वह रूप, जिससे एक नारी अपने मन की सम्पूर्ण व्यथा, कथा आसानी

[123] कही ईसुरी फाग – मैत्रेयी पुष्पा पृष्ठ 174–175

से कह सुन सकती है। यह बेहद करीबी रिश्ता होता है और इसमें किसी प्रकार का बंधन नहीं होता। सखियाँ आपस में अपने सुख दुःख कह असीम संतोष का अनुभव करती हैं।

"बेतवा बहती रही" की उर्वशी और मीरा' अभिन्न सखी। एक साथ घर घर खेली थीं दोनों, गुड़िया का ब्याह रचाया था। आपस में अतरंग बातें एक दूसरे के कान में फुसफुसायी थीं। साथ–साथ डोलतीं, बतियातीं और खिल–खिल हँसती – सरसों के फूलों की तरह।

उसके और उर्वशी के घर के बीच में एक दीवार का फासला था। यदि वह दीवार तोड़ दी जाती या बरसात में गिर जाती तो दोनों घर एक हो जाते। उर्वशी और उसके लिए सुभीता हो जाता।

वह जिद करती – "नाना, तोड़ दो न यह दीवार।"

नाना हँसने लगते – "तुड़वा डारेंगे बिटिया, अब की बरखा में भीगके नरम हो जायेगी, सोई तुड़वा डरायेंगे।"

तब वह छोटी थी, ऐसी ही जिद–हठ कर बैठती और नाना उसे बड़ी आसानी से बहका भी देते।"[124]

लेकिन जब वे आपस में सुख दुख बांटते, हँसी ठिठोली करती बड़ी हुई, तो मीरा को पढ़ने झाँसी जाना पड़ा और उर्वशी की शादी सर्वदमन से तय हो गयी। मीरा जाने लगी तो उर्वशी अपनी अभिन्न सखी से बिछड़ने पर जार–जार रो उठी–

"ओहो, रो रही हो, मेरे जाने की बात है या कुछ और? सुन, ये कबूतर हैं न, बड़े दरवाजे में, इनके पांव में चिट्ठी बांध दिया करना। सीधे सर्वदमन के पास पहुंचा देंगे। तेरा मन लगा रहेंगा।

"हट्ट।" वह गीली आँखो ही मुस्करा दी।

"अब चलूँ, हुक्म हो तो।" उसने पूछा तो उर्वशी ने उसके कान के पास मुँह ले जाकर फुसफुसाया– "ब्याह में आओगी न"

---

[124] बेतवा बहती रहीं – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 13

"क्यों, न आऊँ? "

"समझ लियो, तुम नहीं आओगी तो मैं ब्याह नहीं......."

"अरे वाहा! तू तो मेरी पक्की सखी हे। मत करना ब्याह। सर्वदमन को कुँआरे ही रहने दो।"[125]

ऐसी ही हंसी ठिठोली कर वे एक दूसरे की वेदना बांटा करतीं और जब उर्वशी के विवाह के कुछ महीनों बाद ही सर्वदमन की मृत्यु हो गयी तो, दोनों स्तब्ध रह गयीं–

"कैसी सान्त्वना.....? कैसा संतोष.......? कलेजे में घर करती हुई हूक उठती थी। एक दूसरे के कंधे पर टिकी दोनो.......।"[126]

और उसके बाद स्वार्थी और लालची भाई अजीत द्वारा बहन उर्वशी का विवाह उसी की अभिन्न सखी मीरा के पिता से जबरन करा दिया जाता है। जब उर्वशी ससुराल आती है, तो मीरा उसे अपनी माँ के रूप में देख सन्न रह जाती है–

"उर्वशी, तुम्हे विधवा देखा था तो कष्ट सहने की क्षमता थी। पर आज....... आज।" इससे अधिक मीरा फिर कुछ न कह सकी।"[127]

और दोनों एक दूसरे की संवेदनाओं में लिपटी फूट–फूट कर रो उठीं। लेकिन जल्द ही उसकी सखी उर्वशी उसके प्यार को छोड़ इस दुनिया से विदा हो गयी और छोड़ गयी मीरा को उस बेतवा के पाट पर, जहाँ कभी दोनों अपनी संवेदनायें बांटते हुये घंटो टहला करतीं थीं।

"इदन्नमम" की मंदा और सुगना भी सखी हैं और हर जरूरत में एक दूसरे का साथ देती हैं। जब मंदा दुखी हो जाती तो सुगना बेचैन हो उठती और बऊ से कहती है–

"बऊ, स्कूल में मास्साब भी कह रहे थे कि अब मन्दा पहली तरह मन से कीर्तन नहीं गाती। पहली जैसी उमंग नहीं है। बैरागिनी सी होती जा रहीं है। हमारे जाने जोगिन बैरागिन न हो जाय। स्कूल में एक मोड़ा ऐसे ही गुमसुम रहता था, साधू होकर

[125] बेतवा बहती रहीं – मैत्रेयी पुष्पा – 37
[126] बेतवा बहती रहीं – मैत्रेयी पुष्पा – 65
[127] बेतवा बहती रहीं – मैत्रेयी पुष्पा – 123

भाग गया।''[128] और जब मंदा के दुखों का निवारण करने महाराज जी आने वाले होते हैं तो–

सुगना मुंह अंधेरे से ही उठकर आ गयी। उसने लकड़ी की चौकी पर आसन बिछा दिया। ठाकुर द्वारे में नयी गंगाजली, कलशे में पानी, केले के पत्ते, आम के पत्ते रख दिये। आरती के बाद प्रसाद बांटा।''[129]

इस प्रकार वह मंदा की वेदना के करीब रह सदैव उसे प्रसन्न और सामान्य बनाये रखने की कोशिश करती। मंदा द्वारा कोई भी कार्य बताये जाने पर सुगना उसे फुर्ती से कर उसकी अभिन्न सखी होने का परिचय देती।

उपन्सास ''विजन'' की डॉ0 आभा और डॉ0 नेहा क्रमशः सीनियर और जूनियर रेजीडेंस की डाक्टर होने के पश्चात भी आपस में प्रिय मित्र थीं। वे अपनी समस्त समस्यायें, सुख–दुख, आपस में ''शेयर'' किया करती थीं। दोनों की संवेदनायें लगभग एक सी थी। स्त्री जीवन की समस्याओं से दोनो रूबरू हैं और आभा दी, जो कि नेहा से बड़ी व शादी शुदा है, शादी के बाद के जीवन में आने वाली कठिनाइयों के प्रति नेहा को सचेत करती रहती हैं –

''नेहा, शादी? इतनी जल्दी?''

''तुम जानती हो नेहा, जो लड़का अभी तुम्हें अपनी ओर आकर्षित कर रहा है, कल उसी झटके से अलग कर देगा, क्योंकि उसके अट्रैक्शन को खिंचाव को उसका कुटुम्ब सह नहीं पाएगा और उस परिवार का बेटा आगे भूले हुए कर्त्तव्य याद करके घरवालों को सुखी बनाना अपना एक मात्र लक्ष्य बना लेगा। शादी के बाद लड़की माँ–बाप से अलग हो जाती है, मगर लड़का उसी अनुपात से पास आता जाता है। कैसा अचम्भा है। मगर यह अचम्भा बर्दाश्त करने लायक नहीं, मुश्किल तो यहीं होती है।''

''लोग बेटा पैदा होते ही एक काल्पनिक बहू की तस्वीर रच लेते हैं। उसके आने के क्षण की तमन्ना में खुशियां संजोते रहते हैं।........लेकिन जब वह दिन आता है तो दूसरा मोर्चा खोल देते हैं। ''बहू'' से लड़के को बचाओ' 'अभियान जोरो' से चलने

[128] इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 176
[129] इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 179

लगता है। ब्याह क्या होता है, सास ससुर के लिए बहू चुनौती बनकर आ जाती है। सारी जिंदगी कड़वी कड़वी......''

नेहा स्तब्ध रह गई।

आभा दी आगे बढ़ आई और उसके कंधों पर दोनों हथेलियां टिकाकर बोली, ''नेहा डार्लिंग, लड़की बड़ी मामूली चीज होती है फिर भी लोग उससे इतना डरते हैं। क्यों डरतें हैं?''

नेहा मन ही मन एक ही मंत्र का जाप करती रही मैं शादी नहीं करूँगी, मैं शादी हरगिज नहीं करूँगी.......जाप करते करते रो पड़ी वह। रूलाई पर शर्म भी आई लेकिन आँसू थमें तब न? ब्याह करने की क्या जरूरत है आभा दी? डाक्टर बनकर अपना खर्च नहीं कमा सकते हम? कौन सी पढ़ी लिखी लड़की आजकल आत्मनिर्भर नहीं? हमारी माँएँ नहीं कर पायीं, दुखिया रहीं उनका दुख देखकर ही तो संतान को प्रायश्चित करना होगा।''[130]

इसके बाद भी नेहा के माँ बाप उसकी इस संवेदना को नहीं समझ पाते और नेहा को परिस्थिति वश विवाह करना पड़ता है। तब उसे वैवाहिक जीवन की दुश्चिताओं और दुश्वारियों से रूबरू होना पड़ता है तब वह अपनी प्रिय सखी आभा दी को याद करती और आभा दी ही उसकी अनेक समस्याओं और चिंताओं का निवारण अपने सुलझे और नारी मुखर मस्तिष्क से करती हैं।

आभा दी जहाँ अपनी सखी के लिए अपने प्यार का त्याग करती हैं। वहीं उसे शादी में गिफ्ट के तौर पर एक महत्वपूर्ण सलाह देती हैं –

''डोंट कीप युअर नॉलिज विद मनी (अपनी विद्या को पैसे के साथ मत रखना)

मैत्रेयी पुष्पा के बेहद महत्वपूर्ण आत्मकथात्मक उपन्यास ''कस्तूरी कुंडल बसै'' में कॉलेज जीवन में मैत्रेयी की कुछ अभिन्न सखी थीं। उन्हीं में एक थी राजकुमारी राय। जब मैत्रेयी के मंगेतर डाक्टर मैत्रेयी से मिलने झाँसी आने वाले थे, तो मैत्रेयी उन्हें लेकर परेशान हो उठी कि वह उन्हें कहाँ रोकेंगी, क्योंकि मैत्रेयी बेहद निम्न स्तर के मोहल्ले में रहती थी। उसे उदास देखकर राजकुमारी ने पूछा–

---

[130] विजन – मैत्रेयी पुष्पा – 36–37

''ए.....उदास क्यों है?''

''नहीं तो।''

''छिपाना है तो छिपा ले।''

''छिपाने के लिए क्या है मेरे पास?''

''वही, अलीगढ़ वाला डॉक्टर।''

''हाँ, वह अब आने वाला है।''

''हैंऽऽ......।'' वह खूब जोर से चहकी।

मैत्रेयी ने उदासी से देखा।

''तू रो क्यों रही है, फिर.....''

''कहाँ, रखूँगी उसे?''

''यहाँ, वह दिल पर हाथ रखकर बताती है।

''मजाक सूझ रहा है तुझे, मेरी जान जा रही है''

''यहाँ कहीं फिट नहीं बैठ रहा। लता–बल्लरियों में, हरियाली–भरे खेतों में''

''आगे बोल''

''अच्छा बाबा मेरे घर। यहाँ वैसे भी तेरा पोले बब्बा नंगा बैठा रहता है। कोई कैसे आए जाए?'' वहाँ अम्मा सारा इन्तजाम कर लेंगी तू चिन्ता मत कर।''[131]

इस प्रकार वह मैत्रेयी को दुश्चिंता से उबार उसकी संवेदना की सहभागी बनती है और जब तक डॉक्टर आता है, राजकुमार उससे बिछड़ चुकी थी। मैत्रेयी उसे याद कर तड़प उठती हैं–और डॉ0 से कहती है –

काश, आज राजकुमारी होती।

दुख सुख की साथिन, सखी तुम्हारे आने के उपलक्ष्य में देहरी पर रंगोली रचाती।

मेरी सखी मुझे सात पर्दों में छिपाकर रखती। राजकुमारी तुम्हे और मुझे एक दूसरे को देखने के लिए तरसा देती कि पास पास रहते हुए हम उझका–उझकी, ताका–झांकी पर उतर आते। तमन्ना लहरों सी उमड़ती, अरमान झोकों की तरह आते और वह तड़पाने का आनन्द लेती हुई दुष्ट हंसी हंसती जाती।

---

[131] कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा – 162–63

मेरी सखी बिछुड गई डॉक्टर........क्यों बिछुड़ गयी, मिलोगे तब बताऊँगी।"[132]

दूसरी मैत्रेयी की अभिन्न सखी थी – शकुन । उससे जब मैत्रेयी ने कमरे की मांग की, तो उसने हर सम्भव कोशिश की साथ ही अपनी मजबूरी भी बतायी कि–

और फिर शकुन ने जो सच्चाई मैत्रेयी को उस कमरे की बतायी, तो मैत्रेयी की संवेदना जार–जार हो गयी। और फिर दोनों सखियां गले लगकर खूब रोयी।

लेकिन यह असलियत कि शकुन भी उन्हीं औरतों में से एक है, बता वह दूसरे दिन ही शकुन कमरा छोड़ न जाने कहाँ चली गयी हमेशा के लिए और पीछे छोड़ गयी वह पति का घिनौना संसार व अपनी प्रिय सखी मैत्रेयी को। चाह कर भी मैत्रेयी अपनी मित्र की संवेदना की सहभागी न बन सकी।

कहानी "बेटी" की मुन्नी और वसुधा भी अन्तरंग सखियाँ हैं और एक दूसरे से बेहद प्रेम करती हैं। चूंकि वसुधा इकलौती पुत्री होने के कारण अपने माँ बाप की लाड़ली है और पढ़ने जाती है वहीं मुन्नी के माँ–बाप पांच–पांच लड़को को तो पढ़ा सकते है पर मुन्नी को नहीं। मुन्नी की पढ़ाई के प्रति बेहद रूचि जान वसुधा उसकी माँ से इस विषय में बात करती है।

"चाची, मुन्नी को स्कूल भेज दो न।"

"अरी बिटिया क्या कहती हो। वह लड़की जात, कहाँ जाएगी और क्या करेंगी पढ़ लिखकर। तुम्हारी बात और है वसुधा, अकेली औलाद, बेटा–बेटी तुम्ही हो अपनी माँ की, सो जिंदगी भर पढ़ो तो कोई कुछ कहने वाला नहीं, बाप न भइया।"[133]

यह सुन वसुधा निरूत्तर हो जाती है किन्तु वह मुन्नी की वेदना समझती है पर मुन्नी बेहद गुणी होने के कारण जल्द ही ब्याह कर चली जाती है किन्तु जब वह गांव वापस आती है तो सबसे पहले वसुधा ही उससे दौड़ कर मिलती और उसके हालचाल पूंछती है।

इस प्रकार हम देखते हैं मैत्रेयी जी ने सखी रूप में नारी की उत्कृष्ट संवेदना व्यक्ति की है और वे इसमें सफल भी रही हैं।

---

[132] कस्तुरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा – 173, 74, 199
[133] कहानी "बेटी" – मैत्रेयी पुष्पा – 20

इस तरह मैत्रेयी पुष्पा जी ने अपने साहित्य में नारी की विभिन्न स्थितियों परिस्थितियों व रूपों का सूक्ष्म अन्वेषण किया है। मैत्रेयी जी ने क्रमशः नारी को मिलने वाले स्नेह उपेक्षा के चक्र को सजीवता से उद्‌घाटित किया है। मैत्रेयी जी ने समाज को यह सोचने पर विवश किया है कि नारी को झूठे और खोखले सम्मान के भ्रम में कभी लाड़ली तो कभी अर्द्धांगिनी तो कभी पूज्या कहकर भ्रमित किया गया है। किन्तु वास्तव में उसका प्रयोग सदैव भोग्या, अनुचरी और स्वार्थ के लिए किया गया है। नारी संवेदना की कारूणिक झलक मैत्रेयी जी के सम्पूर्ण कृतित्व में विद्यमान है। उन्होंने नारी की अत्यधिक व्यथा–कथा को इस तरह प्रस्तुत किया है कि पाषाण हृदय मनुष्यों के भी नेत्र सजल हो उठते हैं।

षष्ठम् अध्याय

1. (अ) मैत्रेयी पुष्पा का अन्य महिला उपन्यासकारों से तुलनात्मक अध्ययन
   (ब) मैत्रेयी पुष्पा का पुरूष उपन्यासकारों से तुलनात्मक अध्ययन।

2. (अ) उपन्यास साहित्य में मैत्रेयी पुष्पा का साहित्यिक योगदान
   (ब) मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य की उपादेयता।

(अ) मैत्रेयी पुष्पा का अन्य महिला उपन्यासकारों से तुलनात्मक अध्ययन

जीवन के विविध क्षेत्रों की भांति साहित्यिक क्षेत्र में भी नारी का महत्वपूर्ण स्थान है। कथा लेखन के क्षेत्र में महिलाओं की संख्या दिनानुदिन बढ़ती जा रही है। विकास की परम्पराओं को विकासक्रम की विविध अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। जो देश और समाज आज विकास के सर्वोच्च शिखर पर हैं, वे कभी विकास की पहली सीढ़ी पर खड़े रहे होगें। लोकतन्त्र की स्थापना के साथ ही वास्तविक जनतन्त्र कल्याणकारी राज्य की कल्पना की जाने लगी, समाज के सर्वांगीण विकास के सपने देखे जाने लगे। नारी समकालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में अपनी दूसरे दर्जे की नागरिकता से परिचित हो चुकी है। अपने शोषण और उत्पीड़न की परिस्थितियों के प्रति उसमें जागरूक संवेदनायें जागृत हुई हैं। नारी उपन्यासकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से अपनी कृतियों में अस्तित्व चेतस नारी की सोच और संवेदना को रेखांकित किया है।

उषा देवी मित्रा के पूर्व के उपन्यासों में नारी के परिवेश, मानसिकता, अन्तर्द्वन्द्व, आहलाद, सोच और संवेदना उसके बहिरंग और अन्तरंग का चित्रांकन, पुरूष उपन्यासकारों द्वारा होता था। अब नारी भी उपन्यास विद्या के माध्यम से जीवन से सम्बन्धित विविध क्षेत्रों के परिप्रेक्ष्य अपने उपन्यास की कथा वस्तु में अनुस्यूत वातावरण, पात्र तथा परिस्थितियों के संदर्भ में करने लगी। जीवन और जगत से सम्बन्धित प्रत्येक घटना, विचार, वस्तु और भाव इन नारी उपन्यासकारों का कथ्य हैं। पुरूष उपन्यासकारों की तुलना में नारी उपन्यासकार नारी जीवन से सम्बन्धित मर्मस्पर्शी बिन्दुओं को पहचानने और महत्व देने में स्वाभाविक रूप से ज्यादा सफल हुई हैं। समाज में नारी के व्यापक तथा बहुआयामी धरातल को दृष्टिपथ पर रखते हुये समकालीन परिस्थितियों से उपजे तथा परम्परा से पोषित बहुत सारे सवाल हैं, जिनका ईमानदार उत्तर पुरूष उपन्यासकारों की तुलना में नारी लेखनी ही ज्यादा बेहतर दे सकती है।

भूमण्डलीकरण से प्रभावित वर्तमान संस्कृति, सर्वत्र विकीर्ण होता वैज्ञानिक आलोक, उपभोक्तावादी, संस्कृति से प्रभावित हो रही संवेदनायें, परिवर्तित तथा परिशोधित हो रहे जीवन मूल्य, परिवर्तित हो रही नैतिकता तथा नारी में विकसित हो रहा अस्मिता बोध, नारी लेखन के माध्यम से नारी उपन्यासकारों में विवक्षित है। नारी

की निजस्विनी दृष्टि से अनुप्राणित होकर ये तत्व भोगे हुये यथार्थ की प्रभविष्णुता के कारण पाठक की चेतना की गहराइयों में प्रविष्ट हो जाते हैं। नारी की अंतः सत्ता की संवेदना से प्रादुर्भूत अनन्त मार्मिक अनुभूतियाँ चेतना को सराबोर कर देती हैं। जीवन के अनेक नये संदर्भ आविर्भूत हुये हैं। इस उपक्रम में नारी लेखिकाओं द्वारा सहज ही ऐसे बहुत सारे कथ्य तलाशे गये हैं, जिनके विमर्श की प्रक्रिया में नारी चेतना की समस्तता तथा परिवेशगत यथार्थ की अभिव्यक्ति को नारी उपन्यासों में जीवन्त किया जा सकता है। कई बार प्रेम और उसके वैविध्य के सम्बन्ध में महिला उपन्यास लेखिकाओं ने कुछ अनोखे और महत्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन अपनी कृतियों में किया है। यह इन लेखिकाओं का अनुपम प्रदेय है।

समकालीन परिस्थितियों में नारी की जिस परिवर्तित मानसिकता को हम पाते हैं उसी की प्रतिछाया उसकी वैयक्तिक मानसिकता में परिलक्षित होती है। नारी के बहिरंग पक्ष की अपेक्षा उसके अन्तरंग मनोविश्लेषण को विशेष स्तर पर रूपायित करने का श्रेय मृदुला गर्ग, मन्नू भण्डारी, निरूपमा सेवती, सुधा गोयल, कृष्णा सोवती, ममता कालिया, मेहरून्निशा परवेज, शशि प्रभा शास्त्री, क्षमा शर्मा आदि उपन्यासकारों को प्राप्त है। इन लेखिका उपन्यासकारों की कृतियों में नारी का बहिरंग पक्ष यद्यपि पूरी अस्मिता के साथ उपस्थित है, किन्तु इसमें चित्रांकित नारी का अन्तर्जगत इतना प्रत्यक्ष, इतना यथार्थ, इतना जाना–पहचाना तथा विश्वसनीय है कि उसके आगे बहिरंग पक्ष गौण हो जाता है। नारी के मन की एक–एक परत उखाड़ कर इन उपन्यासकारों ने उसके वैयक्तिक पहलू की विविधता को साकार किया है।

महिला उपन्यासकार

१. मृदुला गर्ग

25 अक्टूबर, 1938 में कलकत्ता में जन्मी मृदुला गर्ग समकालीन चर्चित उपन्यासकार हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करके तीन–चार वर्षों तक अध्ययन करने के बाद 1970 ई0 से निरन्तर लेखनकार्य सम्पन्न कर रही हैं। सन् 1971 में "कहानी" मासिक पत्रिका द्वारा उनकी कहानी "कितनी कैदें" पुरस्कृत की गई। "उसके हिस्से की धूप", "वंशज", "चित्तकोबरा", "अनित्य" और "मैं और मैं" उनके प्रकाशित उपन्यास हैं। "कितनी कैदें",

''टुकड़ा–टुकड़ा आदमी'', ''डैफोडिल जल रहे है'', ग्लेशियर से उर्फ सैम उनकी चर्चित प्रकाशित कहानियाँ हैं तथा 'एक और अजनबी' उनका प्रकाशित नाटक है।

अपनी कहानियों तथा उपन्यासों के माध्यम से मृदुला गर्ग समकालीन नारी और उसके परिवेश के विविध आयाम प्रस्तुत करने में अपनी 'बोल्डनेस' के कारण बहस का विषय रही हैं। उनके व्यक्तित्व की परछाइयाँ बहुधा उनके कथा साहित्य के प्रधान नारी चरित्रों पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। ऐसे नारी पात्र न सहानुभूति चाहते हैं, न ही अवांछित रूप से बंटते हैं, उनमें स्वाभिमान कूट–कूट कर भरा है। वे सत्य के एक अंश को लेकर उसे 'ग्लोरीफाई' नहीं करतीं, प्रत्युत उसे सम्पूर्णता में लेती हैं। जीवन में दुराव, छिपाव व घुभाव वे जानती नहीं और अपने लेखन को भी उन्होनें उसी के अनुरूप ढाला है। उनकी जैविक तृष्णाओं की सहज स्पष्ट अभिव्यक्ति भी स्वयं के प्रति बोला गया सच है। एक सूक्ष्म और पारदर्शी वेदना धारा उनके लेखन और व्यक्तित्व में बहती हुई दिखाई पड़ती है। वह कभी हँसी के नीचे झलकती है तो कभी शुद्ध त्रासदी बनकर उभरती है।

1977 में प्रकाशित 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में एक त्रिकोणात्मक प्रेम कहानी को दर्शाया गया है। इसकी नायिका अपना प्रारम्भिक जीवन उद्योगपति जितेन से विवाह कर व्यतीत करती हैं। जितेन के साथ कई वर्षों तक लगातार रहने से वह एकरसता का अनुभव करके स्वयं को बोर महसूस करती है। इसी समय उसके सम्पर्क में अर्थशास्त्र का प्रोफेसर मधुकर आता है। मधुकर की जिन्दादिली से वह इतना प्रभावित होती है कि जितेन से तलाक लेकर मधुकर से पुनर्विवाह कर लेती है। एक बार नैनिताल में उसकी भेंट अपने पूर्व पति जितेन से होती है। मनीषा स्वयं को प्रत्येक वर्जना से मुक्त समझती है और होटल में ठहरे जितेन के कमरे में जाकर यौन तृप्ति करती है। इस उपन्यास की आधारशिला पर छद्म नारी स्वतन्त्रता का मनोवैज्ञानिक दंश मौजूद है। नारी का अवचेतन विद्रोही बनकर पुरूष प्रधान समाज की लक्ष्मण रेखाओं का उल्लंघन करता है। परम्परागत भारतीय समाज में स्त्री पुरूष सम्बन्धों के बीच नारी स्वातन्त्र्य का सवाल सदा ही अनदेखा किया जाता रहा है।

यह मृदुला गर्ग का ही साहस है कि जनवरी 1971 में प्रकाशित 'कहानी' मासिक की प्रथम पुरस्कार प्राप्त कहानी– 'कितनी कैदें' की नायिका स्वयं पर हुये बलात्कार का इतना सहजता और स्पष्टता से उल्लेख कर सकी– "जब तक मैं कुछ समझती वह मुझमें प्रविष्ट कर चुका था।"[1]

मृदुला गर्ग के उपन्यास परम्परागत और आधुनिकता के घिसेपिटे वैचारिक चौखटों से बाहर निकल यह सवाल करते हैं कि आखिर स्त्री–पुरूष सम्बन्धों का आधार क्या है? प्रेम अथवा स्वतन्त्रता? और क्या इन सम्बन्धों का सत्य मनोगत है अथवा इनके समान्तर कोई दैहिक सच्चाई भी है?

२. कृष्णा सोबती

कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यास लेखन में जिस तन्मयता का परिचय दिया है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि उनका एक–एक शब्द, वाक्य हफ्तों के परिश्रम से बना है। उनकी औपन्यासिक यात्रा अपने बहुचर्चित उपन्यास 'डार से बिछुडी' (1958) से आरम्भ हुयी। उनकी यह यात्रा 'मित्रो मरजानी' (1969) व 'सूरजमुखी अंधेरे के' (1972) से गुजरती हुई, 'यारों के यार' (1976) तथा 'तिन पहाड़' (1976) में लगभग समाप्त हो जाती है।

कृष्णा सोवती की इस औपन्यासिक यात्रा से गुजरते हुये ऐसा लगता है कि उन्होनें अलग–अलग समय में अलग–अलग रचनायें नहीं की, बल्कि एक ही रचना के विभिन्न अध्याय लिखे है। स्थान, काल, परिवेश और नाम बदलकर उनकी रचना धर्मिता मानों एक ही कथ्य को विविध उपक्रमों से अभिव्यक्ति देने के लिये छटपटा रही हो। अपने जीवन को उलझाते–सुलझाते, बढ़ते–बोलते उनके पात्रों के लिये सामाजिक मान्यतायें, श्लील–अश्लील, नैतिक–अनैतिक, कहीं कुछ रह ही नहीं गया। उनके पात्रों को न जीविका की चिन्ता है, न समय की, न ही समाज की।

विभिन्न परिस्थितियों में नारी के विविध शोषण और उत्पीड़न की अभिव्यक्ति उनके उपन्यासों का प्रमुख कथ्य है। कृष्णा सोबती समकालीन उपन्यास लेखिकाओं में एक अलग स्थान इसलिये रखती है, क्योंकि सर्वप्रथम कृष्णा सोबती ही ने अपने

---

[1] मृदुला गर्ग – 'कहानी' मासिक पत्रिका, जनवरी 1971 में प्रकाशित कहानी– कितनी कैदें – पृष्ठ 6 से उद्धृत

चर्चित उपन्यास 'यारों के यार' में खुल कर मर्दाना गालियों का प्रयोग कर सम्पूर्ण उपन्यास संसार को चकित कर दिया था।

कृष्णा सोबती की नायिकायें कहीं–कहीं बदलती, परिस्थितियों से समायोजन की तथा परिवर्तित मूल्यों को स्वीकार कर सकने की सामर्थ्य रखती हैं। अनेकानेक संदिग्ध परिस्थितियों से गुजरते हुये उनके नारी पात्र प्रत्युत अनेक मानसिक तथा शारीरिक प्रताड़नायें झेलते हैं। जब वे मानसिक द्वन्द्व से उबरने के लिये एक स्थान छोड़कर दूसरे स्थान पर जमना चाहती हैं, वहीं उनकी 'देह' कामुक पुरूषों की दृष्टि में आ जाती है। लाख सावधानी के बावजूद उनका यौन शोषण होता है।

उनके उपन्यासों में नारी जीवन की दर्दनाक अनूभूतियों को अति जीवत्ता से प्रस्तुत किया गया है। दर्द–दर–दर्द मंजर पार करती हुयी उनकी नायिकायें जब अपने मुकाम पर पहुँचती हैं तो उनके पास शेष क्या बचता होगा, इसकी सहज कल्पना की जा सकती है।

परम्परा से जकड़ी हुयी नायिकाओं की विविध शारीरिक और मानसिक यन्त्रणाओं की सजीव प्रस्तुति उनके उपन्यासों का कथ्य है।

३. उषा प्रियम्बदा

हिन्दी साहित्य जगत की विशिष्ट उपन्यासकार उषा प्रियम्बदा ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। तीन साल दिल्ली लेडी श्रीराम कॉलेज और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापन के बाद फुल ब्राइट स्कॉलरशिप पर अमेरिका प्रस्थान किया, जहाँ ब्लूमिंगटन, इण्डियाना, में दो वर्ष पोस्ट डॉक्टरेल स्टडी की। आजकल वे विस्कांसिन विश्वविद्यालय मैडीसन में दक्षिण एशियाई विभाग में प्रोफेसर हैं।

"उषा प्रियम्बदा के कथा साहित्य में शहरी परिवारों के बड़े ही अनुभूति प्रवण चित्र है और उनका यथार्थ परक चित्रण भी किया है। आधुनिक जीवन की उदासी, अकेलेपन ऊब आदि का अंकन करने में उन्होंने अत्यन्त गहरे यथार्थ बोध का परिचय दिया है। उन्होंने आज के नारी जीवन की विसंगतियों को सोचा समझा है और अपनी कृतियों में उन्हें आत्मसात किया है। परिवर्तित संदर्भों, नई परिस्थितियों

तथा उलझनपूर्ण मनः स्थितियों में नारी के फिट होने की प्रवृत्ति और आधुनिकता तथा भारतीय संस्कारों के मध्य सूक्ष्म द्वन्द्व को उन्होंने सफलतापूर्वक चित्रित किया है।''[2]

यद्यपि उषा जी अस्तित्ववादी जीवन दर्शन से पूर्ण प्रभावित है जिसके फलस्वरूप उसके पात्रों में अनास्था, भय और संत्रास बना रहता है, पात्रों में परिस्थितियों से उबरने का साहस भी नहीं हैं, फिर भी नारी की दुविधा और उसकी छटपटाहट का ऐसा सफल चित्रांकन अत्यन्त विरल है।

''पचपन खम्भे–लाल दीवारें'' 1979 में प्रकाशित उनका प्रख्यात उपन्यास है, इसकी कथावस्तु पर टी.वी. धारावाहिक भी बनाया जा चुका है। जिसमें एक शिक्षित नारी की परिवेशगत विसंगतियों, मनस्तापों, कुण्ठाओं और दायित्वों में झिलमिलाते रागात्मक परिबोध का चित्रण किया गया है। जिसकी नायिका सुषमा अन्तर्द्वन्द्व में जीती हुयी अपनी इच्छाओं और तृषणाओं की अंततः तिलांजलि दे देती है।

1967 में प्रकाशित उषा जी का उपन्यास 'रूकोगी नहीं राधिका' अपने कथ्य के माध्यम से एक ऐसी स्त्री के अन्तरंग और बहिरंग संदर्भों को प्रस्तुत करता है, जो अपने आप में उलझी हुई है और अपनी खोज में अपने ही अन्दर पैठ कर यात्रा कर रही है। विदेश में जाकर अपने परिवेश के प्रति व्यग्रता और उस परिवेश में लौटकर उससे मोहभंग के कारण आखिर उसी के भावात्मक लगावों में अन्तर्निहित है। उपन्यास की नायिका राधिका ने अपने घर, भारत में जो अकेलापन झेला है, अमेरिका पहुँचकर उसकी भयावहता और सघन हो उठती है। वह स्वयं को एक सांस्कृतिक शून्य में पाती है। नये बने सम्बन्धों की रसमयता के बावजूद उसका अजनबीपन बढ़ता जाता है। वह लौटना चाहती है अपने घर–परिवार, अपने देश, अपने पिता के पास, जिनसे उसे गहरा अनुराग है। वह लौटती भी है– लेकिन अंशतः उसका व्यक्तित्व विभाजित हो चुका होता है।

'जिंदगी और गुलाब के फूल', 'एक कोई दूसरा', मेरी प्रिय कहानियाँ, इनकी प्रख्यात कहानियाँ है। 'मीराबाई', 'सूरदास' उनकी अंग्रेजी में लिखित कृतियाँ हैं, उन्होंने अपनी हिन्दी कहानियों को स्वयं अंग्रेजी में अनुदित किया है।

---

[2] हिन्दी उपन्यास की उपलब्धियाँ – वार्ष्णेय – पृष्ठ 124

४. मन्नू भण्डारी

हिन्दी के क्षेत्र में मन्नू भण्डारी का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म 3 अप्रैल 1931 में मध्य प्रदेश के भानपुरा में हुआ था। हिन्दी पारिभाषिक कोर्स के आदि निर्माता श्री सुख सम्पत राय भण्डारी की सबसे छोटी पुत्री मन्नू भण्डारी को लेखन संस्कार पैतृक रूप में प्राप्त हुआ था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उन्होंने स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। कहानीकार तथा समीक्षक राजेन्द्र यादव से विवाह के उपरान्त उनको पूर्णरूप से साहित्यिक वातावरण प्राप्त हो गया।

साहित्य की कथा विधाओं– "कहानी, उपन्यास, नाटक तथा बाल साहित्य में इनका सृजनशील स्तर को छू गया। मन्नू भण्डारी का लेखकीय व्यक्तित्व किसी विधा में सिमटने, सिकुड़ने, गहराने के स्थान पर विस्तृत, व्यापक होता गया, उसके आयाम खुलते जा रहे हैं।"[3]

1950 ई0 के आसपास इनके लेखन का आरम्भ माना जाता है। किन्तु 1957 में इनका प्रथम कहानी संग्रह– 'मैं हार गयी' प्रकाशित हुआ। यहीं से कहानी संसार में इनका उदय माना जाता है। अविस्मरणीय कथा, अनुभव और गहरी दृष्टि के कारण उनकी कहानियाँ न केवल बार–बार पढ़ी जाती हैं, बल्कि इन विशेषताओं के फलस्वरूप फिल्माई भी जा रही है। 'यही सच है' पर बनी 'रजनीगंधा' तथा त्रिशंकु पर बनी 'जीना यहाँ' इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं।

'महाभोज', 'आपका बंटी' तथा 'स्वामी' इनके प्रख्यात उपन्यास हैं। 1979 में प्रकाशित 'महाभोज' उपन्यास समकालीन राजनीतिक परिवेश का विद्रूप चित्रण प्रस्तुत करता है। गरीब खेतिहर मजदूर और गाँव की निवासिनी अधिकांश जनता के निर्मम शोषण पर तुले राजनीति के दोगले अगुओं, उनके पिठ्ठुओं और चमचों का यथातथ्य चित्रांकन हुआ है। गरीबों के लिये झूठे आंसू बहाने में निपुण मगरमच्छनुमा नेताओं द्वारा लगाये खोखले नारों के पीछे के कुत्सित षडयंत्रों और दमघोंटू स्थितियों का चित्रण कृति का मुख्य कथ्य है।

---

[3] त्रिशंकु – मन्नू भण्डारी (मन्नू जी के तमाम रंग) कवि अजीत सिंह से मन्नू मण्डारी की एक अन्तरंग बातचीत – पृष्ठ 11

1979 में प्रकाशित 'आपका बंटी' उपन्यास में भारतीय परिवेश में बंधी नारी और उसकी पारिवारिक स्थितियों से प्रभावित बच्चों की मनः स्थितियों का चित्रण है। शकुन और उसके पति अजय के बीच नर और नारी के अहम का अहं है। शकुन और अजय का बेटा बंटी इस समकालीन महानगरीय समस्या का संताप झेलने को विवश है। इस उपन्यास का लेखन एक नारी के द्वारा होने के कारण नारी की पीड़ा का अंकन सहजता से हो सका है। यह आन्तरिक पीड़ा जीवन के बदलते संदर्भों के साथ सामंजस्य स्थापित करने की अकुलाहट को लेकर है।

राजेन्द्र यादव के साथ इनका "एक इंच मुस्कान" उपन्यास भी विशेष चर्चित रहा है। वस्तुतः इन कृतियों के पार्श्व में– "रूढ़ि–विद्रोही कथानकों, भाव धरातलों का चयन, स्वानुभूति की प्रामाणिक सहजता आदि मन्नू भण्डारी की विशेषतायें ही मुख्य रूप से कार्यरत रही हैं। तात्पर्य यह है कि नारी अस्तित्व के पारिवारिक और सामाजिक पक्ष के प्रति मन्नू जी पूर्ण सजग हैं।"[4]

उनके उपन्यासों का कथ्य अनेकार्थी गहराई और जिन्दगी के विविध क्षेत्रों को समेट सकने की संवेदना उन्हें अपने में ही डूबे या फार्मूलाबद्ध नारी लेखिकाओं की टीम से अलग और अकेला होने का गौरव देते हैं।

७. ममता कालिया

2 नवम्बर 1940 को वृन्दावन में जन्मी ममता कालिया की शिक्षा क्रमशः दिल्ली, मुम्बई, नागपुर, इन्दौर तथा पुणे में हुई थी। आप पिछले 25 वर्षों से एक डिग्री कॉलेज में प्राचार्या हैं।

ममता कालिया का लेखन विशेष रूप से भारतीय नारी के परिवेश के इर्द–गिर्द घूमता है। वे नारी की घुटती मानसिकता से कुछ प्रश्नों को उठाती है एवं तथ्यों का पोस्टमार्टम सा करती हुई, उनकी यथार्थता को बीन–बीनकर रखती जाती हैं। आज के समाज के मानव में कुंवारेपन की धारणा अथवा पति–पत्नी की विभिन्न दिशाओं के चलने के कारण गृहस्थजीवन की अवधारणा ऐसे ही जीवन्त तथ्य हैं, जो ममता कालिया की कथाओं को गति देते हैं। अब तक प्रकाशित ममता कालिया के दोनों

[4] नये कहानीकार – राजेन्द्र यादव (सम्पादक) प्रमुख स्वर शीर्षक लेख, पृष्ठ 07

उपन्यास 'बेघर' (1971) तथा 'नरक दर नरक' (1975) दोनों ही पति–पत्नी के प्रेम हीन सम्बन्धों पर आधारित है।

1975 में प्रकाशित उपन्यास 'नरक–दर–नरक' का कथ्यात्मक संदर्भ समकालीन परिवेश में मध्यमवर्ग की अनन्त पीड़ाओं तथा टूटन को अभिव्यक्ति देता है। अभावजन्य असंतोष से पढ़े–लिखे पति–पत्नी परस्पर तर्क–वितर्क करते हैं, कोसते हैं, अधिक से अधिक, 'पिन्चिंग' बात करते हैं, असंतोष का खुलासा इजहार करते हैं। निराशा और उत्साही उद्योग के द्वन्द्व से उपन्यास का कथानक भरपूर है।

1971 में प्रकाश्तिा ममता कालिया का 'बेघर' उपन्यास आधुनिकता और संस्कार बद्धता के बीच के तनाव को आधार बनाकर लिखा गया है। उपन्यास की नायिकायें संजीवनी और रमा संस्कारों के दो छोरों को छूती नारियाँ है। इनके अतिरिक्त अन्य नारी पात्रों का संदर्भ भी दिया गया है। ये सभी नारी पात्र अलग–अलग स्थितियों तथा स्वरूपों का प्रतिनिधत्व करते हैं। इसकी नायिका संजीवनी अनेकानेक परिस्थितियों से गुजरने पर भी निराश न होकर पलायनवादी प्रवृत्ति का शिकार नहीं होती। वरन् परिस्थितियों से जूझते हुये उनसे ऊपर उठने में यह निरन्तर प्रयत्नशील भी है और यथार्थ को समझने तथा आत्म स्वीकृति का उसमें साहस है।

इसके अलावा अनेक सम्पादित, अनुवादित पुस्तकें, दो कविता संग्रह अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हैं।

६. श्रीमती गौरापन्त "शिवानी"

शिवानी का जन्म सन् 1923 में राजकोट में हुआ था। गुरूदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर के सान्निध्य में कई वर्ष शान्ति निकेतन में शिक्षा पायी। अतः टैगोर जी के लेखन संस्कार का प्रभाव शिवानी के रचना लेखन में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

शिवानी ने मुख्यतः कथा साहित्य की रचना की और यह सिद्ध कर दिया कि साहित्य, पाठक से कटा हुआ या उसकी पकड़ से बाहर नहीं है, उसे पूरी गरिमा के साथ लोकप्रिय बनाया जा सकता है। उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी कथात्मक प्रवाह और चरित्रों की अंतरंग प्रस्तुति के कारण अत्यन्त सहज और बोधगम्य है।

शिवानी के संस्मरण रेखाचित्र और यात्रा वृतान्त भी कथामय हैं। सम्प्रति शिवानी समकालीन समाज और राजनीति पर भी सशक्त कथात्मक अभिव्यक्ति प्रदान कर रही हैं। शिवानी को उनकी साहित्यिक सेवाओं के लिये भारत सरकार ने पद्मश्री की उपाधि से अलंकृत किया है। शिवानी द्वारा लिखित निम्न उपन्यास हैं–

मायापुरी (1961), कृष्णकली (1969), विषकन्या (1970), श्मशान चम्पा (1972), चौदह फेरे (1972), गेंडा (1974), सुरंगमा (1978), भैरवी (1978), माणिक (1979) तथा कृष्णवेणी (1981) में प्रकाशित हुये।

1969 में प्रकाशित शिवानी के उपन्यास 'कृष्ण कली' में सूक्ष्म संवेदनशीलता के धरातल पर नारी का वास्तविक मन पूरी गहराई से अभिव्यक्त हुआ है। नारी मानसिकता को आन्तरिक तथा वाह्य धरातलों पर चित्रित करना उपन्यास का प्रमुख कथ्य है। अवचेतन की रहस्यात्मकता की थाह पाने की चेष्टा स्पष्ट विवक्षित है। असामान्य तथा अस्वाभाविक परिस्थितियों में जन्मी नारी की मनोदशा व कुदशा का चित्रण लेखिका का मुख्य कथ्य है।

इनके उपन्यास नारी के विविध संघर्षों तथा मानसिक यातनाओं के कथ्य को समेटे हुये हैं।

७. सुधा गोयल

बुलन्द शहर के अनूप शहर तहशील में एक वैश्य परिवार में उत्पन्न सुधा गोयल बचपन से ही परिवेश के प्रति जागरूक थी। लड़की और लड़के के भेद के आधार पर शिशु के पालन–पोषण से लेकर जीवन पर्यन्त स्त्री–पुरूष भेद पर आधारित सामाजिक नियमों के दुहरे मापदण्ड उन्हें सदैव खटकते रहे। नारी पर किसी भी कालखण्ड का अत्याचार उनके भीतर की संवेदनशील नारी अस्मिता को कलम पकड़ने के लिये विवश कर देता है। पौराणिक काल से लेकर समकालीन युग चेतन में अनुस्यूत नारी की तस्वीरों से सुधा गोयल बहुधा छद्म आदर्शों की केंचुल उतार कर यथार्थ का उद्घाटन करती हैं।

सुधा जी ने नारी के दुःख दर्द को, उसकी संवेदना को प्रत्येक रूप में जाना है एवं अपने कथा साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। आपका साहित्य भण्डार अक्षय है। बहुत से उपन्यास एवं कथासंग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

'मृण्मयी' सुधा जी का सर्वप्रथम प्रकाशित उपन्यास है। 1986 में यह उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने वियोग जनित पीड़ा तथा प्रेम की विफलताओं को बताया है– नायिका परिवार व समाज से प्रताड़ित है, जिसे विवाह की प्रथम रात्रि ही घर से बाहर निकाल दिया जाता है।

श्रीमती गोयल अशरीरी प्रेम (Platonic Love) के अस्तित्व को नहीं मानती। आपने मृण्मयी की भूमिका में प्रेम के संदर्भ में अपने विचारों की पुष्टि इस प्रकार की है– "सब कहते हैं प्यार अद्वैत है पर द्वैत की गलियों में विचरण करने वाला प्यार अद्वैत कैसे हो सकता है? दिल की राह तन की गलियों से ही गुजरती है।"[5]

सुधा गोयल के उपन्यासों में यथार्थ का कठोर धरातल ही वर्णित किया गया है। सामान्य जन–जीवन में घटित होने वाली घटनाएँ ही सुधा गोयल के उपन्यासों का आधार रही हैं। वैसे तो सुधा जी का उपन्यास साहित्य विविधता युक्त है, परन्तु ज्ञातव्य है कि सुधा जी की लेखनी नारी के शोषण के विरूद्ध अधिकांशता चली है अतएवं स्पष्ट है कि उनके उपन्यासों में इस विषय को वरीयता दी गयी है।

सुधा जी का सहित्य भण्डार अथाह है। वैसे तो लेखन की कई विधाओं पर अपनी लेखनी सुधा जी ने चलाई है– परन्तु आपके उपन्यासों व कहानियों ने आपको एक महत्वपूर्ण व सम्मानित लेखिका के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

आपके उपन्यासों में रोचकता ने स्थान नहीं छोड़ा है। बड़ी से बड़ी बात को कुछ ही पंक्तियों में सार्थकता प्रदान की है। कई कथा संग्रहों के अतिरिक्त सुधा जी की बहुत सी कहानियाँ देश की प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। यद्यपि उनका कहानी साहित्य व उपन्यास साहित्य का क्षेत्र अति विस्तृत है तथापि जो साहित्य समुपलबध है वह निम्न प्रकार से है–

[5] मृण्मयी – सुधा गोयल

१. उपन्यास -

1. पटाक्षेप – 1987 2. अलाव – 1989
3. भूमिजा – 1989 4. माँ – 2000

२. कहानी संग्रह -

1. वनवासिनी – 1987 2.रूक जाओ माँ – 1991
3. सच तो बस यही है – 2000

३. अन्य कहानियाँ -

बाबू जी, और कुछ, स्नातक की मौत, खाली पिंजरा, दिए का तेल, माटी का मोह, हांसिए, देवदार, शायद, मैं पागल नहीं हूँ, जोगती, एक रात की सुबह, भीगी रात, दिवा स्वप्न, प्रति ध्वनि, खरोंचे, मुक्ति के बाद, रेत के घर, सही इलाज, औरत जात–मर्द जात, कठघरे, मैना ने कही तोता ने सुनी, अर्थी, चुग्ग़ा, मौत के हस्ताक्षर, अमराइयों के बीच आदि।

सुधा गोयल नारी जागरण की पक्षधर रही हैं। अतः उनका उद्देश्य रहा है कि वे अपने उपन्यासों के माध्यम से सुसुप्त नारी वर्ग को उद्वेलित करे। अतः आपने अपने उपन्यासें में भारतीय समाज में बेटी की दीनहीन स्थिति का चित्रण किया है। इस प्रकार सुधा जी ने एकाकी नारी की व्यथा को अपनी लेखनी के माध्यम से हमारे सामने रखा है।

८. मैत्रेयी पुष्पा

30 नवम्बर 1944 को अलीगढ़ जिले के सिकर्रा गाँव में जन्मी मैत्रेयी पुष्पा का आरम्भिक जीवन झाँसी के खिल्ली गाँव में व्यतीत हुआ।

वर्षों से नारी जिस तरह हमारे भारतीय समाज में उपेक्षित और दीन हीन वाली स्थिति में रही है उसी स्थिति–परिस्थिति से परिचय कराते हुये, मैत्रेयी पुष्पा हमारे समक्ष नारी की नवीन छवि को जन्म देती हैं। मैत्रेयी ने नारी जाति से सम्बन्धित समस्त समस्याओं, कुप्रथाओं, रीति रिवाज, कानून, वैधता, अवैधता आदि को अपने

उपन्यासों का आधार बनाया है एक नवीन विचारधारा के साथ, बस यहीं मैत्रेयी जी अन्य उपन्यासकारों से अलग हटकर दिखलायी देती है।

बहुत समय नहीं बीता और आज वे हिन्दी साहित्य–परिदृश्य की एक महत्वपूर्ण उपस्थिति हैं। उन्होंने हिन्दी कथा–धारा को वापस गाँव की ओर मोड़ा और कई अविस्मरणीय चरित्र हमें दिए। इन चरित्रों ने शहरी मध्यवर्ग को उस देश, उस भाषा की याद दिलाई जो धीरे–धीरे शब्द और साहित्य की दुनिया से गायब हो चला था। बीसवीं शताब्दी के अरीब–करीब मैत्रेयी जी का आगमन एक 'विशिष्ट' तरीके से हुआ। अन्य समकालीन स्त्री लेखन से हटकर अपने विशिष्ट लेखन से उन्होंने सबको चकित कर दिया। ऐसा क्या था मैत्रेयी जी के लेखन में, जो साहित्य वर्ग व पाठक वर्ग दोनों को चकित ही नहीं करता, आलोचना करने का अवसर भी देता है। बकौल मैत्रेयी– "इस आध्यात्मिक और कलात्मक संसार से मेरा परिचय नहीं के बराबर था। मैं जिस तबके से आई हूँ, उसके लिये शिष्ट भाषा में 'मूढ़–मूर्ख' जैसे शब्दों का व्यवहार यहाँ किया जाता है। जाहिर है देश के भीतरी कोनों और परिधियों पर छितरे समाज का अनपढ़ होना लाजिमी है सो वह अशिक्षित रह जाता है। विचारहीन भी माना जाता है, क्योंकि नगर–महानगरों में जब–जब वे ग्रामीण और वनचारी लोग आए हैं तो पावों की बेतुकी आवाजें हुई हैं और चिकनी सड़कें घायल होने लगी हैं। उनके तौर–तरीके से शहरी आवागमन में व्यवधान पड़ता है क्योंकि उन्हें भद्र समाज के नियम नहीं आते, क्योंकि नियम भी तो सहूलियतों से बंधे होते हैं।"[6]

बार–बार मैत्रेयी जैसी लेखिकाओं को अहसास कराया जाता है कि आपका लेखन गंधैले और मैले माहौल को पैदा करता है। हर बार जताया और बताया जाता है कि भुच्च गंवारों की कहानियों से गोबर की बू आती है। ऐसे गांव–गोबर वाले रचनाकार महानगर में रूकते–ठहरते ही क्यों हैं? वे हमारी बहसों में भाग लेने लायक नहीं हैं क्योंकि बौद्धिक स्तर पर जीरों हैं। मैत्रेयी पर 'अनगढ़ भाषा के प्रयोग' का आरोप लगाया जाता है।

सचमुच ही भद्र समाज नगर–महानगरों को बनाता है और इसी कारण महानगर किसी देश के चेहरे की तरह जाने जाते हैं, मगर कड़वी सच्चाई यह है कि किसी

[6] अनुपस्थित भाषा के पात्र – मैत्रेयी पुष्पा – सहारा समय

देश का चेहरा महानगर है तो उसका शरीर गाँव कस्बों से बनता है। यह दीगर बात है कि चेहरा वाचाल की तरह बोलता है, जबकि शरीर के अन्य अंग सक्रिय रहकर श्रम और शक्ति के वाहक होते हैं। तब मान लीजिए कि घूसर दिखने वाला 'भारतीय शरीर' अपने गंवई स्त्री पुरूष के रूप में वह शिरासमूह है, जिससे रक्त संचार होता है– और मस्तिष्क तक पहुँचता है। फिर भी चेहरे के मुकाबले शरीर गौण रहता है। अतः धूल–पसीने से नहाया तबका व्यवहार के स्तर पर आपको रास नहीं आता। क्या इसीलिये मैत्रेयी सरीखी लेखिकाओं का महानगर आना अपराध है। बकौल मैत्रेयी– "अनगढ़ भाषा के प्रयोग से हाशिए पर फेंके गये लोग आपसी संवादो और कलाहीन खरे सम्बन्धों का खुलासा करते हुये साहित्य में आ गये हैं तो सौन्दर्य से सजा साहित्य का आंगन कुछ फूहड–फूहड सा लगने लगा है। आपने कहा– अश्लील। क्या मेरा आदर्श ऐसा साहित्य था? कुत्साओं और निर्लज्जताओं के दायरे में पटक दिये गये घूरे के लोग।"[7]

"साहित्य में कुत्सा की क्या जगह है? अश्लीलता, फूहड़ता, भेदसपन, कुत्सित प्रसंगों पर हमेशा से ही नाक भौं चढ़ाने वालों की कमी नहीं रही है। हमारे काव्यशास्त्र में काव्य के जो दोष गिनाये गये हैं, उनमें अश्लीलता के साथ ग्राम्यत्व की भी गणना की गयी है। यानि सभ्य समाज में, अभिजनों की उपस्थिति में जो बात कहने योग्य न हो, जिसको कहकर कहने वाले की संस्कार हीनता प्रकट हो, वह ग्राम्यत्व है। गंवारूपन, ग्राम्यत्व को अभी तक क्षम्य नहीं माना जाता था– न कथ्य के ग्राम्यत्व को, न कथन के ग्राम्यत्व को। पर हमारे जिस लोकतंत्र का 90% लोक ग्रामीण हो उसकी बोली बानी, कथनी करनी को ग्राम्य कहकर व्याज्य कैसे माना जा सकता है?"[8]

"आपकी भाषा शैली ऐसी होगी कि उनकी (जन–सामान्य) समझ में नहीं आयी होगी। 'उपनिवेश' के रूप में स्त्री नहीं जानती होगी कि उपनिवेश किस चिड़िया का नाम है। दिल्ली के राजेन्द्र भवन में जब कुछ औरतें अपनी गठरी–भुटरी और बच्चों को लादकर आपकी बात सुनने लाई गयीं तो शिक्षित सजी–संवरी, विचारों से लैस आधुनिकाओं के भाषण कान देकर सुनने लगीं। उपभोक्तावाद, बाजारवाद, नवधनाढ्य और वैश्वीकरण के साथ जब सांस्कृतिक राष्ट्रवाद भी जोड़ा गया तो वे

---

[7] अनुपस्थित भाषा के पात्र – मैत्रेयी पुष्पा – सहारा समय (उपकथन)
[8] सनाका खाये समय और साहित्य में हलचल मचाती एक आत्मकथा – कान्ति कुमार जैन – पृष्ठ 45

सब उजबक सी देखने लगी। उनकी गोद के बच्चे रोने लगे और वे बहरी की तरह सुनने लगी। उनमें से ही मैं (मैत्रेयी) हूँ, जो आपके भारी–भरकम शब्द और वजनदार उच्चारण से जब न तब आतंकित होती रहती हूँ। ये शब्द मरते हुये बच्चों, बर्बरता के शिकार मनुष्यों और शिकार जैसी भागती–छिपती स्त्रियों के बारे में क्या कुछ कहते हैं, समझ नहीं आता है। जाहिर है, जिस बोली से परिचित हूँ, वह जुबान से कम हाव–भावों में ज्यादा दिखती है।''[9] और ऐसी ही भाषा का प्रयोग मैत्रेयी जी को बखूबी आता है, यह उनकी साहित्य को नवीन देन है, वे ग्राम्यत्व को अपना दोष नहीं, अपना गुण मानती हैं। सुधीजन साहित्यकारों की नजर में इस औरत का बसर नहीं, यह अलग बात है।

मैत्रेयी जी जिस तबके को लेकर लिखती हैं वह तबका समाज में अनुपस्थित है और साहित्य जगत में इन अनुपस्थित पात्रों के विकल्पहीन संघर्ष और संकल्प को तवज्जों नहीं दी जाती। उनकी भी मजबूरी की उनके पास शुद्ध पवित्र जैसा कुछ नहीं। यहाँ तक कि आपसी संबंधों के मामले में सावधानी भी नहीं। खुले प्रेम संबंध और आपने सामने की लड़ाइयाँ। साहित्य में ऐसा मोटापन और सूलिता कहाँ पचाई जाए?

स्वर सुनायी दे रहे हैं कि साहित्य से पाठक का नाता टूट रहा है। जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' जैसा कुछ नहीं आ रहा। अज्ञेय की 'शेखरः एक जीवनी' जैसा कोई नहीं लिख रहा। ज्ञान की दुनियाँ में यह भदेस धमाचौकड़ी कहाँ से आ गयी? अनपढ़ लोगों के जीवन का अनगढ़ साहित्य सचमुच कुलीन संस्कृति का नाश कर डालेगा इसे कौन पढ़ेगा?

''वे ही पढ़ेगे, जिनके लिये यह लिखा गया है। जिनके अनुभवों से यह निकला है। मैत्रेयी न धीमंतो के लिये लिख रही हैं न काव्यशास्त्रियों के लिये। वह ए.सी. में बैठकर भुने हुए काजू नमकीन टूंगते हुए टी.वी. देखने वालों अभिजनों के लिये भी नहीं लिख रही हैं।''[10] उनकी रचनायें चाहे वह 'झूलानट' हो, चाहे विज़न सभी स्त्री विमर्श को उजागर कर स्त्री को पुरूष के समकक्ष लाने की चेष्टा भर हैं।

---

[9] 'अनुपस्थित भाषा के पात्र' – मैत्रेयी पुष्पा – सहारा समय (उपकथन)
[10] सनाका खाये समय और साहित्य में हलचल मचाती एक आत्मकथा – कान्तिकुमार जैन

मैत्रेयी पुष्पा ग्राम्य–संवेदना की विशिष्ट रचनाकर हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गांवों के बाशिन्दे उनकी कृतियों में पूरे अन्तर्विरोध के साथ व्याख्यायित, विश्लेषित हुए हैं। गांवों का यथार्थ शहरी या महानगरीय यथार्थ से एकदम भिन्न नहीं है। परिवेश और समस्याओं का अन्तर अवश्य है। महानगरों की चेतना व जागृति वहाँ अधिक नंगे रूप में लक्षित होती है।

उनकी रचनायें कलाकृति से बढ़कर जीवन की घुटन है, जो जिंदगीं के धूल–धक्कड़ से लड़ते हुये गिरती है और गिरकर फिर उठने का हौंसला रखती है। वह पिछ़डे हुये रूढ़ि जर्जर, पुरूष अनुशासित भारतीय समाज में अपने औरत होने का भागमान बता रही है– जो कहूँगी, सच कहूँगी के हलफिया बयान के साथ, तिरिया जनम झन देहु की कातर प्रार्थना को नकारते हुए। वह स्त्री होने की अपनी जैविकता से न तो क्षमा याचना की मुद्रा में हैं, न ही अपनी जैविकता को लेकर भगवान को कोसती हैं। यदि मैं स्त्री हूँ तो अ–स्त्री क्यों बनना चाहूँ? स्त्रियों के स्वाभिमान के लिय क्यों न लड़ूँ? जो स्त्री को केवल कला पुतली मानते हैं, जिनके लिये मानवी योनि मात्र रह गयी है, उनके मुँह पर क्यों न थूकूँ, अपनी जैविकता को स्वीकार करने का साहस मैत्रेयी को अन्य स्त्री उपन्यासकारों से विशिष्ट बनाता है।

(ब) मैत्रेयी पुष्पा का पुरूष उपन्यासकारों से तुलनात्मक अध्ययन

युग परिवर्तन ने पुरूष चेतना को विविध स्तरों पर आन्दोलित किया है। परिणाम स्वरूप उसकी निजी मान्यताओं एवं स्थापनाओं का प्रणयन होना स्वाभाविक था। समाज व नारी के प्रति चले आ रहे सामाजिक मानदण्डों की पुनः व्याख्या करवाने की उसकी दलील बल पकड़ती जा रही है। बदलते परिवेश व सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नर–नारी आचरण सम्बन्धी नैतिकता और अनैतिकता की परिभाषा एवं मुहावरों की अभिनव अर्थवत्ता की आवश्यकता समकालीन उपन्यासकारों ने अनुभव की तथा समय–समय पर वे अपने स्वतन्त्र विचार सम्प्रेषण में निसंकोच आगे बढ़े।

पुरूष उपन्यासकारों ने अनेकानेक नारी प्रधान उपन्यास लिखे, जिसमें उन्होंने नारी से जुड़ी अनेक समस्याओं को उठाया है। इनमें नैतिकता व अनैतिकता के संदर्भ में नारी की मानसिकता के अनेक उदाहरण रखे गये हैं।

समकालीन परिवेश में व्याप्त मानवीय समस्याओं दुराग्रहों के संदर्भ में आज के साहित्य में प्रायः चर्चा की जाती है। नारी चेतना से जुड़ी विभिन्न स्थितियों का सफल चित्रण पुरूष उपन्यासकारों ने बखूबी किया है। अपने प्रातिभज्ञान के बल पर नारी के अन्तराल में उपस्थित अनुभूतियों को वह पन्नों पर उतारने की सफल चेष्टा करते आये हैं।

स्वाधीनता के उपरान्त जिस व्यक्ति विशेष का चित्रण हिन्दी उपन्यासों में मिलता है वह प्रेमचन्द, जैनेन्द्र एवं अज्ञेय के व्यक्ति विश्लेषण से हटकर नई लीक पर मिलता है। नारी के संदर्भ में तो और भी मायने बदले हैं। वस्तु स्थिति के यथार्थ को समझते हुए उसमें आत्मान्वेषण की प्रवृत्ति है, जो एक व्यापक सामाजिक संदर्भ से उसे जोड़ती है तो दूसरी ओर उसे आत्मस्वीकृति का साहस भी देती है।

नारी के बहिरंग पक्ष की अपेक्षा उसके अन्तरंग मनोविश्लेषण को विशेष स्तर पर रूपायित करने का श्रेय जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय तथा उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जैसे उपन्यासकारों को प्राप्त है इन लेखक उपन्यासकारों की कृतियों में नारी का बहिरंग पक्ष यद्यपि पूरी अस्मिता व सच्चाई के साथ उपस्थित है, किन्तु इसमें चित्रांकन नारी का अन्तर्जगत भी अपनी पूरी यथार्थता के साथ प्रस्तुत हुआ है। नारी के मन की एक–एक संवेदना व सोच को इन उपन्यासकारों ने उसके वैयक्तिक पहलू की विविधता से साकार किया है। इन दबी–उभरी परतों में कहीं तो नारी का अन्तर्मुखी व्यक्तित्व परिभाषित है– तो कहीं बहिर्मुखी व्यक्तित्व। एक तरह से देखा जाए, तो उपन्यासकारों ने दोनों ही पक्षों की सफलतम् अभिव्यक्ति अपने उपन्यासों में की है।

ग्रामीण परिवेश को आधार बनाकर उपन्यास लिखने वाले बहुत कम लेखक है। स्वातंत्र्योत्तर युग में उपन्यास विधा में आंचलिक प्रवृत्ति का प्रणयन एक अभिनव प्रयोग माना जाता है। हिन्दी में आंचलिकता पाश्चात्य प्रभाव के कारण नहीं है। स्वतत्रंता के पश्चात हमारा ध्यान जन–जीवन की संस्कृति और ग्रामीण अंचलों की ओर लौटा। फलतः साहित्य में अंचल विशेष की संपूर्ण जीवन पद्धति समग्र धार्मिक और सांस्कृति

समीकरणों में सामाजिक भूमिका आदि का चित्रण हुआ है। आंचलिक उपन्यासों में विकास का प्रवाह क्रम गतिशील होता है। कारण इनका उद्देश्य वातावरण की विशिष्टता का चित्रण होता है। बहुत कम उपन्यासकार इस विशिष्टिता को हासिल कर पाये हैं। मैत्रेयी जी उनमें से एक हैं। पुरूष उपन्यासकारों में हैं– प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, फणीश्वर नाथ 'रेणु', हजारी प्रसाद द्विवेदी, नार्गाजुन, भैरव प्रसाद गुप्त, शिवप्रसाद, देवेन्द्र सत्यार्थी और राही मासूम रजा आदि जिन्होनें ग्रामीण जीवन का सफल अंकन अपने चर्चित उपन्यासों में किया है।

किसी भी दशा का साहित्य अपने देश की संस्कृति से रससिक्त होता है, परन्तु वहाँ मानव जीवन के विस्तृत चित्रण का अवकाश रहता है। उपन्यास के माध्यम से हिन्दी साहित्य में पहली बार मनुष्य अपने समस्त आयामों और समग्र परिवेश के साथ उपस्थित हुआ। उपन्यास में मानव का चित्रण उसके परिवेश, परिस्थिति और परम्परा की पृष्ठभूमि में किया जाता है। जीवन का यथातथ्य अंकन होता है। ऐसे ही जीवन का यथार्थ प्रस्तुत करने वाले उपन्यासकार निम्न हैं–

पुरूष उपन्यासकार

१. प्रेमचन्द

प्रेमचन्द के आगमन से हिन्दी उपन्यास में एक नवीन युग का प्रारम्भ होता है। बल्कि यों कहा जायें कि वास्तविक अर्थों में उपन्यास युग आरम्भ होता है। उपन्यास साहित्य की सृष्टि जिस उद्देश्य को लेकर हुई थी, उसे उद्देश्य की पूर्ति प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों द्वारा नहीं हुई। प्रेमचन्द ने पहली बार उपन्यास के मौलिक क्षेत्र, स्वरूप और उद्देश्य को पहचाना। प्रेमचन्द ने पहली बार इस सत्य को पहचाना कि उपन्यास सोद्देश्य होना चाहिये।

प्रेमचन्द की विशेषता है उनकी यथार्थ की पकड़। यथार्थ सतह पर फैली हुई गदंगी नहीं है बल्कि मानव–जीवन के बुनियादी प्रश्न, उसके बाहरी तथा भीतरी परिस्थितिगत और मानसिक अधंकारमय और प्रकाशमय सभी प्रकार के सत्य एक दूसरे से मिले जुले होते हैं। स्वयं प्रेमचन्द ने स्वीकार किया है– "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना तथा उसके

रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है, मानव चरित्र ही पूरी सृष्टि के केन्द्र में है वहीं परिस्थितियों से प्रभावित होता है।''

प्रेमचन्द ने यथार्थ को पहचाना और उसे ही अभिव्यक्ति देना अपने उपन्यास का लक्ष्य समझा। यथार्थ क्या है? यथार्थ व्यक्ति का भी होता है और समाज का भी। व्यक्ति समाज का सदस्य है अतः उसमें बहुत सी समानताए होती है। इसलिये व्यक्ति को मात्र सामाजिक जीवन की यांत्रिक इकाई के रूप में नहीं देखा जा सकता, उसके अन्तर्मन मे निहित उसकी विशिष्टताओं को, उसके बाहरी व्यक्तित्व से भीतर व्यक्तित्व को भी देखना अनिवार्य होता है तभी यथार्थ का सच्चा व व्यापक रूप प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रेमचन्द जी इसमें सफल रहे हैं। प्रेमचन्द अपने पूरे युग और समाज को उसकी समस्त जटिल वास्तविकता के साथ पकड़ लेना चाहते थे। इसीलिये एक ओर वे सामाजिक यथार्थ को उसके विविध रूपों में प्रस्तुत कर रहे थे, दूसरी ओर विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों एवं संस्कारों में पले व्यक्तियों की मानसिक गहराइयों में बैठकर मन सत्यों का उद्घाटन कर रहे थे। इस प्रकार प्रेमचन्द ने यथार्थ के दोनों आयामों—सामाजिक और व्यक्तिगत को उभारा और उभारा ही नहीं उत्कर्ष दिया।

प्रेमचंद ने यथार्थवादी कथाकार की धार्मिकता तो निबाही ही है साथ ही साथ अपनी रूचि—अरूचि से भी निस्संग नहीं हो सके। यथार्थ के जटिल स्वरूप को सच्चाई के साथ पहचानने के बावजूद वे अर्थवादी संस्कृति से प्रभावित नहीं थे। मूलतः वे भारतीय संस्कार के थे जो सेवा, त्याग, परोपकार, संतोष, सत्याचरण आदि विशेषताओं का पूंजीभूत रूप है। प्रेमचन्द देख रहे थे कि भारतीय समाज अपनी इन विशेषताओं को खो चुका है या ये विकृत हो चुकी हैं। पश्चिम की भौतिकवादी संस्कृति का परिणाम यह हुआ कि मनुष्य ऊपर से तो समृद्ध होता गया किन्तु भीतर से दरिद्र और हीन। मानवीय विशेषताएं आज के तथाकथित बड़े लोगों में अवशिष्ट नहीं रह सकी हैं। बाहर से ये लोग स्वांग करते हैं लेकिन भीतर से अत्यन्त स्वार्थी, गंदे और घृणित हो गए हैं। मानवता की वास्तविक ज्योति आज के तथा—कथित छोटे लोगों में बची है और मैत्रेयी जी ने इन्हीं छोटे लोगों को अपने कथानकों का आधार बनाया है।

प्रेमचन्द द्वारा रचित उपन्यास निम्नलिखित हैं– सेवासदन, प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, रंगभूमि, निर्मला, कर्बला, गोदान, गबन और मंगल सूत्र आदि। प्रेमचन्द के उपन्यास राष्ट्रीय आन्दोलन, कृषक समस्या, मानवतावाद, भारतीय संस्कृति, शोषण, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि विविध विषयों से सम्बन्धित हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रेमचन्द का मूल्यांकन करते हुये लिखा है– "प्रेमचन्द शताब्दियों से पद दलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–विचार, भाषा–भाव, रहन–सहन, आशा–आकांक्षा, दुःख–सुख और सूझबूझ को जानना चाहते हैं, तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।"

'गोदान' प्रेमचन्द का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व विशेष उपन्यास है। 'गोदान' का रचना–सन्तुलन ऐसा बेजोड़ है कि उसमें अनवरत संघर्ष, करूणा, सहानुभूति और ट्रैजिक अंत के बावजूद कहीं किसी एक के प्रति कड़वाहट नहीं आती, गहरा असन्तोष उमड़ता–घुमड़ता है, तंत्र के प्रति, सामाजिक व्यवस्था के प्रति।

'गोदान' उपन्यासकार प्रेमचन्द की सर्जना का अंतिम बिन्दु है जिसने उनकी उपन्यास दृष्टि पूर्णता प्राप्त कर ली है। इसमें कृषक जीवन का यथार्थ अपनी अनेक बाहरी और भीतरी पर्तों के साथ उद्घाटित हुआ है। यह यथार्थ एक पक्षीय नहीं है। गोदान के केन्द्र में होरी है जो एक किसान है और सम्पूर्ण किसान वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। किसान की स्थिति है उसका खेतिहर होना। होरी के चारों ओर विद्रूप सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था है। दूसरी ओर उसके अंधविश्वास और रूढ़ियाँ है। तीसरी ओर उसके सारे मानवीय आचरण के साथ उसके छोटे–छोटे स्वार्थ, काइंयापन और ईर्ष्या द्वेष है। इन सबके पारस्परिक तनाव से कृषक जीवन का यथार्थ बना हुआ है। प्रेमचन्द ने किसानों को ऐसे सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उभारा है कि वे अपने राग–विराग, त्याग–स्वार्थ, भोलेपन और कांइयापन आदि के द्वन्द्व में गिरते पड़ते पाठकों के मन में एक अजीब सा दर्द पैदा करते हैं और साथ ही एक बड़े सामाजिक यथार्थ की सही पहचान पैदा करते हैं।

प्रेमचन्द की भाँति ही मैत्रेयी जी ने भी उपन्यास को जीवन का चित्रण माना है। दोनो के सभी उपन्यासों का कथाधार मानव जीवन है। जीवन जैसा दिखलायी दे

रहा, उसके यथार्थ को लेकर प्रेमचन्द के उपन्यासों का कथापट तैयार किया गया है। उनके समाने का जीता जागता, युग उनके उपन्यासों में उतर आया है। जबकि मैत्रेयी ने जीवन की यथार्थता के साथ उसके बेहतर बनाने पर भी जोर दिया है। बुन्देलखण्डीय परिवेश को लेकर लिखे गये उनके उपन्यास भी यहाँ का जीता जागता वातावरण व परिस्थितियाँ उपस्थित करते हैं। दोनों के उपन्यासों के कथानक तत्कालिक सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन के लेखे जोखे हैं। समाज की विशेष तौर पर ग्रामीण समाज की अनेक समस्यायें उनमें प्रस्तुत की गयी हैं, राजनीति की समस्त गतिविधियों का चित्रण किया है, समाजों के अंधविश्वासों एवं रूढियों की ओर इंगित किया गया है। वहीं दोनों ने ही जर्जर शोषित वर्ग की करूण कथा सुनाई है, मध्यवर्गीय जीवन के चित्र प्रस्तुत किये हैं। कृषकों, जमीदारों, सरकारी अफसरों आदि से सम्बन्धित घटनायें कथानक में प्रस्तुत की गयी हैं।

प्रेमचन्द जी ने अपनी अनुभूति की व्यापकता के कारण जीवन के प्रत्येक पहलू और मानव के सभी वर्गों को अपने कथानक में स्थान दिया है। वहीं मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी व्यक्तिगत अनुभूति और संघर्षता के चलते नारी जीवन के प्रत्येक पहलू पर नजर डाली है, साथ ही निम्न व मध्यम ग्रामीण वर्ग पर ही विशेष तौर पर अपनी लेखनी चलायी है। बकौल मैत्रेयी – "इसका सबसे बड़ा कारण मेरा स्वंय का व्यक्तिगत जीवन है। मैं बचपन से ऐसे ग्रामीण माहौल और परिवेश में रही हूँ और वहाँ की छोटी से छोटी बात को ग्रहण करती रही। और सबसे बड़ी बात कि शहरी जीवन में उस जीवटता के दर्शन नहीं होते हैं, जबकि ग्रामीण जीवन में उन छोटी–छोटी बातों के दर्शन होते हैं, जो स्त्री जीवन को संघर्ष व श्रम से जोड़ते हैं। वहाँ के आर्थिक संकट, परदेदारी, रीति रिवाज सब मिलकर अपने आप में कहानी कहते हैं।"[11]

जहाँ प्रेमचन्द के उपन्यास जीवन के यथार्थ को ग्रहण करते हैं और अंत में आदर्श की ओर उन्मुख हो जाते हैं, वहीं मैत्रेयी जी के उपन्यास सम्पूर्ण यथार्थता के साथ जीवन की सच्चाई की ओर रूख करते नजर आते हैं। दोनों के ही कथानक मानव की धारा से सम्बद्ध है, कल्पना के गगन से नहीं। उनके कथानकों की

[11] मैत्रेयी पुष्पा जी से व्यक्तिगत साक्षात्कार पर आधारित – 24 नवम्बर – 2002

घटनायें तथा पात्र सभी चिरपरिचित से जान पड़ते हैं। उनकी नियोजित घटनायें या तो जीवन में घट रहीं या घटित होने की पूर्ण सम्भावना है। उनमें यथार्थता के साथ स्वाभाविकता है। वे रोचक एवं कौतूहलपूर्ण हैं। आधिकारिक कथा के साथ–साथ दोनों के ही उपन्यासों में अवान्तर कथाओं का पर्यावसान होता है।

प्रेमचन्द जी के उपन्यासों के पात्र विशुद्ध धरा–धाम के निवासी हैं, वे धरती पुत्र है। मानवीय गुणों से परिपूर्ण। वहीं मैत्रेयी के पात्र मानवीय गुण–दोषों से युक्त हैं। उनके चेहरे चिरपरिचत से मालूम होते हैं। लगता है कि वे हमारे आसपास मानव की इस ठोस धरा पर ही रह रहे हैं। उनकी मनोदशा तथा उनके क्रियाकलापों से हमारा तादात्म्य होता रहता है। इसका सबसे बड़ा कारण मेरा स्वयं का बुन्देलखण्ड की जमीं और यहाँ के लोगों से जुड़ा होना है। चहुँ ओर मैत्रेयी जी के पात्रों के समान लोगों को देखकर ही मैनें मैत्रेयी जी के उपन्यासों व कहानियों को अपने अनुसंधान का विषय बनाया। अधिकांश पात्र ग्रामों के शोषित कृषक वर्ग और श्रमिक वर्ग से हैं। वैसे प्रेमचन्द और मैत्रेयी जी की व्यापक सहानुभूति ने निर्धन धनी किसी भी वर्ग के पात्र को उपन्यासों में स्थान पाने से नहीं रोका। जहाँ प्रेमचन्द ने जमींदार, मिल मालिक, पूँजीपति, राजा, नबाव, अंग्रेज शासक, भारतीय शासक, भारत की स्वतंत्रता के संघषकर्ता, गांधी जी के अनुनायी, स्त्री–पुरूष–बच्चे सभी प्रकार के पात्रों को अपनी लेखनी का विषय बनाया, वहीं मैत्रेयी पुष्पा जी ने विशेष तौर पर दलित, शोषित, अपमानित, निर्धन, संघर्षशील, रूढ़िग्रस्त स्त्री समाज पर दृढ़ता से अपनी लेखनी चलायी है। जहाँ प्रेमचन्द ने समाज के प्रत्येक वर्ग के पात्रों को अपने उपन्यासों की विस्तृत भूमि पर अवतारणा की, वहीं मैत्रेयी जी ने निम्न कृषक वर्ग तथा स्त्री वर्ग को अपने उपन्यासों में विस्तृतता प्रदान की है।

प्रेमचन्द जीवन की समस्याओं और उनके समाधानों को प्रस्तुत करना चाहते थे। उन्होनें यथार्थ के बीच से आदर्श को झाँककर देखा था। मानव चरित्र की व्याख्या करने के साथ ही साथ जीवन के उच्च आदर्शों की स्थापना उनका परम उद्देश्य था, जबकि मैत्रेयी जी ने मानव व स्त्री जीवन की यथार्थता व आदर्शता के साथ–साथ नारी जीवन की विकट्म स्थितियों–परिस्थितियों और समस्याओं को भी हमारे सामने रख स्त्री जीवन के प्रति एक नवीन दृष्टि कोण दिया है। स्त्री को पुरूष वर्ग के समकक्ष लाना–विचारों से और अधिकारों से, ही मैत्रेयी जी का मुख्य

उद्देश्य जान पड़ता है। जिसकी पूर्ति के लिये उनकी सफल एवं सक्षम लेखनी सतत् प्रयत्नशील है। इन प्रकार हम देखते हैं कि दोनों ही कथा शिल्पी अपने कथा–साहित्य में अपने–अपने उद्देश्यों की पूर्ति की निरन्तर व सफल चेष्टा की है।

प्रेमचन्द साहित्य अपने युग का विश्वस्त इतिवृत्त है। राष्ट्रीय चेतना से युक्त समस्त भारतीय जीवन उनके साहित्य में चित्रित है। भारतीय परिवर्तित सामाजिक जीवन भी उनके साहित्य में कम नहीं उभरा है। रूढ़ियों एवं सड़ी–गली परम्पराओं का व्यंग्यपूर्ण चित्रण भी उनके साहित्य में विद्यमान है। जबकि मैत्रेयी जी बुन्देलखण्डीय समाज की एक सतत् धारा हैं। नारी चेतना और सामाजिक चेतना के साथ लिखे गये इनके उपन्यासों में सम्पूर्ण स्त्री जीवन पूर्ण रूप से व्याखित है। अपनी लेखनी से समाज को एक परिवर्तित विचारधारा प्रदान की है। रूढ़ियों, परम्पराओं और कर्मकाण्डों का जमकर विरोध दर्शाया गया है। जहाँ प्रेमचन्द के स्वयं बोलते हुए पात्रों पाठकों को अधिक आकर्षित करते हैं और कथावस्तु आगे बढ़ती हैं, वहीं मैत्रेयी के कथनों के माध्यम से स्त्री जीवन के अनेक पहलू सामने आते हैं और अनेक सूक्तियों की अवधारणा होती है, जिनमें चिर–तन सत्य के दर्शन होते हैं।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में भाषा की दृष्टि से हिन्दी भाषा का परिनिष्ठित रूप अपनाया है। अशिक्षित पात्रों की भाषा में जहाँ स्थानीय भाषा प्रयोग की गयी है, वहीं शिक्षित पात्रों की भाषा में शुद्ध हिन्दी का प्रयोग किया गया है। बीच–बीच में सूक्तियों, मुहावरों व कहावतों का व्यवहारिक प्रयोग मिलता है। प्रेमचन्द की भाषा लोक व्यवहारिक होते हुये भी साहित्यिक, सरस एवं बोध–गम्य है। मैत्रेयी ने अपने उपन्यासों में शुद्ध बुन्देली ग्रामीण भाषा को अपनाया है, 'विजन' को छोड़कर। पात्रों के हिसाब से कभी–कभी शिक्षित व सभ्य भाषा का प्रयोग भी किया है। भाषा में कहीं भी कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते हैं। भाषा को विविध माध्यम से व्यवहारिकता प्रदान की गयी है। अर्न्द्वन्द्व की भाषा में मैत्रेयी जी ने विशेष सफलता अर्जित की है। नारी मन को इतनी सफलता के साथ चित्रित करना मैत्रेयी जैसी लेखिका के बस की ही बात थी। जहाँ इनकी भाषा कथा–सूत्र के अनुकूल है वहीं उनकी भाषा में प्रवाह, कोमलता तथा हृदय को छूने की क्षमता विद्यमान है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जहाँ प्रेमचन्द का कथा साहित्य उनके अभिनव प्राणों से स्पन्दित उपन्यास क्षेत्र में आदर्शमय युग संस्थापक है तो वहीं मैत्रेयी जी का कथा साहित्य, आज के बुद्धिवादी युग में नारी जीवन की जिस तर्कसंगत एवं स्वाभाविक कथानक की अपेक्षा है, उसका श्रेष्ठ निदर्शन हैं।

२. फणीश्वरनाथ 'रेणु'

आंचलिकता को प्रोत्साहन देने वाले और कहानी में आंचलिकता का समावेश करने वाले श्री फणीश्वनाथ 'रेणु' एक ऐसे कलाकार उपन्यासकार हैं, जिन्होंने कहानी को सीधे ग्रामीण अंचल से जोड़ा है। इसी से रेणु जी आंचलिक उपन्यासकार–कहानीकार के रूप में अधिक ख्याति पा सके हैं। प्रेमचन्द जी के बाद ग्रामीण वातावरण का सजीव चित्रण करने में इन्हें ही सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुयी है। ग्रामीण जीवन की यथार्थ स्थिति तथा उनकी समस्याओं का आपकी कहानी में सजीव वर्णन मिलता है। इन्होंने ग्रामीणों के प्रति आत्मीयता और तादात्मकता का सम्बन्ध स्थापित किया है।

भाषा, भाव, संवेदना, कथानक, घटनाएँ आदि सभी दृष्टियों से इनकी कहानी व उपन्यास पूर्णतः आंचलिक हैं, जिनमें रेणु जी द्वारा परीक्षित और बड़े निकट से देखा गया यथार्थ और स्थितियाँ चित्रित हैं। इनके उपन्यास व कहानियाँ श्रेष्ठ आंचलिकता के उदाहरण हैं। 'मैला आंचल' इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध व आंचलिक उपन्यास है। जिसमें बिहार के पूर्णिया जिले की संस्कृति व रहन सहन का सम्पूर्ण ताना बाना बड़ी ही जीवन्तता के साथ प्रस्तुत है। उनके लेखन की विशेषतायें मैत्रेयी जी के लेखन से काफी मिलती हैं। वैसे भी मैत्रेयी जी के सबसे पसंदीदा लेखक रेणु जी ही हैं। बकौल मैत्रेयी– "निसंदेह फणीश्वनाथ रेणु जी मेरे दिल व लेखन के सबसे करीब है। वे मेरे सबसे पसंदीदा लेखक हैं। मैं उनसे व उनके लेखन से बहुत प्रभावित हूँ। उनका मैला आंचल, रसप्रिया, पंचलैट आदि मेरी पसंदीदा रचनायें हैं।"[12]

मैत्रेयी जी ने भी अपनी कहानियों में रेणु जी की भाँति ग्रामीण जीवन और वहाँ की समस्याओं का चित्रण किया है। रेणु जी के कथानक एक विशेष जनपद की

---

[12] मैत्रेयी जी से साक्षात्कार के 'अंश' से – 23 नवम्बर, 2002

समस्याओं से सम्बन्धित हैं। वहाँ की बोली, रीति रिवाज, रहन सहन और जीवन यापन का यथार्थ चित्रण इन्होंने अपनी कहानियों में किया है जबकि मैत्रेयी एक विशेष जनपद के साथ–साथ अनेक छोटे बड़े कस्बों को भी लेकर चलती हैं तथा साथ ही वहाँ की संस्कृति व मान्यताओं को भी यथा स्थान स्थान देती चलती हैं। दोनों ही लोगों का चित्रण इतना यथार्थ है। कि ऐसा मालूम होता है कि मानों उन्होंने स्वयं इसको भोगा व परखा हो। अंचलीय कथानकों में इन्होंने निम्न मध्यमवर्ग के जीवन को समस्याओं का अपना प्रमुख विषय बनाया है। कथानक की दृष्टि से दोनों ही सफल कहानीकार है।

निम्न मध्यवर्ग के लोगों से विशेष सहानुभूति होने के कारण दोनों ही पात्र विशेष के बहुत करीब हैं तथा उनके पात्र इसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। पात्र ग्रामीण जीवन की समस्याओं से जूझते हैं। जहाँ एक ओर रेणु जी ने चरित्र चित्रण के माध्यम से समाज की वस्तुस्थिति का सुन्दर अंकन किया है साथ ही राजनीतिक नेताओं, जन सेवकों, जमींदारों, कृषकों, श्रमिकों आदि सभी प्रकार के पात्रों का सजीव चित्रण किया है। वहीं दूसरी ओर मैत्रेयी पुष्पा जी ने विशेष तौर पर नारी की वस्तुस्थिति तथा उससे जुड़े विविध पहलुओं पर अपनी नजर घुमायी है। इसी से उनके उपन्यास नारी प्रधान हैं। नारी के विविध रूपों की सर्जना की गयी है। चरित्र चित्रण में दोनों ही सिद्धहस्त कलाकार हैं।

रेणु जी के आंचलिक कथाकार होने के कारण तथा मैत्रेयी पुष्पा के ग्रामीण कथाकार होने के कारण दोनों की कहानियों के संवाद तथा कथोपकथन भी पात्रानुकूल हैं। जहाँ रेणु जी के संवाद बड़े ही चुस्त दुरूस्त व आंचलिकता से पूर्ण हैं वहीं मैत्रेयी के संवाद बेहद सरल, सहज, ग्रामीण भाषा में प्रयुक्त एवं स्वाभाविक हैं। उदाहरण के तौर पर– रेणुजी का 'मैला आंचल' शुद्ध आंचलिक उपन्यास है। अतएव इसमें मेरीगंज गाँव की आंचलिक भाषा का प्रयोग हुआ है। यहाँ तक कि शहरी पात्रों की परिनिष्ठित भाषा में भी ग्रामीण आंचलिक भाषा का रूप ही झलकता है। यथा–

"रामदास, अपनी खेकसियारी का मुँह बन्द करो, नहीं तो अच्छा नहीं होगा। क्या चाहते हो तुम लोग? .... संदूक की चाबी के लिये कलेजा ऐंठ रहा है तो ले लो।"[13]

"वहीं मैत्रेयी का प्रसिद्ध उपन्यास 'इदन्नमम' पूर्ण रूप से ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसमें सभी पात्र बुन्देलखण्डी ग्रामीण भाषा का प्रयोग करते दिखलायी देते हैं। यथा– 'खाता क्यों नहीं? कैसा दुबला होता जा रहा है। कौन फिकर में घुल रहा है तें? तुम्हारी मतारी हमको दोस देगी कि अच्छा खाने को नहीं देती। तुम बीज भरे के लच्छिन नहीं जानेगी।"[14]

इस प्रकार दोंनो के ही संवाद चरित्र के विकास में पूर्ण रूप से सहायक सिद्ध होते हैं। इनके संवादों में गत्यात्मकता, प्रवाहमयता, सरलता, सहजता आदि गुण विद्यमान हैं। जहाँ रेणुजी की कहानियाँ वातावरण प्रधान हैं। एक विशेष अंचल का सजीव वर्णन इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है। वहीं मैत्रेयी जी की कहानियाँ चरित्र प्रधान हैं। एक विशेष चरित्र के माध्यम से जगह विशेष का वर्णन तथा वातावरण सजीव हो उठा है।

दोनों ने ही पिछड़े लोगों और उनके जीवनयापन को अपने शब्दों में साकार कर दिया है। रेणुजी ने अंचल विशेष तथा उनके आसपास के लोगों के रीतिरिवाजों, आचार–विचारों, सामाजिक रूढ़ियों तथा परम्पराओं का जितना सजीव चित्रण अपनी कहानियों में किया है उतना किसी अन्य साहित्यकार ने नहीं। मैत्रेयी जी ने बुन्देलखण्ड के समस्त छोटे बड़े क्षेत्रों– झाँसी, कोंच, कालपी, उरई, सोनपुरा, डिकौली, पूंछ, डकोर, देवगढ़, माधौपुर, श्यामली गाँव, गोंती, खम्भा, झखनवारा, मोंठ, एट, ओरछा, पारीछा, तालबेहट सहित अनेक स्थानों की सांस्कृतिक सामाजिक आर्थिक, धार्मिक व राजनैतिक परिस्थितियों को स्त्रियों के संदर्भ में देखा है। उन्होंने जिस यथार्थता के साथ वहाँ के लोगों की समस्याओं को हमारे समक्ष रखा है तथा उसका समाधान सुझाया– उसका कोई सानी नहीं। दोनों ने ही अपनी कुशल भाषा शैली के माध्यम से हमें वहाँ की और यहाँ की भाषा से रूबरू कराया है। जहाँ रेणु जी ने हिन्दी के साथ उर्दू व अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है वहीं मैत्रेयी जी ने

---

[13] 'मैला' आँचल' – फणीश्वरनाथ रेणु
[14] इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 66

'गंवारू भाषा' के साथ पात्रानुकूल अंग्रेजी, बुन्देली व मुहावरों और लोकगीतों का भी भरभूर प्रयोग किया है। जहाँ रेणुजी ने गाली गालौज का प्रयोग यथार्थ लाने के लिये किया, वहीं मैत्रेयी जी ने ठेठ बुन्देली गालियों का प्रयोग स्वाभाविकता लाने के लिये किया है।

रेणु जी की रचनाओं का उद्देश्य अपने अंचल के निम्न मध्यवर्ग के लोगों की दीन दशा का चित्रण कर समाज का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट करना रहा है। ग्राम सुधार तथा ग्रामीण संस्कृति की ओर ध्यान भी इनका एक उद्देश्य रहा है। प्रेमचन्द जी की भांति आपकी सहानुभूति भी श्रमिक वर्ग और गाँव के दीनहीन किसानों के प्रति अधिक है। मैत्रेयी पुष्पा जी का उद्देश्य बुन्देलखण्ड के नगरीय एवं ग्रामीण परिवेश में रची बसी नारी के जीवन की अनेकानेक समस्याओं से समाज व स्वयं नारी जाति को परिचित कराना है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं जहाँ रेणु जी आंचलिक कथा साहित्य के महत्वपूर्ण 'हस्ताक्षर' हैं। उन्होंने ग्रामीण अंचल के समूचे परिवेश को, वहाँ की समस्याओं को वहाँ के जीवन वैविध्य को अपनी कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है, वह निश्चय ही श्लाध्य हैं। उनके सम्बन्ध में श्री परमलाल गुप्त का मत है कि "वे जीवन सत्य से जुड़े हुये रचनाकार हैं और उनकी दृष्टि मानवतावादी है वे समाज की विसंगतियों, कुरूपताओं और शोषण को हटाकर स्वस्थ शोषणविहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं।" वहीं मैत्रेयी पुष्पा, ग्रामीण कथा साहित्य की महत्वपूर्ण 'घटना' हैं। उन्होंने बुन्देलखण्डीय परिवेश के माध्यम से नारी जीवन की समस्याओं और विद्रूपताओं को जिस तरह प्रस्तुत किया है, वह बेहद सराहनीय है। उनके सम्बन्ध में डा. राजेन्द्र यादव का कहना है– "शहरी मध्यवर्ग के सीमित कथासंसार में मैत्रेयी पुष्पा की कहानियाँ उन लोगों को लेकर आई हैं, जिन्हें आज समाजशास्त्री 'हाशिए के लोग' कहते हैं। वे अपनी 'कहन' और 'कथन' में ही अलग नहीं हैं, भाषा और मुहावरे में भी मिट्टी की गंध समेटे है। कलात्मकता की शर्तों के साथ बेहद पठनीय ये कहानियाँ निश्चय ही पाठकों को फिर–फिर अपने साथ बांधेगी।"

इससे स्पष्ट है कि यदि मैत्रेयी पुष्पा जी फणीश्वरनाथ 'रेणु'के समकक्ष नहीं तो कमतर भी नहीं हैं।

३. हजारी प्रसाद द्विवेदी

हजारी प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व विशिष्ट है। वे भारतीयता का मूर्तिमन्त रूप हैं। वे संस्कृत, हिन्दी, धर्म, दर्शन, ज्योतिष, इतिहासादि विषयों की अथॉरिटी हैं। उनकी रचनाओं को पढ़ते, सोचते, लिखते समय उनके महान व्यक्तित्व से अप्रभावित बना रहना कठिन कार्य है। प्रत्येक विषय पर उनके निर्णय सुचिंतित और स्पष्ट हुआ करते हैं। साहित्य, धर्म, देशप्रेम, राजनीति आदि किसी भी क्षेत्र में उनके विचार में द्वन्द्व या अंतर्विरोध नहीं है। वे मानवता के पुजारी हैं। उनका मानव महिमा का, मानवोत्थान का लेखा–जोखा है और उसकी प्रगति का साधन भी।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य विपुल, विविध और विशिष्ट है। साहित्य के विविध क्षेत्रों के साथ–साथ उन्होंने उपन्यास क्षेत्र में विशिष्ट कार्य किया है। द्विवेदी जी अपने उपन्यासों को 'गप्प' कहते हैं, परन्तु हैं उनके चारों उपन्यास ऐतिहासिक ही। मैत्रेयी जी ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर साथ अवश्य चलती हैं लेकिन उनके उपन्यास ऐतिहासिक न होकर वर्तमान भूमि की पृष्ठभूमि पर रचे गये हैं। द्विवेदी जी के चारों उपन्यासों में उनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण निहित है। मैत्रेयी जी के भी अधिकांश उपन्यासों में सांस्कृतिक दृष्टिकोण देखने को मिलता है। आचार्य द्विवेदी जी सर्वत्र मानव हित को दृष्टि में रखकर जीवन सत्य की बात करते हैं। "यह बात दूसरी है कि उनके विचारों का स्रोत अतीत–वांग्मय हुआ करता है– लेकिन यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उनका कथन वर्तमान से हमेशा संलग्न रहता है।"[15]

इसी प्रकार मैत्रेयी जी अपने पूर्व संचित विचारों को वर्तमान में जोड़कर प्रस्तुत करती है। जहाँ द्विवेदी जी ऐतिहासिकता की रक्षा करते दिखलायी देते हैं वहीं मैत्रेयी वर्तमान की। द्विवेदी के चार उपन्यास निम्नलिखित हैं:–

1. बाण भट्ट की आत्मकथा
2. चारू चन्द्रलेख
3. पुनर्नवा
4. अनामदास का पोथा

---

[15] प्रेम चन्द्र – गोदान – पृष्ठ 163

चारों उपन्यास का आधार इतिहास है। जिस प्रकार द्विवेदी का प्रधान उपन्यास 'साहित्य में अभिनव प्रयोग' माना जाता है उसी प्रकार मैत्रेयी का 'कस्तूरी कुंडल बसै' उपन्यास भी आत्मकथा के रूप में एक नवीन प्रयोग की सूची है। जिस प्रकार द्विवेदी जी की नायिकायें अपने आत्मगौरव को बनाये रखती हैं, उसी प्रकार मैत्रेयी जी की नायिकायें भी आत्मसम्मान को सर्वोपरि स्थान देती हैं। दोनों ही उपन्यासकार की रचनायें उपन्यास–कला को समेटते हुये मानवीयता की, रस की, सृष्टि करती हैं।

द्विवेदी जी का उपन्यास 'चारू चन्द्र लेख' एक ऐसी वृहत कृति है जिसमें पात्र बाहुल्य है और इसमें घटनाओं का घटाटोप पाते हैं इसी प्रकार मैत्रेयी जी का उपन्यास– 'इदन्नमम' भी एक वृहत कृति के रूप में सामने आता है जिसमें प्रेमचन्द के 'गोदान' की भाँति अनेक पात्र हैं और उनसे जुड़ी विविध घटनायें हमारे सामने आती है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी संस्कृति के श्रद्धावान पुजारी हैं। उनके उपन्यास नारी–प्रतिष्ठा की स्थापना को लक्ष्य बनाकर लिखे गये हैं। वे नारी महिमा के सर्वश्रेष्ठ चितेरे हैं। डा० नामवर सिंह आचार्य द्विवेदी के नारी विषयक दृष्टिकोण के सम्बन्ध में लिखते हैं– "उनके उपन्यासों में प्रायः एक पतिता नारी के प्रति सहानुभूति जमाकर उसके उद्धार का चित्रण मिलता है।"[16] आत्मकथा की भट्टिनी अपहृता राजपुत्री है, निपुणिका पलायिता अबला है। इन स्त्रियों के रूप में द्विवेदी जी ने नारी हृदय की समग्र पीड़ा को प्रकट कर दिया है। इन नारियों की पीड़ा मानो नारी–सामान्य की युग संचित पीड़ा बन गयी है। डा० शैल रस्तोगी के शब्दों में– "निपुणिका और भट्टिनी के हृदय की पीड़ा का जो चित्र द्विवेदी जी ने प्रस्तुत किया है, वह बड़ा सजीव है। नारी हृदय की सम्पूर्ण वेदना उनके चरित्र में साकार हो उठी है। उनकी नारी की पीड़ा चिरन्तन पीड़ा है जो पुरातन होते हुये भी नूतन है।"[17] रानी चन्द्रलेखा देवी रूपा हैं। बत्तीस लक्षणों से युक्त पूर्ण नारी चन्द्रलेखा, सिद्धियोगिनी, चन्द्रलेखा और पति–परायण चन्द्रलेखा तीन रूपों में हमारे सामने है। उसके प्रथम रूप में श्रद्धा संयुक्त आकर्षण है, द्वितीय रूप चमत्कृत करने वाला और तृतीय रूप करूणोत्पादक हो गया है। मैना साहसमयी और संयममूर्ति नारी है। वह अकेली ही व्यूहभेदन में और दुर्ग–भंजन में सक्षम है। वह साधनों की कायल नहीं। "साहस में सिद्धि बसती है" मैना का आदर्श

[16] साप्ताहिक हिन्दुस्तान – 17 जून 1979
[17] हिन्दी उपन्यासों में नारी – डॉ0 शैल रस्तोगी – पृष्ठ 189–90

वाक्य है, जीवन सिद्धान्त मैत्रेयी जी की नायिकाओं का है, वे साहस में किसी मायने में कम नहीं है।

पुनर्नवा की मृणाल गणिका गर्भ से उत्पन्न होकर भी शिक्षाशील संयम के बल पर अपने को इतना ऊँचा उठाती है कि वह सम्राट की भी सम्माननीया हो जाती है यह शील संयम और शिक्षा मैत्रेयी जी की मंदा, सांरग और डा. नेहा में देखने को मिलता है जिसके फलस्वरूप अंततः वे अपना एक मुकाम हासिल कर ही लेती हैं। 'चन्द्रा' का चरित्र प्रताड़िता किन्तु संघर्षशीला, साहसी और निश्छल नारी का चरित्र है।

'अनामदास का पोथा' में भगवती ऋतम्भरा उपनिषदकालीन गौरवमयी नारी है। वे ऐसी प्रभा राशि हैं जिससे पौधा का प्रत्येक पात्र प्रकाशित है, वे सरस्वती रूपा धर्मपरायणा, समाज–सेवा वृत्ती नारी हैं।

इस प्रकार द्विवेदी जी ने नारी को सर्वत्र आदर्श रूप में चित्रित किया है। उनकी नारियाँ मानवी से देवी के पद की ओर अग्र गमन करती हैं। वे उसके मलिन अन्तर को तप, त्याग, सेवा की सुधा से प्रक्षालित करके नमस्य बना देते हैं और मैत्रेयी ने नारी का सर्वत्र यथार्थ रूप प्रस्तुत कर उसे सदियों से या तो देवी रूप में पूज्य या फिर राच्छसी व डायन कह उसके चरित्र के कंलक और मलिनता को उसके ज्ञान, सत्य और विद्रोह से धो साफ सुथरा किया है। जहाँ द्विवेदी जी की नायिकाओं का संयमशील चरित्र उनकी इसी भावना का प्रतीक है तो वहीं मैत्रेयी की नायिकाओं का विद्रोही रूप उनकी समाज विरोधी भावना का।

जहाँ द्विवेदी जी ने भारतीय संस्कृति की गरिमा का गान किया है और देश को ऊँचा उठाने की लालसा को जगाया है वहाँ मैत्रेयी जी ने भारतीय संस्कृति का गान तो किया है साथ स्त्रियों की हीन दशा को सुधारने का अलख जगाया है वैसे भी उनके सम्पूर्ण उपन्यास स्त्रियों को ही समर्पित हैं।

द्विवेदी जी के उपन्यासों में विवाह, प्रेम, सामाजिक विधि–विधान और उनका विरोध–शोध प्रकट हुआ है। वहीं जर्जरित परम्पराओं और टूटती व्यवस्थाओं के परिमार्जन पर भी प्रकाश डाला गया है। परम्पराओं के शोधन की युगानुकूल आवश्यकता इनके प्रसिद्ध उपन्यास 'पुनर्ववा' के 'आर्यक–चंदा–प्रसंग' के द्वारा प्रकटित

होती है उसी प्रकार मैत्रेयी ने भी भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों, परम्पराओं रूढ़ियों व कुप्रथाओं का जमकर विरोध किया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों की रचना का उद्‌देश्य ही नारी–महिमा का ज्ञान और उसका आत्मोत्थान है। द्विवेदी ने नारी के सुप्त देवता को जागृत किया है। उनके नारी–पात्र आत्मजीवी हैं। साधारण वर्ग की, विधवा निउनिया का चरित्रोत्थान सम्पूर्ण उपन्यास जगत में अनूठा है। वह बुद्धि साहस, संकल्प और अद्‌भुत त्याग के बल से प्रणम्य होती है। 'चारू चन्द्र लेख' की नारी माता का संयम और तप उन्हें इतना ऊँचा उठा देते हैं कि चक्रवर्तित्वकामी राजा सातवाहन उनकी चरण–धूलि पाकर धन्य होता है। द्विवेदी जी की मैना वर्मा जी की निन्नी से भी अधिक साहसमयी है। पुनर्नवा में गणिका–सुता मृणाल शिक्षा–शील, संयम–त्याग के बल से देवी बन जाती है। चन्द्रा की संसर्ग–जन्य वासना मृणाल का सत्संग पाकर उज्जवल होती है और चन्द्रा विश्वसनीय तथा आदर्श नारी का स्थान पाती है। 'अनामदास का पोथा' की ऋतम्भरा का चित्रण द्विवेदी जी ने नारी के लिये उच्च आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। वहीं मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यास 'बेतवा बहती रही' को छोड़ समस्त उपन्यासों में नारी को आदर्श से परे ''बोल्ड'' चरित्र में प्रस्तुत किया है।

भारतीय संस्कृति के आस्थावान पुजारी आचार्य हजारी प्रसाद ने नारी को उसको खोया हुआ प्राचीर गौरवमय पद दिलाने का प्रयास किया तो वहीं मैत्रेयी ने नारी को आत्मसम्मान से भरा पुरूष समकक्षी पद दिलाने की कोशिश की है। द्विवेदी जी ने नारी के पतिव्रता रूप का 'मातरूप' का, उसके देवी रूप का चित्रण करके प्राचीर को नवीन धरातल पर आँका है। वहीं द्विवेदी जी अपने मित्र कविवर दिनकर के इस मत से सहमत प्रतीत होते है कि 'नारी इस देश में गौरव के पद पर कम रही और लोग उसे बराबर भोग की वस्तु अथवा आनन्द का खिलौना समझते रहे हैं।''[18] द्विवेदी नारी उद्धार को साहित्यकार का कर्त्तव्य मानते हैं।

द्विवेदी नारी को भौतिक रूप में आत्मनिर्भरता दिलाने की वकालत नहीं करते। वे तो उसे तप त्याग, सेवा, संयम के उच्च भारतीय आदर्शों से समन्वित देखना चाहते हैं। वे नारी को पद्‌मिनी, सीता, अनुसुइया और गार्गी बनाना चाहते है। 'आत्मकथा' की

---

[18] 'प्रसारिका' – कवि दिनकर – जुलाई सितम्बर – 1954

निपुणिका, 'चारू चन्द्र लेख' की मैना पद्मिनी रूपा हैं, भट्टिनी सीता का संयम और विवेक लिये हैं, 'पुनर्नवा' की मृगाल और धूता देवी, अनामदास का पोथा की ऋतम्भरा, गार्गी के ज्ञान–गौरव से सम्पन्न हैं। ठीक इसके विपरीत मैत्रेयी पुष्पा जी नारी को भौतिक रूप से निर्भरता दिलाने की पुरजोर वकालत तो करती ही हैं साथ ही समाज के बनाये खोखले आदर्शों को जबरदस्ती ढोने के लिये स्त्री को बाध्य भी नहीं मानतीं। वे तप–त्याग सेवा–संयम को एक सीमा तक ही धारण करती हैं उसे सीमा के बाद वे एक विद्रोहणी और तेजस्विता के रूप में हमारे सामने आती हैं। वे सीता की भाँति मूक बनकर नहीं बैठी कि कोई आयेगा और उनके बन्धन काट कर उन्हें रास्ता दिखलायेगा, वे स्वयं अपने बंधन काटने व अपना रास्ता तय करने में सक्षम हैं यहाँ तक कि वे स्वयं पुरूषों व अपने पतियों को मार्ग दिखाने में अग्रणी हैं। फिर चाहे वह 'इदन्नमम्' की मंदा व कुसुमा हो या 'चाक' की सारंग व गुलकंदी या 'अल्मा कबूतरी' की अल्मा या 'विजन' की नेहा।

सभी नारी के लिये बनायी सीमा को लांघ स्त्री जीवन को नये सिरे परिभाषित करती हैं। वे नारी को पद्मिनी, सीता, अनुसुइया या गार्गी नहीं, अपने साथ हो रहे अन्याय के प्रति काली, दुर्गा, चण्डिका व संहारिणी बनाना चाहती हैं। वे चाहती हैं कि नारी किसी मायने में कम न रहे, कमतर न आँकी जाये। उसे सही मायने में अधिकार मिले और वह पुरूष के समकक्ष आये। यही दरकार है मैत्रेयी की। एक नारी की और मेरी।

४. वृन्दावन लाल वर्मा

वृन्दावन लाल वर्मा एक श्रेष्ठ उपन्यासकार–कथाकार हैं। उन्होंने उपन्यासों के लिये जिस कथानक जिस युग से चुने हैं, वह मध्यकालीन सामंत संस्कृति का युग था। उन्होंने कथानक की ओर विशेष ध्यान दिया है। उनके पास कथानकों का अनुपम भण्डार है। उन्होंने अपने कथानकों की आधार–भूमि बुन्देलखण्ड रखी है। कथानक का मुख्य आधार ऐतिहासिक होता है और प्रासंगिक कथाओं की योजना, जनश्रुतियों को उन्होंने अपने कथानकों का माध्यम बनाया है।

वर्मा जी की कथा–कुशलता के विषय में विद्वान मौन नहीं है। सुधी समीक्षक आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी लिखते हैं कि – ''इनके उपन्यासों में विवरणों की इतनी

प्रचुरता होती है कि उपन्यास घटना वर्णन से भरे लगते हैं। इतिहास की दूरी से घटना–विवरणों का आकर्षण बढ़ जाता है और स्वच्छता के वातावरण में घटने वाले वीरतापूर्वक दृश्य, वस्त्र व्यवहार तथा प्रेम चर्चा आदि अनोखी सबल सभ्यता का हवाला देते हैं। आदर्शवादी पद्धति जीवनानुभव से पूर्ण वर्णन–प्रधान कृतियाँ प्रस्तुत करने वाले ये उपन्यास लेखक हमारी वृहत्त्रयी में आते हैं।''

मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यास ऐतिहासिक तो नहीं, किन्तु इतिहास को साथ लेकर चलते हैं। वर्मा जी के एतिहासिक उपन्यासों में हमें तीन प्रकार के चरित्र परिलक्षित होते हैं– 1. पूर्णतः ऐतिहासिक 2. अऐतिहासिक, परन्तु जिनके मूल में कोई जनश्रुति अथवा किंवदन्ती रहती है। 3. पूर्णतः काल्पनिक, जिन्हें लेखिका ने ऐतिहासिक चरित्रों के माध्यम से उन्हीं के रंग में रंग दिया है।

मैत्रेयी जी ने इतिहास को लेकर उपन्यास लिखें हैं, इतिहास परक घटनाओं स्थानों व व्यक्ति विशेष को भी अपने उपन्यासों में स्थान दिया है, किन्तु वहाँ सर्वथा सच्चाई अपने नग्न रूप में उपस्थित है, कल्पना का कोई स्थान नहीं है। यही उनके इतिहास की विशेषता है। वर्मा जी ने जहाँ अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में ऊँच नीच, सवर्ण–असवर्ण, छूत–अछूत, राजा–रंक, सामंत–दास, अमीर–गरीब सभी प्रकार के पात्रों का चित्रण किया है, वहीं मैत्रेयी जी ने विशेष तौर पर कृषक वर्ग, निर्धन व श्रमिक वर्ग के पात्रों को अपनी लेखनी का आधार बनाया है।

दोनों ने ही अधिकतर नारी प्रधान उपन्यासों की रचना की है तथा नारी पात्रों के प्रति पवित्र और आस्थावान दृष्टिकोण अपनाया है। दोनों ने ही नारी को प्रेरणा–स्रोत, शक्ति और विश्वास का प्रतीक माना है। नारी कर्त्तव्यों का बोध कराती और प्रेरणा एवं स्फूर्ति प्रदान करती है। यथा – वर्मा जी की कचनार, मृगनयनी, महारानी दुर्गावती आदि वहीं मैत्रेयी की मंदा, कुसुमा, शीलो, सारंग, अल्मा आदि। वैसे तो वर्मा जी स्वयं पात्रों के विषय में कहते चलते हैं किन्तु अतिरिक्त पात्रों के स्वगत कथनों, कथोपकथनों एवं उनके कार्यों ने भी उपन्यासकार को उनके चरित्र चित्रण में पर्याप्त सहायता प्रदान की है, किन्तु इन सभी विधियों से बढ़कर पात्रों के रूप वर्णन से चरित्रोद्घाटन में वर्मा जी को विशेष सफलता मिली हैं। 'मृगनयनी' उपन्यास में निन्नी और लाखीं के विषय में उपन्यास का यह संक्षिप्त कथन बहुत कुछ कह देता है– ''वे दोनों समवयस्क थीं, आयु लगभग पन्द्रह सोलह वर्ष परन्तु

निन्नी बलिष्ठ और पुष्ट काया की, लाखी दुबली और छरेरी।''[19] मैत्रेयी पुष्पा जी पात्रों के विषय में बहुत कम कहती हैं पात्रों के संवाद व क्रियाकलाप ही उनके चरित्र का उद्‌घाटन करते हैं। संवादों के माध्यम से मैत्रेयी जी ने चरित्र प्रस्तुति में विशेष सफलता प्राप्त की है। यथा–

''नहीं जायेंगे बिन्नू। तुम्हें अकेली नहीं छोड़ेंगे। तुम जिन घबराओ। तुम बैठी काहे हो, लेट जाओ। हम तुम्हारे संग लेटते हैं। उस नठुआ से कल्ल कर लेंगे अपना हिसाब किताब।'' तुम पाथर न बनो। नोंने हँसों खेलो। हौसला राखो, हिम्मत से जियो। वैसे ही, जैसे अब तक रही हो। अपनी जिन्दगानी के सही–गलत का निरनय तो हमें ही लेना है बिन्नू। काट फेंको जीवन से इस कुघड़ी को। तुम अच्छत हो मंदा।''[20]

यह संवाद नारी चरित्र की दृढ़ता, आत्मविश्वास व निडरता को रेखांकित करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि–

दोनों के ही संवादों में वे सभी गुण मौजूद हैं, जो कथापेकथन को सफल बनाते हैं। उनमें तर्क, व्यक्ति विशेष के भाव, क्रियाकलापों व हास्य व्यंग्य का पुट मिलता हैं। संक्षिप्तता, सरलता, स्वाभाविकता तथा मनोवैज्ञानिकता उनके कथोपकथन के अन्य गुण हैं। मैत्रेयी के उपन्यासों में वे शब्द भरभूर मात्रा में हैं जिन्हें शहरी अशिष्ट, असभ्य तथा गंवारू कथन कह, सिरे से नकार देते हैं। लेकिन मैत्रेयी ने कथानकों व संवादों में जीवन्तता लाने के लिये वहाँ के इन बोलचाल के शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है। पात्रों की मनोवृत्तिओं और उनकी प्रवृत्तियों के अनुरूप कथोपकथन बदलते चलते हैं। विभिन्न परिस्थितियों में ढल जाना उनकी अन्यतम विशेषता है। सौन्दर्य प्रेम और वीरता के प्रसगों में श्रृंगार और वीर–रस की छटा दर्शनीय है। यथा– वर्मा जी का प्रसंग देखिये –

''छोड़ दीजिए, नहीं तो ओठों को समेटकर मुँह लटका लूँगी।''
''मैं हँस पड़ूँगा, फिर?
''आप बहुत बुरे हैं।'''
''और तुम बहुत अच्छी हो, बुरे और भले की जोड़ी का तो नियम ही है।''

[19] मृगनयनी – वृन्दावन लाल वर्मा – पृष्ठ 11
[20] इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ 94

वहीं मैत्रेयी जी का प्रसंग देखिये–

"हाथ छोड़ो।"

"नहीं।"

एकाएक मकरन्द ने अपनी बाहों के घेरे में ले लिया उसे।

वह चौंक गयी।

कसमसाने लगी।

"रही लीं हमारे बिना?" अपनी छाती से उसे चिपकाकर पूछ रहे थे मकरन्द।

पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग उपन्यास की अन्यतम विशिष्टता है। जिसमें दोनों ही सफल व सिद्ध हस्त कथाकार हैं। उनकी भाषा सीधी, सरल व सरस है। उनका कहानी कहने का ढंग इतना सीधा सादा है कि उनकी भाषा स्वयंमेव निर्मित होती चलती है। भाषा को अलंकृत करने के फेर में वे कतई नहीं पड़ते हैं। डा0 शिव कुमार मिश्र जी वर्मा जी के विषय में लिखते हैं– "जहाँ इस प्रकार की भाषा से उनके उपन्यासों का सौन्दर्य बढ़ा है, वहाँ भावों के उपयुक्त व्यक्तिकरण में शिथिलता का समावेश हुआ है। वहीं मैत्रेयी अपनी भाषा में ग्रामीण मिट्‌टी की सोंधी महक समेटे हुये हैं। दोनों ही अपनी बुन्देलखण्डीय कथाओं में बुन्देलखण्डी शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है, जो एक दूसरे के साहित्य की समानता का घोतक है। उनकी भाषा शैली में उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप परिलक्षित होती है और इस दृष्टि से दोनों ही हमारी बधाई के पात्र हैं।

वर्मा जी और मैत्रेयी जी का कथा क्षेत्र प्रायः बुन्देलखण्ड से सम्बन्धित है जिसके इतिहास और कण–कण से वे पूर्णतया परिचित हैं। वर्मा जी और मैत्रेयी दोनों ही वस्तुतः बुन्देलखण्ड की उपज हैं। उनकी प्रत्येक साँस यहाँ की पावन धरती की सुगन्ध से अनुप्राणित है। इसीलिये उनके उपन्यासों में बुन्देलखण्ड के इतिहास और समाज का चित्रण विस्तार से हुआ है। उनमें प्रकृति प्रेम, जन जीवन के उत्सवों, युद्ध, आखेट तथा प्रणय कथाओं को यथोचित स्थान मिला है। एक स्थान पर वर्मा जी ने लिखी भी है– "आप कभी बुन्देलखण्ड के स्थानों पर घूमें हो तो आपको स्मरण होगा कि हमारा यह दरिद्र खण्ड कितना विभूतिमय है। हम लोगों के पास पैसे नहीं हैं परन्तु हम लोग फिर भी फागें और राच्छर गाते हैं। अपनी झीलों और

नदी नालों के किनारे नाचते हैं और अपनी रंगीली कल्पनाओं में मस्त हो जाते हैं। हमारे यहाँ हाल में एक 'ईसुरी कवि' हुआ, इसका नाम भी यही था तथा इसकी फागें प्रसिद्ध हैं (मैत्रेयी जी ने इन्हीं ईसुरी कवि पर एक विस्तृत उपन्यास अभी हाल ही में लिखा है इसमें इन्होंने उनकी प्रसिद्ध फागों के साथ–साथ उनके जीवन के अंतरंग व अनछुये पहलुओं को बड़ी जीवन्तता के साथ प्रस्तुत किया है। उनके जीवन का सम्पूर्ण तानाबाना। रजऊ से उनके प्रेम का सजीव चित्रण आदि)। गाड़ीवान, चरवाहों, मल्लाओं से लेकर राजा–महराजा लोग उनकी फागों को झूम–झूम कर गाते हैं। बिहारी के दोहों की तरह उनकी फागें छोटी सी हैं, बहुत सरल भाषा में हैं, ओज और रस से ओतप्रोत। प्रत्येक फाग किसी मनोभाव का एक सम्पूर्ण चित्र हैं। ये ही नदियाँ, नालें, झीलें और बुन्देलखण्ड के पर्वत वेष्ठित शस्य–श्यामल खेती मेरी प्रेरणा के प्रधान कारण हैं इसीलिये मुझे 'Historical Romance' पसन्द हैं।'' और शायद यही समस्त कारण मैत्रेयी जी के लेखन के रहे होंगे, तभी वे यहाँ की सुन्दरता, सरलता, संस्कृति, रमणीयता, फागों, गीतों, राछरों, लोकगीतों से अछूती न रह सकीं। तभी तो दोनों ही के उपन्यासों में सामाजिक बुन्देलखण्ड का इतिहास और वर्तमान ग्रामीण जीवन सप्राण हो उठा है। प्रकृति चित्रण उनकी मुख्य प्रवृति है। प्रकृति के सरल और शुष्क दोनों रूपों पर उनकी दृष्टि रही है। बुन्देलखण्ड की नदियों, लम्बें चौड़े हरे भरे मैदानों, ऊँची–नीची पहाड़ियों और टूटे–फूटे खण्डहरों को बड़ी आत्मीयता से देखा और जीवन शक्ति संजोयी है। उद्धरण दृष्टव्य है–

''चैत लग गया था। बसंत ने पत्थरों और कंकड़ो तक में फुलवाड़ियाँ पसार दीं। टेसू के फूलों ने क्षितिज को सजा दिया और धरती पर रंग बिरंगे चौक पूर दिये। समीर और प्रभञजन में भी महक समा गई। रात और दिन संगीत से पुलकित हो उठे।''[21]

मैत्रेयी के प्रकृति चित्रण के कुछ दृश्य देखिये– ''पहाड़ियों से घिरी बेतवा का हरा–भरा कछार। जामुन, अर्जुन और पलास वृक्षों पर उतरती सांझ। अतल जल पर काँपते पत्तों की तरह तिरती एक दो डोंगियाँ।''[22]

---

[21] 'मृगनयनी' – वृन्दावन लाल वर्मा
[22] बेतवा बहती रही – मैत्रेयी पुष्पा

दोनों ही उपन्यासकारों के उपर्युक्त उदाहरण इस तथ्य के परिचायक हैं कि वर्मा जी और मैत्रेयी जी का प्रकृति चित्रण कल्पनाधारित न होकर पूर्णतः यथार्थ है। सम्पूर्ण बुन्देलखण्डीय प्रकृति अमर हो उनके उपन्यासों में साकार हो उठी है। इसी प्रकार उनके उपन्यासों में बुन्देलखण्ड अमर हो गया है। प्रकृति–चित्रण के अतिरिक्त जन–जीवन के उत्सवों, युद्ध, आखेट तथा प्रणय–कथाओं को भी दोनों ने अपने–अपने उपन्यासों में स्थान दिया है। नाचरंग, होली, दीपावली, फाग, आखेट सदा से ही लोक संस्कृति के अंग रहे है। वर्मा जी व मैत्रेयी दोनों के उपन्यासों में यही संस्कृति रूपायित हुई है।

बाबू वृन्दावनलाल वर्मा ने रोमांस को सवर्था अपने रंग में रंग कर प्रस्तुत किया है। उनके उन्यासों में रोमांस और यथार्थ का अद्भुत सम्मिश्रण है। उन्होने जीवन को सजीव बनाने के लिये रोमांस का आश्रय लिया है।यह उनका अपना दृष्टिकोण है। उन्होंने जिस रोमांस की कल्पना की है वह असाधारण अलौकिक और अव्यवहारिक तत्वों से सर्वथा परे है। उनका रोमांस नित्यप्रति के एक से जीवन को ताजगी, नवीनता एवं स्फूर्ति प्रदान करने वाला है। वहीं मैत्रेयी ने प्रेम की सर्वथा नवीन परिभाषा दी है। उनके उपन्यासों में जीवन और प्रेम, रोमांस के प्रमुख तत्व बनकर उभरे हैं तथापि उमें वीरता, कर्मठता, विवेक संतुलन और अन्तरदृष्टि सतत् सजग है। वे वर्तमान संघर्षों से पलायन को रोमांस कभी नहीं स्वीकारती। तभी तो उनका रोमांस जीवन के सर्वथा समीप, आसपास की मिट्टी और प्रकृति से सम्बद्ध है जो कार्य परिवर्तन द्वारा स्फूर्ति और ताजगी भरने वाला। अतः वर्मा जी के उपन्यासों में कर्तव्योन्मुख प्रेम का स्वरूप वर्णित है। 'रोमांस' के रस स्वरूप की अभिव्यक्ति वर्मा जी की मौलिक देन है। रोमांस से आपूरित उनके उपन्यास हिन्दी उपन्यास क्षेत्र की अक्षय निधि हैं। उनका महत्व युग–युगीन है। वहीं मैत्रेयी का प्रेम विषय परिस्थितियों और घटनाओं को लांघता हुआ अपना मार्ग निर्मित करता है। घटनाओं और चरित्र चित्रण का सौन्दर्य मिलकर अभिनव वातावरण की सृष्टि करता है। इसमें लेखिका को अप्रतिम सफलता मिली है।

प्रेमचन्द के पश्चात वर्मा जी ही ऐसे उपन्यासकार हैं, जिन्होंने हिन्दी उपन्यास को संख्या एवं कलात्मकता दोनों दृष्टियों से प्रौढ़ बनाया है। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में वर्मा जी मूर्धन्य है। ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रणयन

उन्होंने उस समय प्रारम्भ किया, जब इस क्षेत्र में उपन्यासों में वैदिक काल से लेकर आधुनिग युग तक की सांस्कृतिक–राजनीतिक घटनाओं का वर्णन हुआ है। उन्होंने भारतीय इतिहास के उन कथानकों को आधार बनाया है, जो भारतीय राष्ट्रचेतना के प्रतीक हैं। उन्होंने भारतीय नारी के वीरता दर्द और साहस को ही अपनी कथाओं में व्यक्त किया है।

निरूद्देश्य रचना कोई मायने नहीं रखती है। एक जागरूक कलाकार का जो कर्त्तव्य होना चाहिए, उसे वर्मा जी व मैत्रेयी जी ने बड़ी सरलतापूर्वक निभाया है। देश और समाज को प्रगति पथगामी बनाने में उनके उपन्यासों की देन अभूतपूर्व है। सामाजिक रूढ़ियों और जर्जरित मान्यताओं को उखाड़ फेंकने में दोनों ने ही अपने–अपने उपन्यासों में आवाज बुलन्द की है। अतएवं उनके उपन्यासों का निजी महत्व और उद्देश्य है।

वर्मा जी ने जिस युग में उपन्यास क्षेत्र में पग रखा था, देश में सर्वत्र सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक समस्यायें मुँह फैलाये खड़ी थीं। वर्मा जी सामाजिक थे वे भला कैसे तद्युगीन समस्याओं से अलिप्त रह सकते थे। उन्होंने अपने समस्त उपन्यासों में ऐतिहासिक और देशकाल का पूरा–पूरा ध्यान रखते हुये भी वर्तमान सामाजिक चित्रण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार हिन्दू मुसलमान ऐक्य की ओर, स्त्री स्वातन्त्र्य, विधवा विवाह, धार्मिक अंधता, दहेज प्रथा की दिशा में दोनों ही साहित्यकारों ने अपने उपन्यासों में आवाज उठायी है। हांलाकि मैत्रेयी का परिवेश बुन्देलखण्ड का ग्राम्य जीवन होने के कारण वे यहाँ की समस्याओं और स्त्री जीवन के पहलुओं पर अपनी लेखनी दृढ़ता से चला सकी हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार हिन्दी के इतिहासपरक उपन्यासों के क्षेत्र में वृन्दावनलाल वर्मा की देन हिन्दी साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि है उसी प्रकार मैत्रेयी जी की आंचलिक और ग्रामीण परक उपन्यास क्षेत्रों में। इसमें संदेह नहीं कि दोनों साहित्यकारों उपन्यासकारों की विचारधारा प्रगतिशील है और इसके लिये हम उनके साहस की सराहना किये बिना नहीं रह सकते हैं।

७. रामदरश मिश्र

स्वातंन्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य को जिन साहित्कारों ने समृद्ध किया है और दिशा दी है उनमें रामदरश मिश्र का महत्वपूर्ण स्थान है। मूलतः उनकी कृतियों में नये मूल्यों के अन्वेषण की छटपटाहट है।

रामदरश मिश्र का पहला उपन्यास 'पानी के प्राचीर' अनेक दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण है और उनके सम्पूर्ण कथाकार व्यक्तित्व की रेखाओं के साथ भविष्य की सम्भावनाओं को उजागर करने वाला है। इसी प्रकार मैत्रेयी जी के उपन्यासों व कृतियों में उनका व्यक्तित्व समाहित है। जिस प्रकार मिश्र जी के इस उपन्यास में किशोर नायक नीरू अत्याचार–अन्याय का पूरी शक्ति के साथ विरोध करता चित्रित हुआ है और उसमें स्वाभिमान है और लक्ष्य के प्रति पूरी निष्ठा। उसी प्रकार मैत्रेयी जी की नायिकायें अत्याचार व अन्याय के प्रति विद्रोह करती दिखलायी देती हैं तो वहीं स्वाभिमान, मान सम्मान और लक्ष्य से लबरेज।

मिश्र जी के इस उपन्यास में ठेठ ग्रामांचल है और खेत, किसान, खलिहान और देवरी डांठ का वातावरण है। नीरू का बाप ही नहीं, सारा गांव दरिद्र है। खेत रेहन रखकर बच्चों की शादी और पढ़ाई चलती है। इन सब के साथ साथ ग्रामीण अंचल की समस्त समस्याओं को मिश्र जी के उपन्यासों में दर्शाया गया है। 'पानी के प्राचीर' उपन्यास के सम्बन्ध में 'डॉ0 प्रभाकर माचवे' का कथन है– 'बलचनमा' और 'मैला आँचल' की तरह इसका विज्ञापन नहीं हुआ, पर यह तगड़ी कलाकृति है। औपन्यासिक गठन और अन्विति की कुछ कमी जान पड़ती है, पात्र और घटनाएं बेशुमार आते जाते हैं–लगता है, जैसे कई छोटी–छोटी कहानियों की मणिमाला हो, पर सम्मिलित प्रभाव बहुत गहरा होता है। 'बहती गंगा' के लेखक ने जैसे बनारस शब्दचित्रों मे खड़ा कर दिया, इस उपन्यास के माध्यम से गोरखपुर जिले में 'राप्ती' और 'गोर्रा' नदियों की धाराओं से घिरा एक विशाल भू–भाग यहाँ सजीव हो उठा है। लेखक का परिचय इस भू–भाग के चप्पे–चप्पे से, खेल–खलिहान से, झोपड़ी–झोपड़ी से है। उसने यहाँ के जन–जन के दुख सुख को अपनी अनुभव–सवेंदना से गृहण किया है, उसमें हाथ

बंटाया है। उसकी वर्णन शक्ति बहुत सहज और प्राणवान् है। बहुत थोड़े शब्दों में बहुत बड़ चित्र।''[23]

भारतीय उपन्यासकार गांव के बारे में हमारी मिथ्या धारणाओं को भी सामने रखता है। उसके लिए गांव दूध और शहद की नदियों वाले स्वप्न–रंजन नहीं हैं, वहाँ के झगड़े–टंटे, जाति–विष, आर्थिक विषमताएं सब उसके लिए यथार्थ हैं। मिश्र जी इसमें खरे उतरते हैं। उदाहरण के लिए 'पानी के प्राचीर' में जहाँ एक ओर प्रकृति वर्णन है, जैसे–

''हवा का हर एक झोंका किसी न किसी देवता का स्पर्श लिए झरझरा रहा है...... चाँदनी रात भी भयावनी लग रही है।.......चारो ओर लाल–लाल टेसू, लाल सेमल भवानीं की ध्वजा की तरह आकाश में जल रहे हैं।''

वहीं उस जीवन के कठिन कलेसों का भी जीता जागता यथार्थ चित्र हैं– ''मुखिया का कर्ज तो जैसे चट्टान बनकर छाती पर पड़ा हुआ है, उसे तोड़ना ही होगा। अपमान की यह जहरीली घूंट कब तक गले के नीचे उतारूँ। केशव को पढ़ाना ही होगा, लीला का अच्छा विवाह......''

यह ठीक है कि मिश्र जी का कवि कही–कही प्रबल तो उठता है और वे भावुक हो उठते हैं – ऐसे कई प्रसंग है। पर वे बार–बार चौंक कर जैसे पुनः सचेत हो उठते हैं, खुद ही। मैत्रेयी जी के बारे में भी कान्तिकुमार का कथन कि ''उनका लेखन बार–बार उनके कवि होने की चुगली खाता है, वे कविता नहीं लिखतीं, लेकिन बहुत बड़ी कवि हैं।'' दोनों ही अपने लेखन के माध्यम से पाठकों को ग्रामीण हवा के शुद्ध झोंको से बहा ले जाते हैं। बाढ़ के वर्णन या गांव में सास–बहू के झगड़े या क्रांति के प्रति गांव वालों की सहानुभूति और वर्ग विशेष की असहानुभूति इन सब विवरणों में, वे भावुकता से अपनी आँखों के आगे झीना धुंध नहीं छाने देते। इतने पात्रों के और छोटे–छोटे सूत के गुच्छों जैसे कथोपकथन प्रसंगों के बावजूद एक विराट सत्य यथार्थता से सबको घेरे रहता है।

मिश्र जी के अन्य उपन्यास जल टूटता हुआ, बीच का समय, सूखता हुआ तालाब, अपने लोग, रात का सफर व आकाश की छत सभी में मानवीय संवेदनाओं और

---

[23] उपन्यासकार – रामदरश मिश्र – सम्पादक : डॉ0 वेदप्रकाश अमिताभ : डॉ0 प्रेम कुमार

समन्वय को प्रमुखतः दी है। नागार्जुन और फणीश्वरनाथ रेणु की पहली सशक्त औपन्यासिक कृतियों में 'ऐंटी रोमैंटिक (कोमल–कोमल, सुन्दर–सुन्दर,, कला–कला के लिए का विरोध) प्रचुरमात्रा में था। रामदरश मिश्र जी ने दोनों एकांतिकताओं से बचकर एक समन्वय–निर्माण करने का प्रयत्न उपन्यासों में किया है।

आंचलिक उपन्यासों की ओर से कहा जा सकता है कि जब तक वे स्थानिक बोली का प्रयोग न करें, वहाँ की सच्ची रंगत नहीं आ पाती, उपन्यास के मूल स्वर की आधिकारिकता कम हो जाती है। इस विषय में भी मैत्रेयी जी मिश्र जी की अपेक्षा बीस ही बैठती हैं, क्योंकि मिश्र जी ने जिस भाषा या बोली का प्रयोग ग्रामीण अंचल विशेष के व्यक्तियों के मुख से किया है, वह सर्वग्राह्य नहीं है, सर्वमान्य व साधारण व्यक्ति उसे समझने में गच्चा खा सकता है, जबकि मैत्रेयी जी की भाषा–बोली में मूल स्वर, मूल गन्ध व मूल रंग होने की वजह से वे सर्वग्राह्य, सर्वप्रिय व सार्वजनिक बन सकें। हालांकि परिपक्व जीवन दृष्टि और वयस्क अनुभव के तालमेल से रचे गये रामदरश मिश्र के उपन्यास 'उपन्यास विधा की असाध्य वीणा' को भली भांति साधने की गवाही देते हैं। उनके उपन्यासों के बोध और सरंचना को समझने के लिए अलग ढंग का प्रयास वांछनीय है। चाहें उनकी रचनाओं को 'सामाजिक अन्तर्विरोधों' के संदर्भ में जांचा जाय चाहे उनमे 'मानवीय संकल्प का विघटन' मार्क किया जाय सर्वत्र एक सुलझी हुई आलोचकीय दृष्टि उनके लेखों में उपस्थित है।

६. जैनेन्द्र

सन् 1928 में जैनेन्द्र कुमार ने 'परख' उपन्यास के साथ हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया और उस लघुकाय उपन्यास की मौलिक सूझबूझ और स्वल्प कथा सूत्रता ने हिन्दी पाठक का ध्यान आकृष्ट किया। प्रेमचन्द जैसे विख्यात लेखन का ध्यान भी परखने हेतु खींचा और जैनेन्द्र का साधुवाद किया।

इसी प्रवाह में जैनेन्द्र ने कथा साहित्य को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर कहानी और उपन्यास लिखना शुरू किया। चौथा और पांचवा दशक जैनेन्द्र की रचनाओं का है। उनके वैचारिक लेखों और प्रश्नोत्तरी में उनकी औपन्यासिक रचनाओं के वस्तु एवं शिल्प के स्रोत खोजे जा सकते हैं। जो मैत्रेयी जी के उपन्यासों में स्पष्ट

दृष्टिगोचर होते हैं। दोनों ही महान कथाकारों की रचनाएं मर्मज्ञ एवं रसज्ञ पाठकों के ध्यानाकर्षण का विषय बन गयी हैं।

मैत्रेयी पुष्पा और जैनेन्द्र दोनों उपन्यासकारों के वस्तु तथा शिल्प में जो अन्तर है, वह स्पष्ट देखा जा सकता है। जैनेन्द्र कहानी या कथ्य को प्रमुख नहीं मानते जबकि मैत्रेयी कहानी की मार्मिकता को नहीं छोड़ती। जैनेन्द्र के पात्र मनोग्रंथियों से आबद्ध रहते हैं। मैत्रेयी जी के पात्र ग्रंथियों को खोलते और अपनी बात आकर्षक शैली में कहते हैं। ऐसा नहीं है कि मैत्रेयी जी के पात्र मन के स्तर पर मौन रहते हों। वे भी मन के स्तर पर पूरी तरह सजग रहते और मानसिक आवेग, संवेग, उद्वेग सबसे अभिभूत रहकर अपनी मर्मव्यथा को व्यक्त करते हैं। जैनेन्द्र जी की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत सूक्ष्म रहती है। विचार और चिंतन की सूक्ष्मता के कारण कभी–कभी सामान्य पाठक भावों के उद्वेलन को पकड़ नहीं पाता। मैत्रेयी पुष्पा जी ने 'सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावोद्वेलन की संवेदना' की अभिव्यक्ति की सहज शैली अपनाकर पात्रों की व्यथा, वेदना, करूणा, पीड़ा और कचोट को संवेदनीय बनाकर प्रस्तुत किया है।

जैनेन्द्र में शुरू से ही एक बात रही है। उन्होंने अपनी अन्तर की आवाज को कभी नहीं दबाया। जैनेन्द्र आत्मा की आवाज को महत्व देते थे। चाहे जवाहरलाल हों, चाहे पं0 सुन्दर लाल अपनी बात को प्रकट करने में उन्हें कभी झिझक महसूस नहीं हुयी। इसीलिए हमें उनके पात्रों में एक विशेष प्रकार की घुमड़न, एक तीव्र लावा,, भावावेग मिलता है, जो शब्दों में फूट पड़ना चाहता है, सारे रीति–रिवाज, नीति–नियम, कायदे–कानून को अपने साथ बहा ले जाना चाहता है। यही भाव मैत्रेयी जी में भी बखूबी देखने को मिलता है।, इसका सबसे अच्छा उदाहरण उनकी विचार विमर्श सम्बन्धी पुस्तक 'खुली–खिड़कियाँ ' है, जिसमें उन्होंने अपने अन्तस की आवाज को बडी 'स्वतन्त्रता' के साथ प्रस्तुत किया है।

मैत्रेयी जी और जैनेन्द्र जी के लेखन में समानता का प्रमुख कारण–प्रेम तत्व के प्रति समर्पण है– देह उसमें कहीं भी बाधक नहीं है। अहं और कुण्ठा का विगलन जैनेन्द्र की पात्र सृष्टि इसी धुरी के आस–पास घूमती रहती है। देह देकर ही जैनेन्द्र की नारी राहत पाती है। वह अपने व्यक्तित्व के प्रति अत्यन्त सजग है और पुरूष द्वारा वह अपना स्वीकार चाहती है, किन्तु अपने अंतिम सर्वाधिक विवादस्पद उपन्यास 'दर्शार्क' में उनकी यह जीवन–दृष्टि एकदम बदल जाती है। 'दर्शार्क' की रंजना पुरूष

की काम ग्रन्थि का उपचार तो करती है किन्तु अपने मूलधन देह को वह सदा सुरक्षित रखती है। और अंत में यह व्यापार चलाते–चलाते वह गृहस्थी के शान्त जीवन की ओर लौटना चाहती है। जैनेन्द्र ने अहं और प्रेम, समर्पण और अधिकार, बुद्धि और भावना, हिंसा और अहिंसा, जीवन और मृत्यु आदि को लेकर अपने उपन्यासों में एक दर्शन देने की कोशिश की है किन्तु, उनका यह दर्शन विशुद्ध रूप से दर्शन नहीं दर्शन का आभास मात्र है। कथा–साहित्य में दर्शन पात्रों के जीवन से उभरना चाहिए जबकि जैनेन्द्र के उपन्यासों में दर्शन और विचार ऊपर से थोपा हुआ लगता है। विचार और जीवन दर्शन मैत्रेयी के उपन्यासों में भी है, किन्तु वह पात्रों के जीवन के संदर्भ में व्यक्त होता है। वह भी टुकड़ो–टुकड़ों में, थोक में नहीं। जीवन दर्शन में पीछे पात्र का विश्वास और उसका जीवन खड़ा रहता है।

जैनेन्द्र का व्यक्तित्व जहाँ उनकी चिंतन प्रक्रिया, उसकी गहराई, जटिलता और अंत में एक रहस्य की ओर संकेत करता है वहीं मैत्रेयी का व्यक्तित्व चिंतन, गहराई, जटिलता की ओर तो जाता है लेकिन उसमें रहस्य नहीं है सब ओर खुला–खुला यथार्थ का चित्रण है। जहाँ जैनेन्द्र के उपन्यासों का अंत मूलतः दुखद है। वहीं मैत्रेयी जी के उपन्यासों का सुखद व यथार्थ व आदर्श का सम्मिश्रित अन्त। जैनेन्द्र पात्रों का दुःख हमें उत्तेजित और रोष से भर देता है जबकि मैत्रेयी के उपन्यासों का अन्त हमें करूणा से विगलित कर देता है। शायद इसका कारण एक में वैचारिकता की प्रधानता है और दूसरे की आर्द्रता। मैत्रेयी जी के कथानक पाठकों के ह्रदय को विगलित कर देते हैं जबकि जैनेन्द्र की कथावस्तु हमें तनाव से पूर्ण। पीड़ा व प्रेम को दोनों ने ही आधार बनाया है। एक में पीड़ा की विवेचना है, इसका जानबूझ कर वरण है दूसरे में पीड़ा की छटपटाहट है, उसका भोग है। जैनेन्द्र के कथानक घटनाओं से विहीन हैं जबकि मैत्रेयी के कथानक घटनाओं दर घटनाओं के सहारे ही आगे बढ़ते हैं यद्यपि इन घटनाओं को गति चरित्र प्रदान करते हैं और जैनेन्द्र में पात्रों के विचार।

७. मैत्रेयी पुष्पा

(पुरूष उपन्यासकारों से तुलनात्मक अध्ययन)

स्वतन्त्रता के बाद के बदले हुये संदर्भो में साहित्य का अप्रभावित रहना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य ही था। साहित्य सदैव युग की बदली हुई परिस्थितियों में

विघटनकारी और प्रतिक्रियावादी शक्तियों के विरूद्ध चल रहे संघर्ष का लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है। इस संघर्ष की इस अभिव्यक्ति में सम्बन्धों, मूल्यों और विचारों में आये परिवर्तन की चर्चा स्वतः हो जाती है। स्वतन्त्रता के बाद का साहित्य स्वतन्त्रता पूर्व साहित्य से कई मायनों में भिन्न है। पहली बात तो यह कि यथार्थ चित्रण का इतना प्रबल किन्तु संयमित आग्रह पहले को पहचानने और अभिव्यक्त करने में साहित्यकारों ने विशेष सजगता और जागरूकता का परिचय दिया। यथार्थ के विभिन्न स्तरों और आयामों को उद्‌घाटित करते हुए वे जन, साधारण के मानसिक पारिवारिक सम्बन्धों में उलट फेर, नारी की प्रतिष्ठा आदि का उल्लेख स्वतन्त्रोत्तर साहित्य में बराबर होता रहा हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि अपने लेखन के प्रति साहित्यकार ईमादार रहा है। यह रचनात्मक ईमानदारी कथा–साहित्य मे सर्वाधिक दिखाई देती है। लेकिन सातवें दशक में कहानी निरर्थक वाद विवाद के दलदल में फंसती गयी और केन्द्रिय विधा का स्थान उपन्यास ने ग्रहण कर लिया। स्वतन्त्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास की उपलब्धियाँ नगण्य नहीं हैं। धर्मवीर भारती की टिप्पणी के अनुसार हिन्दी ने गत चार दशकों में चार शताब्दियों की यात्रा पूरी करने का प्रयास किया है। हिन्दी उपन्यास की इस प्रशस्ति के पीछे सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इसमें स्वातन्त्रयोत्तर जीवन–यथार्थ का विशद और बहु आयामी चित्रण हुआ है। इस दृष्टि में स्वातन्त्रयोत्तर औपन्यासिक कृतियाँ–मैला आंचल, झूठा सच, अमृत और विष, आधा गांव, अपने लोग, राग दरबारी, बलचनमा, अलग अलग वैतरणी आदि विश्व के स्तरीय उपन्यासों की तुलना में गौरव के साथ रखी जा सकती है। इसमें स्वतन्त्र भारत की लगभग तीन दशकों की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक प्रगति और अवनति का समूचा इतिहास लिपिबद्ध है।

कुछ गिने चुने उपन्यासकारों ने उपन्यास को लेकर शिल्पगत चमत्कार का प्रदर्शन किया है और उन्हें प्रशंसा और प्रतिष्ठा भी मिली है, इसके बावजूद अधिकतर उपन्यासकार शिल्प के प्रति उतने सजग या सचेत नहीं है, जितने कथ्य के प्रति। निरन्तर नयी कथा भूमियों की तलाश और उसमें समाज के बहुसंख्यक वर्ग के दुख सुख की अभिव्यक्ति उनकी मुख्य चिन्ता रही है। यह बात और है कि कथ्यगत मौलिकता शिल्पगत नवीनता को जन्म दे गयी है, क्योंकि किसी भी कृति में कथ्य, और शिल्प अलग–अलग न होकर परस्पर अनुस्युक्त होते हैं।

इसी प्रकार अधिकतर उपन्यासकारों से प्रथक मैत्रेयी पुष्पा जी ने कथ्य को प्राथमिक मानकर अपनी प्रतिभा का उत्तमांश उसी को गढ़ने और मांजने में समर्पित किया हैं। इस दृष्टि से समकालीन हिन्दी उपन्यास के कथ्य का अनुशीलन न केवल आवश्यक अपितु महत्वपूर्ण भी है। केन्द्रिय विधा होने के नाते उपन्यास के कथ्य के विश्लेषण से मैत्रेयी जी के समूचे समकालीन उपन्यास साहित्य पर नजर डाली जा सकती है।

मैत्रेयी पुष्पा नई पीढ़ी की बहुचर्चित लेखिका। बुन्देलखण्ड के ग्राम्यांचल के जन–जीवन का जिनकी रचनाओं में बड़ी मार्मिकता के साथ चित्रण हुआ है। ग्रामीण सुलभ सहजता एवं अनगढ़ता इनकी रचनाओं की अपनी विशेषता है। सम्भवता यही इनकी आंचलिक पृष्ठभूमि पर लिखी रचनाओं की लोकप्रियता का सबसे बडा कारण भी है।

"किस्सा और दृष्टि को जोड़ने वाला तत्व "उपन्यास" में चरित्र–दृष्टि है। कहीं–कहीं मुखर हो जाने के बावजूद प्रेमचन्द की चरित्र–सृष्टि ऐसी विशिष्ट है कि उसमें लेखकीय सहानुभूति का बंटवारा नहीं किया जा सकता। उनके यहाँ बुराई और अच्छाई है, बुरे और अच्छे चरित्र नहीं। वे जब भी जिस चरित्र को खड़ा करते हैं उसे इतना बना देते हैं कि उसकी दुष्ट प्रवृत्तियों से तो हम घृणा करते है पर उस व्यक्ति से नहीं। बड़ा उपन्यासकार बहुत बार अपने चरित्रों का संसार इसी तरह निर्मित करता है।"[24] मैत्रेयी पुष्पा उपरोक्त दृष्टिकोण में खरी उतरती हैं।

"गांव की लड़कियां सासरे से पहिली बार मायके आने के बाद अपनी गुइयों से सारी भेद भरी बातें जिस आसानी से कहती सुनती हैं, उसी आसानी से मैत्रेयी अपने पाठकों से बोलती बतियाती हैं। उनके पास पौराणिक मिथकों की अवशेष स्मृतियाँ हैं, हिन्दी के नये पुराने कवियों व लेखकों के ढेर सारे उद्धकरण है। सिनेमा के लोकप्रिय गीत है और गांवों की टटकी कहनाते हैं। वे कथारस केवल गल्प से ही पैदा नहीं करती, गल्ल से भी करती हैं। पंजाबी का गल्ल संस्कृत गल्प का ही विकसित अर्थान्तरण है। हिन्दी गप्प भी उसी कुल का है। गल्प, गल्ल और गप्प का कॉकटेल बनाने में माहिर मैत्रेयी इस कॉकटेल की 'किक' को जानती हैं। यदि न जानती होती तो अपने संक्षिप्त से प्राक्कथन में वे यह न कहती – "हो सकता है जो घटा हो, वह

[24] हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास – श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी

कहानी में न हो और जो हो व जीवन में न घटा हो मगर यादों में मुक्कमल तस्वीरें जिंदा हैं, वे ही कहानी का आधार हैं, भले वे किसी और से सुनी हों या अपने परिवार की किंवदंतियाँ रहीं हों।"[25]

"मैत्रेयी ने यथास्थान अपने प्रिय कवियों का उल्लेख तो किया है किन्तु अपने प्रिय नाटककारों का नहीं। "शायद जीवन के मंच पर जीवित पात्रों के रूप में खेला जाने वाला नाटक ही मैत्रेयी को सर्वाधिक प्रिय हैं वे इस नाटक की दर्शक भी हैं और चरित्र भी। निर्देशक भी। मैत्रेयी के दृश्य स्थिर नहीं हैं, वे गत्यात्मक हैं। बिहारी के दोहे की उस नायिका और नायक' के क्रियाकलाप की तरह जो–

कहत सुनत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात,
भरे भौन में करत हैं, नैनन ही सौ बात।

मैत्रेयी आंखों से बात करने की कला में पारंगत हैं। सीता की तरह वे तिरीछे नयनों से काम लेना जानती हैं। वे, आंखों से बात करती हैं तो वे देखती काहे से हैं? देखती वह कैमरे की आंख से हैं, एपर्चर एडजस्ट करते हुये और यह तय करते हुये कि शाट कौन सा ठीक रहेगा– लाँग, शार्ट या मिड।"[26] जबकि अन्य लेखक गण लिखते समय इस बात का ध्यान नहीं रखते।

मैत्रेयी जी के साहित्य का प्रबलतम् पक्ष है कि वे जीवन की सच्चाई को पूर्णता में देखती है वे जीवन में निहित आदर्श को यथा सम्भव यथा अवसर चित्रित कर पात्रों में ही निहित आदर्श और यथार्थ का मिश्रित स्वरूप हमारे सामने लाती हैं। एकदम वास्तविक रूप। सच्चाई से लबरेज। अच्छाई और बुराई को छूता, किन्तु आदर्श भी। यानि ऐसा रूप जो पाठकगण को हर हाल में अपने व्यवहार से प्रभावित कर उसे आदर्श या प्रगति के पथ पर अग्रसर करे। आगे बढ़ाये उसके सद्‌भाव जगाये। कर्म कराये।

मैत्रेयी जी का साहित्य मुख्य रूप से स्त्री के हक में लिखा गया साहित्य है। जहाँ प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, फणीश्वरनाथ रेणु, वृन्दावन लाल वर्मा, नागार्जुन, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि ग्रामीण पृष्ठभूमि पर लिखने वाले उपन्यासकार भारतीय संस्कृति,

---

[25] सनाका खाये समय और साहित्य में हलचल मचाती एक आत्मकथा – कान्तिकुमार जैन – पृष्ठ – 47
[26] 'साक्षात्कार' – कान्तिकुमार जैन – अगस्त 2003 – पृष्ठ – 48

सभ्यता, ऐतिहासिकता, भारतीय गौरव, लोकगीत, स्त्री जनित–शालीनता, लोकाचार, धर्म और स्त्री शर्म की रक्षा करते दिखलायी देते हैं वहीं मैत्रेयी सिर्फ 'स्त्री रक्षा अभियान' चलाती दिखलायी देती हैं। 'स्त्री जैविकता' के हक में लिखे गये उपन्यासों में वे स्त्री की मुक्ति, पुरूष से मुक्त में नहीं, पुरूष समकक्षता में मानती हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण उनका उपन्यास 'चाक' है। जिसकी सारंग अपने पति रंजीत के अत्याचारों मारपीट, उलहानों–कटाक्षों से मुक्ति नहीं चाहती, वह तो उसके विचारों की मुक्ति चाहती। इसी से वह बार–बार सब सहन करते हुये भी उसी के समीप बनी रहती और उसे अपने साहस, ज्ञान व तर्क से यह सोचने पर मजबूर कर देती है कि स्त्री किसी मायने में पुरूष से कम नहीं। तभी तो रंजीत विचारों में निमग्न कई बार यह सोचते हैं– 'कि सारंग ठीक ही करती हैं।' बस यही बात, यही भावना जो पुरूष स्त्री के प्रति अपने मन में दबाये बैठा रहता है, अहम–वश बाहर नहीं लाता, उसे मैत्रेयी बाहर लाना चाहती हैं और इसमें वे काफी हद तक सफल भी दिखलायी देती हैं, चूंकि अंततः उनके उपन्यासों मे पुरूष–सत्तात्मक समाज नारी सत्ता को स्वीकार करता दिखलायी देता है। दोनों की मिली जुली सत्ता कहानी में नये रंग व सुगंध बिखेर देती है।

मैत्रेयी जी लोक जीवन के परिप्रेक्ष्य में साहित्य को परखती हैं। उसकी समीक्षा का आधार मानवतावाद है। उन्हेंने नारी जीवन समीक्षा पद्धति की नयी नीवं डाली है। उनके समस्त उपन्यासों, कहानी संग्रहों के अतिरिक्त अब तक लिखे समस्त लेख स्त्री जीवन के हक की मांग करते हैं। उन्होंने अब तक लिखित उपेक्षित नारी साहित्य का पुर्नमूल्यांकन करके, नारी के प्रति एकतरफा व अधूरे विचारों को पूर्णता प्रदान की है। उनके साहित्य को 'एक नारी का साहित्य ' कहकर नहीं टाला जा सकता है। यहाँ हक व अधिकार के तर्क मौजूद हैं।

उनका साहित्य बुन्देलखण्डी शब्दों का भण्डार है। शब्दों की पारखी मैत्रेयी ने उनका चुनचुन कर प्रयोग किया है, जिसे पाठक सरल व सहज रूप में ग्रहणकर अपनी जमीं से जुड़ा रहता हैं। ग्रामयत्व शब्दावली का प्रयोग बड़ा ही सटीक किया गया है। पात्रानुकूल भाषा। हर पात्र की अपनी अलग ढंग की भाषा। मैत्रेयी इसमें हस्तकुशल हैं। ऐसा लगता है प्रत्येक पात्र के रूप में वे स्वयं उसका जीवन जी रही हों। हिन्दी की प्रकाण्ड विद्वान व ग्रामयत्व भाषा की पक्षधर मैत्रेयी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जहाँ एक ओर ग्रामीण संस्कृति व नारी जीवन का चित्रण किया है वहीं दूसरी ओर

हिन्दी साहित्य को एक नवीन भाषा व दृष्टिकोण भी प्रदान किया है। स्वयं मैत्रीय जी का यह कथन उनके सम्पूर्ण साहित्य का सार लिये हुये है– "दरअसल पहले पहल जब लेखक का साहित्य क्षेत्र में प्रवेश होता है, तो वह शब्द की विराट दुनिया को चकाचौंध होकर देखता है। वह कहाँ खड़ा हैं, इससे बेखबर सा। लिखने की चुनौतियों से ज्यादा अपना नाम छपा देखकर विभोर हो जाता है। कुछ भ्रम भी पाले रहता है, पाठक को प्रभावित करने के लिए। पता नहीं औरों के साथ ऐसा हुआ या नहीं, लेकिन मेरे साथ ऐसा ही हुआ– करूणा के साथ दया, संवेदना के साथ तरस और अभिव्यक्ति को तरल भावुकता में सानकर छायावादी भाषा के सहारे लिखने लगी। सांस्कृतिक तत्सम शब्दों के व्यामोह से पीड़ित लेकिन एक छोटी सी ताकतवर लौ के साथ, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अंधेरे को चीरकर मानवीय मूल्यों को झलका सके, जगमगा सके।"[27]

२ अ. उपन्यास साहित्य में मैत्रेयी पुष्पा का साहित्यिक योगदान

नारी संबंधित विभिन्न लेखक व लेखिकाओं की विविध धाराओं में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य नारी की अतृप्ति, टूटना फिर जुड़ना है। पारिवारिक, सामाजिक दार्शनिक, आदर्शवादी, यथार्थवादी आदि सभी विचारधाराओं में सत्यं–शिवं–सुन्दरम को खोजती नारी का जीवंत चित्रण समकालीन उपन्यासों का मुख्य कथ्य है।

भारतीय साहित्य और समाज में भारतीय नारी, नारी के समस्त गुणों को रो–पीटकर भी पालन करती दिखायी देती है। वह परित्यक्ता, तलाकशुदा, वैधव्य के बाद पुनः विवाह करती, नौकरी कर पति पर रौब जमाती, कॉलगर्ल, गर्ल फ्रैण्ड, बेटी, बहिन, पत्नी, प्रेमिका एवं माँ न जाने कितने रूपों में विभिन्न प्रतिबिम्मों में, विविध प्रकारों में, विविध परिणतियों में दर्शन कराती हुयी उपन्यास साहित्य में मौजूद है। मैत्रेयी पुष्पा जी अन्य उपन्यासकारों की अपेक्षा नारी के मूल रूप स्वरूप को नकारती–स्वीकारती जीवन को जीवंत बनाने में सर्वाधिक सक्रिय एवं गतिशील दिखायी देती हैं। वे नारी के प्रति व नारी की नवीन धारणा प्रस्तुत करती हैं।

---

[27] 'चिन्हार' कहानी संग्रह की 'भूमिका' से – मैत्रेयी पुष्पा

जैसे जीवन का दूसरा नाम साहित्य, वैसे साहित्य का दूसरा नाम जीवन। जीवन की सार्थकता नर और नारी के पारस्परिक संबंधों पर निर्भर है। नारी पुरूषत्व का आधार है। बिना उसके मानव अपने जीवन में एक बहुत बड़े अभाव का अनुभव करता हैं। इसी रिक्तता का सफलतम चित्रण मैत्रेयी जी ने अपनी उपन्यासों 'झूलानट', अल्मा कबूतरी, इदन्नमम, बेतवा बहती रही, आदि में किया है। जिस प्रकार पुरूष बगैर यदि नारी को सदियों से अधूरा माना जाता रहा है और इस बात की पुष्टि सदियों से साहित्य करता चला आ रहा, इस धारणा को तोड़ मैत्रेयी जी आगे बढ़ उस धारणा के करीब पहुंचती है जहाँ हमारे मुनि ऋषिगण भी इस बात को स्वीकारते पाये जाते हैं कि नारी बिना तो समस्त देवता भी अधूरे हैं इसलिए हमारे देवताओं के साथ भी उनकी स्त्रियों के नाम जुड़े ही नहीं अपितु आगे रखे गये हैं – जैसे गौरी शंकर, राधेश्याम, लक्ष्मी नारायण, सीताराम, आदि, फिर हम साधारण मानव उस (नारी) को उचित सम्मान व स्थान क्यों नहीं देते?

भारतीय साहित्य में नारी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है बिना उसके साहित्य सृजन ही असम्भव है। भारतीय परम्परा और हिन्दू शास्त्रों में नारी को 'श्री' कहा गया है। 'नर' के 'न' और 'र' दोनो वर्ण 'ह्रस्व' तथा 'नारी' के 'ना' और 'री' दोनों वर्ण दीर्घ होते हैं, इससे ही घोषित होता है कि नारी का स्थान नर से ऊँचा है। उसका स्थान ही नहीं उसकी सोच, संवेदना, गहराई सब ऊँचे हैं। अनेकानेक उपन्यासकार नारी प्रधान उपन्यास लिख इस बात को तो प्रमाणित करते हैं कि नारी का स्थान ऊँचा है, वह पूज्यनीय है, माँ है, पर इस तह तक जाने की कोशिश नहीं करते कि उसकी भी अपनी अनुभूतियाँ हैं, संवेदनायें हैं, सपने हैं। मैत्रेयी पुष्पा जी ने प्रथम बार बुन्देलखण्ड की जमीं पर रची बसी नारी के माध्यम से उसके निजी व्यक्तित्व की गहन पड़ताल की है। वे नारी की निजी अनुभूतियों व संवेदनाओं के करीब जाकर उसका विश्लेषण करती प्रतीत होती हैं। ये संवेदनायें इतनी सजीव व सटीक हैं कि प्रत्येक नारी पात्र की अनुभूति मानो लेखिका की अपनी अनुभूति बन गयी हो, मानो प्रत्येक घटना चक्र लेखिका के इर्द गिर्द घटित व सम्पन्न हो रहे हों और लेखिका चाहकर भी उससे प्रभावित हुये बगैर नहीं रह पा रही हो।

मैत्रेयी जी के समस्त उपन्यासों का मुख्य आधार है, बुन्देलखण्ड का ग्रामीण जीवन और सामाजिक विद्रूपतायें। बुन्देलखण्ड की जमीं को अपने उपन्यासों का आधार

बनाकर उपन्यास लिखने वाले हिन्दी संसार में बहुत ही कम लोग है और इतनी सजीवता व उत्कृष्टता से तो कोई भी लेखक व लेखिका ने यहाँ की संस्कृति व सभ्यता का परिचय नहीं दिया। यह हिन्दी साहित्य को उनका (मैत्रेयी जी का) विशेष योगदान है।

जब चहुँओर आधुनिकता की भागमदौड़ मची ऐसे में मैत्रेयी ने गांव ग्रामीणों की कहानियां लिखकर सबको चौंका दिया है वहीं पाठकों को एक मानसिक सुकून भी प्रदान किया हैं, क्योंकि पाठक–गण भी वहीं सब आधुनिक स्त्री पुरूष सम्बन्ध, नगरीय समस्यायें, छल–प्रपंच, भ्रष्टाचार, आदि के बारे में पढ़ और भोग कर मानसिक शान्ति खोता जा रहा था। और अपनी ग्रामीण संस्कृति से कटता जा रहा था। मानव को पुनः अपनी संस्कृति सभ्यता व जमीन से जोड़ने का कार्य जो मैत्रेयी जी ने किया वह हिन्दी साहित्य में अविस्मरणीय है।

फणीश्वर नाथ 'रेणु' वृन्दावन लाल वर्मा, प्रेमचन्द, प्रसाद आदि दो चार लेखकों को छोड़ दें, तो ग्रामीण परिवेश का चित्रण करने वाले बहुत कम ही उपन्यासकार हैं, वर्तमान समय में तो एक भी नहीं। आज का लेखक नगरीय जीवन को भोगता व गढ़ता है। चहुँ ओर आधुनिकता से पटा जीवन। शायद इसी कारण वह नगरीय जीवन को अपने उपन्यासों का आधार बनाये हुये हैं। मैत्रेयी पुष्पा जी आधुनिकतम शहर (नोएडा) व आधुनिकतम साज सज्जाओं से 'लैस' घर में रहने के पश्चात भी अपने आप को नगरीय जीवन से अछूता रख ग्रामीण जीवन से जोड़े हुये हैं। यह उनके सादा–सरल व्यक्तित्व को देखकर सहज अनुमान लगाया जा सकता है। इसका सबसे बड़ा कारण उनका पिछला जीवन है जो अधिकांश बुन्देलखण्ड की जमीं पर व्यतीत हुआ है, शायद इसी कारण मैत्रेयी जी अपने उपन्यासों में बुन्देलखण्ड के उन अंतरंग अनछुये और अकथनीय पहलुओं का इतनी सजीवता व जीवटता के साथ अन्वेषण और विश्लेषण कर सकीं, जिसका कोई अन्य लेखक व लेखिका नहीं कर पाया।

"मैत्रेयी अपने जनपद के सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक जीवन को खंगालती है, वह खंगालने से निकलने वाली मलिनता की ओर भी सजग और सावधान हैं। ऐसे मौकों पर वह बुन्देलखण्ड के कस्बो खण्डों में अपनी टुकनिया झाडू लिये उस नरक की सफाई करने वाली हलालखोर की तरह लगती हैं जिसे न गंदगी से परहेज है, न बदबू से। मुक्तिबोध की यह कविता मैत्रेयी पर सटीक बैठती है–

'जो है उससे बेहतर चाहिए दुनिया को साफ करने के लिए मेहतर चाहिए।'

मेहतर यानि महत्तर। महत्तर यानि वह जो ऐसे काम करता है जो दूसरा नहीं कर सकता। मैत्रेयी पुष्पा का दर्जा समाज में भी महत्तर का है और साहित्य में भी। जो उससे परहेज करे या उसे, देख पढ़कर अपनी नाक पर रूमाल रख ले, रखते रहें, किसी बड़े उद्देश्य के लिए यह सब तो झेलना ही पड़ेगा। मैत्रेयी निरन्तर आक्षेपों को झेलते हुये समाज को नवीन व स्वच्छ व स्वच्छन्द वातावरण प्रदान कर रहीं हैं।''[28]

सर्जनात्मक कल्पना के कारण यह कृतियां जितनी उपन्यास लग सकती हैं, उतनी ही अपनी आंखों के आगे और अपने साथ घटित हुए के कारण यथार्थ। घनघोर संवेंदनाओं से आपूरित मैत्रेयी जी के उपन्यास गहरे मानवीय सरोकारों से लबरेज हैं।

''अज्ञेय कृत 'शेखरः एक जीवनी' पहली बार पढ़ने के बाद अमृतराय ने तब के हंस में लिखा था कि 'शेखरः एक जीवनी' अपनी कथा के अलावा हिन्दी भाषा के सौन्दर्य के लिए भी पढ़ी जानी चाहिए। मैत्रेयी जी के उपन्यास पढ़ने के बाद मैं कहना चाहूँगी कि ये उपन्यास नारी की जिन्दगी से जुड़े विविध पहलुओं को जानने समझने और उसकी कुंठाओं, प्रवचनाओं और वर्जनाओं के लिए, साथ ही मैत्रेयी जैसे अत्यनत छोटे गांव कस्बों में पली बढ़ी स्त्री के आहलावनकारी साहस के अतिरिक्त हिन्दी भाषा के सामर्थ्य के लिए भी पढ़े जाने चाहिए साथ ही मानव जीवन में गढ़े जाना चाहिए।''[29]

'शेखर' की भाषा स्त्रीत्व से भरी हुई शालीन, सुष्ठु और शोभामयी है। मैत्रेयी की नायिकाओं की भाषा साहसिक, साझा और पुरूष हैं। कहते हैं कि शरबती गेंहू (उत्तम गेंहू) की उपज जब कम होने लगती है तो अनुभवी किसान इसके साथ कठिया (गेहूँ की एक किस्म) मिलाकर बोते हैं। जिससे गेंहू की उपज बढ़ जाती है। और उसका स्वाद भी। मैत्रेयी जी ने अपनी हिन्दी में ब्रज और बुन्देली की कठिया मिलायी है एक चतुर किसानिन की भांति। उन्हें अपनी भाषा के माध्यम अपनी बात निकलवाने की कला आती है। जो बात वे स्वयं नहीं कह सकतीं, उन्हें वे बड़ी चतुरता के साथ पात्रों के संवादों के माध्यम से कह लेती हैं।''[30]

---

[28] सनाका खाये समय और साहित्य में हलचल मचाती एक आत्मकथा– कान्तिकुमार जैन – 51– 40
[29] सनाका खाये समय और साहित्य में हलचल मचाती एक आत्मकथा– कान्तकुमार जन – 51– 52
[30] सनाका खाये समय और साहित्य में हलचल मचाती एक आत्मकथा– कान्तिकुमार जैन – 51

भाषा के किसी शब्द का अर्थ जब जीवन की अनुभूति से जुड़कर समझ में उतर आता है, तो वह केवल मन मस्तिष्क तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि हृदय की गहराई तक पहुंच जाता है। 'इदन्नमम' एक ऐसा ही शब्द है, जिसकी गहन सार्थकता को समझने का अवसर मुझे इस उपन्यास की लेखिका मैत्रेयी जी ने दिया। 'इदन्नमम' –यानि 'यह मेरा नहीं'। वास्तव में हर रचनाकार, साहित्यकार जो कुछ रचता है वह वास्तव में उसका नहीं होता, वह उसका अनुभव होता है, जो वह साहित्य के माध्यम से समाज से बांट रहा होता है यानि जो उसका नहीं उसे समाज को देने में हिचक कैसी? जो लिया यहीं से लिया, जो दिया उसी को दिया। लेकिन बहुत कम लोग समाज की वास्तविक झलक समाज को दे पाते हैं, मैत्रेयी जी इसमें सफल हैं, पूर्णतया। मैत्रेयी जी का नारी के प्रति जो मन है, उससे घुला मिला है, वे व्यथित हृदय को नजदीकी से जानती हैं। जहाँ पुरूष वर्ग नारी को 'कटि', 'नितम्ब' और 'वक्ष' तक ही केन्द्रित करना चाहता है, वहीं मैत्रेयी उसके अस्तित्व व सबलीकरण के लिए संघर्षशील हैं। मैत्रेयी जी की नारियां अब शासित न होकर स्वतंत्र होना चाहती हैं। वे अब उपभोग्या वस्तु होने से इन्कार करती हैं। मैत्रेयी और उनकी नारियों ने साहित्य में बुद्धिमत्ता का भरपूर परिचय दिया है, चेतना बुद्धि और परिस्थिति के जोरदार संघर्ष से उसका व्यक्तित्वान्तरण होता है। तब उनकी जिजीविषा और जीवटता, उभरकर सामने आती है। महाशक्ति बनकर वे परिस्थितियों में सार्थक हस्तक्षेप करती हैं।

आज की तारीख का सत्य यही है कि इतिहास की लम्बी यात्रा तय करते हुये भी औरत अपना वास्तविक वजूद समाज में नहीं बना पायी है। बकौल इब्सन– "आधुनिक समाज मानव समाज नहीं, केवल पुरूषों का समाज है, स्त्रियों का समाज नहीं होता।" समाज भी ऐसा विपन्न मानसिकता वाला। तेजी से बदलते जीवन मूल्य। महानगरीय सभ्यता के थोथे आन्दोलन। आजादी के पचास वर्षों की तथा कथित विकास उपलब्धियाँ, साथ ही गाँव की रूढ़िग्रस्त धरती। प्रगति के आयामों को विसंगतियों में घोल देने की कुप्रवृत्ति। न्याय की राह पर चलने वाली औरत की मददगार औरतें भी नहीं होती। वे पुरूष व्यवस्था की संवाहिका हैं। न्याय से तात्पर्य स्वतन्त्रता, अधिकार और स्वनिर्माण से है। बकौल मैत्रेयी पुष्पा – विपन्न मानसिकता से दुमुँहें समाज में आज भी नारी मात्र वस्तु। मात्र सम्पत्ति विनियम की चीज। काल के

स्याह अंधेरों में भटकती नारी की त्रासद जिन्दगी। दुःख–दर्दों की व्यथा कथा, जो उनकी ही नहीं, कहीं मेरी अपनी भी हो गयी।"[31]

हिन्दी उपन्यासों का यथार्थ यह कि स्त्रियां अकेलपन में अपनी स्वाधीनता नहीं तलाशती। पारिवारिक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अपना वजूद चिन्हित करना चाहती हैं। भारतीय लेखिकाओं ने फ्राँस और अमेरिका के नारी आन्दोलनों से दृष्टि विकसित नहीं की है। मैत्रेयी की दृष्टि विकसित है तभी तो नारी ह्रदय की पीड़ा को उकेरती रेडईडियन कवयित्री ज्वॉय हार्जो की कविता से प्रभावित हो उस कविता के अंश चाक उपन्यास की भूमिका में देती हैं। क्योंकि एक नारी ही नारी के ह्रदय की पीड़ा को समझ सकती है ओर उसका सही चित्रांकन कर सकती है ठीक प्रसव पीड़ा के अनुभव की तरह। स्वदेशी, गंवारू और उबड़–खबड सतह पर खड़ी होकर मैत्रेयी ने जो दृष्टि या विजन पायी है, वह महान रचनाकारों की रचनाओं को भेद रही है, नवीनीकरण कर रहीं है। उनकी स्त्रियाँ चुपचाप आँखो में पानी भरकर सहने को नहीं वरन् अपने अस्तित्व के लिए एक जान दिखलायी देती हैं।

"सदियों से साहित्य औरत को, औरत के होने की सार्थकता 'देह' में बतलाता आया है। 'संभोग' व 'संतानोत्पत्ति की साधन'। औरत ने भी मर्द की सोच को ही अपनी नियति मान ली। देह को ही उसने अपनी ताकत समझा, जिससे पुरूष को वह अपना सकती है। धार्मिक, सामाजिक बेड़ियां उसे अपने आभूषण प्रतीत हुये। इस पुरानी घिसी–पिटी सोच को मैत्रेयी की युवा स्त्रियां खारिज करती हैं। नारी केवल 'देह' नहीं जिसे पुरूष अपनी रूचि के अनुसार भोग सकें, बल्कि उसकी देह में अटका वह सूक्ष्म चेतन तत्व भी है, जो अपनी निजी इच्छाओं रूचि–अरूचि एवं आवश्यकता का बोध करा सकता है। आर्थिक मूल्यों पर यदि नारी देह उपलब्ध हो भी जाय तो भी उसकी सम्पूर्णता को पा लेना प्रत्येक पुरूष के वश की बात नहीं है।"[32] 'झूलानट' की शीलो, 'इदन्नमम' की कुसुमा भाभी', 'अल्मा कबतूरी' की अल्मा, 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी, 'चाक' की सारंग', 'आक्षेप की रमिया, ' गोमा हंसती है' की गोमा आदि ऐसे ही नारी पात्र हैं, जिसमें नारी के अन्तरंग और बहिरंग मानसिकता का ऐसा चित्रण मिलता है, जिससे स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है कि नारी की एक स्वतन्त्र अस्मिता है और वे

---

[31] बेतवा बहती रही के 'प्राक्कथन' से – मैत्रेयी पुष्पा
[32] संदर्भ : 'चाक' और ' आँवा' – शशिप्रभा त्रिपाठी

विभिन्न व्यवस्थाओं के जाल में फंसकर भी अपने नारीत्व की स्वतन्त्रत पहचान बनाये रख सकती हैं।

उपन्यास का क्षेत्र मनुष्य जीवन के व्यापक संदर्भो को स्पर्श करने वाला और यथार्थ जीवन की गत्यात्मकता के अधिक निकट होने के कारण मानव चरित्र और उसकी समस्याओं और स्वीकृतियों को यथार्थ रूप में अंकित करने वाला होता है। मैत्रेयी जी की कृतियों में ग्रामीण नारी के विविध पहलू सामाजिक निरर्थक्ता के विद्रूप चित्रण बने हैं। उनकी कृतियों में चित्रित नारी हमारे जीवन के काफी करीब है और यह समीपता सामाजिक ही नहीं मानसिक स्तर पर अधिक है क्योंकि देश की 80 प्रतिशत जनता ग्रामीण है या ग्रामीणता से जुड़ी है, उनकी भावनायें, आवश्यकतायें व समस्यायें भी काफी हद तक एक सी ही हैं। इनके उपन्यासों में चित्रित विसंगति आरोपित नहीं, यथार्थ जीवन के निकट है। छठे, सातवें, आठवें, नवें और शताब्दी के अन्तिम दशक के नारी चिरित्रों और उसके परिवेश में परिवर्तन के चिन्ह दिखलायी देने लगे थे, किन्तु जो स्पष्ट परिवर्तन के चिन्ह मिले वो था 1990 के दशक में मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य के क्षेत्र में आगमन। उनके आगमन के पश्चात उपन्यासों में नारी रूपों में बहुत बड़ा परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने सारे परम्परागत रूपों को नष्ट–भ्रष्ट करके यथार्थ को नग्न रूप में चित्रित किया है। उन्होंने यौन–वर्जनाओं, आवश्यकताओं की स्वीकृति, अस्वीकृति का चित्रण बहुत बेबाकी से किया है। उनके समस्त उपन्यास इस बात के साक्षी हैं। यह साहित्य को एक नवीन देन है।

अभिव्यक्ति के टटकेपन के अतिरिक्त मैत्रेयी के उपन्यासों के आकर्षण का एक बहुत बड़ा कारण उनकी विश्वसनीयता का बहुत बड़ा आधार, उसकी कथोपकथन प्रणाली भी है। जो सर्वथा नवीन है। मैत्रेयी जी के उपन्यासों की वैसे तो अनेकानेक विशेषतायें हैं, जो हिन्दी साहित्य में विशेष योगदान देती है, लेकिन उनमें जो प्रमुख हैं वह निम्नलिखित हैं–

1. स्त्री की अदम्य जिजीविषा एवं अदम्य साहस का चित्रण
2. स्त्री प्रेम की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति।
3. समस्त उपन्यासों में मानव अन्तर्द्वन्द्व का यथार्थ चित्रण।
4. जीवन में हार न मानने का संदेश।
5. समाज को सर्वथा एक प्रथक एवं स्वच्छंद माहौल देना।

6. मानव के उज्जवल पक्ष को उजागर करने की कोशिश।
7. स्त्री जाति की शारीरिक, मानसिक व सामाजिक समस्याओं का चित्रण एवं उनका निराकरण।
8. स्वार्थ पर टिके रिश्तों का यथार्थ चित्रण।
9. सम्मानजनक जीवनयापन की प्रेरणा देना।
10. मानवीय मूल्यों को वरीयता।
11. स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण।
12. ग्रामीण परिवेश तथा वहां के लोगों के आचार–व्यवहार का चित्रण।
13. दूषित राजनीति का खुलासा चित्रण।
14. निस्वार्थ सेवा से जगमगाते रिश्तों का चित्रण।

इन समस्त विशेषताओं से रंजित उपन्यास लिखकर मैत्रेयी जी ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक नयी दिशा प्रदान की है।

उपन्यास के संदर्भ में कहा जाता है कि हर उपन्यास एक आत्मकथा है और हर आत्मकथा एक उपन्यास। दोनों के बीच सामान्य सूत्र 'फिक्शन' है। इसी का सहारा लेकर दोनों अपने को अपने आपकी कैद से निकालकर एक दूसरे के रूप में सामने खड़ा कर लेते हैं। यानि दोनों ही कहीं न कहीं सर्जनात्मक कथा–गढ़न्त हैं। इधर उपन्यास की निर्वैयक्तिकता एवं आत्मकथा की वैयक्तिकता मिलकर उपन्यासों का नया शिल्प रच रही है। आत्मकथायें व्यक्ति की स्फुटित चेतना का जायजा होती हैं जबकि उपन्यास व्यवस्था से मुक्ति संघर्ष की व्यक्तिगत कथाएं। आत्मकथा पाए हुये विचार की या 'सत्य के प्रयोग' की सूची है और उपन्यास विचार का विस्तार और अन्वेषण।' इसलिए मैत्रेयी जी ने स्वयं स्वीकार है कि उनके प्रत्येक उपन्यास में आत्म अनुभूति और आत्मविश्लेषण की भावना प्रबल दिखलायी देती है। यानि उनके निजीजीवन का चित्रण। अपने अनुभवों के माध्यम से उन्होंने हिन्दी साहित्य को भी नयी अनुभव व शिल्प प्रदान किये हैं। मैत्रेयी जी ने साहित्य से अपरीचित दिलचस्प किस्सागोई के साथ अपने उपन्यासों व कथानकों को एक नया मोड़ दिया है। चूंकि उनके उपन्यास बुन्देलखण्ड की जमीं को आधार बनाकर लिखे गयें है। इस कारण से उनके पीछे वृन्दावन लाल वर्मा और फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यासों की अनुगूंजे स्पष्ट सुनाई देती हैं। लोककथाओं और लोकगीतों से गुथी ये कहानियों हमारे संस्कार बिम्बों को जगाती

हुयी नयी व पुरानी दोनों हैं। उनकी भाषा शैली हिन्दी साहित्य में चिरपरिचित होने के पश्चात भी बार बार नवीन जान पड़ती है, शायद अपने उन्मुक्त विचार और ठाठ के कारण।

देश आजादी की स्वर्ण जयन्ती मनाकर इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुका है, पर भारतीय नारी आज भी पितृसत्ता के किले में कैद पुरातन परंम्पराओं की कालकोठरी में घुट रही है। एक ओर आर्थिक प्रगति, दूसरी ओर शोषण का यह सनातन स्वरूप। शोषण के सतत् प्रवाह में डूबा भारतीय समाज भाग्य पर भरोसा रखने वाले दीन–हीन किसान। 'मनुष्य की मूल रूप नारी को अपनी संपत्ति मानते हुए उसे पशु एवं दलित बनाए रखकर मनमानी भोगने वाले पुरूष तथा साथ–साथ सुख–सुविधा सत्ता भोगने की लालसा रखने वाला समाज। एक अनोखा समाज, जहाँ रूढ़ियों–बेड़ियाँ सनातन है। अंधविश्वासों का अन्तहीन बोलबाला। अशिक्षा के अंधेरे गलियारे। शताब्दियों से चली आ रहीं अमानवीय यंत्रणायें। इन्हीं सीमाओं से बंधी, इन मरणोन्मुखी मानव–प्रतिमाओं के स्पन्दन का सहज चित्रण और ऐसी तथाकथित 'महान संस्कृति' के खिलाफ रणभेरी गुंजाती मैत्रेयी पुष्पा की कहानियां व उपन्यास मानव को गहन चिन्तन की ओर मुखरित करते हैं, साथ हिन्दी साहित्य को नवीन सिरे से विचारने को विवश करते हैं।

मैत्रेयी जी नारी विमर्श की दिशा में गहन चिन्तन की ओर हैं। वे ऐसा कोई पक्ष नहीं छोड़ना चाहती, जिससे नारी की दीनहीन छवि उजागर हो। मैत्रेयी ढकी–तुपी औरत को उघाड़कर उसके विचारों की नग्नता, साहित्य व समाज के समक्ष लाती हैं। वे कहती है जो है वही दिखना चाहिए। ऐसे न हो कि आप सोंचे कुछ और कहें कुछ और। इससे व्यक्तित्व और चरित्र की सच्चाई सामने नहीं आ पाती अपने आत्मकथात्मक उपन्यास 'कस्तूरी कुंडल बसै' में मैत्रेयी अपने पति के गले लगकर रोती है और मायके वापस नहीं जाना चाहती लेकिन जाना पड़ता है। "समाज के हिसाब से यह उल्टी रीति है। देखा है ऐसा कहीं। साहित्य में भी नहीं। मैत्रेयी कहती हैं– ऐसा नहीं देखा, माना पर होता ऐसा ही हैं।"[33] वह करो पर कहो मत और जो कहो वह करो मत में विश्वास नहीं रखतीं।

"सुहाग सेज पर वह जो करती हैं, वह हिन्दी उपन्यास में किसी ने नहीं किया। बिहारी की नायिका ने किया था। काव्य शास्त्र में ऐसा लिखा है इसलिए बिहारी

नायिका से ऐसा करवा रहें हैं। second hand information की तरह। पर मैत्रेयी का बयान तो साहित्य के थाने में FIR की तरह है। सुहाग सेज पर पिया को आनन्द लोक में खींचने का विपरीत कौशल सम्पन्न किया दुल्हन ने। हाय–हाय! लज्जा को नारी का गुण मानने वालों और स्त्री को छुई मुई सी देखने वालों के लिए कित्ती शर्म की बात है मैत्रेयी की यह स्वीकारोक्ति। हिन्दी के किसी उपन्यासकार ने ऐसा नहीं लिखा। आत्मकथा में तो कतई नहीं। मैत्रेयी, तुम क्या नये काव्यशास्त्र के समानान्तर नया कामशास्त्र भी गढ़ रही हो। सचमुच अब नये काव्यशास्त्र की तरह बहुत सारे शास्त्रों के नये संस्करण आ जाने चाहिए। अभी तक इन शास्त्रों की रचना पुरूष के लिए की गयी थी।''[34] स्पष्ट है कि मैत्रेयी नये तरह का साहित्य रच रही हैं। बकौल मैत्रेयी – ''स्त्री पुरूष मेल की दुश्मन है मेरी माँ। यदि मैत्रेयी पति के साथ चांदनी रात में तांगा बिहार का कार्यक्रम बनाती है तो माता जी दोनों के बीच ठंस जाती हैं– सशरीर। पति देव चाहते है और नवविवाहिता मैत्रेयी की भी कामना है कि तांगे के हिचकोलों का लाभ उठाकर पति उसे परस का सुख भी दे, पर माता जी सन्नद्ध है। मैत्रेयी ने बड़े परिताप से लिखा है कि डॉक्टर बहुत दिनों बाद अपनी पत्नी को लिवाने आया हुआ है– दिन तो कट गया पर रात दिन से बदतर बीती – कमरे में बिस्तर बिछे हैं – माता जी यहाँ भी अपने मिशन से गाफिल नहीं है – इधर भूखा प्यासा डॉक्टर पति है, उधर मैत्रेयी है, वह भी कम भूखी प्यासी नहीं है पर बीच में माता जी रति अवरोधक की तरह अपनी खटिया पर पौढ़ी हुई हैं– अपनी सखी गौरा के साथ – निःशब्द मौन नहीं बकायदा खांसते हुये। खांसियों में अंतराल पड़ते ही डॉक्टर पति गति अवरोधक को लांघकर अपनी पत्नी के बिसतर पर पहुंचता भी है। माता जी को लगता कि वह अपनी सतवंती बेटी को राज नारायण विसरिया की कविता दुहराने की याद दिला दें–

नदी के पार से मुझको बुलाओ मत,
कि हमारे बीच में विस्तार है जल का,
कि इन गहराइयों को भूल जाओ मत।''[35]

---

[33] 'कस्तूरी कुंडल बसै' (आत्मकथात्मक उपन्सास) – मैत्रेयी पुष्पा
[34] सनाका खाये समय और साहित्य में हलचल मचाती एक आत्मकथा – कान्तिकुमार जन – पृष्ठ – 39
[35] सनाका खाये समय और साहित्य में हलचल मचाती एक आत्मकथा – कान्तिकुमार जैन – पृष्ठ – 39

"मैत्रेयी की माँ उस निषाद की भूमिका में है जिसने काम मोहितम् क्रौंच में से एक का वध कर दिया था। सत्यानाश हो उस बहेलिये का–बाल्मिकी ने कहा था। दुहरा सत्यानाश हो कुमाता का–कुपुत्री कही जाने वाली मैत्रेयी कहती है। इन्होंने एक नहीं, क्रौंच –क्रौंची दोनों को अवसन्न कर दिया है। Misogynist। अकेली औरत होने की कुंठा की अभिव्यक्ति, जीवन भर समाज से लांछित किये जाने का प्रतिशोध। हिन्दी कथा – साहित्य में मैत्रेयी पुष्पा को पहिला परिणय विद्वेषी चरित्र गढ़ने का श्रेय दिया जाना चाहिए। हिन्दी में मिसोजिनिस्ट के विलोम के लिए कोई शब्द नहीं हैं। कस्तूरी ग्रन्थि कैसा रहेगा।"[36]

इस प्रकार नारी के विविध क्षेत्रों में मैत्रेयी जी ने नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं। भारतीय वांड्मय में नारी के वाह्य तथा आन्तरिक अस्मिता की प्रस्तुति पुरूष साहित्यकारों द्वारा सम्पन्न होते रहने की परम्परा है। जहाँ महिला उपन्यासकारों ने अपने सफल लेखन द्वारा इस परम्परा को तोड़ा, वहीं मैत्रेयी पुष्पा ने बुन्देलखण्डी ग्रामीण जीवन और सामाजिक यथार्थ को नारी की विभिन्न मनोदशाओं, समस्याओं, आशाओं, निराशाओं, विवशताओं, अनाचारों, विसंगतियों, न्यूनताओं तथा नारी की स्वच्छन्द उड़ान को भी अपना कत्थ बनाया है, जो अन्य पुरूष और महिला उपन्यासकारों की तुलना में अधिक मार्मिक, स्वानुभूतिपूर्ण तथा तन्मय रूप में चित्रांकित किया गया है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि बदलते परिवेश के परिप्रेक्ष्य में, नारी के लेखन में मैत्रीयी पुष्पा ने ग्रामीण परिवेश में व्यापत तथ्यों का अपनी सोच तथा संवेदना से तादात्म्य स्थापित कर उसे मार्मिक प्रस्तुति दी है। संवेदना की गहन वीथियों में उनकी बौद्धिकता का आलोक प्रायः छिटक पड़ता है। समाज में व्याप्त छद्म का आदर्श, दिखाऊ नैतिकता, समाज के किसी भी क्षेत्र में अस्तित्ववान दोहरे मापदण्ड मैत्रेयी पुष्पा की तर्क प्रवण चेतना को झकझोर कर संवेदना की तेजाबी धारायें प्रस्रवित करने के लिए उनकी लेखनी को विवश करते हैं। नारी जीवन के यथार्थ की सूक्ष्म पड़ताल कर मैत्रेयी जी ने उसे अपनी लेखनी के माध्यम से लोकार्पित किया है। सर्वकालिक मूल्य के प्रति उनका धनात्मक दृष्टिकोण उनके कृतित्व व रचना संसार को महत्वपूर्ण बनाता है।

---

[36] 'साक्षात्कार' अगस्त –2003 (सनाका खाये समय और साहित्य में हलचल मचाती एक आत्मकथा)–कान्ती कुमार जैन – 43

(ब) मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य की उपादेयता

आधुनिक कालीन साहित्य की विधा उपन्यास में पुरूष लेखकों के साथ नारी उपन्यासकारों ने भी अपनी उगंलियों में कलम थामकर काल्पनिक कथानकों और पात्रों के माध्यम से अपने परिवेश में मौजूद तत्वों, कथ्यों और दृश्यों को अपनी अतश्चेतना में समायोजित कर उसे अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है। साथ ही सामाजिक, पारिवारिक और वैयक्तिक परिस्थितियों की विसंगतियों, आधुनिकता और परम्परा के द्वन्द्वों, युगीन संत्रास, कुण्ठा, आक्रोश और टूटन की विपरीतताओं, नैतिकता, अनैतिकता के प्रति दोहरे सामाजिक मानदण्डों से आहत नारी के विविध सरोकार वर्तमान नारी उपन्यासों के प्रमुख कथ्य हैं।

हिन्दी साहित्य जगत में जो गिनी–चुनी महिला उपन्यासकार हैं उनमें से एक–आध को छोड़ दें, तो ऐसे कोई नहीं, जिन्होंने मैत्रेयी जी के समान स्वतंत्र व बेबाक टिप्पणियों के माध्यम से नारी जीवन की पीड़ा की परतों को परत–दर–परत उधेड़ा हो। इनमें नारी जीवन के विविध पहलुओं की गहन पड़ताल की गयी है। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक समस्याओं के साथ–साथ समाज में कोढ़ के समाज फैली दहेज, निर्धनता, अस्पृस्यता आदि समस्याओं को भी यथा स्थान मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों में स्थान दिया है। और सिर्फ स्थान ही नहीं दिया, उन समस्याओं के उन्मूलन का यथोचित मार्ग भी दिखलाया है। अनेक उपन्यासकार सामाजिक समस्याओं का जटिल व यथार्थ–परक चित्रण तो करते हैं, लेकिन उन समस्याओं के हल नहीं बतलाते किन्तु मैत्रेयी हर समस्या का समाधान बड़ी आसानी और सहजता से अपनी नायिकाओं के बेबाकी के माध्यम से ढूंढ निकालती हैं। यथा–उनकी कहानी 'बहुत पहले का चलन' में दादी माँ का यह कथन कि 'सब संजोगों के खेल है' प्रेम संबंधों पर वैधता की मोहर लगाता है। इसी कहानी के अंत में 'दहेज' समस्या उठने पर दादी का यह कथन– "समधी, गुस्सा मत उगलो। शरबत पीकर ठंडे हो जाओं। ऐसी लड़कियां शहर में नहीं मिली होंगी, तभी तो तुम्हारा बेटा गाँव तक चला आया। तुम 'देन–देन' की रटन लगाते रहे, पर इतना तो मानो कि प्यार–मोहब्बत तो इससे बहौत पहले का चलन है।"[37] दहेज समस्या को खत्म करने वाला है। इसी प्रकार लड़के वालों की मनमानी बातों का बुलन्द खण्डन करती हुयी

---

[37] 'बहुत पहले का चलन' (कहानी) – मैत्रेयी पुष्पा

मैत्रेयी कस्तूरी के माध्यम से कहती हैं– "डाक्टर से कहना, आज से पन्द्रह दिन तक मैं और मैत्रेयी गांव में ही हैं। लड़की देखने गाँव ही आना होगा। प्राइवेट दिखाना मुझे चोरी जैसा काम लगता है। वर पक्ष की हाँ या ना की परवाह नहीं करती।"[38]

यह कथन उन लोगों के मुंह पर तमाचा है जो लड़की वालों को लड़की दिखाने के लिए पहले तो अपनी स्थानीय जगह बुलाते हैं फिर दस मीन–मेख निकालकर लड़की पसन्द कर देने से इन्कार कर देते हैं। एक ग्रामीण स्त्री का यह कथन हम सब लड़की पक्ष वालों के लिये एक सबक है और यह कथन कि "अनदेखा करके लड़की आदमी की औकात दिखा सकती है।"[39] कुआंरी लड़कियों को एक नवीन पाठ पढ़ाता है।

मैत्रेयी वैसे तो अपने उपन्यासों में समाज के विभिन्न पहलुओं की पड़ताल करती हैं मगर जिस मुद्दे पर उनकी केन्द्रिय दृष्टि होती है वह है–'स्त्री'।

इदन्नमम की मंदा, झूलानट की शीलो, चाक की सारंग, गोमा हंसती है कि गोमा, ये रीतियों का अनुपालन एक सीमा तक ही करती हैं। चेतना और परिस्थिति के जोरदार टक्कर में उनका 'व्यक्तित्वान्तरण' होता है। तब उनकी जिजीविषा और जीवटता उभरकर सामने आती है। महाशक्ति बनकर वे परिस्थितियों में सार्थक हस्तक्षेप करती है।

मैत्रेयी जी की रचनायें ग्रामीण परिवेश से शुरू होकर जैसे–जैसे आगे बढ़ती हैं, पाठक के समाने स्त्री–विमर्श की जटिलतायें 'सहजता' से खुलती जाती हैं जिससे पाठक नारी के सम्बन्ध में एक नवीन विचारधारा से परिचित होता है। मैत्रेयी जी ने मानव जीवन के ठोस यथार्थ के तीखे–मीठे अनुभवों को भी अपने उपन्यासों में समेटा है। 'कस्तूरी कुंडल बसै' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। जिसमें उन्होंने अपनी आत्मकथा के माध्यम से अपने निजी अनुभवों को पाठकगण के समक्ष रखा है। वहाँ कल्पना व बनावट को कोई स्थान नहीं दिया गया। सीधे सपाट लफ्जों में खुलम खुल्ला हर बात को स्वीकार किया है, जो उनकी 'स्वच्छन्द प्रकृति' का परिचायक है।

---

[38] 'कस्तूरी कुंडल बसै' – मैत्रेयी पुष्पा – पृष्ठ – 145
[39] 'कस्तूरी कुंडल बसै – मैत्रेयी पुष्पा

कुछ बातें जिन्हें स्त्री बताना नहीं चाहती बल्कि छिपाना चाहती है, ऐसी बातों को मैत्रेयी जी ने समाज व रीति रिवाजों की धज्जियाँ उड़ाते हुये बड़ी ही निडरता के साथ स्वीकारा है, जिन्हें पढ़, एक बारगी पाठक स्तब्ध रह जाता है लेकिन साथ ही समाज में फैली कुरीतियों, सच्चाईयों तथा नारी के साथ हो रहे अत्याचारों से रूबरू भी होता है, जो उसे पुनः–2 विचार मन्थन की ओर ले जाता है– कि जो सदियों से नारियों के प्रति होता आ रहा है वह सही है या जो मैत्रेयी जी के नायिकायें चीख–चीख कर कह रही हैं, वह सही है। क्या आजादी के इतने वर्ष पश्चात भी नारी आजाद हो पायी? हम सब को इस पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है।

नारी दुर्गा है, शक्ति स्वरूपा है, संहारिणी है, पूज्य है, ऐसी धारणा के साथ–साथ सदियों से हमारे समाज में नारी पात्र जिस तरह से उपेक्षित रहा है और समाज व स्वयं नारी एक विकृत मानसिकता से जकड़े हुये प्रतीत होते हैं, उस छवि व ऐसी मानसिकता को मैत्रेयी पुष्पा जी ने बखूबी तोड़ा है और सिर्फ उस छवि को तोड़ा ही नहीं बल्कि उन टूटे टुकड़ों से एक सशक्त एवं दृढ़ चरित्र नारी की रचना भी की, जो समाज में निरन्तर अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है और यहीं मैत्रेयी पुष्पा जी अन्य महिला उपन्यासकारों से प्रथक दिखलायी देती हैं, जो समाज को कुछ नवीन देना चाहती, जो लोगों को विचारमंथन के अलावा क्रियान्वन की ओर ले जाये।

मैत्रेयी जी का उद्‌देश्य अपने उपन्यासों के माध्यम से बुन्देलखण्डीय नगरीय एवं ग्रामीण परिवेश में रची–बसी नारी की अनेकानेक समस्याओं विद्रूपताओं, कुरीतियों, परम्पराओं साथ ही नारी शक्ति, विश्वास व उसकी दृढ़ता आदि से समाज को व स्वयं नारी जाति को परिचित कराना है। उनकी रचनायें पाठकगण में नवीन आत्मबल का संचार करती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यासों में उपस्थित उनका आत्म–कथात्मक स्वर पाठकगण को अपनी ओर आकर्षित कर और भी उनके करीब लाता है। नारी जीवन कितना त्रासदीपूर्ण है तथा समाज व स्वयं नारी को अपने गरिमामय अस्तित्व एवं स्वयं में छिपी शक्ति की अनूभूति नहीं है। इसी अनूभूति को स्वयं नारी व समाज को अनुभव कराना ही मैत्रेयी जी का मुख्य उद्‌देश्य जान पड़ता है। साथ ही समाज के समक्ष नारी की उज्जवल व सशक्त चरित्र की भूमिका उजागर करना भी मैत्रेयी जी का एक उद्‌देश्य जान पड़ता है।

उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से नारी को इस बात से परिचित कराना चाहा कि वह चाहे जिस वर्ग विशेष की क्यों न हो, यदि उसमें साहस, धैर्य, लगन, कर्त्तव्य, आत्मशक्ति व श्रेष्ठता आदि गुण मौजूद हों, तो वह अपना वह मुकाम हासिल कर सकती है जिसकी समाज ने कभी कल्पना भी न की हो। एक आवाहन– कि अब वक्त आ गया है जब नारी इस सोये समाज को जगाकर अपने दुर्गा स्वरूप से परिचित कराना ही होगा।

"मिट्‌टी–पत्थर के ढोकों या उलसी डालियों और खुरदरी छाल के आसपास की सावधान छंटाई करके सजीव आकृतियाँ उकेर लेने की अद्‌भुत निगाह है मैत्रेयी के पास – लगभग 'रेणु' की याद दिलाती हुई। गहरी संवेदना और भावानात्मक लगाव से लिखी गई यह कहानी बदलते उभरते, 'अंचल' की यातनाओं, हार जीतों की एक निर्ब्याज गवाही है पठनीय और रोचक।"[40]

मैत्रेयी जी में 'विशिष्ट और महत्वपूर्ण' होने का बोध कहीं भी नहीं दिखलायी देता। उन्होंने अपने आपको सेमिनारों–गोष्ठियों में जगमगाते शहरी रचनाकार होने के प्रलोभनों से सहज रूप से बचा रखा है तभी तो उनके उपन्यासों का अध्ययन करने पर हम उनके सादर व्यक्तित्व से परिचित होते हैं। व्यक्तित्व जितना अधिक सादा व सरल, लेखन उतना ही सशक्त व बेबाक। उनके उपन्यासों का अध्ययन करने पर उनके साहित्य की उपादेयता के सम्बन्ध में निम्न महत्वपूर्ण बातें देखने को मिलती हैं। जैसे– वर्तमान समाज में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका उजागर कर उसकी गरिमामय प्रतिष्ठापना करना, ग्रामीण परिवेश के चित्रण के माध्यम से स्थान–विशेष की संस्कृति से अवगत कराना, प्रतिष्ठित व राजनैतिक शासकों की दूषित व षडयन्त्रकारी राजनीतिक से परिचय समाज के धार्मिक व सामाजिक रीति–रिवाजों के बारे में जानकारी कराना, समाज के निम्न व निर्धन वर्ग की समस्याओं से रूबरू कराना आदि और इन सबसे बढ़कर समाज में जहर के समान फेली पश्चिमी संस्कृति में लिप्त भारतीयजन का पुनः अपनी 'आदर्शमय संस्कृति' से जोड़ने की दीक्षा देना, साथ ही समाज को नैतिकता व सदाचारिता का पाढ़ पढ़ाना, क्योंकि वर्तमान समय में चहुँ ओर अनैतिकता व उच्छृंखलता का माहौल होने के कारण इसकी बहुत आवश्यकता जान पड़ती है। उनके

---

[40] 'इदन्नमम' की भूमिका से' – राजेन्द्र यादव – 07

ऐसे प्रयासों के कारण ही उन्हें ''द हंगर प्रोजेक्ट'' (पंचायती राज) के तहत सरोजनी नायडू के पुरस्कार से भी नवाज़ा गया है।

उपन्यास की उपयोगिता के बारे में प्रेमचन्द का दृढ़ मत है– ''जिस उपन्यास को समाप्त करने के बाद पाठक अपने अंदर उत्कर्ष का अनुभव करे, उसके सद्भाव जाग उठें, वहीं सफल उपन्यास है।''[41]

मैत्रेयी पुष्पा जी जीवन के यथार्थ को उसकी पूर्णता में दृष्टिगोचर करती हैं तथा उसमें निहित आदर्श की हलकी परतों को भी यथा अवसर उद्घाटित करती हैं। पात्रों के अस्तित्व में ही आदर्श एवं यथार्थ का ऐसा सन्निवेश दिखलायी पड़ता है कि उनका व्यवहार हमें पुलकित कर देता है, हमारे सद्भाव जगा सद्मार्ग की ओर प्रेरित करता है।

''मैत्रेयी पुष्पा जी की प्रत्येक रचना में समाज की सीमाओं में बंधी, मरणोमुखी मानव प्रतिमाओं का स्पंदन सहज ही सर्वत्र अनुभव होता है। मैत्रेयी ने अपने जिये हुये परिवेश को जिस सहजता से प्रस्तुत किया है, जिस स्वाभाविकता से, उससे अनेक रचनाएँ, मात्र रचनाएँ न बनकर, अपने समय का, अपने समाज का एक दस्तावेज बन गयी हैं।''[42] जो समय–समय पर हमारे सुसुप्त मनोभावों को जागृत कर एक नवीन दिशा की ओर अग्रसर करती हैं।

''मैत्रेयी लड़कियों पर लागू 'कोड आफ कंडक्ट' को नहीं मानती उनके उपन्यास स्त्री के हक में, स्त्री की जैविकता के हक में मैत्रेयी का एक अविश्रांत युद्ध हैं– जीवन का मेनीफेस्टो। मैत्रेयी की नारियाँ व वे स्वयं पुरूष से मुक्ति की कामना नहीं करती। वह पुरूष से समकक्षता का दावा करती हैं। उनके उपन्यासों में रंजित स्त्री–पुरूष रूपी पुष्प की सुगन्ध व ग्रामीण अंचल की माटी की गंध पुरूष और स्त्री की समकक्षता में है।''[43] उनका उद्देश्य पुरूष वर्ग का नारी वर्ग के प्रति संकुचित दृष्टिकोण को पुरूष वर्ग के समकक्ष लाना है। वे पुरूष से नहीं, पुरूष विचारों से मुक्ति की कामना करतीं हैं।

---

[41] प्रेमचन्द के उपन्यास सम्बन्धी विचार – प्रेमचन्द – 374
[42] 'गोमा हंसती है' (कहानी संग्रह) क 'प्राक्कथन' से उद्धृत.
[43] 'साक्षात्कार', सनाका खाये समय और साहित्य में हलचल मचाती एक आत्मकथा–कान्तिकुमार जैन

मैत्रेयी का आत्मकथात्मक उपन्यास 'कस्तूरी कुण्डल बसै' अपने आप में नारी जीवन का एक सम्पूर्ण दस्तावेज है। नारी की जिजीविषा, अतृप्त कामनायें, इच्छाओं का लेखा–जोखा। इसमें मैत्रेयी ने अपनी माँ कस्तूरी के माध्यम से जहाँ नैतिकता व समाज में फैली विद्रूपताओं को रेखांकित किया है, वहीं स्वयं अपने माध्यम से एक युवती की उत्कृष्ट कामनाओं का चित्रण भी बड़ी बेबाकी से किया गया है। जहाँ माँ कस्तूरी अपनी सारी क्षमताओं के बावजूद स्वयं से छल करती हुई परम्पराबद्ध नारी है और मैत्रेयी इस छल–पोषित परंपरा से मुक्त होने के लिये विद्रोह करती हुयी नयी पीढ़ी की सुशिक्षिता युवती। इस विद्रोह में रूढ़ियों के परम्पराओं के, लांछन के, लोकाचार के कुंडल टूटते हैं। इनके टूटने में समय अवश्य लगता है। बकौल मैत्रेयी – "स्त्री पुरूष मेल की दुश्मन हैं मेरी माँ 'Misogynist' और तो और, अपनी बेटी और उसके सात फेरों वाले पति–परमेश्वर के बीच भी वह जब देखो तब रति–गति अवरोधक का काम करती है।"[44] लज्जा को नारी का आभूषण मानने वालों के लिये मैत्रेयी की माँ सही हो सकती है, पर मैत्रेयी और आज की नवयुवतियों के लिये नहीं। मैत्रेयी व उनकी नारियाँ आगे से आगे शारीरिक इच्छाओं की माँग करती दिखलायी देती हैं। "अब स्त्री के भी मैदान में आने के दिन आ गये हैं। उसके एक्ठीविस्ट होने के दिन। सुना है, अमेरिका में कोई महिला वात्स्यायन के कामसूत्र का स्त्री पाठ तैयार कर रही है– उसने स्त्री देह में कोई 'जी प्वाइंट' तलाश भी किया है। असल में मैत्रेयी अपने 'आदिम' दोष के प्रक्षालन का कोई अवसर नहीं चूकती– "मेरा दोष यही रहा कि मैं औरत के रूप में भयानक खूँखार माहौल में डटी रही।"[45] वे औरत को औरत होने की सम्पूर्ण जैविकता में देखती व स्वीकारती हैं। उनका साहित्य औरत को सम्पूर्ण अस्तित्व में स्वीकारने का अविश्रांत युद्ध है। मैत्रेयी औरत के औरत होने व उसकी गतिविधियों का संस्कार करती चलती हैं।

"आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने वृद्धावस्था में एक पुस्तक लिखी थी जिसका नाम 'बहूरानी को सीख' या ऐसा ही कुछ था। सुहागरात को पत्नी को क्या करना चाहिए और क्या नहीं Don't और Dos की पूरी फेहरिस्त। जब उस पुस्तक का विज्ञापन होता था तो यह अनिवार्यतः उल्लेख किया जाता था कि नवविवाहिताओं को यह पुस्तक दहेज में जरूर दी जानी चाहिए। मैत्रेयी की "कस्तूरी कुंडल बसै" को समीक्षकों

---

[44] 'कस्तूरी कुंडल बसै'–मैत्रेयी पुष्पा
[45] 'साक्षात्कार' – अगस्त 2003 – कान्तिकुमार जैन – 49

न इस दृष्टिकोण से शायद नहीं पढ़ा। नये जमाने की लड़कियाँ, जो स्कूटर चलाती हैं, टेनिस खेलती हैं, वेटलिफ्टिंग और पर्वतारोहण करती हैं, अपनी दादी या नानी के जमाने की लड़कियों जैसी नहीं रह गयी हैं– न तन से, न मन से। इन लड़कियों को ग्लानि या अपराध बोध से बचने के लिये मैत्रेयी की यह आत्मकथा बड़ी शिक्षाप्रद होगी– एक भुक्तभोगी और अनुभवी सीनियर के मार्गदर्शन की तरह। इससे उन्हें अपने पति और स्वयं को भी संभालने के बहुत से गुर मिल जायेंगे– कान्ता सम्मत उपदेश का नया पाठ। मैत्रेयी सम्मत उपदेश।''[46]

रामायण में वाल्मिकी ने लिखा है कि राजा जनक के यहाँ जब पहली बेटी सीता ने जन्म लिया तो उनके मुख मण्डल पर चिंता की रेखाएँ झलक आयीं। राजपुरोहित ने जब इस चिन्ताकुलता का कारण जानना चाहा तो जनक जी ने कुछ छिपाया नहीं, साफ ही कहा कि जब परिवार में बेटी का जन्म हो तो उसे पिता की चिन्ताओं का प्रारम्भ समझना चाहिए। भारतीय परिवार की इस चिन्ता के कारणों में अभी तक कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। 'ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।' और 'नारि की झांई परे, अंधा होत भुजंग' कहने वाला समाज आज भी मानता है कि अबला जीवन की कहानी आंचल के दूध और आँखों के पानी से ही लिखी जाती है। बहुत कम ऐसे प्रसंग आते हैं जब कोई यह कहने की तेजस्विता दिखाता है– ''एक नहीं दो दो मात्राएँ नर से भारी नारी।'' लेखिका मैत्रेयी भी अपने उपन्यासों व कहानियों के माध्यम से उसी तेजस्विता का प्रमाण देती हैं। एक नहीं अनेक अवसरों पर वह स्वयं के लिये अबला, ललना, रमणी, प्रमदा, भोग्या जैसी संज्ञाएं अस्वीकार करती हैं, यही तेजस्विता इनकी नायिकायें दिखलाती हैं। उनका नाम भले ही मैत्रेयी पुष्पा हो, उनकी वास्तविक छवि मैत्रेयी दुर्गा की है।

ब्रज बुन्देलखण्ड जनपद (और स्त्री जनपद की भी) मनोवैज्ञानिक सामाजिक सच्चाइयों को उजागर करते हुये मैत्रेयी पुष्पा जी के उपन्यास परम्परा पोषित सारी रूढ़ियों, आशंकाओं, अविश्वासों, कुत्साओं और मनु द्वारा प्रवर्तित स्त्री संविधान को नकारते हुये आधुनिक विचारों से ओतप्रोत हैं। एक ऐसी स्त्री की रचना करते हुये, जिसके पास यदि वक्ष है तो मेरूदंड भी है, जिसके सामने यदि जकड़न भरा दृश्य भी है, जो कमलादास की तरह केवल सेक्स प्रतीक नहीं जिसको जो चाहे बिस्तर तक ले

---

[46] 'साक्षात्कार' – अगस्त 2003 – कान्ति कुमार जैन – 50

जायं, वह अमृता प्रीतम की तरह सेक्स कुड़ी भी नहीं है तो दिमाग की अपेक्षा दिल से अधिक सोचती है। मैत्रेयी अपनी जैविका से आक्रान्त नहीं, वह अपनी स्त्री जैविकता को स्वीकार करती हैं, स्वीकार करने का संदेश देती हैं। अपनी स्त्री जैविकता को सकारने, समझने और प्रतिष्ठित करने की अदम्य जिजीविषा ने मैत्रेयी पुष्पा को हिन्दी उपन्यास लेखिकाओं और भारतीय जगत में अद्‌भुत जीवट प्रदान किया है– रचनात्मक भी और व्यवहारिक भी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनका साहित्य मानव जीवन के क्षितिज के तथा नारी जीवन के व्यापी संदर्भों को आत्मसात करके मानवीय चरित्र, समस्याओं, अतरंग तथा बहिरंग प्रांसगिमताओं को निजस्विनी प्रतीतियों तथा आत्म पर अवबोधों से प्रमाता को विभोर कर अपने प्रवाह में बहा ले जाने की समार्थ्य रखता है।

अंत में अनुसंधित्स इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि मैत्रेयी पुष्पा जी के साहित्य संसार का प्रभाव युग चेतना की ऋणात्मकता के अवबोध से पाठकों को आदर्श समाज के सृजन की प्रेरणा देगा। नारी अस्मिता को सम्मान व स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। स्वयं नारी अपनी आन्तिरिक शक्ति का अवलोकन कर उसे शिवत्व प्रदान कर सकेगी। वर्तमान युग व आने वाला युग दोनों मैत्रेयी जी के साहित्य से प्रभावित हुये बिना न रह सकेंगे और सामाजिक चेतना के संदर्भ में नारी नये कीर्तिमान व आयाम हासिल कर सकेगी। ऐसा मेरा दावा है। अस्तु।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

परिशिष्ट

मैत्रेयी के उपन्यास

1.	बेतवा बहती रही	किताब घर प्रकाशन, दिल्ली 1994
2.	इदन्नमम	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1994
3.	चाक	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1997
4.	झूलानट	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1999
5.	अल्मा कबूतरी	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2000
6.	अगनपाखी	वाणी प्रकाशन 2001
7.	विजन	वाणी प्रकाशन 2002
8.	कस्तूरी कुंडल बसै	किताब घर प्रकाशन 2002
9.	कही ईसुरी फाग	राजकमल प्रकाशन 2004

कहानी संग्रह

1.	चिन्हार	–	आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली 1997
2.	गोमा हंसती है	–	किताब घर, नई दिल्ली 1998
3.	ललमनियाँ	–	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2002

स्त्री विमर्श सम्बन्धी पुस्तक

1.	खुली खिड़कियाँ	–	सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली 2003

अ. उपस्कारक उपन्यास

1. प्रेम अपवित्र नहीं	–	लक्ष्मी नारायण लाल
2. दीप शिखा	–	महादेवी वर्मा
3. श्रृंखला की कड़ियां	–	महादेवी वर्मा
4. रूकोगी नहीं राधिका	–	उषा प्रियम्बदा
5. पचपन खम्भे लाल दीवारें	–	उषा प्रियम्बदा
6. मृण्मयी	–	सुखा गोयल
7. उर्वशी	–	रामधारी सिंह 'दिनकर'
8. मैला आंचल	–	फणीश्वर नाथ 'रेणु'
9. मृगनयनी	–	वृन्दावन लाल वर्मा
10. यशोधरा	–	मैथिली शरण गुप्त
11. पिया	–	उषा देवी मित्रा
12. कामायनी	–	जयशंकर प्रसाद
13. कितनी कैदें	–	मृदुला गर्ग –जनवरी 1971
14. गोदान–	–	प्रेमचन्द इलाहाबाद 1966
15. प्रसारिका	–	जुलाई सितम्बर – 1954
16. त्रिशंकु	–	मन्नू भंडारी
17. मन्नू जी के तमाम रंग	–	कवि अजीत सिंह
18. नये कहानीकार	–	राजेन्द्र यादव
19. हिन्दी उपन्यास	–	डॉ. सुरेश सिन्हा

ब. उपस्कारक ग्रन्थ

20. आदर्श हिन्दू	–	भाग एक एवं दो
21. मनु स्मृति	–	मनु
22. प्रश्नोत्तरी	–	आदि शंकराचार्य
23. रामचरित मानस (लंका काण्ड)	–	गोस्वामी तुलसी दास
24. अथर्ववेद एवं यजुर्वेद		

स. उपस्कारक : इतिहास व साहित्य सम्बन्धी पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य — डॉ० सुरेश चन्द्र शर्मा
2. प्रेमचन्द का नारी चित्रण — डॉ० गीता लाल
3. हिन्दी साहित्य के सौ वर्ष — डॉ० वेद प्रकाश
4. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास — श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी
5. हिन्दी उपन्यासों में नारी — डॉ० शैल रस्तोगी
6. अनुपस्थित भाषा के पात्र — मैत्रेयी पुष्पा
7. हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण — बिन्दु अग्रवाल
8. हिन्दी उपन्यास की उपलब्धियां — वार्ष्णेय
9. उपन्यास संदेश—
   निबन्ध, समस्या मूलक उपन्यास — प्रो० महेन्द्र
10. प्रेम चन्द्र के उपन्यास सम्बन्धी विचार — प्रेम चंद भटनागर
11. राजनीति में लेखकों की सक्रिय भागेदारी— गिरिराज किशोर
12. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में
    बदलते सामाजिक संदर्भ — डॉ० शीतल प्रभा वर्मा
13. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ — डॉ० जयकिशन प्रसाद
14. साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना — डॉ० जितेन्द्र वत्स
15. मैत्रेयी के उपन्यासों व कहानी संग्रह की भूमिका— राजेन्द्र यादव
16. हेमलॅट — विलियम शेक्सपियर
17. उपन्यासकार रामदरश मिश्र — डॉ० वेद प्रकाश अमिताभ
    — डॉ० प्रेम कुमार
18. समकालीन हिन्दी कहानी — यथार्थ के विविध आयाम

द. उपस्कारक लेख

1. कविता – मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नजरो में – निर्मला पुतुल, हंस, सितम्बर 2003
2. लकीरें – (अप्रकाशित कविता संग्रह) – मैत्रेयी पुष्पा
3. लगन जो लत बन गई (कहानी) – मैत्रेयी पुष्पा, आउट लुक 'साप्ताहिक' (हिन्दी लेखन विशेषांक)
4. सनाका खाये समय और साहित्य में हलचल मचाती एक आत्मकथा – कान्ति कुमार जैन
5. कविता – रामेश्वर प्रसाद गुप्ता 'इन्दु' (अमर उजाला के पत्र स्तम्भ से–अप्रैल 2000)
6. लेख – राधिका सोनटक्के– ज्ञानोदय, अप्रैल वर्ष 1979
7. आंचलिक कथा – दिशा और दशा – साप्ताहिक हिन्दुस्तान

(ग) उपस्कारक पत्र-पत्रिकायें

समाचार पत्र

1. अमल उजाला
2. दैनिक जागरण
3. दैनिक भास्कर
4. सहारा समय
5. साप्ताहिक हिन्दुस्तान
6. क्रान्ति घोष

सहयोगी पत्रिकायें

1. हंस
2. सारिका
3. प्रसारिका
4. संवेद
5. साक्षात्कार
6. ज्ञानोदय